NAM MHATIYAM 1953 G.K.V.



नाम-महात्म्य

१८५३

नाम-माहात्म्य



वर्ष १३]　वार्षिक मूल्य २≡)　संस्थाओं से १।≡)　[अंक १
एक प्रति का ≡)

॥ श्री हरिः ॥

विषय-सूची

[जनवरी सन् १९५३]

—:०:—

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताह में "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जाते हैं; फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भेजा जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्रव्यवहार में अपना ग्राहक-नम्बर लिखने की कृपा करें एवं उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजने चाहिये पत्रव्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पते पर स्पष्ट अक्षरों में लिख कर भेजिये।

व्यवस्थापक:—"नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम
पोस्ट—वृन्दावन (मथुरा)

सम्पादक तथा प्रकाशक—गौरगोपाल मानसिंहका, श्रीभगवान् भजनाश्रम, वृन्दावन (मथुरा)।
मुद्रक—राममोहन शास्त्री, श्रीगोविन्द मुद्रणालय, काशी।

ॐ

॥ श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः ॥

"नाम-माहात्म्य"

वृन्दावन



राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहु जौ चाहसि उजिआर ॥

वर्ष १३ | "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन, जनवरी सन् १९५३ | अंक १

विरह-अवस्था

जिय की साध जु जियहिं रही री।
बहुरि गुपाल देखि नहिं पाए बिलपत कुंज अही री ॥
इक दिन सो जु सखी यहि मारग बेचन जात दही री।
प्रीति के लिएँ दान मिस मोहन मेरी बाँह गही री ॥
बिनु देखैं छिनु जात कलप सम बिरहा अनल दही री।
परमानँद स्वामी बिनु दरसन नैनन नदी बही री ॥

—स्वामी परमानन्ददासजी

नाम-स्मरण की महिमा

प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि वै । यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते । प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम् ॥
प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन् । नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयान्नरः ॥
विष्णुसंस्मरणात्क्षीणसमस्तक्लेशसञ्चयः । मुक्तिं प्रयाति स्वर्गाप्तिस्तस्य विघ्नोऽनुमीयते ॥
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु । तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥
क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम् । क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम् ॥
तस्मादहर्निशं विष्णुं संस्मरन्पुरुषो मुने । न याति नरकं मर्त्यः सङ्क्षीणाखिलपातकः ॥

(विष्णुपुराण २।६।३९-४५)

श्रीपराशरजी मैत्रेय मुनि से कह रहे हैं—'मैत्रेयजी ! तपस्या और कर्मानुष्ठानरूप जितने भी प्रायश्चित्त शास्त्रों में वर्णित हैं, उन सबमें भगवान् श्रीकृष्ण का निरन्तर स्मरण परम श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है । जिस मनुष्य के अन्तःकरण में पाप हो जाने पर पश्चात्ताप होता है, उसी के लिये प्रायश्चित्त का विधान है, किंतु श्रीहरिकी अखण्ड स्मृति एकमात्र सर्वोत्कृष्ट प्रायश्चित्त है । सबेरे, रात्रि में तथा सायंकाल और दोपहर में—हर समय श्रीनारायण को याद करते रहने से मनुष्य के पापों का क्षय होकर वह श्रीनारायण को ही प्राप्त हो जाता है । भगवान् श्रीविष्णु का भलीभाँति स्मरण करने से मनुष्य के सम्पूर्ण क्लेशों का समूह नष्ट हो जाता है और वह जन्ममृत्युरूप बन्धन से छुटकारा पा लेता है । (फिर भगवान् के स्मरण से स्वर्ग की प्राप्ति तो साधारण बात है) किंतु वास्तव में स्वर्ग-प्राप्ति साधक के लिये परमार्थ में विघ्न ही माना गया है । जिस मनुष्य का मन जप, हवन, पूजा-पाठ आदि करते समय भगवान् श्रीकृष्ण में लगा रहता है, उसके लिये तो यह देवराज इन्द्र के पद की प्राप्ति रूप फल लक्ष्य प्राप्ति में विघ्न ही है । जरा विचारिये, कहाँ तो पुनरागमन करनेवाले स्वर्ग का प्राप्त होना और कहाँ सर्वश्रेष्ठ मोक्ष का बीज (हेतु) 'वासुदेव' इस प्रकार भगवान् के इष्ट नाम का जप करना ! अतएव मुनिश्रेष्ठ ! जो पुरुष भगवान् श्रीविष्णु का ही रात दिन स्मरण करता रहता है, वह मनुष्य समस्त पापों के नष्ट हो जाने से नरक को नहीं प्राप्त होता ।'

(संकलित)



श्रीस्वामीजी रामसुखदासजी महाराजका एक महत्त्वपूर्ण प्रवचन

प्रेषक—'श्रीकृष्ण'

संत भगवान्से अलग अपना 'अहं' नहीं मानते, स्वार्थ नहीं रखते; भगवान्से अलग उनकी कोई इच्छा नहीं, वे भगवान्की इच्छा में अपनी इच्छा, उनकी रुचि में अपनी रुचि मिला देते हैं और उनके हरेक विधानमें परम संतुष्ट रहते हैं। इसीलिये कहा है—

तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्। (नारदभक्तिसूत्र ४१)

संत भगवानपर ही निर्भर हो जाते हैं। 'जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये'—को वे अपने जीवनमें अक्षरशः चरितार्थ करते हैं, और इस प्रकार भगवानके विधानानुसार रहनेमें वे बड़े प्रसन्न रहते हैं। हमलोग भी भगवानके विधानानुसार ही रहते हैं। (क्योंकि भगवानकी इच्छाके विरुद्ध एक पत्ता भी नहीं हिलता) पर उसमें हमारी प्रसन्नता नहीं रहती, हमें बाध्य होकर रहना पड़ता है। यदि उससे बचनेकी शक्ति-सामर्थ्य होती तो बच जाते तथा शक्ति-सामर्थ्य न रहने पर भी उससे बचनेका असफल प्रयत्न निरन्तर करते ही रहते हैं। पर सन्तमें ऐसी बात नहीं है। सन्तके मनमें भगवानके विधानानुसार बरतनेमें कुछ भी विचार नहीं होता; प्रत्युत भगवानके विधानके अनुसार प्राप्त-परिस्थिति उसके लिये अनुकूल से अनुकूल है। अतएव 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' के अनुसार भगवान् भी उनमें विशेष रूपसे प्रकट रहते हैं। भगवान् स्वयं कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥
(गीता ९-२९)

'हे अर्जुन ! मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है; परन्तु जो मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।' विचारकर देखें तो बात भी ठीक है। जैसे एक मकान है, उसमें किसीका कब्जा-दखल नहीं है, अतएव उसमें रहनेसे स्वाभाविक ही प्रसन्नता होगी। इसी प्रकार संत के 'अहं' रहित अन्तःकरणमें भगवान् रहकर बड़े प्रसन्न रहते हैं, क्योंकि वहाँ उनके रहनेमें 'अहं' किसी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं डालता। भगवान् ऐसे घरमें बड़े निःसंकोच भावसे रहते हैं। इस प्रकार संतके हृदयमें भगवान् का वास होनेसे, वह जो कार्य करता है, वह भी भगवान् ही करते हैं; वह जो भी सोचता है, वह भगवान् ही सोचते हैं, आदि-आदि।

संत और भगवान्के विषयमें तीन प्रकारकी बातें मिलती हैं—

(१) दोनोंमें कुछ अन्तर नहीं,

संत-भगवंत अन्तर निरंतर नहिं किमपि मति मलीन
कह दास तुलसी।
(विनय पत्रिका)

संत ही भगवान् हैं और भगवान् ही संत हैं अर्थात् संतोंका भगवान्के अतिरिक्त कोई पृथक् अस्तित्व ही नहीं रहता। केवल भगवान् ही रह जाते हैं। किसीने कहा भी है—

ढूँढा सब जहाँमें पाया पता तेरा नहीं।
जब पता तेरा लगा तो अब पता मेरा नहीं॥

(२) भगवान् भगवान् ही हैं, संत संत ही है। भगवान् संतके बराबर नहीं, उससे बड़े हैं। संतका ज्ञान, सामर्थ्य, शक्ति आदि भगवान्‌की अपेक्षा सीमित रहती है। माना संत भगवान् को प्राप्त होता है और दूसरेको भी उनकी प्राप्ति करा सकता है। पर भगवान् भगवान् ही हैं। न्यायसे भी यह ठीक लगता है। जैसे जब हमें कोई संत मिलता है तो हम कहते हैं—'महाराजजी! भगवान् मिला दो।' इससे प्रत्यक्ष है कि सन्तके मिलनसे हमारी आत्यन्तिक तृप्ति नहीं हुई, उनसे बड़ी जो एक वस्तु—भगवान् है उसको पानेकी इच्छा बनी रही। इससे भगवान्‌का बड़ा होना प्रकट होता है।

(३) सन्त भगवान् से बढ़कर—है—राम तें अधिक राम कर दासा।' भक्तों ने कहा भगवान बड़े हैं माना, पर बड़े होते हुए भी वे हमारे काम नहीं आते—

व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी।
सत् चेतन घन आनंद राशी॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अविकारी।
सकल जीव जग दीन दुखारी॥

किन्तु उनकी पहचान, उनकी प्राप्ति संत करवा देते हैं, अतः हमारे लिये तो संत बड़े हुए। भगवान्‌के बनाये हुए जीव घोर नरकों को भी प्राप्त होते हैं (चाहे हों अपने कर्मोंसे ही) किन्तु संतोंके बनाये हुए जीव कल्याणको ही प्राप्त होते हैं, उनकी दुर्गति कभी नहीं होती। भगवान् तो दुष्टोंका उद्धार करते हैं उनका विनाश करके, पर संत दुष्टोंका उद्धार करते हैं उनकी वृत्तियोंका सुधार करके। भगवान कानूनमें बँधे हुए हैं, परन्तु संतोंमें दया आ जाती है। इस प्रकार संत भगवान्‌से बड़े भी हैं। भगवान् सब जगह मिल सकते हैं, पर संत कहीं-कहीं हैं। अतएव वे भगवान्‌से दुर्लभ भी है।

हरि दुरलभ नहि जगत में हरिजन दुरलभ होय।
हरि हेरयां सब जग मिले, हरिजन कहिंयक होय॥

हमारा उद्धार करने में तो भक्त बड़ा हुआ, अतएव हमारे लिये तो उसे बड़ा मान सकते हैं, पर वास्तवमें भगवान् बड़े हैं। तात्विक दृष्टिसे देखें तो संत और भगवान् दोनों एक हैं, क्योंकि सन्त भगवान्‌से पृथक् अपनी आसक्ति, ममता, रुचि आदि नहीं रखनेके कारण वे भगवत्स्वरूप ही हैं—

भगति भगत भगवंत गुरु चतुर नाम वपु एक।

इस प्रकार प्रकारान्तरसे ऊपर विवेचनकी हुई तीनों बातें सच्ची हैं।

अब प्रश्न होता है कि सन्तोंका सेवन किस प्रकार किया जाय? सो सन्तोंके सेवनका सर्वोत्तम ढंग है उनके मनके मुताबिक चलना, उनके सिद्धान्तोंका आदरपूर्वक पालन करना। यह सन्त सेवनकी ऊँचेसे ऊँची विधि है। इसमें हेतु यह है कि सन्तोंको अपना सिद्धान्त जितना प्यारा होता है, उतने प्यारे उनको अपने प्राण भी नहीं होते (जो हम लोगोंको सबसे अधिक प्यारे हैं)। यही कारण है कि आवश्यकता पड़नेपर वे अपने प्राण छोड़ सकते हैं, पर सिद्धान्त नहीं। अतएव उनके सिद्धान्तका साङ्गोपाङ्ग पालन करना, उनके मनके अनुसार चलना, यदि मनका पता न लगे तो इशारे, आज्ञा आदि के अनुसार चलना चाहिए; यह उनकी सबसे बड़ी सेवा है—'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।' शरीरसे सेवा करनेके साथ यदि मनसे भी सेवा की जाय तो कहना ही क्या है।

सेवाका दूसरा स्वरूप है—उनका संग करना, उनसे भगवत्सम्बन्धी बात पूछना। सेवाके इस स्वरूपसे हम उनसे अधिक लाभ उठा सकते हैं। संतोंसे पुत्र, स्त्री, धन, मान, बड़ाई आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले सांसारिक पदार्थ चाहना अमूल्य हीरेको पत्थरसे फोड़ना है, यह संतोंके संगका

सदुपयोग नहीं है। यों संतोंके कहने आदिसे पुत्र आदिकी प्राप्ति भी हो सकती है, किन्तु यह तो उनकी कीमत न समझना है। यह स्थिति बड़ी शोचनीय है।

संतको प्रायः हम समझते नहीं। हमलोग तो उसकी बाहरी क्रियाओंमें विशेषता देखते हैं। जैसे अधिक खाना, नंगा रहना, मिट्टीको सोना बना देना आदि चामत्कारिक बातें। किन्तु इन बातोंसे संतपनेका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। संतोंका यह लक्षण कहीं भी नहीं लिखा है। गीतामें स्थान-स्थानपर भक्त आदिके लक्षण लिखे हैं, पर उसमें एक स्थानपर भी नहीं लिखा है कि वे बेटा दे देते हैं, वे वचनसिद्ध होते हैं आदि।

संतोंकी पहचानका सीधा-सा उपाय यही है कि जिस व्यक्तिके संगसे हमारा साधन बढ़े, हममें दैवी सम्पत्ति आवे, हमारे आचरणमें न्याय आने लगे, भगवत्तत्त्वका ज्ञान होने लगे, सत् शास्त्र, भगवान्, महात्मा आदिमें श्रद्धा बढ़े भगवान्‌की स्मृति अधिक रहने लगे, हमारे लिये वही संत है। संतोंसे ऐसा ही लाभ लेना चाहिये और उनसे इस प्रकारका आध्यात्मिक लाभ लेना ही सच्चा लाभ है।

भगवान्‌से लाभ उठानेकी पाँच बातें हैं—नाम-जप, सेवा, आज्ञा-पालन, ध्यान और संग। पर संतोंसे लाभ लेनेमें संग, आज्ञा और सेवा ये तीन ही साधन उपयुक्त हैं। संत-महात्मा पुरुष अपने नामका जप और अपने स्वरूपका ध्यान कभी नहीं बताते और जो अपने नाम और रूपका प्रचार करते हैं वे कदापि सन्त नहीं। सच्चा सन्त तो नाम, जप और ध्यान भगवान्‌के ही करनेको कहता है। हाँ, वह संग, आज्ञा और सेवा इन तीनके लिये प्रायः मना नहीं करता। सेवामें कुछ संकोच रखता है और जहाँ तक सम्भव होता है, नहीं करवाता है। सेवाके दो भेद हैं—(१) पूजा, आरती करना आदि (२) वस्त्र देना, भोजन देना, अनुकूल वस्तुओंको प्रस्तुत करना इत्यादि। भगवान्‌की तो ये दोनों हो जाती हैं, परन्तु संत पहली प्रकारकी सेवा नहीं चाहता और ऐसी सेवा अपने स्थानपर भगवान्‌की करवाता है। क्योंकि वह जानता है कि 'मेरा शरीर हाड़-मांसका है, इसकी सेवासे क्या लाभ!' दूसरी प्रकारकी सेवा वह आश्रम और वर्णके अनुसार स्वीकार कर सकता है। इस प्रकारकी सेवा भी वह सन्तपनेकी दृष्टिसे नहीं लेता, आश्रम और वर्णकी ही दृष्टिसे लेता है, अतएव इनकी पूर्ति करना अनुचित नहीं। इस प्रकारकी सेवा केवल सन्त ही नहीं, जो भी हो, ले सकता है। यदि कोई सन्त नहीं है, पर उसे भूख, प्यास लगी है, तो उसके लिये यह छूट है कि वह जिस व्यक्तिके पास ये चीजें हों, उससे माँग सकता है।

रही आज्ञा पालनकी बात। सो वे कोई बात आज्ञाके रूपमें नहीं कहते। वे अपनी नम्रताके कारण जब किसी व्यक्तिको कुछ कार्य करनेके लिये कहते हैं तो बस इतना ही संकेत करते हैं कि अमुक परिस्थितिमें शास्त्रोंकी ऐसी आज्ञा है, भगवान् की ऐसी आज्ञा है, सन्तोंने ऐसा कहा है आदि आदि। पर यह जरूर है कि उनके कहे अनुसार करनेसे लाभ अवश्य होगा। अतएव वे जो कुछ निर्देश करें उसे उनकी ही आज्ञा समझकर पालन करें तो भी वे विरोध नहीं करते। यह उनकी हमारे प्रति उदारता है, कृपा है, यह उन्होंने हमारे लिये छूट दे रखी है। आज्ञा-पालन का स्थान सेवामें सबसे ऊँचा माना गया है। शरीरकी पूजासे उनके वचन अधिक महत्वके हैं। अतएव वचनोंको ही प्रधानता देनी चाहिये। एक सन्त थे। उनके पास रहनेवाले व्यक्तियोंसे एक व्यक्ति उनके प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति रखते थे। एक दिन सन्तने उनकी परीक्षा लेनी चाही। वे बोले—'मेरी कमरमें दर्द हो रहा है, जरा अपने पैरसे इसे दबा दो।' श्रद्धालुने कहा—'महाराज, आपके शरीरपर पैर कैसे रखूँ?' सन्तने तुरन्त उत्तर दिया, 'ठीक

है, मेरे शरीरपर तो तुम पैर नहीं रखते पर, मेरी जबानपर तो पैर रख दिया न।' यह एक दृष्टान्त है। इससे हमें यह शिक्षा लेनी चाहिये कि सेवामें वचनोंके पालनको सबसे अधिक महत्त्व देना चाहिये। हाँ, यह सम्भव है कि हम सन्तके वचनका पूरा पालन न कर सकें, किन्तु यदि मनमें वचन पालनकी नीयत है, तथा उसके लिये यथा-सामर्थ्य प्रयत्न भी किया गया है, तो फिर चाहे उसका अक्षरशः पालन न भी हो पाया हो तो भी उससे बहुत बड़ा लाभ होता है।

यदि सन्तोंके वचनोंका भाव कहीं पूर्णरूपसे समझमें नहीं आवे तो नम्रतापूर्वक उनसे ही पूछकर समाधान कर लेना चाहिये। पर समझमें आ जानेपर पालन करनेमें किञ्चिन्मात्र भी कमी नहीं लानी चाहिये। सन्तके वचन-पालनमें यदि कहीं उनकी सेवाका भी त्याग करना पड़े तो वह भी कर देना चाहिये। सेवा करनेसे जब लाभ है तो सेवा-त्यागसे अधिक लाभ होना चाहिये, जो कीमती चीज है, उसका त्याग उस चीजसे भी बड़ा है। क्योंकि यह त्याग भी जब सन्तकी आज्ञासे ही किया जाता है तो वह और महत्त्वकी बात होती है। सच्चा श्रद्धालु इसमें क्यों चूकेगा? हाँ, एक बात है। जो सेवाके कष्टसे बचकर सेवाका त्याग करते हैं, वे तो सेवाके महत्त्वको जानते ही नहीं। उनको तो सेवा करनेमें कष्टका अनुभव होता है। सन्त कभी किसीको किञ्चिन्मात्र भी कष्ट देना नहीं चाहता, इसलिये वह ऐसे व्यक्तियोंसे सेवा क्यों करवायेगा। क्योंकि उनको सेवा करानेकी कोई भूख नहीं है। जो लोग दूसरोंसे अपनी सेवा करवाना चाहते हैं, उनके अन्तःकरणमें स्वार्थके कारण यह नहीं सूझ पड़ता कि किसको क्या कष्ट और हानि हो रही है किंतु सन्तोंके निःस्वार्थ हृदयमें तो प्रकाश है। वे तो जानते हैं, कौन व्यक्ति सेवामें सुख अनुभव करता है और कौन कष्ट।

सङ्गके लिये तो सन्त स्वयं चलाकर चले जाते हैं, क्योंकि वहाँ (प्रेमी जिज्ञासुओंके पास) जानेसे भगवान्‌की चर्चा होती है, जो उन्हें अत्यन्त प्यारी है। प्रेमी जिज्ञासुओंकी मण्डलीमें जानेसे भगवद् वाक्योंका मनन, विचार और अनुशीलन हो जाता है, इसलिये वे स्वयं चेष्टा करके ऐसे व्यक्तियोंके पास जा सकते हैं। इतना ही नहीं, वे अपना सङ्ग करनेवाले व्यक्तिका उपकार भी मानते हैं कि इसके कारण हमारा कुछ समय भगवच्चर्चामें व्यतीत हुआ। काकभुशुण्डिजीने गरुडजीसे कहा—'महाराज! मेरेपर आपकी बड़ी कृपा हुई, जो मुझे सत्सङ्ग दिया।'—

तुम बिग्यान रूप नहिं मोहा।
नाथ कीन्हि मो पर अति छोहा॥
पूँछिहु राम कथा अति पावनि।
सुक सनकादि संभु मन भावनि॥

(रामचरितमानस)

सन्तोंकी बातें इतनी अलौकिक हैं कि हम उनका विवेचन कर भी नहीं सकते, फिर अनुभवकी तो बात ही अलग है!

सन्तोंकी पहचान करना बड़ा कठिन है। यह तो सन्त एवं भगवान्‌की कृपासे ही सम्भव है। कसौटीसे पहचान करनेपर तो हम ही फेल हो जाते हैं क्योंकि हमारी कसौटी ही गलत है। सन्तोंकी पहचान पहले बताये हुए तरीके से ही की जा सकती है कि जिस व्यक्तिके संग, वार्तालाप तथा दर्शनसे हममें दैवी सम्पत्ति आवे, भगवान्‌में हमारी रुचि बढ़े, आध्यात्मिक रास्तेमें हमारी गति अग्रसर हो, वह हमारे लिये सन्त है। एवं स्थूल रीतिसे सन्तकी पहचान करनेका यह उपाय भी है कि सच्चा सन्त स्त्री, सम्पत्ति नहीं चाहता, मान-बड़ाई नहीं चाहता, हमारे पास जितनी भौतिक वस्तुएँ हैं, उनकी उसको इच्छा या लालसा नहीं रहती।

संतोंका संग किया हुआ निष्फल नहीं जाता। पर उनका महत्त्व समझकर उनके सिद्धान्तानुसार आचरण करते हुए उनका संग करना, उनका वास्तविक संग करना है। इस प्रकार करनेसे ही उनके सङ्गका वास्तविक लाभ प्रकट होता है।

इसपर यह शंका होती है कि अग्नि अनजानमें भी स्पर्श किये जानेपर जला डालती है, इसी प्रकार अनजानमें भी किया हुआ सन्तोंका सङ्ग पापोंका नाशक अवश्य होना चाहिये, तो इसका उत्तर यह है कि यह बात उचित ही है। पापोंका नाश तो अनजानमें भी किये हुए सन्त-सङ्गसे होता है। जिस प्रकार अग्निमें दाहिकाशक्ति, प्रकाशिकाशक्ति, पाचनशक्ति एवं स्वर्ग तथा मोक्ष देनेकी भी शक्ति है पर दाहिकाशक्तिको छोड़कर अन्य शक्तियोंका लाभ हम बिना-जाने नहीं उठा सकते, इसी प्रकार अग्नि अनजानमें स्पर्श करनेपर जलाता तो है पर उससे जलाना-मात्र ही होता है। किंतु जो उस अग्निको अग्नि (अग्निका वास्तविक महत्व) जानकर उसके अनुकूल क्रिया करते हैं, वे उससे प्रकाश भी ले सकते हैं और उससे रोटी बनाकर अपनी भूख भी मिटा सकते हैं। इतना ही नहीं, अग्निसे ये काम तो श्रद्धारहित व्यक्ति भी ले सकता है पर वैदिक मन्त्र और परलोकमें श्रद्धा रखनेवाला मनुष्य तो वैदिक मन्त्रोंसे श्रद्धापूर्वक विधिसहित अग्निमें आहुति देकर स्वर्ग-प्राप्ति भी कर सकता है, और जो भगवान्‌की आज्ञा मानकर निष्कामभावसे अग्निमें आहुति देकर यज्ञ करता है, वह तो अग्निसे भगवान्‌की प्राप्ति भी कर सकता है। इसी प्रकार सन्तोंको न जाननेपर भी उनके सङ्गसे पापोंका नाश तो होता है, पर जाने विना परमात्मा विषयक ज्ञान और सांसारिक पदार्थोंसे वैराग्य नहीं होता और सन्तोंको जानकर उनका सङ्ग करनेसे तो सत्-असत्, कर्तव्य-अकर्तव्य, हेय-उपादेय और सार-असारका ज्ञान एवं अपने लिये अभी और परिणाममें अनिष्टकारक वस्तु और क्रियाओंका त्याग हो सकता है एवं श्रद्धापूर्वक निष्कामभावसे उनकी आज्ञाके अनुसार अनुष्ठान करनेसे तो अज्ञान, क्लेश, कर्म, विकार, वासना आदिका अत्यन्त अभाव होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। यह सब लाभ सन्त-महात्माओंको जानकर उनका श्रद्धापूर्वक सङ्ग और तदनुकूल आचरण करनेसे ही होता है।

इस विषयमें एक बात और भी है। अग्निसे जलना तभी होता है जब अग्नि और वस्तुके बीचमें कोई व्यवधान नहीं होता। पैरमें जूता पहनकर अग्निका स्पर्श किया जाय तो वह जला भी नहीं सकती। इसी प्रकार यदि सन्तोंके संगमें कुतर्क, निन्दा, तिरस्कार आदिकी आड़ लगा दी जाय तो पापनाशरूपी लाभ भी नहीं हो सकता। अग्नि तो अनजानमें स्पर्श किये जानेपर केवल जलाता ही है पर यदि कोई सन्तके प्रति तिरस्कार और निन्दाका दोष नहीं रखकर अनजानमें भी उनका संग करता रहे तो सन्तोंका सङ्ग तो उसके पापनाशके सिवा उसे परमात्माकी प्राप्तिका अधिकारी भी बना देता है। जैसे पारस और लौहेको टकराते रहो तो पहले लौहेपर लगी हुई मिट्टी, जंग आदि व्यवधान दूर होगा और बादमें स्पर्श होनेसे लौह स्वर्ण बन जायगा, बस, इसी प्रकार बार-बारके सङ्गसे पापरूपी मिट्टी-जंग मिट जायगा और अन्तमें कल्याण हो जायगा। हृषीकेश (उत्तराखण्ड) की ओर देखा होगा, गङ्गाजीमें गोल-गोल पत्थर मिलते हैं। पहाड़ोंकी चट्टानके टेढ़े मेढ़े पत्थर पानीके प्रवाह में लुढकते-लुढकते गोल हो गये; उन्होंने कोई उद्योग नहीं किया, और न उनमें गोल होनेकी इच्छा ही थी। पर प्रवाहमें पड़े रहे तो काम हो गया। इसी प्रकार सन्त-महात्माओंकी शरणमें पड़ा रहे, फिर चाहे कुछ भी न करे तो भी अन्तमें कल्याण हो जाता है।

श्रद्धाके दो भेद हैं—(१) स्थायी और (२) बाजारू। स्थायी श्रद्धामें कभी कमी नहीं हो सकती, पर बाजारू घटती-बढ़ती रहती है। स्थायीमें बढ़नेकी गुञ्जाइश तो है पर वह घट तो कभी सकती ही नहीं। बाजारू श्रद्धा करते-करते अन्तमें स्थायी श्रद्धाकी भी प्राप्ति हो सकती है। सन्तोंका बार-बार संग करनेसे उनके प्रति श्रद्धा भावका विकास होता रहता है और अन्तमें स्थायी श्रद्धाका उदय हो जाता है।

सन्त सर्वदा रहते हैं। ऐसा कोई भी समय नहीं होता जब यति, सती, धर्मात्मा और सन्त पुरुष न हों। आज भी सन्त पुरुष मिल सकते हैं और ऐसे सन्त मिल सकते हैं जो हमारा उद्धार कर सकते हैं। पर हमें मिलें कैसे? हममें उनके मिलनकी लालसा ही नहीं। अतएव यह लालसा बढ़ानी चाहिये कि हमें सन्त, सच्चे सन्त मिलें।

सन्तोंके जीवनकालमें यदि कोई उनसे लाभ लेनेवाला न हो तो उनके सिद्धान्त वायुमण्डलमें स्थिर हो जाते हैं, जिससे भविष्यमें यदि कोई लाभ लेनेवाला उत्पन्न होता है तो उनसे लाभ उठा लेता है।

सन्तों-सन्तोंमें आपसमें भेद रह सकता है। ऐसी बात नहीं कि सभी सन्त एक-से हों। उनकी स्थितिमें भेद न रहनेपर भी वर्ण, आश्रम, संग, स्वाध्याय, प्रकृति, साधनकी प्रणाली आदिका साधनकालमें अन्तर रहनेके कारण सिद्धावस्थामें भी उनकी मान्यता, आचरण और उपदेश-प्रणालीमें अन्तर पाया जाता है।

सन्त लोग किसीको अपना चेला-चेली नहीं बनाते। पर यदि कोई अपनेको उनका अनुयायी मान ले तो इसमें उसको कौन रोक सकता है? जो व्यक्ति ईश्वरपर भरोसा करके सच्चे हृदयसे अपने आपको किसी सन्तका अनुयायी मान लेता है तो उसका भार भगवान् पर आ जाता है। पर मान्यता होनी चाहिये असली। यदि मान्यता असली हुई तो भगवान् देखेंगे कि इस व्यक्तिका कल्याण इस सन्तमें श्रद्धा रहनेसे हो सकता है तब तो वे उसकी श्रद्धा उस सन्तमें दृढ़ कर देंगे, किंतु यदि वह सन्त न हो और उसमें श्रद्धा रहनेसे उसको हानि होनेकी सम्भावना हो तो भगवान् उसकी श्रद्धा और कहीं लगा देंगे। दोनों अवस्थाओंमें उसका उद्धार होना निश्चित है ही क्योंकि उसका भरोसा भगवान् पर है। एकलव्यके भावसे उसको सफलता मिल गयी। वास्तवमें श्रद्धाभक्ति असली चीज है, नेग-चारसे भगवान् नहीं मिल सकते। सन्तके विषयमें भी यही बात है। नेगचार करके चाहे हम किसीको गुरु न बनावें, पर श्रद्धा-भक्तिसे सन्तको गुरु मान लें, लाभ हो ही जायगा।

नर जाग जगावत सत्तगुरु, अब सोय रह्या कैसे सम्भिभये रे।
शठ आग गृहै माहिं काहिं जरै, चल साधु संगत्तिमें रज्जिये रे॥
नित लाग रहो निज नाम सेती, संग विषयनका तज्जिये रे।
तेरा भाग बड़ा भगवंत भजो, कहै सेवगराम सममिभये रे॥

—श्रीसेवगरामजी महाराज

एकान्त चिन्तन

(१)

मेरे अनन्य सुहृद् ! तुमने मुझे यहाँ भेजा। इस प्रकार तुमने मुझे स्वधामकी ओर बढ़नेका संकेत किया। मैं नहीं जानता इस अहैतुकी सौहार्दकी भावनाके बदलेमें तुम्हें मुझसे क्या मिलता है। मेरे प्राणों-के प्राण ! तुम मुझसे कुछ चाहते हो? मेरे पास कुछ तुम्हें दिखलाई देता है? अल्प बुद्धिवाले भिक्षुक भी वहीं हाथ फैलाते हैं जहाँ उनको कुछ आशा हो; अपने समान निःसत्त्वके पास तो वे भी अंचल नहीं फैलाते। तुम तो चतुर-शिरोमणि हो। इस विपुल अपनत्वके बदले मेरी ओरसे आपको क्या अभिप्रेत है?

मुझ अपरिचितको सुभग आतिथ्यका आश्वासन दिया ऐसा कौन होगा? नहीं नहीं, तुमने तो मुझे ऐसा समझा मानो मैं तुम्हारा तुम रूप ही होऊँ। ऐसा आत्मैक्य, ऐसी अपनत्वकी उदात्त भावना, मानो कि निरे अप्रतिम सौहार्दके सुविमल तत्त्वसे ही तुम्हारा स्वरूप निर्मित हो।

मैंने यत्र तत्र तेरी अकथ कहानी सुनी। तुम्हारी ऐसी ही कुछ बात है। सुनते हैं तुम्हारे पास तुम कुछ रखते नहीं ऐसे अपव्ययी जो तुम हो; जो कुछ हो सो एक बार ही उडेल देनेको उतारू हो जाते हो और दे डालते हो। फिर भी तुम्हारी देनेकी उत्कण्ठा अक्षुण्ण रहती है।

(२)

प्रभु ! विपत्तियोंके महापङ्कमें एकमात्र अवलम्बन ! सुखोल्लासकी गुञ्जनमें मेरा मन-भ्रमर तुझे भूल-सा जाता है, तब तूं उसे विपदाओंके पङ्कमें ढकेल देते हो। वहाँसे निकलनेकी वह छटपटी जो होती है उसमें केवल एक तुम ही आश्रय रूप दिखाई देते हो। तुम डूबने भी नहीं देते, न निकलने ही तुम देते हो। ओह ! यह विपदाएँ भी तुम्हारी स्मृतिके जादूसे अपना दुःख दंशन गँवा बैठती हैं। इनकी तिक्तता, कटुता, सब विलीन होकर मनमें मधुर मधुरिमाकी जागृति-सी होने लगती है। तब मेरे लिये तो ये विपदाएँ ही तेरे पथमें अग्रसर होनेके लिये आलोक बन जाती हैं। सुख तो तेरी यात्रामें जानेवालेके लिये अमावस्याकी तमाच्छादित घोर निशारूप है।

इसीलिये मैं यह लालसा रखता हूँ कि आपदाएं मेरे पथको सदा अपने प्रकाशसे आलोकित करें।

—श्रीगणपतिजी पारीक

सुमिरन सुरत लगाय कर, मुख ते कछू न बोल।
बाहर के पट देय कर, अंतर के पट खोल॥

समस्त दुःखोंकी निवृत्तिका उपाय

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

ईश्वरकी भक्तिके प्रभावसे दुर्गुण दुराचार, प्रमाद, दुर्व्यसनरूप आसुरी सम्पदाका तथा दुःखोंका स्वाभाविक अपने-आपही अत्यन्त अभाव हो जाता है और उसमें सद्गुण-सदाचाररूप दैवी सम्पदाके लक्षण अपने-आप ही आ जाते हैं, जिससे सदाके लिए परम शान्ति और परम आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है। इसमें न तो पैसे खर्च होते हैं, न कोई समय व्यय होता है और न कोई परिश्रम ही है। जैसे, रात्रिके समय सोनेके बाद कोई कार्य तो होता ही नहीं, समय केवल सोनेमें ही जाता है। और स्वप्न भी वैसे ही आते हैं, जैसे कि सोनेके आरम्भ समयमें संकल्प होते हैं। इसलिये शयनके समय सांसारिक संकल्पोंके प्रवाहको हटाकर परमात्मविषयक संकल्प करते हुए अर्थात् परमात्माके नाम, रूप, गुण, प्रभावका स्मरण करते हुए शयन करनेसे रात्रिमें परमात्मविषयक ही संकल्प होते रहेंगे, इससे बुद्धि सात्त्विक होगी और हम परमात्माके निकट पहुँचेंगे। बतलाइये, इसमें हमको क्या परिश्रम है? एवं न तो इसमें पैसोंका खर्च है और न समयका ही। फिर इसके न होनेमें कारण श्रद्धा-प्रेमकी ही कमी है। श्रद्धा और प्रेम हम लोगोंका स्वाभाविक संसारमें है, उसको भगवान्‌की ओर कर देनेसे महान् लाभ है और संसारकी ओर रखनेसे महान् हानि है। भगवान् हैं और मिलते हैं तथा वे अन्तर्यामी, परम दयालु और सर्वशक्तिमान् हैं। इस प्रकारका जो विश्वास है, इसीका नाम श्रद्धा है। इस प्रकार परमात्मामें विश्वास होने पर उसके द्वारा कोई भी दुराचाररूप पाप नहीं बन सकते। क्योंकि उसको यह विश्वास है कि भगवान् हैं और वे सब जगह व्यापक हैं तथा सब जगह उनकी आँखें हैं और सब जगह ही उनके कान हैं। अतः हम जो कुछ कर रहे हैं, भगवान उसे देख रहे हैं और जो कुछ हम बोल रहे हैं उसे वे सुन रहे हैं। भगवान्‌ने गीतामें भी कहा है—

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३।१३

'वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला, तथा सब ओर कानवाला है। क्योंकि संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है।'

जब मनुष्यको इस प्रकार विश्वास हो जाता है तो फिर वह दुराचार, दुर्व्यसन और प्रमादरूप पापको, जो कि परमात्मासे विपरीत कार्य हैं कैसे कर सकता है?

ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास करके उनकी शरण होनेपर मनुष्यमें निर्भयता आ जाती है तथा उसमें धीरता, वीरता, गम्भीरता ईश्वरकृपासे स्वाभाविक ही आ जाती हैं। अस्त्र-शस्त्रोंके द्वारा दूसरोंकी हिंसा करनेवाला वीर नहीं कहलाता। वीर वही पुरुष है, जो अपनेपर भारीसे भारी आपत्ति पड़नेपर भी भक्त प्रह्लादकी भांति अपने सिद्धान्तको, कर्त्तव्यको नहीं छोड़ता, पर उसपर डटा रहता है, उससे फिसलता नहीं। ईश्वरके सगुण और निर्गुण स्वरूपकी प्राप्ति या ज्ञान न होनेके कारण उसका यथार्थ चिन्तन न हो तो

कोई हानि नहीं, किन्तु जीव ईश्वरका अंश होनेसे उसका भगवान्‌में प्रेम स्वाभाविक ही होना चाहिये। अतः भगवान्‌के साथ आत्मीयता दृढ़ होनेके लिये भगवान्‌से दास्य, सख्य आदिमेंसे किसी भावका सम्बन्ध, उसकी सत्तामें विश्वास, उसका भरोसा तथा नामकी स्मृति अवश्य और दृढ़ होनी चाहिये। फिर उसके द्वारा कोई भी पाप नहीं हो सकता।

दुराचार आदि पापोंके संस्कार ही दुर्गुणके रूपमें हृदयमें जमते हैं। जब उसके द्वारा कोई बुरा काम नहीं होगा तो दुर्गुण कैसे जम सकते हैं, बल्कि पहले के सञ्चित दुर्गुणोंके संस्कार भी भगवान्‌की भक्तिके प्रभावसे नष्ट हो जायँगे। उपर्युक्त प्रणालीके अनुसार शयन करनेका अभ्यास करनेसे शयनकाल भी, साधन में परिणत हो सकता है। विचारना चाहिये, यह कितने उत्तम लाभकी बात है। यह समझकर भी यदि हम इसके लिये चेष्टा न करें तो हमारे समान कौन मूर्ख होगा ?

इसी प्रकार चलते-फिरते, खाते-पीते, उठते-बैठते सभी समयमें भगवान्‌के गुण-प्रभाव सहित नाम, रूप और चरित्रको याद रखते हुए ही उपर्युक्त सारी क्रियाएँ करनी चाहिये। जैसे, व्रजकी गोपियाँ वाणीके द्वारा भगवान् के नाम-गुणोंका कीर्तन और मनसे भगवान्‌का स्मरण करती हुई ही घरका सब काम किया करती थीं। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥
(१०।४४।१५)

'जो गौओंका दूध दुहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकोंको पालनेमें झुलाते समय, रोते हुए बच्चोंको लोरी देते समय, घरोंमें जल छिड़कते समय और झाड़ू देने आदि कर्मोंको करते समय, प्रेमपूर्ण चित्तसे आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद वाणीसे श्रीकृष्णका गान किया करती हैं—इस प्रकार सदा श्रीकृष्णमें ही चित्त लगाये रखनेवाली ये व्रजवासिनी गोपियाँ धन्य हैं।'

अतएव हम लोगोंको इस प्रकार वाणीके द्वारा भगवान्‌के नाम-गुणोंका कीर्तन तथा मनसे उनका स्मरण करते हुए ही सब चेष्टा करनी चाहिये। ऐसा करनेपर स्वाभाविक ही दुर्गुण दुराचारोंका नाश होकर तथा सद्गुण-सदाचारोंका आविर्भाव होकर परम शान्ति मिल सकती है। ऐसा करनेमें न तो समयका खर्च है, न पैसोंका ही और न कोई परिश्रम ही है। यह अलौकिक परम लाभ स्वाभाविक ही मिल सकता है, जिसके फलस्वरूप भगवान्‌में प्रेम होकर भगवान् की प्राप्ति हो सकती है।

प्रातःकाल और सायंकाल, जो नित्यकर्मके लिये समय निकाला जाता है, उसको विशेष सार्थक बनाना चाहिये। उस समय भजन, ध्यान, पूजा-पाठ आदि जो कुछ किया जाता है, अर्थ और भावकी ओर ख्याल रखकर करना चाहिये। इस प्रकार श्रद्धा, भक्ति और आदरपूर्वक नियमितरूपसे किया हुआ नित्यकर्म भी बहुत दामी हो जाता है, किन्तु जो बिना आदर और बिना मनके साधन किया जाता है, वह विशेष दामी नहीं होता।

भक्त ध्रुवने बड़े आदरपूर्वक साधन किया था, जिसके फलस्वरूप साढ़े पाँच महीनोंमें ही उसे भगवान् मिल गये। सौतेली माता सुरुचिके आक्षेपभरे

वचनोंने भी उसके हृदयमें उपदेशका काम कर दिया और जन्म देनेवाली माता सुनीति तथा श्रीनारदजी का उपदेश पाकर ध्रुव जप, ध्यान और तपश्चर्यामें संलग्न हो गया, जिससे वह शीघ्र ही परम पदको प्राप्त हो गया।

इसी प्रकार श्रीनारदजीका उपदेश पाकर भक्त प्रह्लादने निष्कामभावसे भक्ति करके उत्तम-से-उत्तम गति प्राप्त की। प्रह्लादने पाठशालामें पढ़ते समय भारी-से-भारी अत्याचारोंको सहते हुए भी भगवान्‌की भक्ति करते तथा बालकोंसे कराते हुए भगवद्दर्शन प्राप्त किये। उसकी भक्तिका प्रभाव देखिये, जहरीले सर्पोंके विष तथा अग्निकी लपटोंका भी उसपर कोई असर नहीं हुआ। इसके सिवा, उसपर और भी बहुत से अत्याचार हुए, किन्तु प्रह्लादका बाल भी बाँका नहीं हुआ। किसी कविने कहा भी है—

जाको राखै साइयाँ, मार न सकै कोय।
बाल न बाँका कर सकै, जो जग बैरी होय॥

प्रह्लाद मनसे सर्वत्र भगवान्‌को ही देखते और भगवान्‌के नाम-गुणोंका कीर्तन किया करते थे। हिरण्यकशिपुके भय, लोभ और त्रास देने पर भी प्रह्लाद अपनी भक्ति पर डटे रहे तथा अत्याचारोंको सहते रहे। अतः किसी अत्याचारका प्रतीकार बिना किये ही भक्तिके प्रभावसे सब अत्याचार निष्फल हो गये। यह समझकर हम लोगोंको बड़े उत्साहके साथ भगवान्‌के नाम और रूपको याद रखते हुए ही सब काम करते रहना चाहिये। भगवान्‌ने अर्जुनको भी यही आदेश दिया है कि—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥ (८।७)

'इसलिये हे अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निस्सन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।'

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥ १८।५६

'मेरे परायण हुआ कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मोंको सदा करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परम पदको प्राप्त हो जाता है।'

अतएव हम लोगोंको सदा सर्वदा सब प्रकारसे भगवान्‌का आश्रय लेकर ही सब कर्मोंको करना चाहिये। इस प्रकार करनेपर सम्पूर्ण आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दुःखोंका तथा पापोंका अत्यन्त अभाव होकर परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है।



अभिलाषा

अब बिलम्ब जनि करो लाडिली कृप-दृष्टि टुक हेरो।
जमुना-पुलिन गलिन गहवर की बिचरूँ साँझ-सबेरो॥
निसदिन निरखौं जुगुल-माधुरी रसिकनते भट-भेरो।
"ललित किशोरी" तन मन आकुल श्रीबन चहत बसेरो॥

—श्रीललितकिशोरीजी

भगवान्‌का नाम ही संसारार्णवसे मुक्त कर सकता है

(लेखक—श्री १०८ दण्डी संन्यासी स्वामी श्रीविष्णुदेवानन्दजी सरस्वती 'प्रफुल्ल')

राम उपासक ये जग माहीं।
इह सम प्रिय तिन्ह कछु नाहीं ॥

कलिकाल—कुसर्पके अधिकारमें रहते हुए घोर संसारसमुद्रसे पार होनेके लिये अथवा पुनः पुनः आवागमनके चक्करसे छूटनेके लिये भगवान्‌के नाम-का सहारा ही एक मात्र साधन है। अकारणकरुण करुणावरुणालय सर्वशक्तिमान् सर्वाधिष्ठान सर्वान्तरात्मा सर्वशक्तिशाली श्रीमन्नारायण प्रभुके नाम ही का सर्वपुराणान्तर्गत माहात्म्य बतलाया गया है।

ध्यायन्कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

(विष्णुपुराण)

सत्ययुगमें ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञ करनेसे, द्वापरमें अर्चन या पूजा करनेसे जिस लक्ष्यकी प्राप्ति होती है वही लक्ष्य कलियुगमें भगवान्‌का कीर्तन करनेसे सुलभतासे प्राप्त हो जाता है।

तुलसीदासजीने भी कहा है।

इह कलिकाल न साधन दूजा।
योग यज्ञ जप तप व्रत पूजा ॥
रामहिं सुमरहिं गाइहिं रामहिं।
सन्तत सुनहिं राम गुण ग्रामहिं ॥
नहिं कलि करम न भगति विवेकू।
राम नाम अवलम्बन एकू ॥
कलियुग केवल हरिगुन गाहा।
गावत नर पावहिं भव थाहा ॥

कलिमल समन दमन मन राम सुयश सुख मूल।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर, राम रहहिं अनुकूल ॥
कलिकालकुसर्पस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य मा भयम्।
गोविन्दनामदावेन दग्धो यास्यति भस्मताम् ॥

(पुराण)

इस कलिकालमें कुसर्पके तीखे दांतोंका भय मत करो। गोविन्द नाम रूपी अग्निसे सम्पूर्ण विष जल कर भस्म हो जायेंगे।

हरेर्नामैव नामैव हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव, नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

(नारदपुराण)

कलियुगमें केवल भगवान्‌का नामही गति और मुक्तिका साधन है अन्य कोई साधन नहीं।

कलियुग योग न यज्ञ न ज्ञाना।
एक अधार राम गुन गाना ॥
नाम लेत भव सिन्धु सुखाहीं।
करहु विचार सुजन मन माहीं ॥

(रामचरितमानस)

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान्विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ॥

(विष्णुपुराण)

भगवान्‌के नाम का स्मरण करनेपर मनुष्यका शीघ्रातिशीघ्र सर्वपातक नष्ट हो जाता है; जिस तरह सिंह से त्रस्त मृग का छुटकारा हो जाता है।

पतितपावन भगवान्‌के नामका मनुष्य किसी भी अवस्था में रहकर स्मरण कर सकता है। अतिशय श्रद्धापूर्वक नामका स्मरण करने मात्रसे भगवान् शीघ्रातिशीघ्र अपना लेते हैं।

नास्ति श्रद्धा समं पुण्यो नास्ति श्रद्धा समं सुखम्।
नास्ति श्रद्धा समं तीर्थं संसारे प्राणिनां नृप॥

(पद्म० भूमि खण्ड ३९, ७८)

इस संसारमें श्रद्धाके समान पुण्य, सुख और तीर्थ नहीं है। नामोच्चारणमें श्रद्धाका अधिक माहात्म्य है।

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते विष्णुः सर्वत्र गीयते॥

(महाभारत)

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं—हे अर्जुन! वेद, रामायण तथा महाभारतके आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र विष्णुका ही गुणानुवाद किया गया है। ठीक इसी प्रकार हरिवंशमें कहा है।

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥

(हरिवंश)

तुलसीदासजीने भी नामकी महिमा में कहा है—

चहुँ युग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि विशेष नहिं आन उपाऊ॥
वेद पुराण संत मत एहू।
सकल सुकृत फल नाम सनेहू॥

जो मनुष्य नामोच्चारण करनेमें आलस्य करते हैं और वेदशास्त्रको नहीं मानते हैं, भगवान् कहते हैं कि वे मुझे प्रिय नहीं हैं। विष्णुपुराणमें यह प्रसंग आया है।

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लंङ्घ्य वर्तते।
आज्ञाच्छेदी ममद्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥

भगवान् कहते हैं—'वेद और शास्त्रका सहारा लेकर अपने स्वधर्मानुष्ठानको करते हुए नामोच्चारण करना चाहिये। यही मेरी आज्ञा है। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक शास्त्राज्ञाका आदर करते हुए नाम-स्मरण करनेकी तो बात ही क्या, किंतु जो आलस्यसे या किसी भी तरह से भगवान्‌के नामका उच्चारण करता है, उसके लिये भी मंगल ही मंगल है:—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिशि दशहूँ॥
सब भरोस तजि जो भजि रामहिं।
प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिं॥
सोइ भव तर कछु संशय नाहीं।
नाम प्रताप प्रगट कलिमाहीं॥

(रामचरितमानस)

महापातकयुक्तोऽपि कीर्तयन्ननिशं हरिम्।
शुद्धान्तःकरणो भूत्वा जायते पंक्तिपावनः॥

(ब्रह्माण्डपुराण)

सर्वदा सर्वकालेषु ये कुर्वन्ति पातकम्।
नामसंकीर्तनं कृत्वा यान्ति विष्णोः परं पदम्॥

(नन्दिपुराण)

महापातकोंसे युक्त होनेपर भी जो अहर्निश भगवान्‌का कीर्तन करते हैं, वे शुद्धान्तःकरण होकर पंक्तिपावन हो जाते हैं।

जो सर्वदा सब कालमें पाप करते हैं, वे भी शुद्धबुद्ध सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके नामका कीर्तन करके विष्णुके परमपदको प्राप्त हो जाते हैं।

प्राणप्रयाणपाथेयं संसारव्याधिभेषजम्।
रोगशोकहरं पुंसां हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

॥ श्री हरिः ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

श्री भगवान भजनाश्रम, वृन्दावन

[श्री भगवन्नाम प्रचारक प्रमुख धार्मिक एवं पारमार्थिक संस्था]

[सन् १८६० के एक्ट २१ के अनुसार रजिस्टर्ड]

का

संक्षिप्त विवरण

श्री वृन्दावन धाम हिन्दुओंका प्रधान तीर्थ है, इस स्थलकी पावन रजमें लोट लोट कर भगवान श्रीकृष्णने इसे पूजनीय बना दिया है और इसी कारण समस्त भारतसे लाखों हिन्दू भाई प्रेमसे यहांकी यात्रा करते हैं। साथ ही बहुत-सी वृद्ध एवं अनाथ विधवाएँ भी अपना शेष जीवन व्रजधाम में व्यतीत करनेके पावन उद्देश्यसे अपना घर-बार तथा सगे-सम्बन्धी छोड़कर यहां आ जाती हैं। भारत इस समय एक निर्धन देश है और यहां यह सम्भव नहीं है कि हजारोंकी संख्यामें आई हुई इन विधवाओं और वृद्धाओंके सम्बन्धी उनके भरण-पोषणके लिये उनको प्रति मास सहायता भेज सकें और इसी कारण ये विधवाएँ वृन्दावनमें अपनी उदर-पूर्तिके लिये प्रत्येक यात्रीसे गिड़-गिड़ाकर भिक्षा माँगती हुई दृष्टिगोचर होती थीं। अब से ३३ वर्ष पूर्व इस दुरावस्थाको देखकर अनेक सद्गृहस्थ तथा धनी मानी धार्मिक सज्जनों-का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने सम्वत् १६७३ में 'श्रीवृन्दावन भजनाश्रम' नामसे एक परमोपयोगी संस्थाकी स्थापना की। तथा उसे चलानेके लिए एक सुदृढ़ ट्रस्ट बोर्ड बना दिया गया। ट्रस्टियोंके निर्णयसे यह विधान बनाया गया कि भजनाश्रममें नित्य जितनी माइयाँ आवें उनसे ४॥ घण्टे प्रातः तथा ४॥ घण्टे सायं श्रीभगवत्कीर्तन कराया जाय और उन्हें उदरपोषणके लिये अन्न एवं पैसे दिये जायँ। भजनाश्रम स्थापित होते ही नित्य प्रति सैकड़ों की संख्या में गरीब तथा आश्रयहीन वृद्धाएँ तथा विधवाएँ आश्रममें आने लगीं और परम पावन, कल्याणकारी श्रीभगवन्नामका कीर्तन करती हुई अपना मानव जीवन सफल करने लगीं। इस कार्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होते देखकर एक द्वितीय संस्था 'श्रीभगवान भजनाश्रम' के नामसे सम्वत् १६६० में स्थापित की गई तथा उसका भी ट्रस्ट बोर्ड बना दिया गया। इन दोनों भजनाश्रमोंका प्रबन्ध योग्य ट्रस्टियों द्वारा सुचारु रूपसे हो रहा है।

इस समय इन आश्रमोंमें लगभग ८०० अनाथ गरीब स्त्रियां जिनमें अधिकांश निराश्रित विधवाएँ हैं नित्य प्रति अनन्त भगवन्नामोंका कीर्तन करती हुई भगवद्-भजनमें लीन रहती हैं। अष्ट प्रहर कीर्तन भी अलग होता है। इन भजन करने वाली माइयोंको सवेरे ४॥ घण्टे भजन करने पर =)॥ ढाई आना अन्नके लिये दिया जाता है तथा शामको ४॥ घण्टे भजन करने पर =) दो आना ऊपरी खर्च के लिये दिया जाता है एवं समय-समयपर आवश्यकतानुसार वस्त्र भी दिये जाते हैं और २०० के लगभग अपाहज

वृद्धाएँ जो आश्रममें आनेके अयोग्य हैं और अपने घरोंमें बैठी हुई भगवद् भजन किया करती हैं उन्हें भी कुछ सहायता दी जाती है।

भारतव्यापी तेजीके कारण इस समय इन संस्थाओं का खर्च लगभग रु० ८५००) आठ हजार पांच सौ रु० प्रति मास हो गया है जब कि स्थायी आय, मासिक चन्दा तथा व्याज केवल ३०००) रुपये मासिक है। आज हम इसी कमी की पूर्ति करने के लिये आप जैसे धनी मानी तथा महानुभाव की सेवामें अपील करते हुए निवेदन करते हैं कि आपकी अतुल दानराशिमें-से अधिकसे अधिक भाग इन संस्थाओंको प्राप्त होना चाहिये। इन संस्थाओं द्वारा आपके धनके सदुपयोगका विश्वास दिलाते हुए हम यह भी वता देना चाहते हैं कि इन संस्थाओंमें दिये गये आपके धनसे अनेक प्राणियोंका उदरपोषण होगा एवं कोटि-कोटि भगवन्नाम जपके पुण्य प्रतापका आपको पूर्ण लाभ होगा।

हमें पूर्ण आशा है कि आप हमारी प्रार्थना पर उचित ध्यान देंगे और श्रद्धानुसार संस्थाओंकी सहायता करते हुए जनता-जनार्दनकी अधिकाधिक सेवाके पावन अनुष्ठानमें सहायक बनेंगे।

प्रार्थीः—जानकीदास पाटोदिया,

प्रधान

नोट—१. प्रार्थना है कि आप जब वृजधामकी यात्राको पधारें तो इन आश्रमोंमें पधार कर यहाँके कार्योंका अवलोकन करें, एवं आश्रमके लिये जो दान करना चाहें वह भजनाश्रममें ही देवें, अन्य किसी मन्दिरमें नहीं।

२. अपने एवं अन्य नगर के धर्म प्रेमी दानदाताओंके कुछ नाम व पते भी हमें भेजनेकी कृपा करें जिससे हम उनसे संस्थाओंकी सहायताके लिये अपील कर सकें।

३. बीमा या मनीआर्डर द्वारा सहायता मन्त्री श्री भगवान भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन (मथुरा) तथा मन्त्री श्री वृन्दावन भजनाश्रम, पो० वृन्दावन (मथुरा) के पते पर भेजिये।

४. कृपया सहायता एक मुश्त भेजिये अथवा मासिक या वार्षिक सहायता भेजनेकी कृपा कीजिये।

५. आश्रमकी ओरसे ऐसा प्रबन्ध भी है कि जो दानी महानुभाव अपनी ओर से भजन कराना चाहते हों वे ८।≥) रु० मासिक प्रत्येक माई के हिसावसे भेजकर जितनी माइयों द्वारा चाहें भजन करा सकते हैं। प्रतिदिन ६ घण्टेमें हर एक माई लगभग एक लाख भगवन्नाम उच्चारण कर सकती है।

६. वृन्दावनके किसी मन्दिर, मठ या अन्य स्थानों से भजनाश्रमका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिये भजनाश्रमके लिये किसी अन्य स्थान पर सहायता नहीं देनी चाहिये। सीधे मनीआर्डर या बीमा द्वारा श्रीभगवान भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन को ही भेजिये।

श्री भगवान भजनाश्रम एवं श्री वृन्दावन भजनाश्रम का आय-व्यय-मास १

(मिती आसोज सुदी ६ सं० २००६ से मिती कार्तिक सुदी ८ सं० २००६ तक)

आय		व्यय	
१८३७।)	सहायता प्राप्त	७८६३॥=)॥।	भजन करनेवाली माइयों को पैसादी
८६४१।॥≡)॥	माई भजनप्राप्त	१३०)	कर्मचारियों का रसोई खर्च
३७६)	मासिक चन्दा प्राप्त	१३०)	वृद्ध माइयों को दिया
२७६५॥)	विशेष सहायता प्राप्त	५२०)	कर्मचारियों को वेतन
		२३०।॥-)।	खुदरा खरच
१३६५३॥≡)॥		८८७४॥)	

श्री भगवान भजनाश्रम, एवं वृन्दावन भजनाश्रम में सहायता देनेवाले सज्जनों की नामावली

(मिती आसोज सुदी ६ सं० २००६ से मिती कार्तिक सुदी ८ सं० २००६ तक मास १ का)

५०)	श्री० रामसुखजी रामजीवनजी झँवर अमरावती	१२३॥)	श्री० लालबहादुर निवाडकी आत्माशान्ती वास्ते ढिकियाजोड़ी
१०)	„ घनीपहरनारायजी जीजंवर „	१२॥)	„ असुदामलजी धरमदासजी प्रतापनगर
१०)	„ गंगाबाई गटाणि „	२५)	„ लीलावतीजी पूना
५)	„ छोटा भाई नाथा भाई अहमदाबाद	२५)	„ मथुरादासजी तुलसीदासजी पूरलिया
५)	„ डाया भाई लाल भाई „	१०)	„ नवनीतलालजी टीकमलालजी बड़ोदा
५)	„ जानकोदासजी लक्ष्मीनारायनजी इलाहाबाद	२५)	„ राधाकिशनजी रामेश्वर प्रसादजी ब्यावर
२०)	„ मथुरा प्रसादजी अग्रवाल कन्चरापारा	११)	„ मदनलालजी केजड़ीवाल बाढ़
३१)	„ पूरनमलजी गटानी कटनी	२५)	„ मनुभाईजी पटेल बम्बई
३१)	„ चिरंजीलालजी नृसिंहलालजी „	१२॥)	„ हीरालालजी मानिकलालजी पटेल „
११)	„ रामप्रसादजी स्योप्रसादजी „	२१)	„ जेठानन्दजी होलारामजी „
५)	„ शंकरलालजी घनश्यामदासजी कोटा	१०१)	„ छिदम्मीलालजी हीरालालजी मेरठ
५)	„ चोधरी हरिचन्दजी कोटा	५)	„ नत्थोमलजी रामनिवासजी मुजफ्फरनगर
५०)	„ चन्द्रप्रभा देवी बागला कलकत्ता	६)	„ मुनीमजी साहबान रोहतकमन्डी
५००)	„ इन्द्रमणीजी खुरजा	५०१)	„ बद्रीदासजी बाजोरिया सहारनपुर
५)	„ हरिरामजी सराफ चाईबासा	२५)	„ सीतारामजी झूनझूनवाला सुजानगढ़
५)	„ शुभकरनजी खेतान „	१०)	„ बी० ऐन० बैजाल सीताबल्दी
५)	„ अरजुनजी लडा „	६५॥।)	फुटकर प्राप्त
५०)	„ श्रीनारायन गोविन्दभगवान जखलाबन्धा		
		१८३७।)	

श्री भगवान भजनाश्रम, वृन्दावन माइयों द्वारा भजन करानेवाले सज्जनों की नामावली

८।≋)	श्री०	गोदावरी बाईजी	अमरावती	१०१।)	श्री०	महादेवलालजी कन्हैयालालजी	,,
५०)	,,	सुन्दरबाईजी	,,	१०१।)	,,	गुप्तदानी सज्जन मा० गोपालजी खाटूवाला	
२५।-)	,,	नारायनीबाईजी	,,	१०१२।।)	,,	बल्देवदासजी बैजनाथजी	,,
८।≋)	,,	भगतरामजी गुप्ता	आरंग	१०२)	,,	मनीबाईजी अग्रवाल	,,
८।≋)	,,	कन्हैयालालजी राधेश्यामजी	आगरा	२०२।।)	,,	पोकरमलजी गुरदयालजी	,,
१२६।।-)	,,	पं० ब्रजबल्लभजी मुखिया वैद्य	,,	१०१।)	,,	भगतरामजी नागरमलजी	,,
२५।-)	,,	रेखचन्दजी गोपालदासजी	अकोला	१०१।)	,,	रामकलाजी भालोटिया	,,
१०)	,,	जी० के० अग्रवाल	इटावा	५०६।)	,,	श्रीकृष्णजी बेरीवाला	,,
५०।।=)	,,	रामेश्वरदासजी	इलाहाबाद	५०६।)	,,	दुलीचन्द्रजी रतेरिया	,,
५०।।=)	,,	तुंगनरामजी पोद्दार	,,	८।≋)	,,	गनपतरामजी साह	,,
१०१।)	,,	बजरंगलालजी	,,	१०१।)	,,	प्रहलादरामजी सर्राफ	,,
२५।-)	,,	लक्ष्मीनारायनजी	,,	२५।-)	,,	कन्हैयालालजी मुदड़ा	,,
२५।-)	,,	श्रीगोपालजी रामविलासजी	,,	८।≋)	,,	मानिकलालजी हीरालालजी	कानपुर
८।≋)	,,	वंशीधरजी पोद्दार	,,	८४।=)	,,	स्वर्गीय फून्दनलालजी	,,
८।≋)	,,	रामकुवारजी पोद्दार	इन्दौर	८।≋)	,,	मगतुरामजी बाबूलालजी	कहलगाँव
१०१।)	,,	चन्द्रकलादेवीजी	,,	८।≋)	,,	राधाकिशनजी कनकनी	किशनगढ़
१०१।)	,,	नाथूरामजी पोद्दार	कलकत्ता	१६।।।=)	,,	भागीरथी बाईजी	कठोल
१०)	,,	गुप्तदानी सज्जन	,,	८।≋)	,,	लादुरामजी गनेशप्रसादजी	कटनी
४२≋)	,,	नानकीनाथजी मालपानी	,,	२५।-)	,,	रामचन्द्रजी मदनमोहनजी	,,
८।≋)	,,	रतनलालजी वाहोजी	,,	८।≋)	,,	जैनरूपजी सुरेश	,,
८।≋)	,,	आसारामजी दम्मानी	,,	४≋)।।	,,	हरदत्तरायजी श्रीनिवासजी	,,
८।≋)	,,	गंगादासजी दम्मानी	,,	८।≋)	,,	नन्दकिशोरजी	,,
८।≋)	,,	सोहनलालजी वाहोजी	,,	८।≋)	,,	खुबचन्दजी रामेश्वर	,,
१६।।।=)	,,	पन्नालालजी भगवानदासजी	,,	८।≋)	,,	लोकचन्दजी फूलचन्दजी	,,
८।≋)	,,	नाथामलजी अग्रवाल	,,	१६।।।=)	,,	सुखदेवप्रसादजी गोईनका	,,
१००)	,,	परमेश्वरीबाई	,,	८।≋)	,,	पुरनमलजी मखनलालजी	,,
८।≋)	,,	श्रीकृष्णादेवीजी	,,	८।≋)	,,	नोजीलालजी	,,
८।≋)	,,	बनारसीदासजी	,,	८।≋)	,,	गंगाधरजी रामेश्वरलालजी	,,
१०१।)	,,	सरस्वती देवीजी	,,	१०१।)	,,	प्रेमसुखदासजी रामेश्वरदासजी	,,
१०१।)	,,	जयनारायणजी बंका	,,	८।≋)	,,	बद्रीनारायनजी श्रीकेशवजी	,,
१०२)	,,	विरधीचन्दजी सुरेका	,,	८।≋)	,,	द्वारकादासजी चूड़ीवाला	कटक
७५।-)	,,	श्रीकृष्णजी बलियालीवाला	,,	८।≋)	,,	रघुनाथरायजी चौधरी	,,
८।≋)	,,	हरिरामजी रामकुमारजी	,,	८।≡)	,,	भगवानदासजी भुवानी	,,
१०१।)	,,	पुनीदेवी झूनझूनवाली	,,	८।≡)	,,	रामदेवजी रामनिवासजी	कन्डेलगंज

२५)	श्री०	ईस्ट इन्डीया कम्पनी	केन्द्र पटना	८।≶)	श्री०	नाथुरामजी जावरमलजी	"
८।≡)	"	काशीनाथजी साहू	"	५१॥)	"	हरकरनदासजी माँगेलालजी	"
११)	"	मुखरामजी छोगमलजी	कालिंमपोंग	४≶)॥	"	चिरंजीलालजी हरिकिशनजी	"
२५।-)	"	सुरजमलजी सारडा	कुंचबिहार	४≶)॥	"	बिहारीलालजी मुरारका	"
२५।≡)	"	मुलचन्दजी बाबूलालजी	कीडिया	४≶)॥	"	नागरमलजी मदनलालजी	"
८।≡)	"	रघुवीर प्रसादजी गुप्ता	करेली	४≶)॥	"	शंकरलालजी खेतान	"
२५।-)	"	गुप्तदानी	खामगाँव	८।≶)	"	पीलारामजी सिरमौर	छेरकापुर
१००)	"	सोहनबाईजी नाथानी	"	८।≶)	"	दाऊदासजी मुदड़ा	जोधपुर
५०)	"	सुपदसिंहजी अवधूतजी	"	८।≶)	"	मुकटलालजी रिछपालजी	जमशेदपुर
५०)	"	हनुमानदासजी बिलासरायजी	"	८।≶)	"	शिवकिशनजी रामकिशनजी	जोरहाट
४२≡)	"	गुलाबचन्दजी बुद्धरामजी	खरसियाँ	८।≶)	"	किशोरचन्दजी राठी	"
१६।।।=)	"	चन्दुलालजी लक्खारामजी	"	५१।)	"	भागीरथमलजी देवकीप्रसादजी	जलपाईगुडी
३३।।।)	"	चेतरामजी सत्यनारायनजी	गोरखपुर	८।≶)	"	मन्नालालजी इन्द्राजमलजी	"
८।≡)	"	रामनिवासजी बाँगड	ग्वालियर	८।≶)	"	बद्रीदासजी आत्मारामजी	झालडा
१६।।।=)	"	चन्दुलालजी मुरारीलालजी	गणेशगढ़	८।≶)	"	मांगीलालजी बैजनाथजी	"
८।≡)	"	चुन्नीलालजी राधाकिशनजी	चेचट	२५।-)	"	गिरधारीलालजी केजडीवाल	"
१०१।)	"	गंगाधरजी केडिया	चाकुलिया	४२≶)	"	शेवलालजी रामपतलालजी	झाड़सुगडा
१०१।)	"	शिवलालजी अग्रवाल	चिरकुन्डा	१०)	"	श्यामलालजी रावत	टालीगंज
१६।।।=)	"	हरदत्तरामजी खेरीवाल	चाईबासा	८।≶)	"	बालमुकन्दजी बासीरामजी	तराना
१६।।।=)	"	बालकिशनजी रामकिशनजी	"	८।≶)	"	सुखदेवजी अग्रवाल	तिनसुखीया
१६।।।=)	"	स्योदतरामजी प्रेमचन्दजी	"	८।≶)	"	मोहनीबाईजी	"
८।≡)	"	जुथारामजी जानकीदासजी	"	८।≶)	"	देवता बजरंगवली	दरभंगा
८।≡)	"	रूपरामजी कालूरामजी	"	११२२≶)	"	मुरलीधरजी श्यामसुन्दरजी	देहली
८।≡)	"	गंगादासजी सारदा	"	१६।।।=)	"	राधाकिशनजी डालमिया	"
८।≡)	"	रामसहायमलजी रामवल्लभजी	"	५०।।=)	"	चन्दोदेवीजी	"
८।≡)	"	जूथारामजी कन्हैयालालजी	"	५०।।=)	"	बिरमादेवीजी	"
८।≡)	"	महादेवजी गनेशीलालजी	"	८।≶)	"	रमनलालजी बगडिया	"
८।≶)	"	मोतीरामजी श्रीनिवासजी	"	८।≶)	"	गजराजसिंहजी	देरापुर
८।≶)	"	मोजीरामजी अक्खारामजी	"	८।≶)	"	हीरासिंहजी	"
८।≶)	"	मगतुरामजी सावलरामजी	"	८।≶)	"	राधाचरनजी मुख्तार	"
८।≶)	"	परमानन्दजी मक्खनलालजी	"	५०।।=)	"	हरकचन्दजी जगन्नाथजी	दीन बाजार
८।≶)	"	श्रीनिवासजी हरदतरायजी	"	८।≶)	"	कुन्दनलालजी भंवर	दीनहटा
८।≶)	"	मदनगोपालजी कन्हैयालालजी	"	८।≶)	"	केशवरामजी टोडरमलजी	"
८।≶)	"	लूनकरनजी मीनलालजी	चाईबासा	११)	"	जयकिशनदासजी छोटालालजी	दबोद
८।≶)	"	बारसीदासजी रामनारायनजी	"	१०१।)	"	जयनारायनजी काबरा	देरगांव
८।≶)	"	द्वारिकादास रामगोपालजी	"	८।≶)	"	कोलेश्वरराऊतवीन	धूबड़ी

२५।–)	"	राधादेवीजी गोइनका	नागपुर	२५।–)	"	चुन्नीलालजी गनपतरामजी	राँची
२५।–)	"	जुगलकिशोरजी गोइनका	न्यामतपुर	८।≶)	"	पूर्णीबाईजी	"
८।≶)	"	स्वामी रामदासजी नृसिंहदासजी	नागोर	८।≶)	"	सुरजमलजी घनश्यामदासजी	"
८।≶)	"	रामरलजी चाँडक	नौगाँव	१००)	"	गोविन्दरामजी की माँजी	"
५०॥=)	"	जयचन्दलालजी नेमीचन्दजी	पानीगाँव	८।≶)	"	कुन्दनलालजी रामजीलालजी	रूड़की
८।≶)	"	गोकुलचन्दजी	पीरपेन्ती	१६॥=)	"	किस्तुरचन्दजी हनुमानबक्सजी	लेडी
२०)	"	देवीदत्तजी	फिल्लोरा	८।≶)	"	डुगरमलजी तोदी	"
२१।–)	"	अनन्तलालजी केडिया	पचम्बा	८।≶)	"	सुरजमलजी माँगीलालजी	"
३३।।।)	"	मेवाबाईजी	वडनेरा	८।≶)	"	लक्ष्मीचन्दजी अग्रवाल	"
१०११)	"	जगन्नाथजी नथमलजी	"	८।≶)	"	चन्दुलालजी मुलचन्दजी	"
१०११)	"	जगन्नाथजी डेडराजजी	"	१६॥=)	"	गंगुमलजी मोजीरामजी	"
१२०)	"	सुशीलाबाई	बम्बई	८।≶)	"	कालूरामजी प्रेमराजजी	"
१०११)	"	जेठानन्दजी ठाकुरदासजी	"	२५।–)	"	बजरंगलालजी चुड़ीवाला	सीतावाल्दी
१६॥=)	"	देवीरामजी नारायनदासजी	बलिया	१६॥=)	"	हनुमानदासजी द्वारिकादास	शेगाँव
८।≶)	"	जयलालजी गंगादत्तजी	वाराद्वार	१६॥=)	"	राधाकिशनजी भंवर	सुरतगढ़
१६॥=)	"	गौरीशंकरजी रामनिवासजी	बिल्हा	८।≶)	"	बालचन्दजी कन्हैयालाल	सुजानगढ़
१०)	"	रामदेवजी रामप्रसादजी	"	८।≶)	"	सुंदरमलजी बालमुकन्दजी	"
८।≶)	"	ज्ञानीचन्दजी	बावरपुर	८।≶)	"	गुप्तदानी सज्जन	सेधवा
८।≶)	"	चन्दूलालजी गिरधारीलालजी	बड़ोदा	८।≶)	"	हीरालालजी किशोरीलाल	"
८।≶)	"	पारोबाईजी	भागलपुर	८।≶)	"	मोजीरामजी रामशरणदास	श्रीगंगानगर
८।≶)	"	कासीरामजी बिहारीलालजी	भेलसा	२५।–)	"	गिरधारीलालजी बिहारीलालजी	शेरमारी
८।≶)	"	दातारामजी सीतारामजी	सुरेना	२५।–)	"	ख्यालीरामजी रामचन्द्रजी	होपजिया
२००)	"	जुहारमलजी हेमराजजी	मनकाचर	८।≶)	"	श्रीकिशनजी रूपचन्दजी	हिंगनघाट
८।≶)	"	विरधीलालजी अकाउन्टेन्ट	मनोहरथाना	८।≶)	"	छोटीबाईजी	"
८।≶)	"	नत्थोमलजी रामनिवासजी	मुजफ्फरनगर			८६४१॥।≶)॥	

श्री भगवान भजनाश्रम एवं वृन्दावन भजनाश्रममें मासिक चन्दा सालाना चन्दा देनेवाले सज्जनोंकी नामावली

२०)	श्री	श्रीरामचन्दजी देसाई	अहमदाबाद	४)	श्री	बाबूलालजी कालूरामजी	मऊ
२६४)	"	सेडमलजी बैजनाथजी	देहली	३२)	"	पं० काशीप्रसादजी शुक्ला	सारबाहारी
१२)	"	प्यारेलालजी रिटायर्ड	फिल्लोरा	२२)	"	गनपतरामजी ब्रजमोहनजी	देहली
२५)	"	हीरालालजी मानिकलालजी पटेल	बम्बई			३७९)	

श्री भगवान भजनाश्रम, वृन्दावन भजनाश्रम में माइयों को सामान बाँटनेवाले सज्जनोंकी नामावली मास १

२०)	श्री	हजारीमलजी कन्हैयालालजी	आगासोह	५)	"	दिहाटीकादत्तजी उपाध्याय	बलानपट्टी
२०)	"	सूरजकरनजी रघुनाथजी	करन्जा	१०)	"	सागरमलजी सरावगी	बेलधरिया
१०)	"	हरिकिशनजी शिवप्रतापजी	"	९॥।)	"	जेठानन्दजी ठाकुरदासजी	बम्बई
१०)	"	बसंतकुमारजी रामजी पलात	घाटकोपर	२०)	"	कोडामलजी लक्ष्मीनारायनजी	लाडनून
७॥।–)	"	गुलाबचन्दजी बुधरामजी	खरसिया	२००)	"	रामगोपालजी चाननमलजी	सिगरियामंडी
१०)	"	जयनारायनजी नन्दलालजी	खेतराजपुर	१६२॥≶)॥	"	जेठमलजी सोहनलालजी	"
५)	"	गयाप्रसादजी श्रीवास्तव	ग्वालियर	२०११।–)॥	"	रघुनाथसिंह जी मानसिंहका	विजयनगर
२६३॥=)	"	गंगाविशनजी चांडक	पुरलिया			२७९५।)	

॥ श्रीहरिः ॥

नाम-माहात्म्यके नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नामके माहात्म्यका वर्णन करके श्री भगवन्नामका प्रचार करना, जिससे सांसारिक जीवों-का कल्याण हो।

नियम :—

१—"नाम-माहात्म्य" में श्री पूर्व आचार्य महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्ध सन्तोंके उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा और भक्तिसंबंधी लेख एवं श्रीभगवान् और उनके भक्तोंके चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखोंके बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करनेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। लेखोंमें प्रकाशित मतका उत्तरदायी सम्पादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरीसे आरम्भ होता है। ग्राहक किसी भी मासमें बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरीके अंकसे निकले सभी अंक दिये जायँगे।

४—जिनके पास जो अंक न पहुँचे, वे अपने डाकखानेसे पूछें, वहाँसे मिलनेवाले उत्तर को हमें भेजनेपर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे भेजना चाहिये। वी० पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं और समय भी अधिक लगता है।

७—समस्त पत्रव्यवहार व्यवस्थापक "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन (मथुरा) के पतेसे करना चाहिये।



॥ श्री हरिः ॥

रजिस्टर्ड नं० ए ५४९

श्रीभगवन्नाम-जप कराइये

श्री वृन्दावनमें लगभग ८५० गरीब माइयाँ प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल ६ घण्टे परम मंगलमय श्रीभगवन्नामका जप एवं संकीर्तन करती हैं। इन्हें आश्रम द्वारा अन्न, वस्त्र और पैसोंकी सहायता दी जाती है। एक माई प्रतिदिन एक लाख श्रीभगवन्नामजप कर सकती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

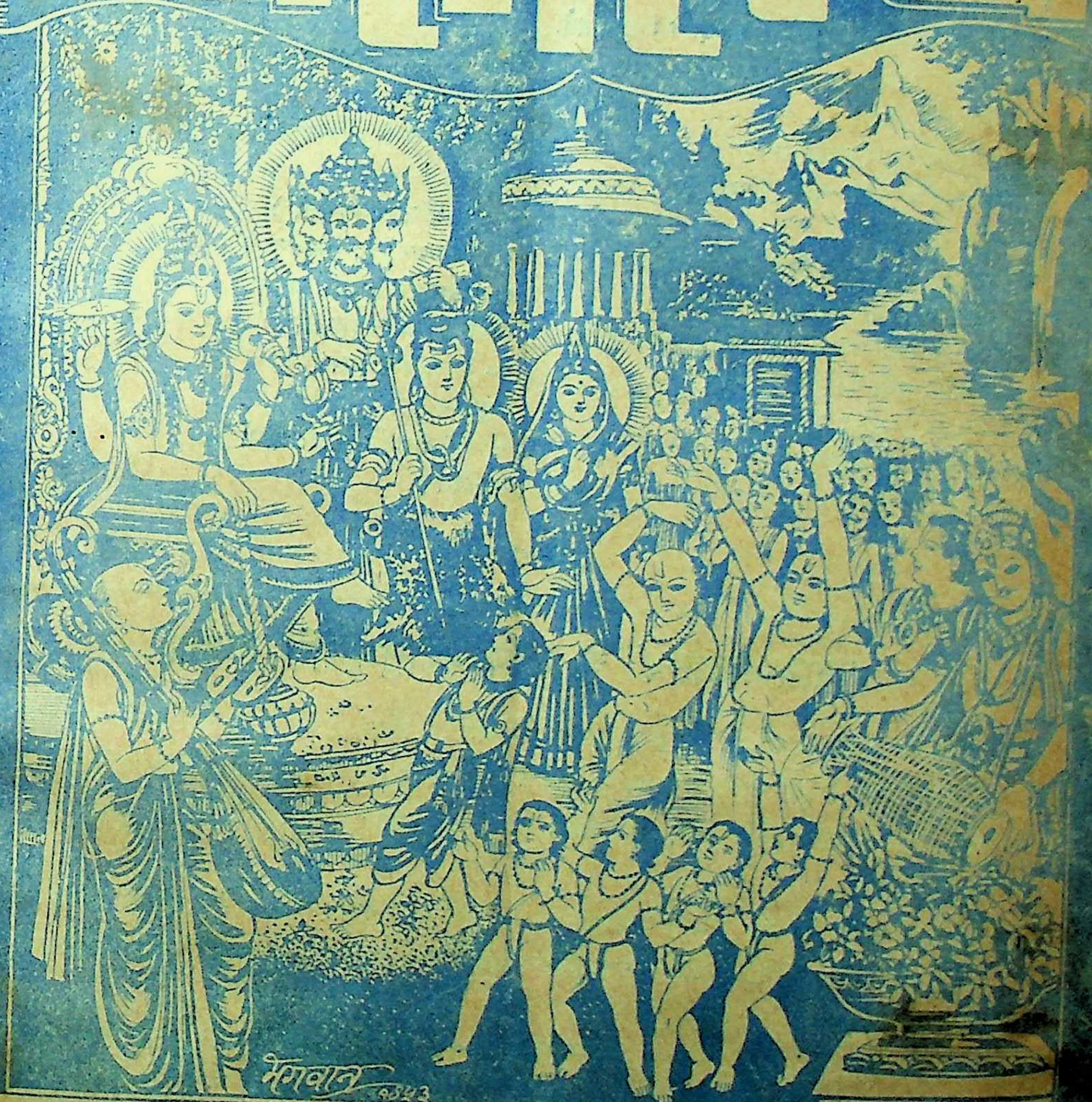
कलियुगमें संसार-सागरसे पार उतरनेका एकमात्र सुगम उपाय श्री भगवन्नाम-जप करना ही शास्त्रोंमें वर्णित है। सभी महानुभावोंको स्वयं अधिक-से-अधिक भगवन्नाम-जप करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

जो महानुभाव अपनी ओरसे गरीब माइयों द्वारा श्रीभगवन्नामजप कराना चाहें, वे कृपाकर हमें सूचित करें। भजनाश्रममें लगभग ८५० गरीब माइयाँ आती हैं, जिनमें-से इस समय लगभग ५०० माइयाँ दान-दाताओंकी ओरसे भजन कर रही हैं। बाकी माइयोंसे भजन करानेके लिये हम सभी प्रेमी सज्जनोंसे निवेदन करते हैं कि आप अपनी-अपनी श्रद्धा और प्रेम के अनुसार जितनी माइयों द्वारा जितने मासके लिये भजन कराना चाहें, अवश्य करावें एवं अपने इष्ट-मित्रोंको भी भजन करानेके लिये प्रोत्साहित करें।

एक माईको नित्य प्रति साढ़े चार आनेकी सहायता दी जाती है। इस हिसाबसे एक मासका ८।≡) और एक वर्षका [illegible]) खर्च लगता है। पत्र-व्यवहार एवं मनीआर्डर भेजनेका पता :—

मन्त्री—श्री[illegible]-भजनाश्रम.
पोस्ट—वृन्दावन

नाम माहात्म्य



वर्ष १२] वृन्दावन [अङ्क २

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

[फरवरी सन् १९५३]

—:०:—

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावोंसे प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताहमें "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जाते हैं; फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर, मिले उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भेजा जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्रव्यवहारमें अपना ग्राहक नम्बर लिखनेकी कृपा करें एवं उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजने चाहिये पत्रव्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पतेपर स्पष्ट अक्षरोंमें लिख कर भेजिये।

व्यवस्थापकः—"नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम
पोस्ट—वृन्दावन (मथुरा)

वार्षिक मूल्य २≡)   संस्थाओंसे १॥≡)   एक प्रतिका ≡)

ॐ

॥ श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः ॥

"नाम-माहात्म्य"

वृन्दावन



राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहु जौ चाहसि उजिआर॥

वर्ष १३ | "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन, फरवरी सन् १९५३ | अंक २

मनके प्रति

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरि पद भजु, करम बचन अरु ही ते॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बलीते।
हम हम करि धन-धाम सवाँरे, अन्त चले उठि रीते॥
सुत वनितादि जानि स्वारथ रत, न करु नेह सब ही ते।
अन्तहुँ तोहि तजैंगे पामर!, तू न तजे अबही ते॥
अब नाथहि अनुराग जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम अग्नि 'तुलसी' कहु, विषय भोग बहु घीते॥

—परम भक्त श्रीतुलसीदासजी

भ ग वा न्

[श्री मज्जगद्गुरु श्रीरामानुजसम्प्रदायाचार्य स्वामी श्रीराघवाचार्यजी महाराज आचार्यपीठाधिपति]

१—श्रीमद्भागवतके अनुसार परब्रह्म परमात्मा भगवान् कहलाते हैं। सूतजीका कथन है—

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते
(१।२।११)

आशय यह है कि परमतत्व ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान्‌के नामसे सम्बोधित होता है। जिस प्रकार ब्रह्मकी मीमांसा करनेवाले सूत्र ब्रह्मसूत्र कहलाते हैं, उसी प्रकार भगवत्तत्वका प्रतिपादन करनेवाली संहिता भागवत कहलाती है।

२—प्रशस्त है भाग्य उनका (प्रशस्तः भगः भाग्यं अस्य)। इसलिये भगवान् को भगवान् कहा जाता है।

३—भगका अर्थ माहात्म्य या कीर्ति होता है। (भगं माहात्म्यं कीर्तिः वा अस्य)। माहात्म्यवान् तथा कीर्तिशाली होनेसे भगवान् कहलाते हैं।

४—'भग' शब्द से षडैश्वर्योंका भी ग्रहण किया जाता है। कहा है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
वैराग्यस्याथ मोक्षस्य षण्णां भग इतीरिणा॥

अर्थात् पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य और मोक्ष इन छः को भग कहा जाता है। ये छः गुण परिपूर्ण रूप में भगवान् में हैं, इसलिये वे भगवान् कहलाते हैं।

५—विष्णु पुराण में कहा है—

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति।

अर्थात् जो उत्पत्ति और प्रलयको, भूत (प्राणियों) के आवागमनको अविद्या और विद्याको जानते हैं वे भगवान् कहलाते हैं। परब्रह्म यह सब जानते हैं, इसलिये वे भगवान् हैं।

६—कहा है—

मोहनोच्चाटनाकर्षविद्वेषस्तम्भनं तथा।
वशीकरणमित्येवं षट्कर्म भगवाचकम्॥

अर्थात् मोहन उच्चाटन, आकर्षण, विद्वेष, स्तम्भन और वशीकरण इन छः को 'भग' कहा जाता है। ये शक्तियाँ भी भगवान्‌में हैं अतः वे भगवान कहलाते हैं।

७—पाञ्चरात्र आगम के अनुसार छः गुणों से ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज का ग्रहण किया जाता है। ज्ञान के द्वारा भगवान् सबका साक्षात्कार करते हैं। सबका धारण करनेवाला बल भगवान् में है। धारण करने के साथ-साथ भगवान् नियमन करते हैं। यह उनका ऐश्वर्य है। इस ऐश्वर्य के प्रदर्शनमें वह कभी शिथिल नहीं होते। यह उनका वीर्य है। यहां तक कि वह असम्भव को सम्भव करनेकी सामर्थ्य रखते हैं। यह उनकी शक्ति है। इस प्रकारके गुणोंके प्रदर्शनमें उनको न किसी सहकारीकी आवश्यकता पड़ती है और न किसीसे वह अभिभूत होते हैं। यह उनका तेज है। इस प्रकार ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेजसे सम्पन्न 'भगवान्' कहलाते हैं।

८—'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' यह भागवतकी सूक्ति है। भागवत-वर्णित श्रीकृष्णचरित इसका प्रमाण है कि श्रीकृष्ण भगवान् हैं।

पूज्यपाद १००८ महामण्डलेश्वर श्री स्वामी श्री हरिहरानन्दजी महाराज वेदान्तभूषणके वचनामृत

(प्रेषक—भक्त रामशरणदासजी)

(१) प्रश्न—श्रीभगवन्नामकी क्या महिमा है?

उत्तर—पामराणां व्यवहृतेर्वरं कर्मणोऽनुष्ठितिः।
ततोऽपि सगुणोपास्तिर्निर्गुणोपासनं ततः॥

'पामरोंके व्यवहारसे कर्मका अनुष्ठान श्रेष्ठ है और कर्मसे भी सगुण उपासना श्रेष्ठ है और सगुणोपासनासे भी निर्गुणोपासना श्रेष्ठ है।' श्रीभगवन्नामका उच्चारण यह सगुणोपासनाके अन्तर्भूत है। 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' 'उन भगवानके नामका जाप और उनके रूपकी बार-बार भावना करना।' प्रतिक्षण मन संकल्प विकल्प करता ही रहता है। चाहे इसको अभ्यास द्वारा भगवन्नामजप अर्थात् सगुणोपासनामें लगावो और चाहे अनभ्याससे पदार्थोंका चिन्तन करो। पूर्वोक्त श्लोकके अनुसार सगुणोपासनासे क्रमशः निर्गुणोपासनाकी प्राप्ति होगी, जिससे समस्त जगत् आत्ममय प्रतीत होकर परम शान्ति पद प्राप्त होगा। अनभ्याससे विषयोंका चिन्तन अर्थात् संकल्प विकल्प होगा, जिसके प्रभाव से बारम्बार पुनरावृत्ति होगी अर्थात् आवागमन होगा। कभी मनुष्य, कभी पशु-पक्षी—इस प्रकार ८४ लाख योनियोंमें ही चक्कर लगाना पड़ेगा। ८४ लाख योनियों का प्रमाण इस प्रकार है—

स्थावरे लक्षविंशन्त्यो जलजं रुद्रलक्षकम्।
लक्षत्रिंशत् पश्वादीनां कृमिजं नवलक्षकम्॥
अष्टलक्षं विहंगानां चतुर्लक्षं च वानरः।
तत्पश्चात् मानुषा जाता कुत्सितादि द्विलक्षकम्॥

अर्थात् २० लाख बार वृक्ष, ११ लाख बार जलसे उत्पन्न होनेवाले जलचर, ३० लाख बार पशु, ९ लाख बार कीड़े, १० लाख बार पक्षी, ४ लाख बार वानर इस प्रकार ८४ लाख योनियोंमें जाकर उसके बाद २ लाख बार कुत्सित महान दीन दरिद्री बनना पड़ता है। परमात्मा दया करके २ लाख बार यह मनुष्यका जन्म देकर फिर भी परीक्षा करता है और यदि यह श्रीभगवन्नामका जप करता है तो क्रमशः आगेको बढ़ता हुआ निर्गुण उपासना अर्थात् आत्मसमर्पण नामकी भक्तिके द्वारा परमपदको प्राप्त कर लेता है। यदि पहिलेके समान फिर विषयोंका चिन्तन करता है तो फिर ८४ लाख योनियोंके चक्करमें फँस जाता है। इसलिये इन ८४ लाख योनियोंके चक्करसे निकलनेके लिये श्रीभगवन्नामका जप ही आधार है।

(२) प्रश्न—क्या महाराजजी, खाली 'श्रीराम राम' कीर्तन करनेसे भी कल्याण हो जायगा?

उत्तर—हाँ, अवश्य ही कल्याण होगा। जैसे कि श्री हनुमानजी महाराजने श्रीराम नाम जप किया था जिसके परिणाममें श्रीहनुमानजी महाराजके रोम रोममें श्रीराम नाम लिखा हुआ प्रत्यक्ष पाया गया था। इसी प्रकार दर्शनकार भी लिखते हैं कि जैसी

भावना होगी वैसा फल होगा। जैसा जप करोगे वैसी भावना होगी और जैसी भावना होगी वैसा फल मोक्ष या बन्धन प्राप्त होगा। इसलिये श्री भगवन्नामोच्चारण ही कल्याणमार्गका सर्वप्रथम सर्वोपरि साधन है। इसलिये खूब प्रेम से—

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।
हे नाथ नारायण वासुदेव।

इस प्रकार कीर्तन करना चाहिये, इसीसे उद्धार होगा।

(३) प्रश्न—वर्णाश्रम-धर्मको मानना चाहिये या नहीं?

उत्तर—अवश्य ही मानना चाहिये। वर्णाश्रम धर्मको माने बिना कल्याण कहाँ? भगवान श्रीकृष्णने स्वयं गीता में 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः' चारों वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब मैंने बनाये हैं—यह बताया है। वर्णव्यवस्थाको मेटनेकी कोशिश करना यह तो पाप है, हम इसे अच्छा नहीं समझते। हम धर्माचार्य हैं हम भला वर्णव्यवस्थाको कैसे अच्छा नहीं मानेंगे? वेदोंमें भी वर्णव्यवस्थाका वर्णन है, उसमें बताया गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको ही वेदादिमें अधिकार है शूद्रों को अधिकार नहीं है; उन्हें स्वधर्मपालन करनेमें ही कल्याण बताया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंको ही यज्ञोपवीतका अधिकार है इसलिये उन्हें ही वेद पढ़नेका अधिकार है। श्रीभगवन्नाम-जप-कीर्तन सब कोई कर सकते हैं इसमें सबका अधिकार है।

(४) प्रश्न—क्या प्रणव मन्त्र 'ॐ' का जाप करनेमें सबको अधिकार है?

उत्तर—यह वैदिक मन्त्र है, इसका सबको अधिकार नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य-जिनके यज्ञोपवीत हो गये हैं उन्हें ही 'ॐ' इस प्रणवके जपका अधिकार है बिना यज्ञोपवीतवालेको और स्त्री-शूद्रोंको इसका अधिकार नहीं है।

चेतावनी

केते दिन हरि सुमिरन बिन खोये।
परनिंदा रसना के रससे अपने करम बिगोये।
तेल लगाय कियो तनु मर्दन वस्तर मल मल धोये।
तिलक लगाय चले बन स्वामी विसयन के संग जोये॥
काल बली ते सब जग कांप्यो ब्रह्मादिक मुनि रोये।
सूर अधम की कौन गती है उदर भरे भर सोये॥

—श्रीसूरदासजी

श्रीपरमात्मने नमः

आत्मोन्नतिका सुगम मार्ग

(श्री जयदयालजी गोयन्दकाके सत्सङ्गसे प्राप्त)

शरीर और इन्द्रियोंकी क्रियाओंके सुधारकी अपेक्षा मनके सुधारपर विशेष ध्यान देना चाहिये; क्योंकि मनके भाव ही क्रियारूपमें परिणत होते हैं, अतः मनके सुधारसे शरीर और इन्द्रियोंका सुधार स्वतः ही हो जाता है। यदि शरीर और इन्द्रियोंके साथ मन नहीं है तो उनके द्वारा होनेवाली क्रियाओंका कोई विशेष मूल्य भी नहीं है। शरीर और इन्द्रियोंके बिना भी मन क्रिया करता रहता है, उसका एक क्षण भी क्रियारहित रहना कठिन है। श्रीभगवान्ने भी कहा है:—

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥
(३।५)

'निस्सन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी कालमें क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता; क्योंकि सारा मनुष्यसमुदाय प्रकृतिजनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करनेके लिये बाध्य किया जाता है।'

श्रीभगवान्के ये वचन प्रधानतया मनकी क्रियाको लक्ष्य रखकर ही हैं। क्योंकि शरीर और इन्द्रियोंकी क्रिया निरन्तर चालू नहीं देखी जाती। अतः मनकी क्रियाओंके सुधारका विशेष प्रयत्न करना चाहिये। मनके द्वारा अनेक प्रकारकी क्रियाएं होती हैं, उनको हम चार भागोंमें विभक्त कर सकते हैं :—

(१) मनमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, उपरति, सद्गुण और सदाचारविषयक मनन स्वाभाविक ही होना एवं प्रयत्नसे करना। भगवान्के नाम, रूप, लीला, गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य आदिका अथवा नित्य विज्ञानानन्दघन निर्विशेष ब्रह्मका अभेदरूपसे मनन और निदिध्यासन करना, संसारके भोगोंको दुःखरूप, क्षणभङ्गुर, नाशवान् समझना तथा अन्तःकरणमें क्षमा, दया, शान्ति आदि उत्तम गुणोंका भाव होना, एवं निष्कामभावपूर्वक यज्ञ, दान, तप, सेवा, पूजा, संयम, परोपकार, तीर्थ, व्रत, उपवास आदि उत्तम आचरणोंके करने एवं दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, व्यर्थ चेष्टा और भोगोंके त्याग करनेकी इच्छा, स्फुरणा और संकल्प होना—ये सब तो मनकी आत्मकल्याणके लिये होनेवाली अध्यात्म (परमार्थ) विषयकी क्रियाएँ हैं।

(२) स्वाद-शौक, ऐश-आराम, कञ्चन, कामिनी मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा आदि इस लोक और परलोकके विषयभोगोंको प्राप्त करनेकी इच्छा, स्फुरणा और संकल्प होना—यह मनकी स्वार्थविषयकी क्रियाएँ हैं।

(३) मनमें किसी भी नगर, मकान, वन, पहाड़, नदी, तालाब, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि सांसारिक पदार्थोंको लेकर जो स्फुरणाएँ होने लगती हैं, जिनसे अपना कोई सम्बन्ध या प्रयोजन नहीं होता, तथा जिनसे न परमार्थ सिद्ध होता है और न स्वार्थ ही एवं जिनमें न पुण्य है और न पाप—ये सब मनकी व्यर्थ स्फुरणाएँ हैं। प्रायः अधिकांश मनुष्योंके ऐसी ही स्फुरणाएँ हुआ करती हैं।

(४) काम-क्रोध, लोभ-मोह, राग-द्वेष, नास्तिकता आदि भावोंकी, झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार, हिंसा आदि पापकर्म करनेकी तथा कर्तव्य कर्मोंको न करनारूप प्रमाद आदिकी स्वतः ही इच्छा, स्फुरणा और संकल्प होना अथवा जान-बूझकर करना—ये सब मनकी पापमय क्रियाएँ हैं।

इन चारोंमेंसे पहली परमार्थ विषयकी क्रियाएँ सात्त्विकी, दूसरी स्वार्थविषयकी क्रियाएँ राजसी, और तीसरी व्यर्थ क्रियाएँ तथा चौथी पापमय क्रियाएं तामसी हैं। इनमें सात्त्विकी क्रियाएँ तो बहुत ही कम होती हैं, अधिकांशमें राजसी-तामसी ही होती हैं। सात्त्विक क्रियाओंमें भी श्रद्धा, भक्ति और वैराग्यपूर्वक नित्य-निरन्तर परमात्माका स्मरण चिन्तन करना ही सर्वोपरि है। अतः मनुष्यका कर्तव्य है कि मनसे राजसी और तामसी इच्छा, स्फुरणा और संकल्पोंका सर्वथा त्याग करके केवल अध्यात्मविषयकी सात्त्विकी उत्तमोत्तम क्रियाओंके लिये ही जी-तोड़ प्रयत्न करे।

\+ + +

समय बहुत कम है। भगवान्‌पर निर्भर होकर जोरके साथ चलना चाहिये। लाख रुपया खर्च करनेपर भी एक मिनटका समय भी और नहीं मिल सकता। इसलिये सारा समय भगवान्‌की प्राप्तिके उपायमें ही लगाना चाहिये।

\+ + +

समय बहुत कम रह गया है—ऐसा समझकर घबरावे नहीं कि अब कल्याण कैसे होगा। अबसे लेकर मरणपर्यन्त जो भी समय है, उसमें भगवान्‌को नहीं भूलना चाहिये। हर समय भगवानको पकड़े रखना चाहिये। भगवान्‌को निरन्तर याद रखना ही उनको पकड़े रखना है। भगवान्‌को पकड़े रहोगे तो फिर तुम्हारे कल्याणमें कोई शङ्का नहीं है। यमराजके बापकी भी सामर्थ्य नहीं, जो तुम्हें नरकमें ले जा सके।

\+ + +

परमात्माने हमको बुद्धि-विवेक दिया है, उसे काममें लाना चाहिये। वही मनुष्य बुद्धिमान् है, जो अपने समयका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताता और सारा समय अच्छे-से-अच्छे काममें लगाता है।

\+ + +

चाहे कोई कैसा भी पापी-से-पापी भी क्यों न हो, उसका भी कल्याण हो सकता है। केवल शर्त यही है कि अबसे लेकर मृत्युपर्यन्त भगवान्‌को भूले ही नहीं। भगवान्‌को हर समय याद रखना ही सबसे बढ़कर उपाय है।

\+ + +

हमको यह मनुष्य-जन्म मिला है—आत्माके कल्याणके लिये। किन्तु जो मनुष्य आत्म-कल्याणके कार्यको छोड़कर संसारके फंदेमें फँस रहा है, उससे बढ़कर मूर्ख और कौन होगा ?

\+ + +

एकान्तमें बैठकर नित्य यह विचार करे कि ईश्वर क्या है ? मैं कौन हूँ ? मैं कहाँसे आया हूँ ? मैं क्या कर रहा हूँ ? मुझे क्या करना चाहिये ? इस प्रकार विचारकर दिन-पर-दिन अपनी उन्नतिमें अग्रसर होना चाहिये।

\+ + ÷

मनुष्य-शरीर पाकर यदि परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई, उनका तत्त्वज्ञान नहीं हुआ तो यह जन्म ही व्यर्थ गया। मानवजन्मका समय बहुत ही दामी है, इसको सोच-सोचकर बिताना चाहिये।

\+ + +

भगवत्प्राप्तिके जितने भी साधन हैं, उन सबमें उत्तम-से-उत्तम साधन है—भगवान्‌को हर समय याद रखना। इसके समान और कोई साधन है ही नहीं। चाहे कोई उत्तम-से-उत्तम भी कर्म हो, पर वह भगवत्स्मृति के समान नहीं है। चाहे भक्तिका मार्ग हो, चाहे ज्ञानका सभी मार्गोंमें भगवान्‌की स्मृति की ही प्रधानता है।

\+ + +

भगवान्‌से मन हट जाय तो उस समय ऐसी तड़फन होनी चाहिये, जैसे कि जलके विना मछली तड़फने लगती है।

\+ + +

भगवान्‌के मिलनेमें देरी हो रही है, इसमें भगवान्‌की त्रुटि नहीं है, हमारी ही कमी है। भगवान्‌में अनन्य प्रेम होनेसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं। अतः प्रभुकी सदा वर्तमान अपार अनन्त दयाको समझकर क्षण-क्षणमें मुग्ध होना चाहिये। अथवा एकान्तमें बैठकर भगवान्‌की विरह-व्याकुलतामें छटपटाकर भगवान्‌से स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये।

\+ + +

भगवान्‌के नामका जप, रूपका स्मरण और गुणोंका मनन करनेसे, सत्सङ्ग करनेसे तथा गद्गद होकर करुणाभावसे भगवान्‌से स्तुति-प्रार्थना करनेसे भगवान्‌में प्रेम हो सकता है।

\+ + +

संसाररूपी सागरमें भगवान्‌के चरण ही सुदृढ़ नौका है, उसे मजबूतीसे पकड़ लेना चाहिये। भगवान्‌के चरणोंमें अपने-आपको सर्वतोभावेन समर्पण कर देना ही मजबूतीसे नौका पकड़ना है।

\+ + +

यह दृढ़ विश्वास करना चाहिये कि भगवान् हैं, मिलते हैं, बहुतोंको मिले हैं और मुझे भी मिल सकते हैं।

संतों की अनुभव-वाणी

लागै मोहि राम पियारा हो।
प्रीति तजी संसार से किया मन न्यारा हो ॥ टेर ॥
सतगुरु शब्द सुनाइया दिया ज्ञान विचारा हो।
भरम तिमिर भागे सबै घट भया उजियारा हो ॥१॥
मैं बंदा उस ब्रह्मका जाका वार न पारा हो।
ताहि भजै कोई साधवा जिन तन मन मारा हो ॥२॥
चाख चाख सब छोडिया माया रस खारा हो।
राम अमीरस पीजिये छिन वारंवारा हो ॥३॥
आन देव को ध्यावसी जाके मुख छारा हो।
राम निरंजन ऊपरे जंन सुंदर वारा हो ॥४॥

(सङ्कलित)

रामका नाम

[लेखक—स्वामी पारसनाथजी]

जयपुरके सेठ राधारमनने अपने पुत्र रामकुमारसे कहा—"तुम जानते हो कि पाँच सालसे मेरे शरीरमें 'श्वेत कुष्ट' हो गया है। सब तरहका इलाज कराया, परन्तु रोग न गया। यह रक्तजनित रोग नहीं है, कर्मजनित रोग है। मैंने मर्यादासे अधिक लाभ लिया था, ब्लैक किया था, दीनोंकी सेवा नहीं की, ईश्वरको भूल गया था, धर्मका भय दूर कर दिया था। उसी कर्मका फल भोग रहा हूँ। इस नारकीय जीवनसे मृत्यु अच्छी। मैं काशी जाकर, गंगाजी में, जीवित जल समाधि लेना चाहता हूँ। इस राज-पाटके मालिक आजसे तुम हुए। मेरी वसीअत यह है कि १—ईश्वर और धर्मको मत भूलना २—दीन-की सेवासे ही दीनानाथ प्रसन्न रहते हैं और ३—एक रुपयाके मालपर चार आनासे अधिक लाभ लेना 'हराम' समझना।"

दूसरे दिन सेठजीने शहरसे १०८ ब्राह्मणोंको बुलाया और कहा—"मैं काशीमें समाधि लेना चाहता हूँ। मेरे साथ आप लोग चलेंगे। यह यात्रा पैदल होगी। मुझे वहां पहुँचाकर आप लोग वापस आ जायँ आपका काम यह होगा कि मेरे साथ, मार्गमें 'राम राम' कहते चलें। प्रति व्यक्तिको भोजन-वस्त्रके अलावा पाँच रुपया रोजानाके हिसाबसे जाने और आनेमें जितने दिन लगेंगे, उतने दिनों-की दक्षिणा मिलेगी।"

पण्डितोंने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। सदल बल सेठजी, काशीजीके लिये, चल पड़े।

तीन महीनेमें सेठजी काशीके राजघाटपर जा पहुँचे। प्रातःकाल था। भगवान सूर्यदेव प्रकट होनेवाले थे। सेठजी, गंगाजी में, कमरतक डूबे खड़े थे। किनारेपर १०८ ब्राह्मण 'राम राम' कह रहे थे। तबतक 'हवाखोरी' करता हुआ एक चौदह वर्षीय योगी बालक वहां आ पहुँचा। उसके हाथमें लोहेका डंडा था। ब्राह्मणोंने राम नाम रटना बंद कर दिया।

बालकने सेठजीसे पूछा—"यह क्या मामला है?"

"महाराज, मैं कुष्टी हूँ। जल समाधि लेना चाहता हूँ।" सेठने कहा।

"ये लोग 'राम राम' क्यों कह रहे हैं?" योगी बालकने हँसकर पूछा।

"जयपुरसे ये ब्राह्मण लोग 'राम राम' रटते मेरे साथ आये हैं। तीन महीनेसे यात्रामें साथ रहे हैं। सोचा था-ब्राह्मणोंके राम नाम जपसे—शायद मेरा रोग दूर हो जावे।"

"परन्तु, रोग नहीं गया?"

"नहीं गया, सरकार!"

"और—अगर मैं रोगको डंडा मार भगा दूं?"

"अँधेको क्या चाहिये, दो नेत्र? यदि ऐसा हो जाय तो मैं जल समाधि त्याग, जयपुर वापस चला जाऊँगा। शेष जीवन धर्म तथा भक्तिमें गुजारूँगा।"

"मुझे क्या दोगे?"

"सवा लाख।"

"देखो सेठ जी, दवा और दुआ बिकती नहीं है। जो दवा बेचता है वह दवा नहीं, जो दुआ बेचता है, वह दुआ नहीं। यदि तुम अच्छे हो जाओ तो १०८ गरीबोंको

अमीर बना देना। एक अमीरका प्रथम कर्तव्य यह है कि वह गरीबको अमीर बनावे!'

'हम लोगोंने सैकड़ों अमीरोंको गरीब बना डाला है—महात्माजी।'

'उल्टा काम किया? उसीकी सजा मिली है।'

'क्या मेरा यह रोग नष्ट हो सकता है?'

'ऐसा कौनसा काम है जो हो नहीं सकता?'

यह रोग कैसे दूर होगा?'

'एक राम नामसे।'

'परन्तु, १०८ ब्राह्मण, तीन माहसे राम नाम जपते आये हैं। रोग तो दूर न हुआ?'

'गृही लोगोंका रामनाम देख चुके हो, अब एक योगीका राम नाम देखो। रामका नाम एक सागर है। लोग अपनी अपनी साधनाके अनुसार, उस सागरसे रत्न निकाल सकते हैं। किसीको मोती मिलता है, किसीको शंख मिलता है और किसीके हाथ एक 'घोंघा' ही लगता है।'

'तो, मेरे लिये क्या आज्ञा है, महाराज?'

'एक बार 'राम' कहकर गंगाजीमें डुबकी लगाओ। सेठने डुबकी लगाई, परन्तु, रोगमुक्त न हुए।

'मृत्युको सामने देखकर जिस प्रकार 'राम' का नाम लिया जाता है, उस प्रकार नाम नहीं लिया तुमने। यह समझ लो कि मर रहे हो। दूसरी डुबकी लगाओ। संसारसे निराश होकर, ईश्वर प्रेममें संयुक्त होकर नाम लेना।'

सेठजीने दूसरी डुबकी लगाई। परन्तु रोगमुक्त न हुए।

योगी बालक हँसा। बोला—'तुम परम मूर्खोंको रामका नाम लेना ही नहीं आता। जिस प्रकार एक डूबता हुआ आदमी, भयके कारण 'राम' कहता है, उस तरह नाम लेना चाहिये। तीसरी बार डुबकी लगाओ। कुछ भी हो जावे, नीचे जाकर, विह्वल होकर 'राम' कहना।'

सेठने ज्योंहीं तीसरी डुबकी मारी, योगी बालकने जोरसे वह लोहेका डंडा, सेठके सिरपर मार दिया। सिर फट गया। रक्त बहने लगा। परन्तु, सेठने डुबकी लगाना न छोड़ा। कातर होकर, अत्यन्त दीन होकर, करुणा और भयके साथ, उन्होंने रामका नाम लिया।

ज्योंही सेठजी उछले, उनका रोग नष्ट हो गया।

सेठ बाहर आये। योगीने अपना रेशमी आँचल फाड़ा, जलाया और सेठजीके घावमें भर दिया। रक्तस्राव बन्द हो गया।

'महात्माजी, मेरा रोग दूर हो गया। मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

'मुझे व्यक्तिगत कोई स्वार्थ नहीं है। अपने घर जाओ। गरीबों को अमीर बनानेकी कोशिश करना।'

परम प्रसन्न होकर सेठजी जयपुर चले गये।

३

योगी बालक 'कमाल साहब' ने जाकर अपने पिता 'कबीर साहब' को, सेठजी वाली घटना कह सुनाई।

कबीर—ओ आवारा और घमंडी लड़के! तूने ३ राम नामसे एक कोढ़ी अच्छा किया? राम नाम का मूल्य तूने कितना घटाया है, यह जानता है?

कमाल—मगर पिताजी, तीन महीनेसे १०८ ब्राह्मणोंने राम नामकी रटना की और उसे रोग मुक्त न कर सके थे।

कबीर—उनका राम नाम था—मिट्टी समान। तेरा राम नाम है—लोहेके समान। तुझे रामनामकी कीमतसे परिचय कराना चाहिये। मेरा पत्र लेकर 'तुलसीदास' के पास जाओ। वे वरुणाके संगमपर अपनी कुटी में ठहरे हुए हैं

कबीर साहबने एक कागजपर एक दोहा लिखकर कमालको दे दिया। दोहा यह था—

"डूबा वंश कबीरका, उपजे पूत कमाल।
तीन रामके नामसे, कोढ़ी किया बहाल॥"

४

गोस्वामी तुलसीदासजी ने, रामायणकार तुलसीजी ने—वह दोहा पढ़ा और कमालकी जबानी, सेठवाली पूरी कहानी सुनी। उन्होंने सोचा कि राम नामका विशेष महत्त्व दिखलानेकी आज्ञा, उनको कबीर साहब द्वारा प्राप्त हुई है।

तुलसीजीने अपने शिष्योंको बुलाया। आज्ञा दी—'काशीभरमें मुनादी करा दो कि शहरभरके कोढ़ी लोग, शामके पाँच बजे, राजघाटपर जमा हों।'

पाँच बजे तक ५०० कोढ़ी जमा हो गये।

तुलसीदासजीने एक तुलसीपत्र उठाया और लाल चन्दनसे उसपर एक बार 'राम' लिखा और एक शिष्यसे कहा—'एक घड़ा गंगाजल लाओ, उसमें यह तुलसीपत्र पीसकर घोल दो। फिर वह जल सब कोढ़ियोंपर छिड़क दो।'

वैसा ही किया गया। एक राम नामसे ५०० कोढ़ी रोग मुक्त हो गये। देखकर कमालको बड़ा आश्चर्य हुआ।

घर जाकर कमालने कबीरसे तुलसीदासका चमत्कार बयान किया। कबीर साहबने कहा—'उन ब्राह्मणोंका राम नाम मिट्टी समान था। तुम्हारा राम नाम—लोहेके समान था। तुलसीका राम नाम—चाँदीके समान है।'

कमाल—क्या इससे भी अधिक राम नाममें शक्ति है?

कबीर—हाँ। राम नामकी शक्तिकी कोई सीमा नहीं है।

कमाल—मैं देखना चाहता हूँ—कुछ और।

कबीर—श्मशान घाटपर सूरदासजी ठहरे हुए हैं। तुम उनके पास जाकर कहना कि मुझे कबीरने आपके पास भेजा है। बस, वे सब बातें जान लेंगे।

कमालने श्मशान घाटकी डगर पकड़ी।

५

'आओ, कमाल! कहो कबीर साहब कुशलसे हैं?' सूरदासने पूछा।

'आपने कैसे जाना कि मैं कमाल हूँ और कबीर साहबने मुझे भेजा है?' कमालने प्रश्न किया।

'कुरुक्षेत्रके महाभारतका वर्णन, संजयने दिल्लीमें किया था, उसी शक्तिसे मैंने जाना कि तुम कमाल हो और कबीर साहबका एक संदेश लाये हो। उस संदेशसे भी मैं परिचित हो गया हूँ।'

'मैं आपके द्वारा राम नामकी महिमा देखने आया हूँ।'

'अच्छी बात है।'

'आपकी क्या आज्ञा है?'

'गंगाजीमें एक मुरदा बहता आ रहा है। उसे पकड़ लाओ।'

कमालने खड़े होकर देखा, वास्तवमें एक मुरदा बहता चला आ रहा था। कमालने उसे बाहर निकाला और सूरदासके पास घसीटकर डाल दिया।

'इसका सिर मेरी गोदमें रख दो। इसका एक कान मेरे हाथमें पकड़ा दो।' कमालने वैसा ही किया।

सूरदासजीने उस मुरदेके कानमें 'राम' कहना चाहा। केवल 'र' ही कह पाये थे कि मुरदा जी गया।

कमालको परम आश्चर्य हुआ। उन्होंने उस व्यक्तिसे कहा—

'तुम्हारा नाम?'

'रामकुमार।'

'तुम्हारी आयु?'

'चौबीस साल।'

'तुम कैसे मर गये थे?'

'जी, मैं अभी अभी गंगा किनारे एक जामुनके वृक्षपर चढ़ा जामुन खा रहा था।

डाली टूट गई और मैं धारामें गिर पड़ा। डूबकर मर गया था।'

'अपने घर जाओ और कभी पेड़पर मत चढ़ना।'

दोनोंके चरण छूकर वह युवक चला गया।

कमाल साहब कबीर साहबके पास गये। सूरदासका चमत्कार कह सुनाया।

कबीर—ब्राह्मणोंका राम नाम मिट्टी के समान, तुम्हारा राम नाम लोहेके समान, तुलसीका राम नाम चाँदीके समान और सूरदासका राम नाम—सोनेके समान है।

कमाल—क्या इससे भी अधिक नामकी महिमा है?

कबीर—हाँ। 'राम न सकइ नाम गुन गाई।'

कमाल—अब मुझे परिचय मिल गया—राम नामकी अनंत शक्तिका।

कबीर—वह रामका नाम था—जिससे प्रह्लादने विजय पाई। वह रामका ही नाम था जिससे मीराबाईका विष, अमृत हो गया।

कमाल—असंभवको संभव करनेवाला रामका नाम है।

कबीर—रामका नाम कामधेनु है। अपनी अपनी योग्यताके अनुसार, उस गायसे दूध प्राप्त किया जा सकता है।

कमाल—रामके नाममें विभिन्नता क्यों है?

कबीर—तुम किस रामका नाम लेते हो?

कमाल—क्या राम अनेक हैं?

कबीर—राम अनेक हैं। जिस रामके लक्ष्यसे नाम लिया जायगा, उसका फल उसी रूपकी शक्तिके अनुसार होगा।

कमाल—राम कितने हैं?

कबीर—रामके ६ रूप हैं। उनको खूब समझ लो। प्रत्येक रामकी शक्ति, अलग अलग है।

कमाल—रामके ६ रूप हैं? जरा बतलाइये तो।

कबीर—

(१) 'एक राम है—सबसे न्यारा।' निराकार-सच्चिदानन्द घन—परब्रह्म राम।

(२) 'एक रामने—जगत पसारा॥' योगमायाधीश राम।

(३) 'एक राम—अवतारी डोलइ।' अवतारी राम।

(४) 'एक राम—घट घटमें बोलइ॥' घट-घट-व्यापी राम।

(५) 'जासु कृपा सब भ्रम मिटि जाई।
सतगुरु स्वयं राम रघुराई॥' सद्गुरु—रूपी राम।

(६) शीतल, सुभग, सरल, सुखधामू।
बन्दिय बाल रूप, सोइ रामू॥'
प्रत्येक शिशु रूपी राम,

कमाल—इन सब राम रूपोंकी महिमा अलग अलग है?

कबीर—इन सब रामोंको मिलानेसे जो 'राम' बनता है; वही अनन्त शक्तिवाला 'राम नाम' है।

कमाल—इन छओं रामोंको सुख पहुँचाना ही भक्ति है?

कबीर—हाँ।

कमाल—भक्तकी दृष्टि क्या है, महाराज?

कबीर—मैं भक्त हूँ और मुझे छोड़ सब भगवान है।

कमाल—ज्ञानीकी दृष्टि क्या है?

कबीर—मुझ सहित सर्व भगवान है।

कमाल—भक्ति अच्छी या ज्ञान अच्छा?

कबीर—पहिले भक्ति धारण करके, ज्ञानकी प्राप्ति करनी चाहिये। भक्तिहीन ज्ञान, नमक बिना दालके समान है।

कमाल—मुझे अपनी भक्तिका बड़ा घमंड हो गया था।

कबीर—अब तो घमंड नष्ट हो चुका या नहीं?

कमाल—बिलकुल नष्ट हो चुका—पिताजी!

गोमाताकी रक्षाके लिये प्रभुसे प्रार्थना

भगवत्-प्रेमी और गो-भक्त सज्जन भलीभांति जानते हैं कि हमारे धर्मशास्त्रोंके कथनानुसार जिस स्थानपर गो-रक्त गिरता है; उस स्थानकी एक योजन परिधिमें नित्यकर्म, सन्ध्योपासनादि शुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं। शास्त्रोंका यह भी कहना है, कि "यतो गावस्ततो वयम्" अर्थात् जहां गाय ; वहां हम हैं। किन्तु अब प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है, कि जिस प्रकार भारतमें गोवंशकी संख्या घटती गई, उसी तरह इस वैदिक भूमिसे वेदादिक अध्ययन और ज्ञानका लोप होता गया। शायद ही कोई व्यक्ति वेदोंके सम्पूर्ण ज्ञानका भागी हो। आज भी गोवंशके साथ ही वेदादि शास्त्रोंका भी लोप होता जा रहा है। हमारे शास्त्र ही धर्म, संस्कृति और हिन्दुत्वके संस्कारोंकी रक्षाके लिये मूल हैं। यदि ये न रहेंगे, तो पता नहीं; हमारी क्या दशा होगी? मानवताका अस्तित्व कैसे रह सकेगा? १८५७ ई. से निरन्तर गोमाताके रक्तकी नदी बह रही है और १९५१ के अन्ततक ९४ वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी गोवधके अन्तकी कोई सम्भावना दिखाई नहीं देती। गत ९४ वर्षोंमें गो-वध बन्दीके प्रश्नको लेकर लड़ाइयां हुईं, प्राणाहुतियां दी गईं, सभायें की गईं; सरकारको पत्र, तार और कोटिशः हस्ताक्षरों-से युक्त प्रस्ताव प्रेषित किये गये; आन्दोलन हुए; सत्याग्रह करने पड़े, नेताओंने घोषणाएँ कीं; विधान-सभामें कानून उपस्थित हुए; आज स्वराज्य-प्राप्तिके पांच वर्ष बीत जानेपर भी गोवधमें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं हुआ। पहलेके समान अब भी ३० हजार गायोंके गलेपर प्रतिदिन छुरी चलाई जाती है और तदनुसार प्रति मिनट २०-२२ गायें मौतके घाट उतार दी जाती हैं।

वैदिक भूमि भारतमें, कर्म-भूमि भारतमें और विश्वके आध्यात्मिक गुरु भारतमें—जिसे भगवान्ने भी अपने अवतारकी लीला-भूमि बनाया, जहाँके वेदादिका ज्ञान प्राप्तकर विश्वके महापुरुष चतुर्दिक् यशोव्यापी बने, उन्हीं वेदोंकी माता भारतभूमि आज गोवधके कलंकसे कलुषित की जा रही है—यह करुणा-मूर्ति इस भयंकर पापसे कुण्ठित होती जा रही है। हमारा पतन किस सीमातक पहुँच गया है। हमारे वेद, उपनिषद्, पुराण, स्मृति, महाभारतादि धर्म और इतिहास ग्रन्थोंके कथनानुसार जिस गोमाता के अंग-प्रत्यंगमें त्रिविध देवताओंका निवास है, सभी शास्त्र-देव-ऋषिगण जिस गोमाताका स्तवन करते नहीं थकते—जिसको हम परम आराध्या मानकर—माता मानकर-भूदेवी भगवती मानते हैं—जिसकी नित्य पूजा करते हैं; उसी हमारी पूजनीया गोमाताका आज स्वतन्त्र भारतमें भी करोड़ोंकी संख्यामें वध किया जा रहा है। गो हमारी माता है। यदि हमारी माता-बहिन-पुत्री, पिता-भाई-पुत्र या हमारे शरीरमें कोई विकार हो जाय अथवा हमपर किसी प्रकारका आक्रमण हो, तो क्या हम इन स्थितियोंकी उसी तरह अवहेलना कर सकते हैं, जिस तरह आज गोमाताकी कर रहे हैं? माता-पितादिके दुःखोंको भी इसी प्रकार दूरसे देखना चाहिये; अन्यथा जब हम अपने परिजनोंकी सेवाके लिये तन-मन-धनका कोष लुटाने के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं; तब गोमाताकी ओरसे जान-बूझकर मुँह फिराये क्यों बैठे हैं? आज श्रद्धालु जन भी वधके लिये गोको कसाईके घर जाते देखकर या गोवधकी बात सुनकर आंख मींच लेंगे; किन्तु दूसरे ही क्षण अपने खाने-कमाने और आमोद-

प्रमोदमें लग जायेंगे । अपने राग-रंगमें मस्त होकर भूल जायंगे, कि गोमाताके गले पर छुरी चल रही है ।

गत ९४ वर्षोंमें हमने गोवध-बन्दीके अनेक उपाय किये; परन्तु कुछ फल नहीं हुआ । जिस भारतमें एक व्यक्तिके घरमें ९ लाख गायें रहती थीं उसे नन्द कहा जाता था; १८ लाख गायोंके अभिभावकको उपनन्द या वृषभानु कहा जाता था; उसी भारतसे आज गोवंशका निरन्तर लोप होता जा रहा है । पहलेकी बात जाने दीजिये; सन् १९३० ई० में १९,७८,३६,२३६ गोजातीय पशु भारतमें थे । सन् १९४० ई० में यह संख्या घटकर १३,७६,५०,७८० रह गई । १९५० ई० की सरकारी रिपोर्ट नहीं मिली; किन्तु कहा जाता है कि उसके अनुसार १० करोड़ गायें हैं । वह संख्या अधिक बतलाई गई है । अनुमानतः ९-७ करोड़से अधिक गायें न होंगी । अब आगामी १९६० ई० तक यदि गोवध इसी प्रकार निरन्तर रूपसे जारी रहा, तो गोवंशका सर्वथा लोप हो जायगा और हम लोग सम्भवतः चित्रोंमें या नुमाइशोंमें ही गोमाताके दर्शन पा सकेंगे । गत ९४ वर्षके सतत गोवधने आज हमें इस दुर्दशाको पहुँचा दिया है । हमारे सभी काम मानवताहीन दानवोंके-से हो रहे हैं । गो-वंशके लोपके साथ हमारी मानवता भी 'यतो गावस्ततो वयम्' के अनुसार लुप्त हो जायगी । हमारे बचनेका अब एक ही मार्ग है, जो हमने गत ९४ वर्षोंमें नहीं किया । हमारे महर्षिगण ऐसे महान् पतनके समय जो उपाय किया करते थे, उसे ही जब हम अपनायेंगे तभी प्रभु हमारी गोमाताकी रक्षा करेंगे—इस कामके लिये अवश्य अवतरित होंगे । वह उपाय यह है । भगवान्की प्रतिज्ञा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

किन्तु इस प्रतिज्ञाके साथ ही उनका यह नियम भी है, कि जब मुझे कोई पुकारता है; तभी मैं आता हूँ । जब-जब भारतपर आपत्ति आई, अधर्म बढ़ा; हमारे ऋषि-महर्षि-महात्माओंने भगवद्भक्त जनताको साथ लेकर व्यक्तिगत और सामूहिक प्रार्थनाएँ कीं; तब-तब प्रभुने अवतरित होकर गोब्राह्मणकी रक्षा की । अतः अब हमें अन्य आन्दोलनोंकी आशामें न बैठकर 'निर्बलके बल राम' को पुकारना चाहिये । हमें प्रतिक्षण गोमाताके दुःखोंका स्मरण रखनेके लिये निम्न व्रत धारण करना चाहिये—

"मैं आजसे व्रत लेता हूँ, कि रातको सोते समय, प्रातःकाल उठते समय आंखें खुलते ही अपने इष्टसे प्रार्थना करूंगा, कि हे प्रभो ! गोमाताके वधको सर्वथा बन्द करने, गोमाताके दुःख-निवारण करने और गोमाताको सम्पूर्ण सुखी बनानेके लिये आप शीघ्रातिशीघ्र अवतरित हों; भारतमें पधारें । त्राहिमाम् । रक्षा करें ।" पूर्वोक्त प्रार्थना नित्य करनेका व्रत ले लें और भूल या प्रमादसे प्रार्थना छूट जाय तो मासान्त में पूर्णिमाके दिन अपनेको धिक्कार दें और यथासम्भव इष्ट नामका जप करें तथा प्रायश्चित्तस्वरूप शारीरिक स्थितिके अनुसार एक समय या दोनों समयके भोजनका परित्यागकर उपवास करें । शेष अन्न गोमाताको भोजन करा दें; यदि गो न मिले तो अन्न या अन्नका मूल्य गोशालामें गोको घास डलवानेमें खर्च करें । एक दिन प्रार्थनामें विघ्न हो तो दूसरे ही दिन पुनः आरम्भ कर दें । उपर्युक्त प्रार्थनाके विधानमें न तो समयका खर्च है और न धनका । कृपया यह व्रत करें । प्रभुके शीघ्रातिशीघ्र बुलानेमें सहायक हों ।

—गोसेवा-मण्डल, कलकत्ता

नोट—यदि सम्भव हो, तो प्रत्येक गांव और शहरमें गो-सेवा-मण्डल स्थापित किये जायँ और मण्डल यदि उचित समझे तो प्रतिमास संकीर्तन करते हुए गोमाताको फूल-मालाओंसे सुसज्जितकर जुलूस निकाले और सार्वजनिक स्थानमें गो-सम्बन्धी भाषणादि होकर सामूहिक प्रार्थनाएँ की जायँ ।



विनयपत्रिका में आध्यात्मिक विचार

लेखक—श्रीराजेश्वरप्रसादजी चतुर्वेदी एम० ए०, बी० एससी०, साहित्यरत्न

विनय पत्रिका में अध्यात्म सम्बन्धी अनेक पद भरे हुए हैं, इन सबका फल गोस्वामीजीने मानो पद ११६ में इस प्रकार कह दिया है :—

माधव, असि तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं,
जब लगि करहु नदाया ॥ १ ॥

× × ×

ब्रह्म पियूष मधुर शीतल जो पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृग जल-रुप-विषय कारन निसि वासर धावै।३।

× × ×

ग्यान भक्ति साधन अनेक सब सत्य झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरि कृपा मिटै भ्रम यह भरोस मन माहीं ५

अर्थात् हे माधव! तुम्हारी यह माया ऐसी दुस्तर है कि कितना ही उपाय करके पच मरो, पर जब तक तुम दया नहीं करते तबतक इससे पार पा जाना असम्भव है। सारांश यह है कि भगवत्कृपा ही परम साधन है और वह सब जीवों पर है ही, केवल उस पर भरोसा या परम विश्वास करना चाहिए।

अध्यात्म सम्बन्धी अन्य मुख्य पद ये हैं—८१, ८८, ८९, १०२, १११, ११४, १२०, १२१, १२२, १२३, १२९, १७०, १८६ तथा २४५।

इस प्रकार क्रमशः से स्पष्ट है कि संसार दुःखमय है। इस दुःख का कारण हमारा भ्रम ही है। भ्रम के नाश के लिए संसार त्याग या कर्म-संन्यास नितान्त आवश्यक नहीं है। यदि हमारा मन ही समस्त विकारों को छोड़कर अपने सहज स्वरूपका ज्ञान प्राप्त कर ले तो हमारे भ्रमका स्वतः नाश हो जावे और यही संसार सुखमय प्रतीत होने लगे।

अपने सहज स्वरूप का ज्ञान तो सरल नहीं है, क्योंकि हमारा मन विभिन्न कामों में आसक्त रहने के कारण दिनों दिन विकार ग्रस्त होता जाता है। फलतः इसकी शुद्धि और भ्रमका नाश हरि-कृपा द्वारा ही सम्भव है, अन्यथा नहीं। इसका एक विशेष कारण है। जिसकी प्रेरणासे माया ने इस जीवको आच्छादित कर रखा है, उसीकी आज्ञा होने पर वह इसे छोड़ सकती है। यह सत्य है कि श्रुतियों और पुराणों आदिमें इस भ्रम नाशके अन्य उपायों का वर्णन है, परन्तु कलिकालके आतङ्कके कारण वे सब निर्बल पड़े गए हैं। ऐसी दशा में केवल एक उपाय शेष रह जाता है। वह है रामके चरणों में अनुरक्ति। विना इस प्रेमामृत अलौकिक जल के हमारे जन्मोंका मल दूर नहीं हो सकता। द्वैत भावना का सर्वथा त्याग करना ही पड़ेगा, देखें पद संख्या ९८, १६४, २०४, २१४, २१५।

भगवान रामके सम्पूर्ण कृत्यों का अनुशीलन करने के पश्चात् एक विशेषता हमें सामान्य रूपसे सर्वत्र मिलती है—वह है उनका शील स्वभाव; प्रारम्भसे अन्त तक उनका प्रत्येक कार्य शीलसे ओत-प्रोत है। इसलिए यदि हम शीलको ध्यानमें रखकर भगवान रामकी गुण-गाथाका मनन करेंगे तो निःसन्देह हमारे चित्तमें स्वतः भगवान रामके प्रति अनुराग उत्पन्न होगा और इसी अनुरागकी

वृद्धि स्वरूप हमें अनायास ही उनके प्रेम का प्रसाद भी प्राप्त हो जायगा। गोस्वामीजी तो केवल उनके द्वार पर पड़ा रहनामात्र चाहते है। पद संख्या १, ५, १००, १४४, १८४, २१९, २२६, २३२।

.यथा—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो:—पद संख्या २२६।

किंवा—

'सो कीजै जेहि भाँति छाँड़ि छल द्वार परो गुन गावौं।

—पद संख्या २३२

आगे चल कर एक ही स्थान पर इन्होंने राम भक्तके तीन प्रमुख साधनों—शीलस्वभाव, चिन्तन—नाम-स्मरण और आर्त्त-नवेदन का महत्व एक ही पद में कह दिया है (पद संख्या १३५ एवं १९३)

हे जीव, भगवान अवश्य ही तेरा उद्धार कर देंगे। क्यों कि—

तुलसी तोसों राम सों कछु न जान नई पहिचान

—पद संख्या १९३

राम भक्तिका दूसरा मार्ग है सत्संग, परन्तु वह भी हरि-कृपा द्वारा ही सम्भव है।

बिनु सत्संग भक्ति नहिं होई, ते तब मिलै द्रवै जब सोई

—इत्यादि।

—पद संख्या १३६

सत्संगका दूसरा पक्ष है असाधुसे असहयोग—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषन बन्धु, भरत महतारी।
× × ×
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥

—पद संख्या १७४

आगे पद २०५ में ज्ञान मार्गके अंगोंका भक्तिके साथ समन्वय किया गया है, इसके अतिरिक्त गोस्वामीजीने यथा स्थान अपने लिये निर्मित आदेशोंका निर्देश भी कर दिया है। गोस्वामीजीके मतानुसार भक्तिका पथ अनुकरणीय है, क्योंकि इसके द्वारा सहज ही अविचल हरि-भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। ऐसे विचारशील और निरन्तर परहितनिरत व्यक्तिके लिए तो संसारकी समस्त अनिष्टकारी शक्तियाँ निश्चय ही अपने आप आनन्ददायिनी सिद्ध होंगी, उन्हीं के शब्दोंमें पुनः देखिये।

अन विचार रमणीय सदा संसार भयंकर भारी।
सक सन्तोष दया विवेक ते व्यवहारी सुखकारी॥

वड़ी है राम नाम की ओट।
शरण गये प्रभु काटि देत हैं करत कृपा के कोट॥
वैठत सभी सभा हरिजू क कौन बड़ो को छोट।
सूरदास पारस के परसे मिटत लोह के खोट॥

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभगवन्नाम-जप कराइये

श्री वृन्दावनमें लगभग ८५० गरीब माइयाँ प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल ६ घण्टे परम मंगलमय श्रीभगवन्नामका जप एवं संकीर्तन करती हैं इन्हें आश्रम द्वारा अन्न, वस्त्र और पैसोंकी सहायता दी जाती है। एक माई प्रतिदिन एक लाख श्रीभगवन्नामजप कर सकती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

कलियुगमें संसार-सागरसे पार उतरनेका एकमात्र सुगम उपाय श्री भगवन्नाम-जप करना ही शास्त्रोंमें वर्णित है। सभी महानुभावोंको स्वयं अधिक-से-अधिक भगवन्नाम-जप करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

जो महानुभाव अपनी ओरसे गरीब माइयों द्वारा श्रीभगवन्नामजप कराना चाहें, वे कृपाकर हमें सूचित करें। भजनाश्रममें लगभग ८५० गरीब माइयाँ आती हैं, जिनमें-से इस समय लगभग ५०० माइयाँ दान दाताओंकी ओरसे भजन कर रही हैं। बाकी माइयोंसे भजन करानेके लिये हम सभी प्रेमी सज्जनोंसे निवेदन करते हैं कि आपअपनी-अपनी श्रद्धा और प्रेम के अनुसार जितनी माइयों द्वारा जितने मासके लिये भजन कराना चाहें, अवश्य करावें एवं अपने इष्ट-मित्रोंको भी भजन करानेके लिये प्रोत्साहित करें।

एक माईको नित्य प्रति साढ़े चार आनेकी सहायता दी जाती है। इस हिसाबसे एक मासका ८।≋) और एक वर्षका १०१।)खर्च लगता है। पत्र-व्यवहार एवं मनीआर्डर भेजनेका पता :—

मन्त्री—श्रीभगवान-भजनाश्रम,
पोस्ट—वृन्दावन

श्रीभगवन्नामजपसे जन्मकुण्डलीकी शुद्धि

(लेखकः—श्रीअवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव)

यों तो प्रसिद्ध ही है कि मन्त्रजपसे ग्रह सौम्य बनते हैं परन्तु प्रत्येक ग्रहके मन्त्र, दान, हवन आदि पृथक् पृथक् एवं कष्टसाध्य हैं। एक श्रीरामनाम ही ऐसा है जो सभी ग्रहोंको शान्त कर अनायास सुरदुर्लभ पद प्रदान करनेमें समर्थ है। एक बार श्रीरामनामका उच्चारण ही त्रिताप शमनकर परम मंगलस्वरूप बना देता है परन्तु जो इतने विश्वासधनको प्राप्त नहीं कर सके हैं उनके लिये उनकी साधननिष्ठाके अनुसार द्वादश कोटि जप तो अवश्य करना ही चाहिये। इस साधननिष्ठामें जप-संख्या और विधिपालन पूर्ण आवश्यक है। जो नामैकशरण हैं उन्हें न जपसंख्या पूर्ण करनेका बन्धन है और न विधिनिर्वाह का। वे तो नामनिष्ठ, नामरूप, प्रतिदिन प्रतिश्वास नाम जपकर अपने जीवनको धन्य बनाते हुए अखिल विश्वमें मंगलका सन्चार करते रहते हैं परन्तु जो ऐहिक सुखोंका त्याग नहीं कर सकते हैं तथा दुःखनिवृत्तिके लिये लालायित रहते हैं उनको तो पूर्ण विश्वास रखकर धैर्यपूर्वक द्वादश कोटि संख्यात्मक श्रीरामनाम-जप अवश्यमेव कर लेना चाहिये। ऐसा करनेसे सन्तमतानुसार जन्मकुण्डलीके द्वादशस्थान विशुद्ध हो जाते हैं। कुछ नाम-योगियोंके अनुभव पाठकोंके हितार्थ यहाँ प्रकट किये जाते हैं।

दक्षिण महाराष्ट्रमें एक 'वामनराय' नामके प्रसिद्ध नामजापक हाल ही में हुए हैं उनकी 'डायरी' में ये अनुभव लिखे हैं—

१—एक करोड़ जप होते ही कई वर्षोंका मुकदमा जीत गये, मनका भारी दुःख नष्ट हो गया, यह 'तनुस्थान' शुद्धि है।

२—दो करोड़ जप पूर्ण होते ही सभी ऋण, (कर्जा) सध गया, आर्थिक संकोच दूर हो गया, यह 'धनस्थान' शुद्धि है।

३—तीन करोड़ जप पूर्ण होते ही भाइयोंमें परस्पर अनमेल था वह मिट गया फिर कभी झगड़ा न हुआ, यह "भ्रातृस्थान' एवं पराक्रम स्थान" शुद्धि है।

४—चार करोड़ जप होते ही २२ वर्षसे एक जमीनका मुकदमा चलता था जिसको १६ बार आपके विरुद्ध कोर्टने फैसला किया था अनायास बिना साक्षी के उसी कोर्टने आपके हितमें निर्णय कर दिया। जमीन आपको सदाके लिये निर्विघ्न मिल गई, यह 'सुख-सुहृद-मातृस्थान' की शुद्धि है।

५—पांच करोड़ जप होते ही प्रतिकूल रहनेवाला पुत्र स्वतः अनुकूल हो गया और ब्रह्मविद्याका बोध भी प्राप्त हुआ, यह 'पुत्र और विद्यास्थान' की शुद्धिका परिचय है।

६—छः करोड़ जप-संख्या पूर्ण होते ही जनसमाजमें आपसे मतभेद रखनेवाले सभी विरोधी आपके चरणोंमें गिर गये, यह 'शत्रुस्थान' की शुद्धि है।

७—सात करोड़ जप पूर्ण होते ही अर्थ कष्टसे सदा रूठी रहनेवाली धर्मपत्नी बड़ा प्यार करने लगी और आजीवन अनुकूल रही। यह 'जायास्थान' की शुद्धि है।

८—आठ करोड़ जप पूर्ण होते ही आपके कण्ठमें एक नारयल जैसी गाँठ हो गयी थी जो असह्य कष्ट देती थी बिना दवा दारू चीर फाड़के स्वयं गलकर नष्ट हो गई, यह 'मृत्युस्थान' की शुद्धि है।

९—नव करोड़ जप पूर्ण होते ही श्रीमारुति-मन्दिरमें

श्रीरामजीके प्रत्यक्ष देवदुर्लभ दर्शन प्राप्त हो गये। यह 'धर्मस्थान' शुद्धिका परिचय है।

१०—दश करोड़ नाम पूर्ण होते होते ऊँचे ऊँचे महा पुरुषोंका समागम प्राप्त होने लगा, श्री ऊडली आचार्य" आपके घर पधारे। यह 'धर्म स्थान शुद्धि है।

११—ग्यारह करोड़ जप होते ही खेतकी जमीन फल-द्रूप हो गयी थोड़ी जमीनमें ही पूरी उपज होने लगी। यह 'लाभस्थान' शुद्धि है।

१२—बारह कोटि जप होते होते स्वयं प्रभु श्रीरामजीने आज्ञा प्रदान की कि तुम्हारा भजन पूर्ण हुआ तुम अब जीवोंको नामके सम्मुख करो लोकमें नामका प्रचार कर जगत्‌का कल्याण करो।

इस आज्ञाको प्राप्त कर आपने नाम प्रचार प्रारंभ किया और हजारों लाखों नरनारियोंको विमुखतासे मुक्त कर श्रीनामपरायण बनाया।

ऐसे ही श्री काशीमें रोगग्रस्त होकर देहपात करने आये हुए 'श्री विठोबा नरगुन्दर' को प्रसिद्ध नामयोगी श्री रामचन्द्र कामतने 'सीताराम' इन चार अक्षरवाले नामका जप करनेका उपदेश दिया था, मृत्यु निकट जानकर उन्होंने जप प्रारंभ कर दिया।

उन्होंने थोड़े दिन जप किया कि रोग नष्ट हो गया। 'तनु स्थान' शुद्ध हो गया। फिर अच्छी जगह नौकरी मिल गई 'धन स्थान' शुद्ध हो गया। ऐसे ही आनन्द होता गया और सात करोड़ जप पूर्ण होते ही एक बड़े श्रीमान्‌की कन्याका विवाह जो दूसरेसे ठीक हो गया था, किसी खास कारणसे छुड़ाकर इनके साथ कर दिया गया और बहुत धन दान दहेजमें दिया इस प्रकार 'लाभ स्थान, जाया स्थान' आदि शुद्ध हो गये। नव करोड़ जप पूर्ण होते होते श्रीविश्वनाथजी और श्रीरघुनाथजी महाराजके साक्षात् दर्शन प्राप्त हुए।

ऐसे-ऐसे सैकड़ों दृष्टान्त संसारमें होते ही रहते हैं कहाँतक संचय किया जाय। श्रीनाम महाराजकी अपार महिमा है। यह तो सांसारिक क्षुद्र सुख हैं, प्रभुके प्यारे तो ऐसा परमानन्द पाते हैं, जिसकी मस्तीमें तन-धन-स्त्री, पुत्र राज्य तो क्या स्वर्गादिक सुखको भी ठुकरा देते हैं और अहर्निश श्रीनाम माधुरी का रसास्वादन कर कृतार्थ होते हैं। साकेतनायक सर्वेश्वर प्रभु श्री सीतारामजी अपने भक्तजनोंको निज नाम-रूप लीला-धामका दिव्य सुख प्रदान कर अपने सानिध्यमें सदैव बसावें, यही प्रार्थना है।

सकामी भक्तोंको उचित है कि अन्याश्रय त्यागकर श्रीभगवन्नामका ही एकमात्र अवलम्बन ग्रहण कर लोक परलोकमें परम कल्याण प्राप्त करें।

रे मन कृष्ण नाम कहि लीजै।
गुरु के बचन अटल करि मानहु, साधु समागम कीजै॥
पढ़िए गुनिए भक्ति भागवत, और कहा कथि कीजै।
कृष्ण नाम बिनु जनम बादि ही, वृथा जिवन कहा कीजै॥
कृष्ण नाम रस बह्यो जात है, तृषावन्त ह्वै पीजै।
'सूरदास' हरि सरन ताकिए, जनम सफल करि लीजै॥

"अपने वश करि राखेउ रामू"

लेखक—प० श्रीराधिकादासजी

आपके लिये जो पठनीय निबन्ध लेख प्रस्तुत किया जाता है, उसको प्रथमतः ध्यानसे पढ़कर विचार करें कि इसमें क्या क्या बात कही गई है। द्वितीयतः अपनेको सरल सुलभ किंवा सहजमें हो सकनेवाला साधन-उपाय जान पड़े, उसको बिना विलम्ब श्रीरामकृष्णस्मरणपुरःसर प्रारम्भकर न्यूनातिन्यून १-२ मासपर्यन्त करता रहे, आठ दस दिनमें ही न छोड़ बैठे। १-२ मास की अवधिमें यदि कोई लाभ विशेष न जान पड़े तो किसी सदाचारी सन्त महात्माकी सेवामें उपस्थित हो अपनी परिस्थिति साधन-क्रियादिका वर्णन करना चाहिये। वैष्णव सन्त महानुभावोंकी कृपा सर्वतः कल्याणकारिणी ही होती है।

अवश्य विचारणीय एवं जीवमात्रका किंवा अपना कर्तव्य क्या है? स्वकीय कर्तव्य ज्ञान हो जाने पर निज कल्याण सम्पादनमें सहजही प्रवृत्ति हो सकती है। श्रीमदाचार्य शङ्करभगवान् सदुपदेश देते हुए कहते हैं—

कोऽहं कस्त्वं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः।
इति परिभावय सर्वमसारं सर्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्॥

अर्थात् अहं कः? मैं कौन हूँ, तुम कौन और हम आप सर्व जीव मात्र कहाँसे आये हैं? हमारे माता पिता कौन हैं? सम्यक् विचार करने पर सारा प्रपञ्च असार समझ पड़ेगा। अतः जगत् जालको स्वप्नवत् और सारहीन जानकर मनसे अखिल प्रपञ्चको त्याग दे और भजन करे। कहा है—

'भज गोविन्दं मूढमते।' 'सब तजि हरि भज।'

हम और आप जीव मात्र परब्रह्म परमात्मस्वरूप श्रीकृष्णके स्वतः सिद्ध नित्यदास हैं। वेदवाक्य डंकेकी चोट इस बातको प्रमाणित करते हैं—

'दासभूताः स्वतः सर्वे ह्यात्मानः परमात्मनः।

सर्वेऽखिला आत्मानो जीवात्मानः परमात्मनः—परब्रह्मणः श्रीकृष्णगोपालस्य स्वतः स्वयंसिद्धाः स्वाभाविकतया दासभूताः दासरूपाः श्रीकृष्णसेवका एव सन्तीति फलितार्थः।

अस्तु, सेवकका कर्त्तव्य क्या है? स्वामीकी सेवा करना, और यहाँ तो श्रीकृष्ण परमात्मा केवल मात्र स्वामी ही नहीं, माता पिता भाई मित्र हमारे सर्वस्व सब कुछ वही हैं! अतः संसार सम्बन्धको तोड़ सबकी ममता श्रीकृष्णके अत्यन्त अभयप्रद कोमल मृदुल युगल श्रीचरणोंमें केन्द्रित—एकत्र कर अपने चित्त बुद्धि तथा मन मधुकर को भी (अहङ्कार सहित निज सर्वस्वको) उन्हीं अमल पदपङ्कजद्वयमें न्योछावर कर ऐसा तदाकार तल्लीन हो जाय कि इस असार-असत् संसारका सदा सर्वदाके लिए विस्मरण हो जाय, अविद्या अज्ञान नष्ट हो एवं व्रजकुमार गोपीवल्लभ श्रीकृष्णका अति पावन वरद श्रीहस्त प्रकट होकर आपके मस्तकपर महा मधुरिमा शोभा सुषमाका अनन्तकालपर्यन्त अटूट विस्तार करता रहे। निश्चय ही श्रीहरि कृष्ण की इस अनुपम निर्हेतुक कृपा से आप नित्य तृप्ति, शीतलता और परमानन्द का अनुभव करते हुए अपने जीवनजन्मको कृतार्थ और सफल समझेंगे।

अब, इस देवदुर्लभ अनुपम स्थिति की प्राप्तिका उपाय बतलाया जाता है।

माया मोहावर्तमें निमग्न अनादि अविद्याग्रस्त जीवके लिये उचित है कि वह अपने संसारकी ओर बहते हुए प्रेम प्रवाहको मोड़कर श्रीकृष्णाभिमुख करके श्रीरामकृष्णके नित्यकल्याणकारी अतिशय मधुर-पावन नामोंका सप्रेम स्मरण करे—यही उपाय है। श्रीरामकृष्ण नाम सङ्कीर्तन इसी क्षण प्रारम्भ कर दे। स्मरण नित्य करता रहे। अकारण कृपा करनेवाले श्रीहरि आपको अवश्य अपना निज जन बनाकर अवश्य कृतकृत्य कर देंगे। इसमें लवमात्र सन्देहका स्थान नहीं। तभी तो भक्तशिरोमणि गोस्वामी श्री तुलसीदासजी महाराजने महामधुर सुन्दर वाणीमें श्रीरामचरितमानसमें सप्रेम सादर गान किया है:—

"सुमिरि पवनसुत पावन नामू।
अपने वश करि राखेउ रामू॥"
जय राम श्रीराम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम॥
जय राधावल्लभ राधेश्याम।
जय गोपीवल्लभ श्यामा-श्याम॥

नाम-स्मरणकी महिमा

कमलनयन वासुदेव विष्णो
धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे ।
भव शरणमितीरयन्ति ये वै
त्यज भट दूरतरेण तानपापान् ॥

(विष्णुपुराण ३।७।३३)

'यमराज अपने दूतसे कह रहे हैं—'हे दूत ! जो मनुष्य हे कमलनयन ! हे वासुदेव ! हे विष्णो ! हे धरणिधर ! हे अच्युत ! हे शङ्खचक्रपाणे ! एकमात्र आप ही हमारे आश्रय हों'—इस प्रकार पुकार रहे हों—उन पापशून्य मनुष्योंको तुम दूरसे ही छोड़ देना ।'

ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

(विष्णु० ६।२।१७)

'सत्ययुगमें ध्यान करनेसे, त्रेतायुगमें यज्ञोंके द्वारा यजन करनेसे और द्वापरयुगमें पूजा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही कलियुगमें भगवान् केशवका नाम-संकीर्तन करनेसे प्राप्त हो जाता है ।'

अत्यन्तदुष्टस्य कलेरयमेको महान्गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत् ॥

(विष्णु० ६।२।३९)

'इस अत्यन्त दुष्ट कलियुगका यही एक महान गुण है कि इस युगमें भगवान श्रीकृष्णका नाम-संकीर्तन करनेसे ही मनुष्य सारे बन्धनोंसे छूटकर परमपदको प्राप्त हो जाता है ।'

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव ॥
यन्नामकीर्तनं भक्त्या विलायनमनुत्तमम् ।
मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः ॥
कलिकल्मषमत्युग्रं नरकार्तिप्रदं नृणाम् ।
प्रयाति विलयं सद्यः सकृद्यत्र च संस्मृते ॥

(विष्णु० ६।८।१९,२०,२१)

'जिस प्रकार सिंहसे डरे हुए गीदड़ोंसे शीघ्र छुटकारा मिल जाता है, इसी प्रकार मनुष्य उन परमेश्वरके नामका विवश होकर भी कीर्तन करनेसे तुरत सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है । हे मैत्रेय ! जिस तरह आग सभी धातुओंका विलयन कर देती है, उसी तरह भक्तिपूर्वक किया हुआ उनके नामोंका कीर्तन सम्पूर्ण पापोंका विलयन करनेके लिये सर्वोत्तम साधन है तथा जहाँ एक बार भी भगवान्का स्मरण करने पर मनुष्योंके लिये नरक-जैसा दुःखदायक अत्यन्त उग्र कलि-कल्मष तत्काल नष्ट हो जाता है ।'

यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति
नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो
ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः ।
मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽ-
मलधियां पुंसां ददात्यव्ययः
किं चित्रं यदघं प्रयाति
विलयं तत्राच्युते कीर्तिते ॥

(विष्णु० ६।८।५७)

'जिन भगवान्में बुद्धि लगानेवाला कभी नरकमें नहीं पड़ता और जिनके चिन्तनमें स्वर्ग भी विघ्नस्वरूप है तथा जिनमें अपना मन लगा दिये जानेपर ब्रह्मलोक भी अति तुच्छ हो जाता है, एवं चित्तमें स्थित होने पर जो अविनाशी परमेश्वर निर्मल बुद्धि मनुष्योंको मुक्ति प्रदान कर देते हैं, उन भगवान् अच्युतका नाम-कीर्तन करनेपर पापोंका जो विलीन (नष्ट) हो जाना है, यह आश्चर्य की क्या बात है ?'

दिव्यलीलारसामृतम्

लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा

भगवल्लीलारसामृतास्वादनादि भगवद्धर्म शब्द वाच्य क्रियाएँ ही एकमात्र परम निर्बाध, निष्कंटक तथा प्रतिक्षण सुखद रमणीय, एवं नवीनतर हैं। भागवत, श्रीरामचरितमानस आदि दिव्य ग्रन्थोंमें सर्वत्र भगवद्धर्मका ही वर्णन हुआ है। भगवान्की स्मृतिसे जिस आत्मानन्दकी प्राप्ति होती है वह अनिर्वचनीय है। परम आनन्दनिधानकी स्मृतिमात्रसे विलक्षण आनन्दकी उपलब्धि स्वाभाविक ही है। अतएव परम रसज्ञ भावुकोंने 'श्रवणन्हि और कथा नहिं सुनिहौं रसना और न गइहौं' 'तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेत यत आत्मपातः'की हृदयहारी प्रतिज्ञा की थी और मनोहर तथा परम कल्याणकारी उपदेश दिया था। एक बार भी 'महत्तमान्तर्हृदयान् मुखच्युत' भगवल्लीलामृत जिसके कानोंके मार्गसे हृदयस्थल तक पहुँच गया और जिसे इसकी चोट लग गयी वह 'जिन मधुकर अम्बुज रस चाख्यो क्यों करील फल खावै' की तरह संसार के अन्य तुच्छ आनन्दोंकी ओर कभी भी दृष्टिपात नहीं कर सकता।

यद्यपि समस्त प्राणीमात्र किसी दिव्य आनन्दकी ही खोजमें लगे हैं, पर वह आनन्द संसारिकोंको कहाँ मिलता है? आनन्द-रहस्यके तत्वोंसे पूर्ण अभिज्ञ सहृदय जनोंका कथन है कि परम, दिव्य, अनुपम, विशुद्ध, निखिलहेयप्रत्यनीक, निर्मलानन्दकी प्राप्ति महत्तमान्तर्हृदयमुखच्युत भगवद्यशः सुधापानमें ही है। यही कारण है कि सनकादिक जैसे श्रेष्ठ महर्षिवर्य सहृदयतम, योगीश्वरेश्वरगण भी समाधि तकका परित्याग कर भगवदीय यशःसुधाका पान करने लग जाते हैं—

सनकादिक नारदहिं सराहहिं।
यद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं॥
सुनि गुण गान समाधि बिसारी।
सादर सुनहिं परम अधिकारी॥
जीवन मुक्त महामुनि जेऊ।
हरि गुण सुनत अघात न तेऊ॥

स्वसुखनिभृतचेता, परमानन्दरसैकनिष्ठ, आत्माराम, पूर्णकाम, परमनिष्काम योगेश्वरोंके भी गुरु श्रीशुकदेवजीकी भी यही दशा हुई। उन्होंने स्वयं श्रीमुखसे ही कहा था कि 'राजन् परीक्षित! मेरी निष्ठा सहज आत्मानन्दमें थी और संसारके सभी भावसे दूर था किन्तु उत्तमश्लोक, अजित भगवान्की लीलाने मेरे अन्तःस्थलको जीत लिया, हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर लिया और इस दिव्य, लोकोत्तर आख्यानको, भागवत ग्रन्थको पढ़ने लगा—

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमश्लोकलीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥
प्रायेण मुनयो राजन् निवृत्ता विधिषेधतः।
नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः॥

श्रीसूतजीने भी यहां कहा था—

हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः॥
"स्वसुखनिभृतचेता तद्व्युदस्तान्यभावो-
प्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम्।" इत्यादि।

इस परम दिव्य हृदयहारी, आनन्दरससार, वस्तुतत्त्वको जाननेके कारण ही परम भागवतरत्न पृथुने भगवान्से वर मांगा था कि "प्रभो! मैं ऐसी कोई भी वस्तु नहीं चाहता

जहाँ आपके चरणकमलका स्वारस्य विद्यमान न हो। मैं तो नाथ! बस हजारों बार यही चाहता हूँ कि श्रेष्ठतम, सहृदयतम, पुरुषोंके मुखसे निकले अलौकिक हृदयोद्गार, कल्याणैकतान, समस्त वस्तुविलक्षण, आपकी कथासुधाको पान करनेके लिए मुझे १० हजार कान प्राप्त हो जायं, बस आप यही दे दें—

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्
न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो
विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः।

वस्तुतः जब प्राणीका हृदय नास्तिकोंके हृदय मुखच्युत, दुस्तर्ककलङ्कपङ्कोत्पन्न, कर्णकटु, मर्मभेदी हृदयविदारक प्राणोद्वेजक शब्दोंसे पीडित होता है, और उसे तीव्र श्वाश्रुषा उत्पन्न होती है तभी उसे इस दिव्यामृतकी रसानुभूति होती है—श्रीज्ञानीभक्तशिरोमणि साक्षात् भगवान्के प्रिय दास, सखा, वाहन, आसन और ध्वजा, श्रीगरुडदेवजीने कहा था—

जो अति आतप व्याकुल होई।
तरु छाया सुख जानै सोई॥
जो नहिं मोह होत अति मोही।
मिलतेउ नाथ कवन विधि तोहीं॥
सुनतेउ किमि हरि कथा सुहाई।
अति विचित्र जो मोहि सुनाई॥ इत्यादि।

और ठीक इसके विपरीत यह भी कहा जा सकता है कि जब तक प्राणी संसारकी भयानकता से परिचित नहीं, विश्वकी अन्य सभी वस्तुएँ, उनकी चर्चा उसे निस्सार, भयङ्कर तथा बीभत्स नहीं जान पड़ती; भगवल्लीलाश्रवण की अत्यन्त उत्कण्ठा, तीव्र उत्सुकता नहीं होती, वह उसके रसको परख नहीं सकता—

सुख सज्जनके मिलन को दुर्जन मिलै जनाय।
जानै ऊख मिठास को जब मुख नीम चबाय॥

श्रीगरुड़देवजीको ऐसी ही उत्कण्ठा जाग्रत हुई थी। तभी तो उन्होंने जब नारदजीसे अपनी शंका सुनायी तो उन्होंने कहा कि भैया ब्रह्माजीके पास जाओ, ब्रह्माजीने उन्हें शङ्करजीके पास भेजा। शङ्करजीने कहा कि गरुड़! तुम मुझे रास्तेमें मिले मैं तुम्हें कैसे समझाऊं। यह सन्देह, मोहजाल तो तब नष्ट होगा जब कुछ दिनों तक सत्संग करो—"जब बहुकाल करिय सत्संगा तब यह होइ मोह भ्रम भंगा।" इसपर उन्होंने उन्हें कागभुशुण्डिके पास भेजा और वे सभी जगह दौड़ते फिरे। अन्तमें जब उन्होंने भुशुण्डिसे भगवत्कथामृतका श्रवण किया तब सर्वाधिक प्रसन्न हुए। पर आज किसीको इस तरह अन्यत्र जानेकी बात कही जाय तो वह यही कहेगा कि हमारा प्रश्न ही ऐसा गूढ़ है कि इसका उत्तर ही इन्हें नहीं आता।

इसके अतिरिक्त लेशमात्र भी तमोगुण, रजोबाहुल्य एवं मौर्ख्य भी लीलासुधासमास्वादनमें प्रबल बाधक होते हैं—"प्रभुपद प्रीति न सामुझ नीकी। तिनहिं कथा सुनि लागिहैं फीकी॥" भगवच्चरणोंका द्वेष तो प्रबलतम बाधक है और तत्पादारविन्दमें अनन्यरति ठीक वैसा ही प्रबलतम साधक है—

राम उपासक जे जग माहीं।
एहि सम प्रिय तिन कहँ कछु नाहीं॥
ता कहं यह विशेष सुखदाई।
जाहि प्राण प्रिय श्री रघुराई॥

यह बिलकुल सत्य है कि मनुष्य जबतक ऐहिक आमुष्मिक प्रपञ्चोंसे विरक्त न हो तब तक उसे परम ध्येय, ज्ञेय, परमाराध्य, भगवान्की दिव्यातिदिव्य मधुरतापूर्ण लीलाका सुस्वादानुभव दुर्घट ही है। वस्तुतः बिना उत्कट वैराग्यके सत्तत्वका ज्ञान अथवा स्मृतिलाभ सम्भव ही नहीं।

अपरिग्रहस्थैर्ये पूर्वजन्मकथन्तासम्बोधः ।

इस योगसूत्रमें भगवान् पतञ्जलिने यही भाव व्यक्त किया है । इतना ही क्यों ? वेदान्तके प्रत्येक ग्रन्थमें 'वैराग्यादि साधनचतुष्टय'की आवश्यकता आरम्भमें ही प्रदर्शित की गयी है । साधक इन सब हेय अवगुणोंका परित्याग कर तथा वैराग्यादि सम्पादन कर ही भगवच्चरित्र का समाश्रयण करता है ।

जिस प्रकार भौतिक बल वृद्धि तथा शरीर रक्षाके लिए अन्न, जल, वायु आदि पञ्चभूतोंका सेवन होता है उसी प्रकार आत्मबलवृद्धिके लिए आत्मामें सर्वात्मा भगवान्‌का संयोग भी होना चाहिये । कथाकीर्तनश्रवणमें यही होता है । यही कारण है कि उस समय व्यक्ति बिना कुछ धनादि पाये ही दिव्यनिधि-सा प्राप्त कर लेता है । तभी तो गोपियाँ भगवत्कथामृतके वितरण करनेवाले सहृदयको "सर्वश्रेष्ठ दानी"की उपाधिसे विभूषित करती हैं—"भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥"

१. वेदोंने भी प्रभुको "य आत्मदा बलदा यस्य प्राणाः" कहकर स्मरण किया है ।

रामजी प्यारे—

ऐसा जन रामजी को भावै हो ।
कनक कामिनी परिहरै नहिं आप बधावै हो ॥ टेर ॥
सब ही तें निरवैरता काहू न दुखावै हो ।
शीतल वाणी बोल के अमृत बरसावै हो ॥ १ ॥
कैतो मुनी होय रहै कै हरि गुण गावै हो ।
भरम कथा संसार की सब दूर भगावै हो ॥ २ ॥
पाँचू इंद्री बस करै मन ही मन लावै हो ।
काम क्रोध मद लोभ को खिण खोद बगावै हो ॥ ३ ॥
चौथे पद को चीन्ह के वहाँ जाय समावै हो ।
सुंदर ऐसे साधुके ढिग काल न आवै हो ॥ ४ ॥

(सङ्कलित)

सुनहु सकल पुरजन मम बानी । कतहुँ न कछु ममता उर आनी ॥
सो सेवक प्रियतम मम सोई । मम अनुशासन मानइ जोई ॥

संत-वचनामृत

अपनो साखी आप तू, निजमन माहिं विचार।
नारायण जो खोट है, ताको तुरत निकार॥
अति कृपालु संतोष वृति, युगल चरण में प्रीत।
नारायण ते संतवर, कोमल वचन विनीत॥
जिनके पूरण भक्ति है, ते सबसों आधीन।
नारायण तज मान मद, ध्यान सलिल के मीन॥
नारायण हरिभक्ति की, प्रथम यही पहचान।
आप अमानी हो रहै, देत और को मान॥
नारायण होवै भले, जो कछु होवन हार।
हरिसों प्रीत लगायके, अब कहा सोच विचार॥
जो शिर साँटे हरि मिले, तो हरि लीजै दौर।
नारायण ऐसी न हो, ग्राहक आवै और॥
लगन लगन सबही कहैं, लगन कहावै सोय।
नारायण जा लगन में, तनमन दीजै खोय॥
नर संसारी लगन में, दुख सुख सहै करोर।
नारायण हरि प्रीत में, जो होवै सो थोर॥
नारायण हरि लगन में, यह पाँचो न सुहात।
विषय भोग निद्रा हँसी, जगत-प्रीत बहु बात॥
नारायण को ध्यान धर, पल पल नाम चितार।
सार एक हरिनाम है, जगत-विषय बिनसार॥
गोविन्द गुण गायो नहिं, जन्म अकारथ कीन।
कह नानक हरिभज मना, जेहि विधि जल को मीन॥
वृद्ध भयो सूझै नहीं, काल जो पहुँचो आन।
कह नानक नर बावरे, क्यों न भजै भगवान॥
जेहि सुमिरे गति पाइये, तेहि भज रे तू मीत।
कह नानक हरिभज मना, अवधि घटत है नीत॥

घट घट में हरिजू बसै, संतन कह्यो पुकार।
कह नानक तेहि भज मना, भवनिधि उतरहि पार॥
भय नाशन दुरमति हरन, गत भय हरि को नाम।
निशदिन जो नानक भजै, सफल होय तेहि काम॥
जिह्वा गुण गोविंद भजु, कर्ण सुनहु हरिनाम।
कह नानक सुनरे मना, परै न जम के धाम॥
जो प्राणी ममता तजै, लोभ मोह अहंकार।
कह नानक आपुन तरै, और न लेत उबार॥
प्राणी कछू न चेतही, मन माया के अन्ध।
कह नानक बिन हरि भजन, परत ताहि यम फन्द॥
साथ न चाले बिन भजन, विषया सकली छार।
हरि हर नाम कहो मना, नानक यह धन सार॥
मन माया में फँस रह्यो, बिसर्यो गोविन्द नाम।
कह नानक हरि भज मना, जीवन कौने काम॥
सुख में बहु संगी भये, दुख में संग न कोय।
कह नानक हरि भजमना, अंत सहाई होय॥
जन्म जन्म भरमत फिर्यो, मिटी न यम की त्रास।
कह नानक हरिभज मना, निर्भय पावहिं बास॥
सुख के माथे सिल पड़ो, जो नाम हृदय ते जाय।
बलिहारी वा दुःख की, जो पल पल नाम जपाय॥
लेने को हरिनाम है, देने को अन्न दान।
तरने को आधीनता, डूबन को अभिमान॥
दो बातन को भूल मत, जो चाहै कल्यान।
नारायण इक मौत को, दूजे श्रीभगवान॥

(संकलित)

॥ श्रीहरिः ॥

नाम-माहात्म्यके नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नामके माहात्म्यका वर्णन करके श्रीभगवन्नामका प्रचार करना, जिससे सांसारिक जीवों-का कल्याण हो ।

नियम :—

१—"नाम-माहात्म्य" में श्री पूर्व आचार्य महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्ध सन्तोंके उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा और भक्तिसंबंधी लेख एवं श्रीभगवान् और उनके भक्तोंके चरित्र ही प्रकाशित होते हैं ।

२—लेखोंके बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करनेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको है । लेखोंमें प्रकाशित मतका उत्तरदायी सम्पादक नहीं होगा ।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरीसे आरम्भ होता है । ग्राहक किसी भी मासमें बन सकते हैं । किंतु उन्हें जनवरीके अंकसे निकले सभी अंक दिये जायँगे ।

४—जिनके पास जो अंक न पहुँचे, वे अपने डाकखानेसे पूछें, वहाँसे मिलनेवाले उत्तर को हमें भेजनेपर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी ।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है ।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे भेजना चाहिये । वी० पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं और समय भी अधिक लगता है ।

७—समस्त पत्रव्यवहार व्यवस्थापक, "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन (मथुरा) के पतेसे करना चाहिये ।

"नाम-माहात्म्य" भगवन्नाम-प्रचारकी दृष्टिसे निकलता है । इसका जितना अधिक प्रचार होगा, उतनी ही भगवन्नाम-प्रचारमें वृद्धि होगी; अतः कृपा कर समस्त प्रेमी पाठक इसे अपनायें । इसका मूल्य बहुत कम केवल २≡) है । आज ही आप मनीआर्डर द्वारा रुपया भेजकर इसे मंगाना आरम्भ कर दीजिये और अपने इष्ट-मित्रोंको भी इसे मंगानेके लिए उत्साहित कीजिये । नमूना मुफ्त मंगाइये ।

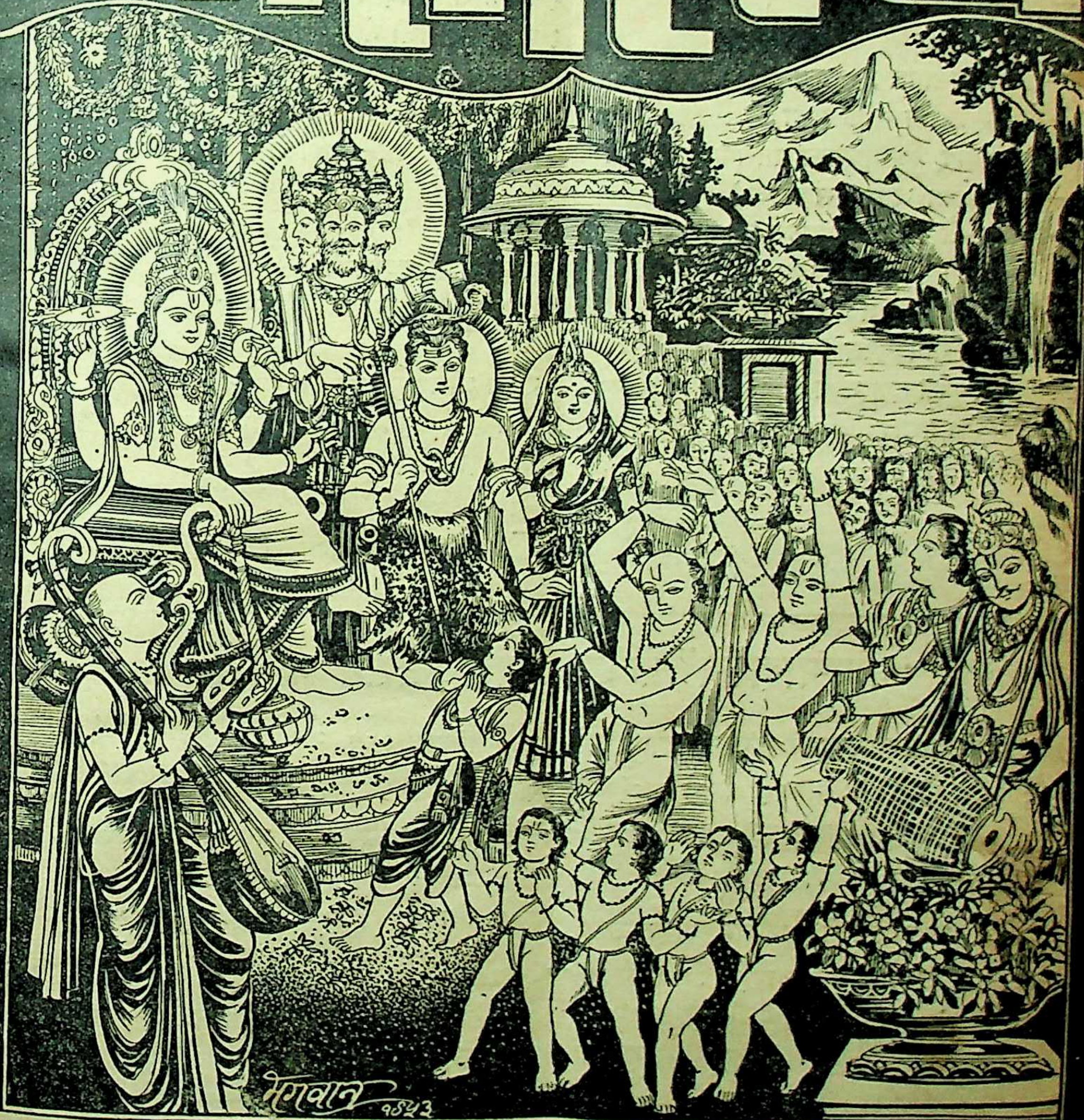
पता—व्यवस्थापक, 'नाम-माहात्म्य' श्रीभगवान भजनाश्रम
पोस्ट—वृन्दावन (मथुरा)

श्रीनन्दकुमाराष्टक

सुन्दरगोपालं उरवनमालं नयनविशालं दुःखहरम् ।
वृन्दावनचन्द्रं सुखमयकन्दं परमानन्दं चित्तहरम् ॥
नूतनघनश्यामं पूर्णनिकामं अत्यभिरामं प्रीतिकरम् ।
भज नन्दकुमारं अखिलाधारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ॥ १ ॥
वारिजमृदुवदनं निर्जितमदनं करुणासदनं मुकुटधरम् ।
गुञ्जाकृतिहारं विपिनविहारं परमोदारं चीरहरम् ॥
निर्मलपटपीतं कृतमुपवीतं करनवनीतं विबुधवरम् । भज० ॥२॥
शोभितमुखमूलं पीतदुकूलं यमुनाकूलं सुखदतरम् ।
मुखमण्डितरेणुं चारितधेनुं वादितवेणुं मधुरस्वरम् ॥
प्रियहास्यसुविमलं शुभपदकमलं नखरुचिविमलं तिमिरहरम् । भज० ॥३॥
शिरमुकुटसुदेशं कुञ्चितकेशं नटवरवेशं कान्तिवरम् ।
मायाकृतमनुजं हलधर-अनुजं प्रतिहतदनुजं भारहरम् ॥
विस्फारितभालं सुभगसुचालं हितमनुकालं भाववरम् । भज० ॥४॥
इन्दीवरभासं प्रकटसुरासं कुसुमविकासं वंशिधरम् ।
हृतमन्मथमानं रूपनिधानं कृतकलगानं क्लेशहरम् ॥
मङ्गलमुल्लासं कुञ्जनिवासं विविधविलासं केलिवरम् । भज० ॥५॥
अत्यन्तप्रवीणं पालितदीनं भक्ताधीनं कर्मकरम् ।
मोहनमतिधीरं फणिबलवीरं हतपरवीरं तरलतरम् ॥
गा[illegible] पङ्कजवदनं जलधरशमनं शैलधरम् । भज० ॥६॥
नी[illegible] ललितशुभङ्गं बहुकृतरङ्गं रसिकवरम् ।
गोकुलपरिवारं मदनाकारं कुञ्जविहारं गूढतरम् ॥
सौगन्ध्यसुमन्दं सुभगसुछन्दं सुषमाकन्दं श्रान्तिहरम् । भज० ॥७॥
वन्दितयुगचरणं पावनकरणं जगदुद्धरणं विमलवरम् ।
कालियशिरगमनं कृतफणिनमनं घातितयमनं मृदुलतरम् ॥
सम्भवभयहरणं गङ्गाभरणं अशरणशरणं मुक्तिकरम् । भज० ॥८॥

सम्पादक तथा प्रकाशक—[illegible] भगवान् भजनाश्रम, वृन्दावन (मथुरा) ।
मुद्रक—राममोहन शास्त्री, श्रीगोविन्द मुद्रणालय, काशी ।

नाम माहात्म्य



वर्ष १३] वृन्दावन [अङ्क ३

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

[मार्च सन् १९५३]

—:०:—

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावोंसे प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताहमें "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जाते हैं; फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले, उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भेजा जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्रव्यवहारमें अपना ग्राहक नम्बर लिखनेकी कृपा करें एवं उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजने चाहिये। पत्रव्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पतेपर स्पष्ट अक्षरोंमें लिख कर भेजिये।

व्यवस्थापकः—"नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम
पोस्ट—वृन्दावन (मथुरा)

वार्षिक मूल्य २≡) संस्थाओंसे १॥≡) एक प्रतिका ≡)

श्रीहरिः



वर्ष १३ } "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन, मार्च सन् १९५३ { अंक ३

प्रार्थना

अब मोहि भीजत क्यों न उबारो।
दीनबंधु करुनामय स्वामी, जनके दुःख निवारो॥
ममता घटा, मोहकी बूँदें, सरिता मैन अपारो।
बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरुजन ओट अधारो॥
गरजन क्रोध, लोभको नारो, सूझत कहुँ न उधारो।
तृसना तड़ित चमकि छिन ही छिन, अहि निसि यह तन जारो॥
यह सब जल कलिमलहि गहे है, बोरत सहस प्रकारो।
सूरदास पतितन को संगी, बिरदहिं नाथ सम्हारो॥

—श्री सूरदासजी

विश्व-कल्याण

लेखक—पं० श्रीराधिकादासजी

अपनी मङ्गलमय असीम महामधुरिमाकी अमृतधारासे प्रेमी भक्त हृदयोंको आप्लावित करनेवाले अति सुन्दर महामनोहर श्रीराधाकृष्ण नामस्मरण तथा उन अखिलेश्वरकी अति कमनीय युगल छविका ध्यान कर प्रेमी पाठकोंकी सेवामें विश्वकल्याणसे सम्बन्धित अपने विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ।

अहो! साश्चर्य एवं सखेद कहना पड़ता है कि जो विश्व-जगत् लीलामय विश्वेश्वरके ईक्षण अथवा सङ्कल्पसे उत्पन्न हुआ; जिस विश्वको श्रीभागवत आदि सर्व सद्ग्रन्थोंमें 'भगवद्रूपमखिलं' कहा गया—

"वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च।
भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्विह किञ्चन॥"

भाव यह कि चराचर विश्व वस्तुतः भगवान्‌का रूप ही है, और कुछ नहीं, अस्तु। वही भगवद्रूप विश्व अगणित आधि-व्याधि, दुःख-दैन्य, आघात-प्रतिघात, शोक-सन्ताप आदि महाक्लेशोंका महान् आगार बना हुआ है। ऐसा क्यों? सुनिये, यथार्थतः श्रीकृष्णलीलाका रहस्य कोई जान नहीं सकता। श्रीकृष्णकी कृपासे उनका लीलारहस्य जाना जा सकता है।

"सोइ जानहि जेहि देहु जनाई।
जानत तुमहिं तुमहि हुइ जाई॥"

श्रीभगवान् एवं उनका लीलारहस्य जाननेवाला भगवद्रूप—भगवत्तुल्य हो जाता है परन्तु ऐसे पहुँचे हुए महापुरुषोंका दर्शन दुर्लभ है। अपनी साधारण बुद्धिमें तो यही जँचता है कि यह अखिल विश्व श्रीकृष्णरूप ही है।

'कृष्ण' का अर्थ है—सदानन्द नित्यानन्द अथवा सच्चिदानन्द परमानन्द। भगवती श्रुति भी उच्च स्वरसे घोषित कर रही है—'आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि अर्थात् आनन्द (आनन्दमूर्त्ति परमात्मा) से ही निश्चयतः यह सर्व भूत-प्राणी उत्पन्न होते हैं; आनन्दसे प्रकट—प्रादुर्भूत हुए उसी (आनन्द) में जीवित रहते और अन्तमें आनन्दमें ही सन्निविष्ट हो जाते हैं। परन्तु अनादिकालसे कर्म्मात्मिका अविद्या-माया (अज्ञान-मोह) जीवको अपने चक्रमें डालकर श्रीकृष्णसे विमुख कर रही है अतः यह जीव जो न्यायतः स्वतःसिद्ध श्रीकृष्णका दास है* उसी कृष्णदासको माया रानीने अपनी महामोहमयी माया फैलाकर अपना दास या मायादास—अज्ञानदास बना दिया।

अब भी चेत!

ओ अन्यायी धूर्त्त मन! अभी भी सम्हल जा। करुणासागर श्रीकृष्ण कृपा करेंगे और श्रीकृष्ण कृपा करें या न करते हुएसे जान पड़ें। इसकी अपनेको कोई चिन्ता न होनी चाहिये। चातक तो एक छोटा-सा पक्षी होता है परन्तु प्रेमकी टेक सिखानेवाला अद्वितीय प्रेमी और हठीला टेकका पूरा पक्का प्रेमी होता है। किम्बहुना, अखिल विश्वको विश्वम्भररूप श्रीकृष्णमूर्त्ति जान-मानकर, सर्वाभिमान त्याग, श्री-राधाकृष्णका भजन कीर्त्तन करनेसे ही विश्व-कल्याण साधित हो सकता है।



* 'दासभूताः स्वतः सर्वे ह्यात्मानः परमात्मनः।'

अमृत-कण

(श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सत्सङ्गसे प्राप्त)

श्रद्धा करने योग्य चार पदार्थ हैं—१. भगवान् २. महात्मा, ३. शास्त्र, ४. परलोक। किंतु प्रेम करने योग्य एक भगवान् ही हैं।

× × ×

जप, ध्यान, पूजा तो परमेश्वर की ही करनी चाहिये। आज्ञापालन, भावों के अनुकूल बनना और आचरणोंका अनुकरण करना—ये तीन महात्माओं-का भी किया जा सकता है।

× × ×

महात्माके दर्शनसे कैसा आनन्द होना चाहिये, जैसा कि परमेश्वरके दर्शनसे आनन्द हो। महात्मा-की आज्ञा पालनेमें ऐसा उत्साह होना चाहिये, जैसा कि परमेश्वरकी आज्ञा पालनेमें हो।

× × ×

सबके सथा निःस्वार्थ प्रेम करे। स्वार्थ छोड़कर प्रेम करनेवालेका दर्जा भगवान्के बराबर है। क्योंकि हेतुरहित प्रेम करनेवाले या तो भगवान् हैं या उनका कोई प्रेमी भक्त।

× × ×

स्वार्थ छोड़कर दूसरेका हित करनेसे आत्मा शुद्ध हो जाता है।

× × ×

कामदोषसे जो बच जाता है, उसको मैं शूरवीर समझता हूँ। कामदोषसे तंग होकर ही सूरदासजी-ने अपनी आँखें फोड़ ली थी। इसलिये पुरुषको स्त्रियों की तरफ देखना ही नहीं चाहिये। किसी समय आदत-के कारण दीख जाय तो उसे पाप समझकर उसके लिये पश्चात्ताप करना चाहिये और आगेके लिये दृष्टि न जाय—इसकी पूरी सावधानी रखनी चाहिये।

× × ×

बहुत-से भाई अपनेको भक्त मानते हैं, लेकिन जबतक भगवान्की मुहर (छाप) नहीं लग जाती, तबतक कोई भी भक्त नहीं हो सकता। भगवान्की मुहर क्या है? भगवान्ने गीताके बारहवें अध्यायके १३ वें श्लोकसे १९ वें तक जो भक्तोंके लक्षण बतलाये हैं, वही भगवान्की मुहर है।

+ + +

जैसे हरे रंगका चश्मा चढ़ा लेनेसे सारा संसार हरे रंगका दीखने लग जाता है, वैसे ही श्रीहरिका चश्मा चढ़ा लेना चाहिये। बुद्धिके ऊपर श्रीहरिका चश्मा चढ़ा लेनेपर सारा संसार श्रीहरिके रूपमें ही दिखायी देने लगेगा।

+ + +

जहाँ हमारा मन जाय, जहाँ हमारी दृष्टि जाय, वहीं भगवान्की भावना करनी चाहिये। यह समझना चाहिये कि संसारमें जो कुछ वस्तुमात्र है, वह भगवान्का रूप है और जो कुछ चेष्टामात्र (हलचल) है, वह भगवान्की लीला है अर्थात् एक भगवान् ही अनेक रूप धारण करके भाँति-भाँतिकी लीला कर रहे हैं। ऐसा समझकर हर समय भगवान्-की ही स्मृतिमें मस्त रहे।

+ + +

एक बात बड़े महत्त्वकी है। संसारका व्यर्थ चिन्तन एकदम हटा देना चाहिये। जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँसे हटाकर उसे भगवान्‌में लगाना चाहिये। एक भगवानके सिवाय किसीका भी चिन्तन नहीं करना चाहिये। एक भगवान् ही भगवान् है—ऐसी वृत्ति बनानी चाहिये।

\+ + +

आप एकान्तमें बैठकर जप-ध्यान-साधन करते हैं—उसमें आपका मन नहीं लगता, इसका कारण है—आपकी बुरी आदत। आपको चाहिये कि जहाँ मन जाय, वहींसे जबरन् उसे हटाकर परमात्मामें लगावें। इस प्रकार साधारण चालसे जो सैकड़ों वर्षोंमें लाभ होता है, वह उक्त प्रकारसे जी-तोड़ परिश्रम करनेपर बहुत थोड़े समयमें ही हो सकता है।

\+ + +

अभ्यासके साथ वैराग्यकी बड़ी आवश्यकता है। वैराग्य होनेसे ही मन वशमें हो सकता है। वैराग्य होता है—वैराग्यवान् पुरुषोंका सङ्ग करनेसे। जैसे चोरका सङ्ग करनेसे चोरीके भाव आते हैं और व्यभिचारीके सङ्गसे व्यभिचारके भाव आते हैं, उसी प्रकार विरक्त पुरुषोंका सङ्ग करनेसे वैराग्य अपने-आप होने लगता है।

\+ + +

वैराग्यमें ही आनन्द है, वैराग्यके सामने त्रिलोकीका राज्य भी तुच्छ है। वैराग्यसे भी अधिक आनन्द है उपरामतामें और उपरामतासे भी अधिक आनन्द है परमात्माके ध्यानमें। संसारमें प्रीति न होना वैराग्य है और संसारकी ओर वृत्ति ही न जाना उपरामता है।

\+ + +

भगवान्‌के भजन-ध्यानमें मन न लगे तब भी हठपूर्वक भजन-ध्यान करते रहना चाहिये। आगे जाकर आप ही मन लगने लगेगा।

\+ + +

भगवान्‌से यह प्रार्थना करनी चाहिये कि प्रभो! आपका नित्य सुख थोड़ा-सा भी दे दीजिये, किन्तु यह संसारका लम्बा—चौड़ा सुख भी किसी कामका नहीं।

\+ + +

मनुष्यको अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंमें भगवान्‌का भजन-ध्यान भरना चाहिये। जो मनुष्य भगवान्‌का भजन-ध्यान करता है, उसको स्वयं भगवान् मदद देते हैं। इसलिये निराश नहीं होना चाहिये; बल्कि यह विश्वास रखना चाहिये कि ईश्वरका हमारे ऊपर हाथ है, अतः हमारी विजयमें कोई शङ्का नहीं। ईश्वर और महात्माकी कृपाके बलपर ऐसा कोई भी काम नहीं, जो हम न कर सकें। हमें बड़ा अच्छा मौका मिला है। इसे पाकर अपना काम बना ही लेना चाहिये, उकताना नहीं चाहिये।

\+ + +

संसारमें लोग अपनी निन्दा करें, अपमान करें तो उससे हमें खुश होना चाहिये और यदि लोग अपनी प्रशंसा करें, सम्मान करें, तो उससे लज्जित होना चाहिये।

\+ + +

कुसङ्ग कभी न करे। मनुष्य सत्सङ्गसे तर जाता है और कुसङ्गसे डूबता है।

\+ + +

सत्सङ्गमें सुनी हुई बातोंको एकान्तमें बैठकर

मनन करे और उनको काममें लानेकी पूरी चेष्टा करे।

\+ + +

पाप, भोग, आलस्य और प्रमाद—ये चार नरकमें ले जानेवाले हैं। इनका सर्वथा त्याग करे।

\+ + +

यह निश्चय कर ले कि प्राण भले ही चले जायँ पर पाप तो कभी करना ही नहीं है। भारी-से-भारी आपत्ति आ जाय, तब भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये और सदा ईश्वरको याद रखना चाहिये।

\+ + +

मनुष्य जो चिन्ता, भय, शोकसे व्याकुल होता है, इसमें प्रारब्ध हेतु नहीं है। सिवाय मूर्खताके इनका कोई अन्य कारण नहीं। मनुष्य थोड़ा-सा विचार करके इस मूर्खताको हटा दे तो ये सरलतासे मिट सकते हैं।

\+ + +

सम्पूर्ण पाप आसक्तिसे ही होते हैं। आसक्तिके विना कोई पाप नहीं हो सकता। अतः आसक्तिका त्याग कर देना चाहिये।

\+ + +

संसारके विषयोंको विषके समान समझकर इनका त्याग करना चाहिये। क्योंकि विषसे तो मनुष्य एक जन्ममें ही मरता है किन्तु विषयोंके सुखोपभोगसे तो मरनेका ताँता ही लग जाता है।

\+ + +

हरेक काममें स्वार्थ, आराम और अहंकारको दूर रखकर व्यवहार करना चाहिये; फिर आपका व्यवहार उच्चकोटिका होगा।

\+ + +

किसी व्यक्तिने अपनी सेवा स्वीकार कर ली तो उनकी अपनेपर बड़ी दया माननी चाहिये।

\+ + +

किसी कार्यमें मान-बड़ाई हो, वहाँ मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा दूसरोंको देना चाहिये तथा स्वयं मान-बड़ाई, प्रतिष्ठासे हट जाना चाहिये।

\+ + +

असली बात तो यह है कि एक मिनट भी जो भगवान्‌को भूलना है, यह बड़ी भारी खतरेकी चीज है; क्योंकि जिस क्षण भगवान्‌की विस्मृति हो जाती है, उस क्षण यदि हमारे प्राण चले जायँ तो हमारी क्या दशा होगी? इसलिये बचे हुए जीवनका एक भी क्षण भगवान्‌की स्मृतिके विना नहीं जाना चाहिये। यदि आप कहें कि रात्रिमें सोते हुए प्राण निकल गये तो क्या उपाय है, तो इसके लिये आप चिन्ता न करें। जब आपके जाग्रत्-अवस्थामें १८ घंटे निरन्तर भजन होने लगेगा तो रात्रिमें सोते हुए भी आपके भजन ही होगा।



काम क्रोध लोभ मोह मद, तजि भज हरि को नाम।
निश्चै सहजो मुक्ति हो, लहै अमरपुर धाम॥

—सहजोबाई

रामचरित्रमानसकी अनुक्रमणिका

(लेखक—शास्त्री पं० श्रीगोविन्दजी दुबे "साहित्यरत्न")

[गतवर्षके बारहवें अङ्कसे आगे]

मगन ध्यान रस दण्ड इक मुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेश तब, हरषित बरनै लीन्ह॥

जो भगवानके अत्यन्त समीपी हो जाते हैं, जो भगवानसे किसी भी प्रकारका सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं; अथवा जो प्रभुको अपना समझने लगते हैं, उनकी प्रत्येक क्रियाएं प्रभुके लिए ही होती हैं, उनका प्रत्येक कार्य प्रभुस्मरणसे ही होता है। वे भोजन, भजन, जागरण-शयन आदिमें अपने इष्टकी प्रतिमूर्तिका ही दर्शन करते हैं। यहाँ भी रामकथाका आरम्भ करना है, अतः भगवान भूतनाथने अपनी निर्गुण-सगुण-मिश्रित वाणीमें अपने इष्टकी स्तुति की, उनका स्मरण किया, किम्वा प्रणाम किया :—

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने।
जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई।
जागे जथा सपन भ्रम जाई॥
बंदउँ बाल रूप सोइ रामू।
सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
+ + +
करि प्रणाम रामहिं त्रिपुरारी।
हरषि सुधासम गिरा उचारी॥

प्रभु जिसपर अपनी अहैतुकी अनुकम्पा कर देते हैं वह भक्त निहाल हो जाता है, वह कृतकृत्य हो जाता है; भगवती भारती उसके हृदय-प्रांगणकी नर्त्तकी हो जाती है। 'कवि उर अजिर नचावहिं बानी' की कहावत तुलसीकी रचनामें ही दृष्टिगत होती है। यही कारण है कि रामचरितमानसका अधिकांश भाग मौलिक है, शैली एवं कथाकी मौलिकतामें चरित्र-चित्रण, भाव-विन्यास, भाषासौष्ठवताके साथ-साथ कथनोपकथनके पुटने सोनेमें सुगन्धका कार्य किया है। कथनोपकथनमें व्यावहारिक बातोंका बहुत ध्यान रखा गया है, कोई भी बात श्रोताकी रुचिके प्रतिकूल न कहकर उसके तदनुकूल होकर फिर उसका प्रतिवाद किया है, जिससे रोचकताके साथ-साथ बाह्य दृष्टिसे अमर्यादित न हो। लक्ष्मणद्वारा भरतकी भर्त्सना सुनकर सरकार राघवेन्द्रने उसका एकदम प्रतिवाद नहीं किया, बल्कि प्रारम्भिक शब्दोंको तदनुकूल कहकर फिर उन्हें रोका—

कही तात तुम नीति सुहाई।
सबते कठिन राजमद भाई॥
सो अचवँत नृप मातहिं तेई।
नाहिन साधु सभा जेहि सेई॥

यहाँ भी यही स्थिति है, पार्वतीके प्रश्नोंके उत्तरमें भगवान् शंकरने कम बुरा नहीं कहा, परन्तु प्रारम्भिक शब्दोंको लोकमर्यादित रखकर :—

धन्य धन्य गिरिराज कुमारी।
तुम समान नहिं कोउ उपकारी॥
+ + +
सोक मोह सन्देह भ्रम, मम विचार कछु नाहिं॥

तदनन्तर भगवान्भूतनाथ ने जीव का असामर्थ्य, मानव शरीर के अवयवों की सार्थकता, भगवान राम की कथाकी महत्ता एवं दुखहंता भगवानका अप्रमेय सामर्थ्य, अपरिमित सौन्दर्य, असाधारण शील, अतुलनीय

शक्ति एवं अनुपमेय माधुर्य कहकर कथा कहनेमें अपनी योग्यताकी चर्चा करके कहना आरम्भ किया।

संसारमें दो प्रकारके मनुष्य होते हैं आस्तिक एवं नास्तिक। आस्तिक लोग ईश्वर, धर्म और शास्त्रोंपर श्रद्धा-विश्वास रखकर उन्हें मानते हैं और नास्तिक इनसे विपरीत। संसारमें प्रधानतः दो आस्तिकवादोंका प्रचलन अधिक है—अद्वैत और द्वैत। भगवान शंकरने दो वादोंका सामंजस्य उपस्थित करनेके पूर्व इन नास्तिकोंकी पार्वतीके बहाने खूब खबर ली—

कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिशाच।
पाखंडी हरिपद विमुख जानहिं झूठ न सांच॥

\+ \+ \+

अग्य अकोविद अन्ध अभागी।
काई विषय मुकुर मन लागी॥
लम्पट कपटी कुटिल विशेषी।
सपनेहुँ सन्त सभा नहिं देखी॥

\+ \+ \+

जिन्ह कृत महामोह मद पाना।
तिन्हकर कहा करिअ नहिं काना॥

इस भांति अनेक कटूक्तिओंद्वारा नास्तिकवादका खण्डन करते हुए आपने पार्वतीके सन्देहहारी वचनोंमें अपनी भावधारा प्रवाहित की।

पार्वतीके हृदयमें जो सन्देह था, वह नया नहीं था। द्वैत और अद्वैतका झगड़ा इस सन्देहमें छिपा हुआ था जो भारतीय संस्कृतमें पहिलेसे होता चला आ रहा है। मेरी समझमें यह नहीं आता कि आखिर उनके हृदयमें शंका होती क्यों है? जब वेदोंमें, उपनिषदोंमें, ब्रह्मसूत्रोंमें और गीता आदि प्रस्थानत्रयीमें मुक्तकण्ठेन, निर्गुण-सगुण स्वरूपका प्रतिपादन किया है फिर भला, यह सन्देह क्यों? जो अद्वैतवादी ब्रह्मका सर्वव्यापक रूप मानते हैं, उसे सर्व शक्तिगान् मानते हैं वह सर्व व्यापी ईश्वर दशरथ नन्दन राममें-से कैसे निकल भागा। उस मूर्तिके लिए उसकी व्यापकता कहां चली गयी? वह जब सर्वशक्तिमान् है फिर अपनी इच्छासे भक्तोंके संकट मिटानेके लिए उसे नाना रूप बनाना कौन-सा कठिन कार्य है? नाहक ही यह उत्पात खड़ा कर रखा है। पार्वतीके हृदयमें भी ब्रह्म और नर रूप दोनों एक नहीं हो सकते, यह प्रधान सन्देह था जिसे उन्होंने पहले ही पूछा था—

प्रभु जे मुनि परमारथवादी,
कहहिं राम कहँ ब्रह्म अनादी।
"जो नृप तनय तो ब्रह्म किमि,
नारि विरह मति भोरि"॥

भगवान शंकरने भी सर्वप्रथम इसीका समाधान किया। भगवान शंकरके उत्तरको हम निम्न बारह भागोंमें विभाजित कर सकते हैं :—

(१) निर्गुण-सगुणकी एकता
(२) रामके ब्रह्मत्वका प्रतिपादन
(३) जीव धर्म
(४) ईश्वरकी महत्ता
(५) ईश्वर विषयक संदेहका सोदाहरण कथन
(६) विवर्तवादका कथन
(७) त्रिपुटीद्वारा कथन
(८) वेदान्त-वाक्योंद्वारा समाधान—(शांकर मत द्वारा)
(९) निर्गुण-सगुणकी एकता
(१०) अलौकिक कार्योंका वर्णन
(११) शांकर मत
(१२) नाम-महिमा

इस प्रकार १२ प्रकारसे अर्थात् १२ उक्तियों द्वारा रामके ब्रह्मत्वका प्रतिपादन किया गया है। सर्व प्रथम

निर्गुण-सगुणकी एकताका सोदाहरण प्रतिपादन है जो उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंके वाक्योंसे भिन्न नहीं है।

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सो कैसे।
जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥

ब्रह्मसूत्रमें कहा है—

अपि च संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्।

इस प्रकार अव्यक्त होने पर भी प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। यह बात वेद और स्मृतिसे भी प्रमाणित है।

प्रकाशादिवच्चावैशेष्यं प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात्।

प्रकाशकी भाँति साधनके अभ्याससे वह भी प्रकट हो जाता है।

अतोऽनन्तेन तथा हि लिङ्गम्।

उपर्युक्त वर्णनसे सिद्ध है कि वह अनन्त गुणसमुदायसे युक्त अर्थात् सगुण-साकार भी है।

(ब्र० सू० ३। २। २४। २५। २६)

पुनश्च :—

अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः।
अनुस्मृतेर्बादरिः।

भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए देशविशेषमें उसका प्राकट्य होता है। ऐसा आश्मरथ्य आचार्य मानते हैं। विराटका स्मरणके प्रभावसे देशविशेषमें प्राकट्य माननेमें कोई आपत्ति नहीं। ऐसा बादरि नामक आचार्य मानते हैं।

सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथा हि दर्शयति।

अनन्त ऐश्वर्यसम्पन्नको ऐसा माननेमें कोई विरोध नहीं। ऐसा जैमिनि आचार्य मानते हैं।

(ब्र० सू० १। २। २९। ३०। ३१)

श्रीमद्भागवते :—

यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय।
(३। ९। ११)

हे परमेश्वर! आप भक्तोंकी मान्यतानुसार शरीर धारण कर लेते हैं।

इस प्रकार जो निर्गुण है वही सगुण है जैसे जल और बर्फ दो अलग अलग वस्तु नहीं है, बर्फ तापसे तपकर जलरूप हो जाता है, वही भाप बनकर फिर जल रूप होकर ठण्डकसे जमकर हिम उपल हो जाता है, इसी प्रकार ईश्वर भी अव्यक्त रूपमें रहते हुए भक्त प्रेम रूपी कड़ी ठण्डसे व्यक्त अर्थात् सगुण-साकार रूपमें प्रत्यक्ष हो जाते हैं। अब रामके ब्रह्मत्व का प्रतिपादन दूसरी उक्तिसे करते हैं :—

जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा।
तेहि किमि कहिय बिमोह प्रसंगा॥
राम सच्चिदानन्द दिनेसा।
नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकाश रूप भगवाना।
नहिं तहँ पुनि विज्ञान विहाना॥

उमा! तुम्हारा सन्देह समीचीन नहीं है। भला, विचार तो करो, जिसका नाम ही भ्रम रूपी अंधकारको नाश करनेके लिये सूर्य है उसको भी मोह! राम जिन्हें तुमने वन-बिहार करते देखा था सत्-चित् आनन्द स्वरूप हैं। अतएव वहाँ मोह रूपी रात्रिका निशान तक भी नहीं है भगवान् राम स्वयं ही प्रकाशकी राशि है अतः वहाँ विज्ञान रूपी प्रभात भी नहीं होता; प्रभात वहीं होता है जहाँ रात्रि होती है। परन्तु जहाँ रात्रिका चिह्न भी नहीं है, वहाँ प्रभात कैसा? फिर जो अन्य किसीसे प्रकाशित होता तो वहाँ कुछ सन्देह भी उपस्थित किया जा सकता था। जिससे समस्त जगत् को प्रकाश मिलता है जो स्वयं ही प्रकाशकी राशि है, जिससे संसारके प्रत्येक कार्य होते हैं, जो किसी भी संसारीकी दृष्टिमें नहीं आ पाता तथा जो जगत्का अभिन्न-निमित्तोपादान कारण है वह ब्रह्म राम है अन्य दूसरा कोई नहीं—

"जन्माद्यस्य यतः" इस जगत् के जिससे जन्मादि होते हैं। वह ब्रह्म ही है, वह राम ही है। (ब्र० सू० १।१।२)

गोस्वामीजीका भक्ति-दर्शन

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

पूज्यपाद, प्रातःस्मरणीय, कलिपावनावतार, सत्कुल-कमलदिवाकर गुरुवर्य श्रीगोस्वामीजी महाराज त्रिगुणातीत, स्थितप्रज्ञ, परम भक्त, महाभागवत तथा अत्यन्त उत्कृष्ट कोटिके सन्त थे। आपकी बुद्धि सर्वथा निर्मल, भ्रम-प्रमादादि दोषविनिर्मुक्त अथ च व्यवसायात्मिका ऋतम्भरा प्रज्ञा-सम्पन्न थी। आपके बुद्धिवैभवका पता आपके ग्रन्थोंमें आये हुए प्रखर तर्कों तथा आपके दिव्य अचिन्त्याद्भुत अलौकिक विवेकयुक्त सदुपदेशोंसे लगता है। आपकी प्रतिभा तथा बुद्धिकी कुशाग्रता देख कर हतप्रभ हो जाना पड़ता है। अपनी-अबाध दिव्य दृष्टिका निश्छल सात्त्विक शब्दोंमें वर्णन करते हुए स्वयं आपने भी लिखा है—

श्रीगुरु पद नख मणिगण ज्योती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती॥
दलन मोह तम सो सुप्रकासू।
बड़े भाग्य उर आवहिं जासू॥

ऐसा लगता है कि उनका मन बराबर—

"जानिय तब मन निरुज गुसाईं।
जब उर बल बिराग अधिकाई॥
सुमति छुधा बाढ़ै नित नई।
विषय आश दुर्बलता गई॥"

—की पुनीता स्थितिमें विहरण करता था और उन्हें नित्य नवीन सुमति उत्पन्न होती रहती थी। आपकी पीयूष-वर्षिणी वाणीमें सन्देहकी तो कहीं गुंजाइश नहीं। वह तो सर्वसन्देहभेदिका है और 'भव भंजन गंजन सन्देहा' की उस पर जबरदस्त मुहर है। भक्तिके गण्य मान्य आचार्य-मूर्धन्योंमें आपका स्थान बड़े महत्त्वका है और आपकी पुस्तकें जैसी "भक्तिमीमांसादर्शन"के विभिन्न पाद और अध्याय हैं।

भक्तिकी महत्ता

भक्तिरसायनकार श्रीयतीन्द्र मधुसूदन सरस्वतीने बड़े मधुर और सरल शब्दोंमें कहा है—

नवरसमिलितं वा केवलं वा पुमर्थं,
परममिह मुकुन्दे भक्तियोगं वदन्ति।

अर्थात् यदि कोई कहे कि शृङ्गारादि नव प्रकारके रसोंमें भक्ति कौन-सा रस है अथवा धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टयोंमें यह कौन-सा पुरुषार्थ है? और यदि वह ऐसी कोई वस्तु नहीं तो फिर उसका महत्त्व ही क्या? तो इसका यह उत्तर होगा कि सभी रस मिलकर भक्ति रस और सभी पुरुषार्थ मिल कर भक्ति पुरुषार्थका स्वरूप बनते हैं। गोस्वामीजीके "रामभगतिरस सिद्धि हित भा एहि समय गणेस" इन शब्दोंमें भी यही ध्वनि निकलती है। भक्तिकी महत्ता तथा उपयोगिताके समर्थनमें—

न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह।
वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यथा भवेत्॥
(श्रीमद्भा० २, २, ३३)

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात्॥
(श्रीमद्भा० ११, १४, २१)

—आदि बहुत कुछ कहा गया है। किन्तु गोस्वामीजीकी भक्तिमणिकी कल्पना कुछ और ही है और इसीलिये वे इसे सर्वाधिक दुर्लभ भी बतलाते हैं।

भक्तिकी दुर्लभता

भागवत और भक्तिरसामृतसिन्धुकी तरह आप भी भक्तिको मोक्षसे भी दुर्लभ बतलाते हैं। भागवत में श्री-शुकदेवजीने परीक्षितको बतलाया है कि राजन्! देखो भगवान् मुकुन्द आपके तथा यदुकुलके स्वामी, गुरु, आराध्यदेवता, अधिक क्या, सर्वस्व ही ठहरे, पर दास्य भावका ऐसा जादू है कि आप लोगोंके यहाँ सारथ्य तथा दौत्य तक करते हैं। इसलिए किसी भजनशील महात्माको वे मोक्ष भले ही दे डालें पर भक्तियोग नहीं देते।

"राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां,
दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किङ्करो वः।
अस्त्वेवमेव भगवान् भजतां मुकुन्दो,
मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म भक्तियोगम्।"
(५, ६, १८)

इसी प्रकार हरिभक्तिरसामृतसिन्धुकार कहते हैं कि मोक्षका साधन है ज्ञान और भोगोंके साधन है यज्ञादि पुण्य कर्मोंका अनुष्ठान; किन्तु हरि भक्ति तो ऐसे सहस्रों साधनोंसे भी दुर्लभ ही है—

"ज्ञानतः सुलभा मुक्तिर्भुक्तिर्यज्ञादिपुण्यतः।
सेयं साधनसाहस्रैर्हरिभक्तिः सुदुर्लभा॥"

और गोस्वामीजी लिखते हैं—

नर सहस्र महं सुनहु पुरारी।
कोउ एक होय धरम व्रत धारी॥
धरमशील कोटिन महं कोई।
विषय विमुख विराग रत होई॥
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई।
सम्यक् ज्ञान सकृत कोउ लहई॥
ज्ञानवन्त कोटिन महं कोऊ।
जीवन्मुक्त सकृत जग सोऊ॥
तिन सहस्र महं सो सुख खानी।
दुर्लभ ब्रह्मलीन विज्ञानी॥
धर्मशील विरक्त अरु ज्ञानी।
जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी॥
सबते सो दुर्लभ सुरराया।
रामभगतिरत गत मद माया॥

किन्तु साथ ही साथ वे भक्तिको अत्यन्त सुलभ भी बतलाते हैं—

'कहहु भगति पथ कौन प्रयासा।'
'सुगम उपाय पाइबै केरे॥'

—इत्यादि। तो फिर इसका समाधान क्या हो? तो कहते हैं—

'रघुपति भगति करत कठिनाई।'
'कहत कठिन करनी अपार
जानै सो जेही बनि आई॥'

तो फिर ऐसा क्यों? तो कहते हैं—

"जो जेहि कला कुसल ता कहं
सोई सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह
सुरसरि बहै गज भारी॥"

—इत्यादि।

भक्तिमें दैन्यका स्थान

दुर्लभता और दुष्करता इसकी ऐसे है कि प्रभुको रिझानेके लिए, उनकी प्रीति, प्राप्त करनेके लिए सर्वस्वकी बाजी लगानी पड़ती है। जिनमें भोग-त्याग और यश, मान, प्रतिष्ठाका त्याग बड़ा दुष्कर होता है। फिर इनसे अहंकार उत्पन्न होता है जिससे प्रभुको भारी चिढ़ है। यही कारण है कि जिस पर प्रभु कृपा करते हैं उसकी तपो-विनाशिका लोकमान्यताका अपहरण कर लेते हैं।

"तिमि रघुपति निज दास कर
हरहिं मान हित लागि।"

भक्तको तो अपनेको तृणसे भी नीच और तरुसे भी सहिष्णु समझना चाहिये। उसे तो "अमानी मानदो नित्यम्", "सबहि मानप्रद आपु अमानी" होना चाहिये। इसकी साधना बनती है—

मनसैतानि भूतानि प्रणमेद् बहु मानयन्।
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति॥
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्च-
भूतं प्रणमेदनन्यः॥
प्रणमेद्दण्डवद् भूमौ आश्वचाण्डालगोखरम्।
दैव दनुज नर नाग प्रेत पितर गन्धर्व॥
बन्दौं किन्नर रजनिचर कृपा करहु अब सर्व।
"मैं सेवक सचराचर रूप राशि भगवान्॥"
"निज प्रभुमय देखहिं जगत।"— आदि द्वारा।

यही दशा भोग त्याग की है। भागवतके—

"येऽध्यासनं राजकिरीटजुष्टं
सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः।"
(६, १६, २०)

"सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इव विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति"
(१०, ४७, १८)

"यद् वाञ्छया नृपशिखामणयोऽङ्गवैन्य
जायन्त नाहुषगयादय ऐकपत्यम्
राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष"
(१०, ६०, ४१)

"ग्रामाद् वनं क्षितिभुजोपि ययुर्यदर्थाः"
(१०, ६०, ५०)

—आदि श्लोकोंमें बतलाया गया है कि प्रभुके प्रेममें राज्य-भोगोंकी तिलाञ्जलि दे दी जाती है। उसी प्रकार पूज्य मानसकार लिखते हैं—

करहिं योग योगी जेहि लागी।
भूप राज तजि होहिं विरागी॥
जेहि सुख लागि पुरारि अशुभ वेष कृत शिव सुखद।
राम चरन पंकज रति तिनहीं।
विषय भोग वश करै कि तिनहीं॥
रमा विलास राम अनुरागी।
तजहि वमन जिमि जन बड़ भागी॥
जे रघुवीर चरण अनुरागे।
ते सब भोग रोग सम त्यागे॥

—आदि शब्दावलियोंसे यही सलाह देते हैं। गोस्वामीजीके मतसे—

रहहिं अपनपौ सदा दुराये।
सब विधि कुशल कुवेश बनाये॥
तेहि ते कहत सन्त श्रुति टेरे।
परम अकिंचन प्रिय हरि केरे॥

—आदिकी सरणिका अनुसरण करते हुए परम दीन अहंकारशून्य, सर्वभूतमित्र, सरल हृदय, सतत भगवद्ध्यान, स्मरण, श्रवण, कीर्तन, पूजन, नमन रत प्राणी द्वारा प्रभुकी आराधना होती है और यही उनका संक्षिप्त भक्ति दर्शन है, अर्थार्थी भक्तोंकी 'राज्यस्वर्गापवर्गदम्' वाली आराधना की भी—

राम चरण पंकज उर धरहू।
लंका अचल राज्य तुम करहू॥

—से अनुमोदन वे करते हैं, पर यह वहींतक जब तक कि

'मैं सेवक रघुपति पति मोरे।'

—का भाव हृदयमें भरा है क्योंकि भगवान्की दासताके सामने अहं भावका उदय जरा दुर्घट है।

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभगवान भजनाश्रम एवं वृन्दावन भजनाश्रम के आय-व्यय का विवरण

(मिती कार्तिक सुदी ६ सं० २००६ से मिती मगसर सुदी ८ सं० २००६ तक मास १ का)

३१३१≈)॥ सहायता प्राप्त	११६२४।-)॥ भजन करनेवाली माइयों को पैसा दीना
११६७५॥-)। माई भजन का प्राप्त	१३५) वृद्ध माइयों को दीना
२२७॥।) मासिक चन्दा एवं सालाना चन्दा	५८०) कर्मचारियों को वेतन दिया
२२२५=) विशेष सहायता प्राप्त	१५) पोस्टेज खर्चा
१७२५६॥=)॥।	४५६॥।-) खुदरा खर्चा का लगा
	१००) कर्मचारियों की रसोई खरच का लगा
	१२६१४=)॥

श्रीभगवान भजनाश्रम एवं वृन्दावन भजनाश्रम में सहायता देनेवाले सज्जनों की नामावली

(मिती कार्तिक सुदी ६ सं० २००६ से मिती मगसर सुदी ८ सं० २००६ तक का महीना एक का)

३०)	श्री हरिकिशनजी शिवप्रतापजी	काँरजा
२०)	,, रघुनाथजी सुरजकरनजी	,,
२०)	,, नन्दलालजी सराफ की माता	कलकत्ता
२५५)	,, गोवरधनदासजी गोपीकिशन तुमसरवाले	,,
१०)	,, बालकिशनदासजी गनपतजी	खरगोन
११)	,, मगतरायजी	गिडनी
५)	,, गोपीसाहजी	,,
५)	,, बाबूलालजी केडिया	चाकुलिया
५)	,, मनसारामजी मोजीलालजी	,,
७)	,, विलासरायजी बनवारीलालजी	,,
११)	,, चीनीलालजी स्योचन्द्रायजी	,,
७)	,, गयाप्रसादजी नन्दलालजी	,,
१२६)	,, भीकमलालजी केशवलालजी	छोटा उदयपुर
२५)	,, रामानन्दजी केसरीचन्दजी	जामागुडीहाट
५१)	,, मामचन्दजी मुलचन्दजी	झाडसुगडा
५)	,, ठाकुरदासजी लक्ष्मीचन्दजी	झाडग्राम
३५)	,, किशनलालजी तिवारी	जलपाईगुडी
५)	,, बनारसीदासजी	देहली
४०)	,, गिरधारी सिंहजी वासदेवजी	,,
११)	,, रामकिशनजी फूलचन्दजी	दलभुमगढ़
११)	,, रामनारायनजी रामचन्दजी	,,
११)	,, टेकचन्दजी लक्ष्मीनारायनजी	,,
१०)	,, इन्द्रभूषण चक्रवर्ती	,,
२५)	,, तोतारामजी शिवशंकरजी	न्यामतपुर
२५)	,, चन्दुलालजी डाकोनिया	,,
३०)	,, झावरमलजी सुलतानिया	,,
१०)	,, गोरसलालजी हरेजरावजी	फगवाडामन्डी
५)	,, चन्दीबाईजी	विराटनगर
११)	,, सुरजमलजी	बनारस
५)	,, छगनलालजी	बम्बई
५)	,, प्रहलाद्रायजी चुडीवाला	,,
५०॥।)॥	,, रामरिखदासजी पोद्दार	,,
२५)	,, सागरमलजी जाजोदिया	,,
११)	,, राधाबाईजी	लोर
११)	,, केशवदेवजी खुशीरामजी	वर्दवान
१०)	,, चम्पालालजी	बीकानेर
५)	,, रामनारायनजी अनन्तरामजी	बडया
५)	,, रघुनाथदासजी लोधा	मेदनीपुर
२५)	,, शिवकरनदासजी हीरालालजी	रायसिंह नगर
५)	,, नारायनदासजी सालिगरामजी	हाजई
२१५१॥≈)	फुटकर	
३१३१≈)॥		

श्रीभगवान भजनाश्रम में माइयों द्वारा भजन करानेवाले सज्जनों की नामावली
(मिती कार्तिक सुदी ६ सं० २००६ से मगसर सुदी ८ सं० २००६ तक महीना १ का)

८।≥)	श्री रुकमनी देवीजी केडिया	अमरावती	१०१।)	श्री हरिवक्सजी चोखानी	,,
८।≥)	,, रमादेवजी	,,	१०१।)	,, वृधिचन्दजी भोजनगरवाला	,,
८।≥)	,, राजकुमारीजी पोद्दार	,,	५०६।)	,, रामनिवासजी झूनझूनवाला	,,
१००)	,, हीरालालजी	,,	१०१।)	,, रामगोपालजी महादेवजी	,,
२५)	,, चौथमलजी मिश्रीलालजी	अजमेर	१०१।)	,, रामनिरंजनजी	,,
१०१।)	,, मोहनलालजी गिरधारीलालजी	,,	१०१।)	,, रामनाथजी तापडिया	,,
७०)	,, वी० पी० शर्मा	,,	१०१।)	,, गुलाबचन्दजी घासीरामजी	कामठी
८।≥)	,, गुरदासमलजी हनुमानप्रसादजी	अकलतरा	१०१)	,, छगनीवाईजी	,,
१०१।)	,, वल्लभदासजी केला	आकोट	२६)	,, वन्शीधरजी कानोडिया	कानपुर
१०१।)	,, मदनगोपालजी चुन्नीलालजी	असरा	८।≥)	,, गंगाप्रसादजी सुरजकरनजी	,,
६१)	,, गुप्तदानी सज्जन द्वारा	इन्दोर	२५।-)	,, भागीरथीवाईजी	काटोल
१०)	,, जी० पी० अग्रवाल	ईटावा	८।≥)	,, राधाकिशनजी कनकनी	किशनगढ़
८।≥)	,, रामधारीजी फूलचन्दजी	उकलानामन्डी	८।≥)	,, माँगीलालजी दरगढ़	,,
८।≥)	,, कन्हैयालालजी रूडमलजी	ओझर	२५।-)	,, गोरधनदासजीविहानी	केन्दु पटना
८।≥)	,, जंगीलोधी	आँरग	५०)	,, हनुमानदासजी विलासरायजी	खाँमगाँव
८।≥)	,, गिन्नीदेवीजी मुसद्दी	कलकत्ता	१०१।)	,, बजरंग आईल एन्ड राईस मिल्स	गोरखपुर
८।≥)	,, राधादेवीजी सरावगी	,,	१६॥।=)	,, बालकिशनजी	ग्वालियर
१०१।)	,, श्रीरामजी झूनझूनवालाकी स्त्री	,,	८।≥)	,, जमुनावाईजी	,,
२५।-)	,, पन्नालालजी झूनझूनवाला	,,	८।≥)	,, विरधीचन्दजी केशवदेवजी	गोहाटी
१०६॥≥)	,, शिवकिसनदासजी वाहोती	,,	१२६॥-)	,, राधाकिशनजी गोहाटी	,,
१०१।)	,, मनोहरदेवीजी	,,	१०१।)	,, लक्ष्मीनारायनजी गोरीशंकरजी	गया
२५।-)	,, जेसराजजी राठी	,,	१६॥।=)	,, उम्मेद सिंहजी	गरासनी
५०॥=)	,, छगनलालजी राठी	,,	५०॥=)	,, माँजीकालूजी लालकुंवरजी	गोनवारी
८।≥)	,, लक्ष्मीनारायणजी वाहोती	,,	८।≥)	,, चुन्नीलालजी राधाकिशन	चेचट
१०१।)	,, परषोत्तमदासजी राजगडिया	,,	८।≥)	,, पीलारामजी सिरमौर	छेरकापुर
१०१।)	,, सुभकरनजी पोद्दार	,,	१०१।)	,, दोलतरामजी	जुगसलाई
१०१।)	,, बुधमलजी वाजोरिया	,,	१०१।)	,, मूगारामजी सुरजमलजी	,,
१०१।)	,, घनश्यामदासजी भालोटिया	,,	१०१।)	,, सुखनन्दनजी जोखीरामजी	,,
२७८।≥)	,, नारायनदासजी	,,	३३॥।)	,, जीवनकुंवरजी	जोधपुर
१०१।)	,, वंशीधरजी रूईया	,,	४२≥)	,, स्योलालजी रामपतदासजी	झाडसुगडा
५०६।)	,, कालूरामजी छावछरिया	,,	८।≥)	,, बालमुकुन्दजी घासीरामजी	तराना
१०१२॥)	,, सावित्रीबाई सेखसरिया	,,	११)	,, गोपीरामजी की माँजी	तेजपुर
२०२॥)	,, मातुरामजी डालमिया	,,	८।≥)	,, बद्रीनारायनजी	देहली
२५।-)	,, लक्ष्मीनारायणजी किशनगोपालजी	देहली	१०१।)	,, श्रीमोतीलालजी छाजूलालजी	बरेली
१६॥।=)	,, राधाकृष्णजी डालमिया	,,	११)	,, सुरजमलजी टिबडेवाला	बनारस

४२≶)	श्री सुखदेवदासजी डालमिया	,,
३३।।।)	,, घनश्यामदासजी केडिया	,,
२०३।।।)	,, लछमीनारायणजी गुप्ता	,,
२५)	,, चम्पादेवीजी मुदड़ा	देशनोक
८।≶)	,, रामकुमारजी रामनाथजी	दरभंगा
८।≶)	,, ओंकारमलजी खेतान	धामणगाँव
८।≶)	,, कोलेश्वर राऊतवीन	धूवडी
७५)	,, जुगलकिशोरजी गोईनका	नियामतपुर
२५।-)	,, देवीदासजी चुन्नीलालजी	नागपुर
२५।-)	,, भीमराजजी	पटना
८।≶)	,, झुरामलजी अनन्तलालजी	पचम्बा
८।≶)	,, शान्ताबाईजी	पानसर
५२)	,, बच्चुलालजी नरवदाप्रसादजी	पेन्डरा
१०१।)	,, सत्यनारायनजी सेखसरिया	बम्बई
८।≶)	,, देवीदासजी नन्दलालजी	,,
८।≶)	,, हरिकिशनजी किशोरदासजी	,,
१००)	,, भगवतीप्रसादजी खेतान	,,
८।≶)	,, शंकरलालजी पोद्दार	,,
२०२।।)	,, हेमराजजी आनन्दीलालजी	,,
१०१।।)	,, ओंकारमलजी साधू	,,
१२०)	,, सुशीलाबाईजी	,,
२०२।।)	,, कन्हैयालालजी मोतीलालजी	,,
१०१।)	,, उदयलालजी मालपानी	,,
२०१)	,, लच्छीरामजी चुड़ीवाला	,,
८।≶)	,, करसोलियाजी	वृन्दावन
८।≶)	,, मनीरामजी	,,
१०१।)	,, रामकिशनजी श्रीकिशनजी	विराटनगर
१६।।।=)	,, दयालचन्दजी शर्मा	वरगढ़
१६।।।=)	,, नारायनदासजी हरगोविन्दजी	,,
५०।।=)	,, रामेश्वरदासजी मुरालीलालजी	वर्द्धवान
१६।।।=)	श्रीचन्दजीभंवर	बीकानेर
८।≶)	,, कलामनीजी पोधान	हल्डीया
८।≶)	,, रामेश्वरलालजी	हेवरगाँव
८।≶)	,, रामरिछपालजी	,,
८।≶)	,, तोलारामजी सुरजमलजी	,,
८।≶)	,, रीधकरनजी हीरालालजी	,,
८।≶)	,, नन्दलालजी मुदड़ा	,,

५१।)	श्री मोहनलालजी लोहिया	मोटेपट्टी
८।≶)	,, घीसालालजी पूसालालजी	,,
४२≶)	,, चुन्नीलालजी शिवनाथजी	भयन्दर
८।≶)	,, रामचन्दजी अग्रवाल	भिन्ड
१०१।)	,, घासीरामजी रामनारायनजी	मथुरा
२५।-)	,, पातीरामजी अग्रवाल	मकरापाडा
३३।।।)	,, खमानचन्दजी	मेदनीपुर
८।≶)	,, बल्लीरामजी चौबे	मैनपुरी
५०।।=)	,, प्रेमशंकरजी	,,
१०१।)	,, तनसुखदास अग्रवाल	,,
१०१।)	,, महावीरप्रसादजी साह	,,
२५।-)	,, चन्दुरामजी हेमराजजी	,,
८।≶)	,, उदयवीरसिंहजी	,,
२५।-)	,, चन्दनमलजी भगवतीप्रसादजी	,,
५१)	,, सत्यनारायनजी मोदी की स्त्री	राँची
१०१।)	,, वृजलालजी राजगडिया	,,
१०१)	,, पालूरामजी बैजनाथजी	रायगढ़
१०१।)	,, राधाबाईजी	रायपुर
१०१।)	,, तिलकरामजी सुडेल	ललितपुर
१०१।)	,, दीनानाथजी ठेकेदार	,,
८।≶)	,, लछमनदासजी दुदावत	लशकर
८।≶)	,, राधेश्यामजी रामगोपालजी	सुजानगढ़
८।।)	,, लछमीनारायनजी सुरजमलजी	सेमापुर
१६।।।=)	,, हनुमानदासजी द्वारिकादास	शेगाँव
२५।-)	,, पूनमचन्दजी त्रिलोकचन्दजी	सुरत
१२।।=)।।	,, बीनीबाईजी	सिरसा
५१)	,, शिवरामजी सुराणा	सेंधवा
८।≶)	,, सोहनलालजी सुगनचन्दजी	हिन्दुमलकोट
१०१।)	,, बद्रीनारायनजी मेहता	हिंगनघाट
२५।-)	,, कस्तुरीबाईजी	हैदराबाद
५०।।=)।।	,, पन्नालालजी	,,
८।≶)	श्री वंशीधरजी व्यास	,,
१०१।)	,, सुरजीदेवीजी	दिल्ली
१६६।।-)	,, ब्रजवल्लभजी मुखिया वैद्य	आगरा
१०१।)	,, शंकर मिल	बडया
१०१।)	,, चिरंजीलालजी ज्वालाप्रसादजी	,,
१६।।।=)।।	,, रावतमलजी मुरलीधरजी	,,

८।≶)। श्रीनन्दलालजी मोहनलालजी	,,	३०३।।।),, फतेहचन्दजी		तुमसर
८।≶) ,, रामदेवजी गजानन्दजी	,,	८।≶) ,, तोलारामजी आसकरनजी		हेवरगाँव
२५।-) ,, दीपचन्दजी भगिनीरामजी	,,	१३००) फुटकर		
१०१।) ,, गौरीशंकरजी	गोडिया	११६७५।।-)।		

श्रीभगवान भजनाश्रम तथा वृन्दावन भजनाश्रममें मासिक चन्दा सालाना चन्दा देनेवालोंकी नामावली
(मिती कार्तिक सुदी ६ सं० २००६ से मिती मगसर सुदी ८ सं० २००६ तक मास १ का)

२०) श्री रामचन्द्रजी देशाई	अहमदाबाद	३।।।) श्री मुनी पान्डेय	पान्डू
१८०) ,, विरधीचन्दजी भालोटिया	कलकत्ता	१२) ,, जेठमल पिरोहित	सार्दुलशहर
१२) ,, मदनलालजी	नौगढ़		
		२२७।।।)	

श्रीभगवान भजनाश्रम तथा वृन्दावन भजनाश्रममें माइयोंको विशेष सहायता देनेवाले सज्जनोंकी नामावली
(मिती कार्तिक सुदी ६ सं २००६ से मिती मगसर सुदी ८ सं० २००६ तक मास १ का)

६५।।।-) श्री सत्यनारायनजी सेखसरिया	कलकत्ता	२४।।=) श्री मेगराजजी किशनलालजी	देशनोक
४०) ,, शान्तीबाईजी	,,	६५४।) ,, मुरलीधरजी श्यामसुन्दरजी	देहली
२००) ,, गुप्त दानी	,,	१२।=) ,, वासामलजी	वृन्दावन
६६३-) ,, मंगतुरामजी जैपुरिया	कानपुर	१००) ,, मोहनलालजी झूनझूनवाला	,,
५०) ,, बद्रीदासजी कन्हैयालालजी	खुरजा	५) ,, अमरचन्दजी लटुरिया	सेन्थवा
५०) ,, केडिया स्टोर्स	जलपाईगुडी	२२२१=)	

❀ सूचना ❀

वृन्दावन के किसी मन्दिर व स्थानों से "भजनाश्रम" का कोई सम्बन्ध नहीं है। भजनाश्रम के लिये अन्य स्थान पर सहायता नहीं देनी चाहिये। सीधी बीमा या मनीआर्डर द्वारा मंत्री श्री भगवान भजनाश्रम, पोस्ट वृन्दावन को ही भेजियेगा। प्रत्येक दान की रसीद श्री भगवान-भजनाश्रम के नाम की छपी हुई दाता महानुभाव की सेवा में भेजी जाती है।

अनन्य प्रेमा भक्ति

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥
एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥
खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत् किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥
भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः ।
प्रपद्यमानस्य यथाऽश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥
इत्यच्युताङ्घ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ।
भवन्ति वै भागवतस्य राजंस्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात् ॥

मुनीश्वर कवि राजा विदेहसे कहते हैं—'राजन्! भगवान्का अनन्य प्रेमी भक्त, लज्जारहित और सबसे आसक्तिरहित हुआ चक्रपाणि भगवान्के मनुष्य लोकमें किये हुए मङ्गलमय प्राकट्य और लीलाओंको एवं उनके गाये जानेवाले सुन्दर नामों और उनके अर्थोंको गाता हुआ विचरता रहता है। इस प्रकारके व्रतवाला वह लोकबाह्य भक्त अपने प्रेमीके नामकीर्तनसे अनुराग उत्पन्न हो जानेके कारण अधीरचित्त हुआ जोर-जोरसे हँसने लगता है, कभी चिल्लाने लगता है और कभी रोने लगता है एवं कभी गाता है और कभी पागल की भाँति नाचता है। वह अनन्य भक्त आकाश, पवन, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, प्राणी, दिशा, वृक्ष, नदी और समुद्रको ही क्या, जो कुछ भी पदार्थमात्र है, उस सबको पापापहारी भगवान् श्रीहरिका श्रीविग्रह समझकर प्रणाम करता है। उस शरणागत भक्तके एक साथ ही भगवान् की भक्ति, अन्य विषयों से विरक्ति और परब्रह्म परमेश्वर का अनुभव—ये तीनों हो जाते हैं, जिस प्रकार कि भोजन करनेवाले व्यक्तिके प्रत्येक ग्रासके साथ ही सन्तोष, पोषण और भूखका निवारण—ये तीनों हो जाते है। इस प्रकार अच्युत भगवान्के चरणोंका अखण्ड वृत्तिसे भजन करनेवाले भगवद्भक्तको भक्ति, विरक्ति और भगवत्-तत्त्व-ज्ञान निश्चय ही प्राप्त हो जाते हैं, जिससे उसे सर्वश्रेष्ठ शान्ति प्रत्यक्ष प्राप्त हो जाती है।'

(श्रीमद्भागवत ११।२।३९-४३)

गोवध-जैसा भयंकर कलंक दूरकर धर्मप्राण भारत का मुख उज्ज्वल करो

(लेखक—भक्त रामशरणदासजी)

हिन्दूसूर्य महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवा, श्रीगुरुगोविन्दसिंहके हिन्दुओ ! धर्मप्राण भारतवीरो ! पूज्या प्रातःस्मरणीया गौमाताका वध हो, गौके खूनकी नदियां बहती हों, गौमाताके गर्दनपर छुरियाँ चलाई जाती हों, गौमांस विदेशोंको सप्लाई किया जाता हो इससे बढ़कर घोर दुःखकी बात और क्या होगी ? इससे बढ़कर लज्जाकी बात और क्या होगी ? इससे बढ़कर डूब मरनेकी बात क्या होगी ? हिन्दुओ ! यदि तुममें कुछ भी भगवान श्रीरामकृष्णका, ऋषि-मुनियोंका खून शेष हो, कुछ भी हिन्दुत्व बाकी हो तो या तो भारतसे गोवध जैसा भयंकर कलङ्क एकदम दूर करो, गोवध बंद करनेके लिये कटिबद्ध हो जाओ, गोरक्तकी एक भी बूँद भारतमें न गिरने देनेकी प्रतिज्ञा करो, गोरक्षाके लिये तन, मन, धन से जुट जाओ, नहीं तो चुल्लूभर पानीमें डूब मरो और अपनेको हिन्दू कहलाना छोड़ दो। हाय ! शोक ! शोक !! महाशोक !!! धर्मप्राण भारतमें, ऋषि-मुनियोंके भारतमें गोवध जैसा भयंकर पाप हो, उस गौमाताका वध हो कि जिसकी रक्षाके लिये अनंतकोटि ब्रह्माण्डनायक जगन्नियन्ता साक्षात् परब्रह्म परमात्मा भगवान निराकारसे रामकृष्णके रूपमें साकार होकर आयें जिसे कलिपावनावतार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज इस प्रकार लिखें—

'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार'

और नंगे पांवों जिसे पूज्या इष्टदेव मानकर जंगल जंगल चराते फिरें और अपना गोविन्द गोपाल नाम रखायें, जिस गौमाताकी रक्षाके लिये चक्रवर्ती सम्राट महाराजाधिराज दिलीप अपनेको सिंहके सामने मांसके लोथड़ेकी तरह खानेको फेंक दें, जिसे वेद भगवान् 'गावो विश्वस्य मातरः' गौ संसारकी माता है कह कर पुकारे, जिसमें शास्त्र ३३ करोड़ देवी-देवताओंका वास बताकर पूजन करना बताये, जिसके पूजन करनेसे, दर्शन करनेसे, दान करनेसे, परिक्रमा करनेसे पापीसे पापी भी भव-सागरसे पार हो जाय, जिस गौकी रक्षाके लिये महाराणा प्रताप, शिवा, बन्दा वीर, गुरुअर्जुनदेव, हरिसिंहबलुवा, जैसे लाखों क्षत्रिय अपने प्राणोंकी बलि लगा दें, जिसकी रक्षाके लिये पूज्य गुरुगोविन्द-सिंहजी महाराज भगवती श्रीनैना देवीसे यह बरदान मांगें—

सकल जगत महि खालसा पंथ साजै।
जगै धर्म हिन्दू सकल द्वन्द भाजै॥
यही आश पूरन करहु तुम हमारी।
मिटै कष्ट गऊवन छुटै खेद भारी॥
यही खास विनती हमारी सुनी जै।
असुर मार कर रच्छ गऊवन करीजै॥
यही देइ आज्ञा तुर्क को खपाऊँ।
गौ घातका दुख जगत से हटाऊँ॥

आप बेटे पोते, धन लाल नहीं मांगते, खाली सनातन धर्मकी रक्षा चाहते हैं और गऊ माताकी रक्षा चाहते हैं, जिस गौमाताको चाँदीके खुरोंसे सोनेके सींगोंसे मढ़कर, हीरे जवाहिरातोंसे जड़ित रेशमी वस्त्रोंसे शृङ्गार कर हमारे पूर्वज पूजन करनेमें गौरवका अनुभव करते हों, जिस गौमाताके घृतकी अग्निमें यज्ञहवनके द्वारा आहुति देनेसे देवी देवता प्रसन्न होते हों, जिस गोमाताके घृतसे बने सुन्दर सुन्दर मिठाई पकवानको श्राद्धोंमें ब्राह्मणोंको खिला-कर पितरोंको तृप्त किया जाता हो, जिसके घी दूध दही मक्खन खाकर हमारा जीवन हो, उसी पूज्या माताका वध हो और हम बैठे बैठे टुकुर टुकुर देखते रहें, इससे बढ़कर हमारे पतनका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या होगा? जिस भारतमें कभी घर-घर घी-दूधकी नदियां बहती थीं, गौका घी दूध खा-पीकर हम बलवान, धीर, वीर, महावीर बनते थे और धर्म-द्रोहियोंसे डटकर लोहा लेते थे और उन्हें पीस डालते थे आज उसी भारतमें गौके रक्तकी नदियां बह रही हैं और घी दूध नामको भी नहीं रह गया है; कोकोजम घी और विलायती अपवित्र डिब्बेका दूध चाय ही हमें कायर, हिजड़ा बीमार बनानेके लिये दे दिया गया है। गौमाता सबकी माता है, सबको घी दूध देकर रक्षा करती है परन्तु इन गौभक्षक पापियोंने गौमाता खा-खाकर पापी पेटको कब्रिस्तान बना डाला है और इस प्रकार देशसे गोधन ही समाप्त कर डाला है और देशका महत्त्व ही धूलमें मिला डाला है। हमें उस समय रोना आता है कि जब हम सुनते हैं कि बूढ़े, लंगड़े, लू[...] अनुपयोगी गाय-बैल देशके लिये भार हैं। क्या गा[...] माता भी जिसे हिन्दू करोड़ों अर्बों वर्षोंसे पू[...] प्रातः स्मरणीया मानता रहा हो, ३३ करोड़ दे[...] देवताओंका वास मान पूजता रहा हो, जिस[...] रक्षाके लिये प्राणोंपर खेलता रहा हो, भवसाग[...] पार लगानेवाली माता मानता रहा हो, कभी अनु[...] योगी हो सकती है। गोविन्दकी, गोपाल-कृष्ण[...] प्राणप्यारी गायोंको अनुपयोगी बताना अक्ष[...] अपराध है, जिसे हिन्दू कभी भूल नहीं सकता[...] आज पूज्या गायोंको कहा जा रहा है कि यह ख[...] खड़ी मुफ्तका खाती हैं इन्हें हलोंमें जोतो औ[...] बूढ़ी होनेपर कसाईको सौंप दो। क्या यह मूर्खता[...] पराकाष्ठा नहीं है? क्या यह धर्मद्रोही होने[...] परिचय नहीं है? क्या यही मानवता है? क्या य[...] अहिंसा है? धिक्कार है इस अहिंसाको कि[...] करोड़ों गाय, बंदर, मोर मार डालने, मछली अ[...] खानेका प्रचार करनेपर भी अहिंसा बनी रहती[...] हिन्दुओ! आँखें खोलो और जो भी संस्था गौमात[...] रक्षाके लिये आगे आये, उसके लिये तन-मन-ध[...] जुट जाओ और भारतसे गोवध-जैसा भयंकर क[...] मिटाकर गोरक्षा करके ही दम लो और अपना[...] लोक-परलोक दोनों बनाओ। गोमाताकी [...] करना देश, धर्म, जातिकी सबसे बढ़कर [...] करना है।

बोलो गौमाताकी जय!

श्रीनाम-जपसे भगवान्‌का साक्षात्कार

[अर्वाचीन सन्तोंका अनुभव]

(लेखक—श्रीअवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव)

कलिकालमें भगवन्नाम ही आत्मशुद्धि और भगवत्कृपा प्राप्त करनेका सरल एवं सुगम साधन है। लोगोंका भ्रम है कि आजकल नाम-जप एवं संकीर्तनकी धूम मचानेवालोंको भी पवित्र व्यवहार तथा प्रभुदर्शनके आनन्दकी दिव्य मस्ती प्राप्त नहीं होती है, परन्तु "श्रीराम नाम कामतरु जोई जोई मांगिहै। स्वारथ परमारथ हूँ को कबहूँ न खांगि है।" इस बचनानुसार लोग ऐहिक सुख लेकर ही रह जाते हैं। यदि सच्ची प्रीतिसे नाम-जपकी शास्त्रीय पद्धतिसे अनुष्ठान किया जाय तो अवश्य ही पूर्णफल प्राप्त होता है। मैं यहां श्रीअवध और मिथिलाके प्रसिद्ध सन्तोंका दृष्टान्त पाठकोंके लाभार्थ उद्धृत करता हूँ। नामानुरागी सन्त-भक्त इन सन्तोंका अनुगमन कर जीवन कृतार्थ करेंगे।

१—श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने चित्रकूटमें छः करोड मन्त्रराजका अनुष्ठान किया और श्रीरामजीका प्रत्यक्ष दर्शन पाया।

२—श्रीकबीरजीने केवल 'राम' इस दो अक्षर-वाले नामका द्वादशकोटि जप किया और श्रीरामजीका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया।

३—श्रीतुकारामजीने "रामकृष्णहरि" इस षड क्षर मन्त्रका अनुष्ठान किया और श्रीविट्ठलका दर्शन प्राप्त हुआ।

४—समर्थ श्रीरामदासजी महाराजने "श्रीराम जय राम जय जय राम" इस त्रयोदशाक्षर मन्त्रका तेरहकरोड़ जप किया परन्तु दर्शन बीच ही में प्राप्त हो गया। तथा देवता एवं ऋषियोंने अलं-अलं कह कर अनुष्ठान-पूर्तिका संकेत किया।

५—श्रीरामसखेजीने श्रीरामषडक्षर मन्त्रराजका चित्रकूटमें १२ करोड जप किया तथा बीच ही में दर्शन प्राप्त हो गये।

६—श्रीकृपानिवासजीने उज्जैनमें श्रीसीताराम युगल मन्त्रराजका जप कर चित्रकूटमें साक्षात् दर्शन प्राप्त किये।

७—श्रीस्वामी युगलानन्यशरणजी महाराजने श्रीअवधमें ही द्वादशकोटि नाम जपकर श्रीयुगल-सरकारके दिव्य दर्शन प्राप्त किये।

८—श्रीकरुणासिन्धुजी महाराजने श्रीअवध जानकीघाटपर श्रीसीताराम नाम जपकर दिव्य दर्शन प्राप्त किये।

९—श्रीरामप्रसादजी महाराजने श्रीरामकोटकर श्रीराम नाम जपकर श्रीकिशोरीजीका प्रत्यक्ष दर्शन और ललाटकी बिन्दी प्रसादी स्वरूप प्राप्त किया। अद्यावधि आपके वंशज बिंदु धारण करते हैं।

१०—श्रीपलटूदासजी महाराजने केवल 'राम' नाम रटकर कई बार प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त किया।

११—श्रीसज्जनकराजकिशोरीशरणजी (श्री-रसिक अली) ने श्रीसीताराम युगल नामका जप कर श्रीअवध और मिथिलामें कई बार दर्शन प्राप्त किये और परमधामगमनके अवसरपर आकाशमें दिव्य-

बाजे बजे जो श्रीजनकपुरनिवासी सभी सन्तोंके सुननेमें आये।

१२—श्रीजानकीघाट श्रीअयोध्या निवासी सन्त शिरोमणि श्री पं० रामवल्लभाशरणजी महाराजने श्रीमन्त्रराज जप तथा श्रीरामनाम जप द्वारा अनेकों बार प्रत्यक्ष दर्शन पाये। तथा आयी हुई मृत्युको स्वेच्छासे तीन वर्षतक लौट जानेको कहकर जीवोंका कल्याण किया।

१३—श्रीहनुमन्निवासाधीश श्रीस्वामी गोमती-दासजी महाराजने श्रीचित्रकूटमें युगलमन्त्र जप किया और प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया। श्रीहनुमानजीका तो आपको प्रति मंगलवार साक्षात् दर्शन और वार्तालाप होता रहा।

१४—गोलाघाट श्रीसद्गुरुनिवासके महात्मा श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराजने श्रीजानकी बागमें कई बार दर्शन प्राप्त किये एवं श्रीसरयूतटपर लीला-स्वरूपोंमें कई बार आपको प्रत्यक्ष दर्शन होते ही रहे। आप श्रीसीताराम युगल नाम निरन्तर रटते रहे।

१५—आपके ही श्रीसद्गुरुदेव पं० श्रीजानकी-वरशरणजी महाराजको श्रीयुगलसरकारका दर्शन श्रीलक्ष्मण किलापर हुआ तथा श्रीमिथिला यात्रामें दूलहरूपमें मिलकर प्रभुने आपको दिव्य सुख प्रदान किया।

१६—श्रीरसरंगमणिजी महाराज 'सखेन्दु'जीको श्रीचित्रकूट श्रीअवध तथा श्रीरामनगरकी लीलामें कई बार प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुए तथा अन्तमें विमान यात्रापर दिव्य विमानका दर्शन श्रीअवधनिवासियोंको प्रत्यक्ष हुआ। आप मन्त्र और नाम दोनों जपते थे।

१७—श्रीबाबा रघुनाथदासजी महाराज बड़ी छावनीने केवल श्रीराम नामका जप कर "शीतल-अमराई" में श्रीसाकेतनायक प्रभुका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया।

१८—श्रीहनुमान बाग अयोध्याजीमें महात्मा श्रीअयोध्यादासजी महाराजने नवाह संकीर्तनमें प्रत्यक्ष दर्शन पाये। आप नित्य ६ घंटे नियमसे श्रीसीताराम नामका संकीर्तन बागके सन्तोंको एकत्र करके किया करते थे। अखण्ड नामजप तो चलता ही था।

१९—रीवांनरेश राजा श्रीविश्वनाथसिंहजीने चित्रकूटमें १०८ श्रीवैष्णव सन्तोंके साथ श्रीराम षडक्षरमन्त्रराजका अनुष्ठान किया और बीच ही में प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुए।

२०—दूधमतीतटनिवासी परमहंस श्रीप्रेम-दासजी महाराजने चार नौका श्रीसीताराम युगल नाम जप किया था। दो नौका श्रीचित्रकूटमें, एक श्रीमिथिलाजीमें और एक श्रीअवधमें। इस जपमें तीन बार आपको प्रत्यक्ष दर्शन एवं वार्तालाप करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

२१—गुर्जरदेशीय कटावनिवासी श्रीस्वामी अनन्तश्री बजरंगदासजी महाराज (खाकीबाबा) को कटावमें ही युगलसरकारके, श्रीशंकरजीके तथा श्रीहनुमानजीके प्रत्यक्ष दर्शन मिले। आपने १२ वर्षतक केवल एक सेर गायका दूध पीकर बिना सोये रात-दिन श्रीराम नाम और श्रीमंत्रराजका अखण्ड जप किया था।

२२—श्रीमिथिला उद्धारक स्वामी श्रीसूरकिशोरजी महाराजने श्रीजनकपुरधाममें ३ वर्ष अखण्ड नाम

जपका अनुष्ठान प्रारम्भ किया था और श्रीकिशोरीजू-का प्रत्यक्ष दर्शन तथा श्रीजूके निजधामका दिव्यदर्शन प्राप्तकर कृतार्थ हुए थे।

२३—आपके ही शिष्य मामा प्रयागदासजी महाराजने श्रीचित्रकूटमें श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी तीनों सरकार का दिव्य दर्शन प्राप्त किया था।

२४—परमहंस श्रीरामशरणजी महाराज नवाही-ने श्रीमिथिलाजीमें ही श्रीमद्वाल्मीकि रामायणके एक सौ आठ नवाह पाठ किये थे तथा १२ वर्ष ऊर्ध्वबाहु रहकर नाम जप किया था। आपके साथ श्रीराघवेन्द्र प्रभु राजाधिराज बालसखा बनकर क्रीडा किया करते थे।

२५—श्रीमौनीबाबा अवध सरयूतटपर निवास करते थे, अखण्ड नाम आपके आश्रममें चलता था। आपने कई बार श्रीसरयू जलसे घृत दूध का काम चलाया; फिर उतना घृत दूध श्रीसरयूमें धरवा दिया करते थे। आपको श्रीसरयूजी और श्रीरामजीका कई बार प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुआ।

इनके सिवा श्रीहंडिया बाबा, परमहंस श्रीजानकी-दासजी, परमहंस श्रीसीताशरणजी कनकभवन, गुदड़िया बाबा, रौना परमहंस, श्रीरूपकलाजी, कामद-कुञ्जके महाराजजी, वामन भगवान्, मधुकरिया महाराज, श्रीगुप्तरामजी, श्रीज्ञानाअलिजी, परमहंस श्रीसियालालशरणजी, आदि आदि अनेकों सन्त तथा महिलाएँ हुई हैं जिनको श्रीभगवन्नाम-मन्त्रकी कृपासे अपूर्व सिद्धियों तथा प्रभुदर्शनकी प्राप्ति हुई है। इन सन्तोंके पूर्ण चरित्र कभी-कभी अवसर पाकर लिखे जायंगे।

हरि-यश-गान

सर्वरूप प्रभु सब घटवासी, परब्रह्म परमेश्वर राम
दीनबन्धु करुणारससागर, मनमोहन सुखधाम।
सर्वसुहृद् सब लोकमहेश्वर, क्षमाहृदय हरि कृपानिधान
सर्वशक्तिसम्पन्न दयामय, परमात्मीय उदार महान ॥१॥

निर्मल शोभामय अघहारी, भक्त-कल्प-पादप भगवान
अप्रमेय बल-वैभव-मेधा, विजयी निस्स्पृह निपट अमान।
विश्वजनक-पालक-संहर्त्ता, है सब मंगल भरा विधान
शान्ति-प्रेम-आनन्द-ज्ञानमय, जीवमात्र-सुख-सुविधा-दान ॥२॥

"हमारे दुःख हरो गोपाल"

(लेखक—रावत श्रीचतुर्भुजदासजी चतुर्वेदी)

वर्तमान कालमें आचार-विचार कहीं-कहीं ही दिखाई पड़ते हैं; न तो सनातन-सा संयम रहा और न नियम। जो जिसको अपने मनमें मान बैठा हैं वह उसको ही अच्छा समझ मनमानी कर रहा है। समयका चक्र कहें या कालकी कुटिल गति? ऐसे विषम समयमें दुःखसे त्राण कैसे हो?

यदि कोई दुखी आत्मा अपनी अन्तर आत्मासे दुःखित होकर टेर लगाता है कि "हे दीनबन्धु दयाल हमारे दुःख हरो गोपाल" तो वे सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ सर्वेश्वर प्रभु उस आत्माकी इस पुकारको अवश्य सुनते हैं और उसका उस दुःखसे त्राण करते हैं। भगवानको प्राप्त करनेके लिये कोई ध्रुव तो बने, प्रह्लाद बने, बने मीरा; फिर देखिये 'मीराके प्रभु गिरिधर नागर' उसकी छायाके साथ ही लगे रहेंगे; होनी चाहिये सत्य भक्ति और अटल प्रेम। प्रेम परमेश्वरका वह सुन्दर स्वरूप है जिसमें 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' छिपा है।

अजामिल, गीध, व्याध जो निकृष्ट कर्म करनेवाले थे, वे भी प्रभुकी कृपासे उच्च पद पा गये। तब जो धर्मभीरु मनुष्य प्रभुका चिंतन ही करता रहता है उसके लिये तपस्वियोंको भी दुर्लभ परम पद पाना क्या कठिन है! व्रजकी गोपिकाएँ जप-तप क्या जानती थीं, उनके तो विशुद्ध प्रेम था जिस प्रेमके वशीभूत होकर गिरिधर गोपाल थेई थेई नाचे "ताहि अहीरकी छोहरियां छछिया भर छांछपै नाच नचावैं" उन्होंने उद्धवके दिये हुए दार्शनिक व्याख्यानको ठुकराते हुए स्पष्ट कह दिया था कि "ऊधौ हमें न योग सिखावो। हम व्रज वनिता प्रेम पगी अति सो गुपाल लै आवो॥" उद्धव अपना-सा मुँह लेकर वापिस लौट चले और आनन्दकन्द व्रजचन्द भगवान कृष्णचन्द्रसे जाकर सब बातें कह सुनाई और कहा—भगवन्! एक बार तो आपको पधारना ही होगा। भक्तके लिये भगवान झुके और गोपिकाओंके मध्यमें आकर पुनः उन्हें हर प्रकारसे संतोष प्रदान किया। भगवानको विरह-वेदनाके वे मर्मस्पर्शी वाक्य भी सुनने पड़े—

"बिन गोपाल बैरिन भई कुञ्जें"
तब वे लता लगत अति शीतल अब भई विषम ज्वालकी पुञ्जें॥

विरहसे दग्ध लतागुल्म प्रभुको पाय पुनः हरे हो गये, हर्षित हो गये और उस हर्षमिश्रित दुखी वाणीमें बोल उठे—

हे दीनबन्धु दयाल
हमारे दुःख हरो गोपाल।



सत्संगका प्रसाद

(सं०—गोविन्दसहायजी वर्मा, 'साहित्यरत्न')

१—पापका अनुभव दुःखमें हुआ करता है।

२—पापी वही है, जो दूसरेके वैभवको न देख सके–

'देखि न सकइ पराइ विभूती।'

३—पापकी उत्पत्ति हिंसा, अविद्या, और दम्भसे होती है अर्थात् कंस (हिंसा) + पूतना (अविद्या) + बक (दम्भ) = पाप।

४—प्रतिहिंसाकी भावना उपकारी और अपकारी तकका विचार नहीं करती है।

५—सच्चे भक्तोंके संकल्पके सम्मुख भगवानका संकल्प भी नहीं टिकता है।

६—क्षण भरका भी सत्संग और भगवत्-चिंतन निर्मल फलका देनेवाला है।

७—प्रत्येक साधकको भगवान उसके अधिकारके अनुसार मिलते हैं।

८—साधकके साधनकी प्रखरता तभी तक रहती है, जब तक वह ईश्वर तक नहीं पहुँचता।

९—प्रेममें गति होती है, ज्ञानमें गति नहीं होती। प्रेमकी गति सीधी नहीं होती, साँपके समान टेढ़ी मेढ़ी होती है।

१०—जो सच्चा त्याग करता है, उसकी ईमानदारीकी रक्षा स्वयं भगवान करते हैं।

११—किसी कामको पूरा किये बिना नहीं छोड़ना चाहिये। अधूरा छोड़नेसे संकल्पकी दृढ़ता नहीं रहती।

१२—जहाँ सम्पत्ति है वहीं सुख है, परन्तु सम्पत्तिके भेदसे ही सुखका भी भेद है। दैवी सम्पत्तिवालोंको परमात्म सुख है, आसुरी सम्पत्तिवालोंको आसुरी सुख और नरकके कीड़ोंको नरक सुख।

१३—किसीके दोष देखकर घृणा न करो और न उसका बुरा चाहो। यदि ऐसा न करोगे तो उसका दोष तो न जाने कब दूर होगा परन्तु तुम्हारे अंदर घृणा, क्रोध, द्वेष और हिंसाको अवश्य ही स्थान मिल जावेगा। उसमें तो एक ही दोष था पर तुममें चार दोष आ जावेंगे।

१४—दूसरेके दुर्गुणोंको प्रकाशित मत करो, बल्कि सुहृद बनकर उन्हें दूर करनेका प्रयास करो।

१५—कर्तव्यमें प्रमाद न करना ही सफलताकी कुंजी है।

१६—हमें जो दूसरोंमें दोष दिखाई देते हैं, इसका प्रधान कारण प्रायः हमारे चित्तकी दूषित वृत्ति ही होती है। अपने चित्तको निर्दोष बना लो, फिर जगतमें दोषी बहुत ही कम दीखेंगे।

१७—संसारका काम पूरा होनेकी आशासे कई लोग भगवानके भजनसे वंचित रह जाते हैं और वे संसारसे छूटनेके बजाय उसीमें फँस जाते हैं।

१८—आत्मा और परमात्माके बीच मार्ग नहीं है, साधना नहीं है। केवल पहुंचनेकी प्रबल इच्छाकी कमी है।

१९—परमात्मा अपरिछिन्न है, उसमें परिछिन्नका भाव रखनेवाला करारी चोट खाता है।

२०—जिसको अभिमान नहीं, वह नरकमें भी पूर्ण है और अभिमान वाला स्वर्गमें भी पतित है।

२१—सिद्ध महापुरुष, सिद्ध आलू, सिद्ध बैंगनकी तरह होते हैं। अर्थात् सिद्ध (सिजाये हुए) आलू और

बैंगन 'नरम' हो जाते हैं, उनमें कड़ापन तनिक भी नहीं होता। वैसे ही सिद्ध महापुरुष भी अहंकारशून्य 'नम्र' हो जाते हैं।

२२—वाणीके कथनकी अपेक्षा मनके दृढ़ विचार और विचारकी अपेक्षा वैसा ही आचरण कहीं ऊँचा है। वह विचार किस कामका जो आचरणमें न परिणत हो।

२३—शरीर उस सूखे पत्तेके समान है जो हवाके झोंकोंसे इधर-उधर उड़ता रहता है और आत्मा उस वृक्षके समान है, जो सदा साक्षीकी भाँति पत्तेका उड़ना देखता है। अतएव आत्मनिष्ठ महात्मा पुरुष प्रारब्ध वश संयोग वियोगके चक्करमें भटकनेवाले शरीरके द्रष्टा रहकर परमानन्दमें निमग्न रहते हैं। न शरीर रहनेसे उन्हें स्पृहा है और न उसके नष्ट होनेमें उन्हें दुःख है।

२४—वह शान्ति व्यर्थ है, जिसमें भगवान पर सरल निर्भरता न हो; वह साधना निकृष्ट है, जो अपने अंदर ऊँचेपनका अभिमान पैदा कर दे; वह भक्ति विष है, जो भगवानकी गद्दीपर बैठनेके लिए मनमें लालच पैदा कर दे।

२५—विश्वासकी आधारशिला पर ही भक्तिका प्रासाद खड़ा होता है।

२६—सच्ची भक्तिमें ढोंगके लिए स्थान नहीं है। भक्ति हृदयकी वस्तु है। आडम्बरसे उसकी असलियत नष्ट हो जाती है।

२७—ईश्वर व्यापक है। सृष्टिके कण-कणमें उसका अस्तित्व है। अर्थात् भक्तके लिए प्रत्येक प्राणी ईश्वर रूप है और उसे प्रत्येक प्राणीके प्रति वैसा ही वर्ताव करना चाहिए जैसा वह ईश्वरके साथ करनेकी इच्छा रखता है।

२८—सत्य बोलो। किन्तु सच्ची बात भी अनावश्यक न बोलो। अधिक बोलनेसे वाणीकी शक्ति नष्ट हो जाती है।

जागो!

कबीर गर्व न कीजिये, काल गहे कर केस।
ना जानौं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस॥
हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि करि, भये कबीर उदास॥
झूँठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
जगत चबैना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद॥
पानी केरा बुद बुदा, अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जायगी, ज्यों तारा परभात॥
रात गँवाई सोय करि, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय॥

—कबीर

॥ श्रीहरिः ॥

नाम-माहात्म्यके नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नामके माहात्म्यका वर्णन करके श्रीभगवन्नामका प्रचार करना, जिससे सांसारिक जीवों-का कल्याण हो।

नियम :—

१—"नाम-माहात्म्य" में श्री पूर्व आचार्य महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्ध सन्तोंके उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा और भक्तिसम्बन्धी लेख एवं श्रीभगवान् और उनके भक्तोंके चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखोंके बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करनेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। लेखोंमें प्रकाशित मतका उत्तरदायी सम्पादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरीसे आरम्भ होता है। ग्राहक किसी भी मासमें बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरीके अंकसे निकले सभी अंक दिये जायँगे।

४—जिनके पास जो अंक न पहुँचे, वे अपने डाकखानेसे पूछें, वहाँसे मिलनेवाले उत्तर को हमें भेजनेपर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे भेजना चाहिये। वी० पी० से मंगवाने पर।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं और समय भी अधिक लगता है।

७—समस्त पत्रव्यवहार निम्न पतेसे करना चाहिये।
व्यवस्थापक, "नाम-माहात्म्य" कार्यालय
मु० पो० वृन्दावन (मथुरा)

प्रेमी पाठकोंसे निवेदन

इस बार उन्नीस वर्ष बाद २०१० वैशाख से पुरुषोत्तम मास का अवसर आया है; इस पुरुषोत्तम मास में दान देने और पुण्य कर्म करने का अनन्त फल होता है।

निःसीमदिव्यबीजानि वर्द्धन्ते कोटिशो यथा।
तथा कोटिगुणं पुण्यं कृतं मे पुरुषोत्तमे॥

भगवान कहते हैं कि जैसे खेत में बोये बीज करोड़ों गुना बढ़ते हैं, वैसे ही मेरे पुरुषोत्तम मास में किया हुआ पुण्य करोड़ों गुना बढ़ता है।

अमावस्या यदा पार्थ सोमवारान्विता भवेत्।
तदा पुण्यतमः कालो देवानामपि दुर्लभः॥

हे पार्थ! जब अमावस्या सोमवारयुक्त होती है, तब सर्वोत्तम पुण्यकाल आता है। ऐसा समय देवताओं को भी दुर्लभ होता है।

इस अधिक मास में सोमवती अमावस्या, वैधृति संक्रान्ति एवं व्यतिपात के पर्वों का भी समावेश है। वैसे तो हर तृतीय वर्ष आनेवाले पुरुषोत्तम मास का बहुत माहात्म्य होता है किन्तु इस बार वैशाख होने के कारण और भी अधिक माहात्म्य है। इसलिये इस पुण्य काल में विशेष रूप से भजन, पूजन एवं दान आदि पुण्य कार्य होने चाहिये।

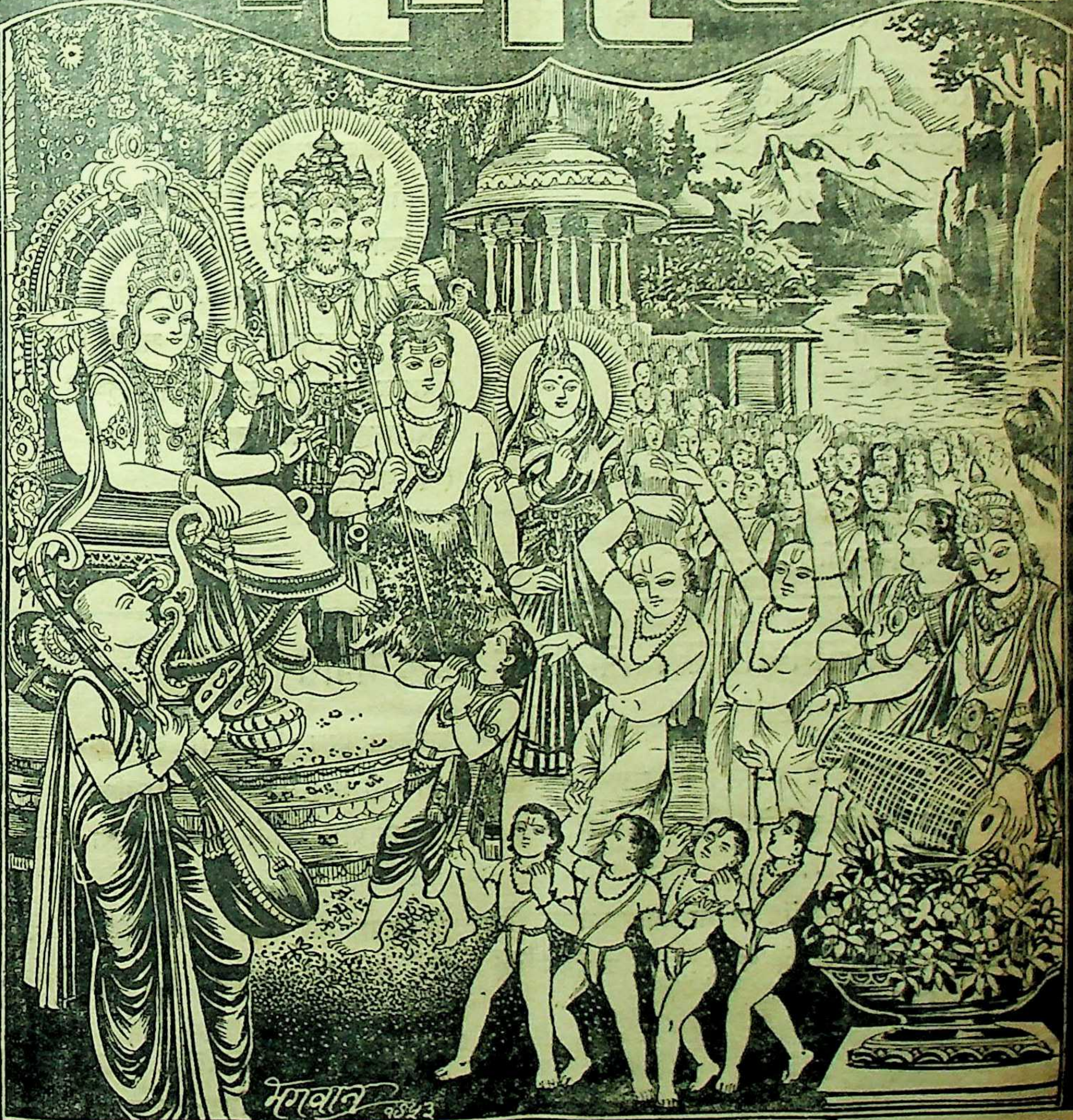
श्री भजनाश्रम में भजन करनेवाली माइयों को इस काल में अन्न वस्त्र वितरण कराना चाहिये एवं इस माह में माइयों द्वारा भजन कराना चाहिये। देश, काल, पात्र का विचार कर दिया दान सात्त्विक दान होता है; अतः देश, श्री वृन्दावन धाम श्रीकृष्णचन्द्रजी की लीलाभूमि, 'पात्र' भजन करनेवाली गरीब माइयाँ, 'काल' पुरुषोत्तम माह—सब बातें उपयुक्त हैं। यहाँ माइयाँ प्रति माह ६ घन्टे भजन करती हैं और ८।≡) आठ रुपया सात आना एक माह का खर्च लगता है। आप जितनी माइयों द्वारा भजन कराना चाहें ८।≡) प्रति माहके हिसाबसे मनीआर्डर या बीमा द्वारा भेजियेगा। सोमवती अमावस्या आदि पर्वोंके दिन अन्न-वस्त्र-वितरण कराना चाहें तो आपका समाचार आनेसे वितरण कर दिया जायेगा।

जिन सज्जनोंकी फुटकर सहायता आवेगी, वह सब एकत्रित कर अमावस्या व पूर्णिमाके दिन माइयोंको अन्न या वस्त्र वितरण किया जावेगा।

निवेदक—मन्त्री श्रीभगवान भजनाश्रम, वृन्दावन (मथुरा)

सम्पादक तथा प्रकाशक—गौरगोपाल मानसिंहका, श्रीभगवान् भजनाश्रम, वृन्दावन (मथुरा)।
मुद्रक—रामामोहन शास्त्री, श्रीगोविन्द मुद्रणालय, काशी।

नाम माहात्म्य



वर्ष १३] वृन्दावन [अङ्क ४

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

[अप्रैल सन् १९५३]

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावोंसे प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताहमें "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जाते हैं; फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले, उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भेजा जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्रव्यवहारमें अपना ग्राहक-नम्बर लिखनेकी कृपा करें एवं उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजने चाहिये। पत्रव्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पतेपर स्पष्ट अक्षरोंमें लिख कर भेजिये।

व्यवस्थापकः—"नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम
पोस्ट—वृन्दावन (मथुरा)

वार्षिक मूल्य २≡) संस्थाओंसे १॥≡) एक प्रतिका ≡)



वर्ष १३ || "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन, अप्रैल सन् १९५३ || अंक ४

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजुमन, हरण-भव-भय दारुणं ।
नव कञ्ज-लोचन, कञ्ज-मुख, कर-कञ्ज पद-कञ्जारुणं ॥ १ ॥
कन्दर्प अगणित अमित छबि, नव नील नीरद सुन्दरं ।
पटपीत मानहुँ तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक-सुता-वरं ॥ २ ॥
भजु दीनबन्धु दिनेश दानव-दैत्य-वंश-निकन्दनं ।
रघुनन्द आनँद-कंद कोसल-चन्द दशरथ नन्दनं ॥ ३ ॥
शिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदार-अंग-विभूषणं ।
आजानु-भुज-शर-चाप-धर, संग्राम-जित खरदूषणं ॥ ४ ॥
इति वदति तुलसीदास, शंकर-शेष-मुनि-मन-रञ्जनं ।
मम हृदय-कञ्ज निवास कुरु, कामादि खल-दल-गञ्जनं ॥ ५ ॥

—गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी

भगवान श्रीराम के आविर्भाव के समय माता कौशल्या कृत स्तुति

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला
कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन
हारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घन-
स्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला
सोभासिंधु खरारी॥१॥

जिनका वदन नेत्रोंको रुचिकर लगनेवाले श्याम बादलके तुल्य है, जो चारों हाथोंमें अपने दिव्य आयुधोंको धारण किये हुए हैं, जो दिव्य गहने तथा वनमाला पहने हुए हैं जिनके नेत्र विशाल हैं, ऐसे शोभाके सागर, खरके शत्रु, कौसल्याका हित करनेवाले और दीनों पर दया करनेवाले कृपालु भगवान प्रकट हुए। मुनियोंके भी मनोंको हर लेनेवाले आश्चर्यमय रूपको देख-विचार करके माता कौसल्या परम प्रसन्न हुईं॥१॥

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी
केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत
अमाना बेद पुरान भनंता॥
करुना सुख सागर सब गुन
आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनु-
रागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥२॥

माता कौसल्या दोनों हाथोंको जोड़कर बोलीं—'जिन्हें वेद-पुराण मायाके गुण और ज्ञानसे अतीत तथा मापरहित कहते हैं, श्रुतियाँ और महात्मागण जिनको करुणा और आनन्दके सागर तथा समस्त गुणोंके मन्दिर बतलाते हुए गुणोंका गायन करते रहते हैं, वे ही सेवकोंके प्रेमी लक्ष्मीकान्त प्रभु मेरे हितके लिये प्रकट हुए हैं, हे अनन्त! उन आपकी मैं किस तरह स्तुति-प्रार्थना करूँ? २॥

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया
रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी
सुनत धीर मति थिर न रहै॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसकाना
चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई
जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥

जिनके प्रत्येक रोम-रोममें मायाके बनाये हुए ब्रह्माण्डोंके समूह-के-समूह स्थित हैं, वे प्रभु मेरे पेटमें रहे—यह कैसे उपहासकी बात है। इस बातको सुनकर तो धैर्यवान् सज्जनोंकी बुद्धि भी अटल नहीं रहती। इस प्रकार माताके हृदयमें जब ज्ञान प्रकट हुआ, तब प्रभु मुस्कराने लगे और उन्हें नाना तरहकी लीलाएँ करनेकी इच्छा हुई, इसलिये उन्होंने पूर्वकी सुहावनी कथा सुनाकर माताको इस तरह समझाया कि जिससे वह उन्हें पुत्र मानकर प्रेम-लाभ करे॥३॥

माता पुनि बोली सो मति
डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला
यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना
होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद
पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥४॥

माता कौसल्याकी ऐश्वर्यबुद्धिमें जब हलचल मची, तब वह कहने लगीं—'हे तात! यह रूप त्याग दो और अत्यन्त प्रेमभरी शिशु-लीला करो; क्योंकि यह आनन्द उपमासे अत्यन्त परे है। प्रेमियोंके हृदयको तुरत पहचाननेवाले सुरेश्वर श्रीभगवानने माताके प्रेमवाक्य सुनकर बालरूप धारण किया और रोने लगे। जो प्रेमी भक्त इस पवित्र चरित्रको गाते हैं, वे प्रभुके परम पदको प्राप्त कर लेते हैं और पुनः लौटकर जगत्के कूएमें नहीं पड़ते॥४॥

श्रीरामनामका स्वामित्व

ले०—श्रीकान्त शरणजी

ईश्वरके साथ मुमुक्षु जीवके नव सम्बन्ध कहे गये हैं—१—पिता-पुत्र, २—रक्ष्य-रक्षक, शेष-शेषी, ४—भर्तृ भार्या, ५—ज्ञातृ ज्ञेय, ६—शरीर-शरीरी, ७—भोक्ता-भोग्य, ८—आधाराधेय और ९—स्व-स्वामि । तथा—

"पिता च रक्षको भ्राता भर्त्ताज्ञेयो रमापतिः ।
स्वाम्याधारो ममात्मा च भोक्ता चेति मनूदिता ॥"
(जिज्ञासा पञ्चक)

साधनकी दृष्टिसे मुमुक्षु क्रमशः इन पिता-पुत्र' आदि सम्बन्धोंकी भावना करता हुआ अन्तमें 'स्व-स्वामि' भावकी भावना करता है ।

नाम-जपमें नामार्थ-मननके रूपमें नामी (रूप) के ही गुणोंकी भावना होती है । उन गुणोंकी भावनाके अनुसार रूप ही जापकके मनोरथोंकी पूर्त्ति करता है । अतः, नाम और नामी अभिन्न हैं । कहा भी है—

"समुझत सरिस नाम अरु नामी ।
प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी ॥"
(श्रीरामचरित मानस बा० २०)

अतः, यहां रूपके स्वामित्वके अनुसार नामका स्वामित्व कहा जाता है ।

श्रीवाल्मीकिजीने उल्टे नामकी निष्ठासे तत्त्व साक्षात्कार कर रामायण निर्माण किया है । वैसे ही श्रीगोस्वामीजीने सीधे नामकी निष्ठासे तत्त्व लाभकर श्रीरामचरितमानस आदि द्वादश ग्रन्थोंका निर्माण किया है, यह स्पष्ट कहा गया है; यथा—

"जानहिं सिय रघुनाथ भरतको सील-सनेह महा है ।
कै तुलसी जाको राम-नाम सों प्रेम-नेम निबहा है ॥"
(गीतावली अयो० ६४)

"राम-नामको प्रभाउ, पाउ महिमा प्रताप ।
तुलसी सो जग मानियत महामुनी सो ॥"
(कवितावली उ० ७२)

अतः, श्रीगोस्वामीजीने नाम-निष्ठासे ही नाम-रहस्यका भी साक्षात्कार किया है 'श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड दोहा १८ से २७ तक नव दोहोंमें आपने विशेष दृष्टिसे नाम-वन्दनाके रूपमें नाम-रहस्य कहा है । नवों सम्बन्धोंकी दृष्टिसे नव दोहोंमें क्रमशः एक-एक सम्बन्धके साथ-साथ नाम-निष्ठाका तत्त्वतः प्रतिपादन किया है । यहाँ पहले दोहेमें 'पिता-पुत्र' और नवेंमें 'स्व-स्वामि' संबंधकी व्यवस्थायें हैं । क्रमशः दोहोंमें जापककी सम्बन्धानुसार भावनापर नाम द्वारा श्रीरामजीके वर्त्ताव कहे गये हैं ।*

उस नाम-वन्दनाके दूसरे दोहेमें "राम लखन सम प्रिय तुलसी के" से "जीह जसोमति हरि हलधरसे ॥" तक नवों सम्बन्धोंके बीज क्रमशः कहे गये हैं और क्रमशः वन्दनाके नवो दोहे उनके साक्षात्कारके हैं । यहाँ इस नामके स्वामित्वका बीज स्वरूप इस प्रकार है ।

"जीह जसोमति हरि हलधरसे ।"

अर्थ—जीभ रूपिणी श्रीयशोदाजीके लिये (श्रीरामनामके दोनों वर्ण श्रीकृष्ण और बलराम के समान हैं ।

---

* इस विषयपर मेरा लिखा हुआ एक ग्रन्थ 'श्रीमन्मानसनाम-वन्दना-तत्त्वार्थ-सुमिरिनी टीका सहिता' प्रकाशित है । लगभग ४० फरमेंकी पुस्तक है । 'श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई'में ३॥) को मिलती है । उसमें नामका पारमार्थिक रहस्य देखने योग्य है ।

विशेष—जैसे श्रीकृष्ण भगवान् श्रीदेवकीजीके गर्भसे प्रकट होकर गुप्त रीतिसे आकर श्रीयशोदाजीके पुत्र कहाये और श्रीबलरामजी भी श्रीदेवकीजीके ही गर्भसे योगमाया द्वारा जाकर श्रीरोहिणीजीके गर्भसे प्रकट होकर मित्रताके संयोगसे बाहरसे आकार श्रीयशोदाजीके पुत्र कहाये। वैसे ही श्रीराम-नाम उच्चारणके समय प्रथम इसके दोनों वर्ण (रा म) नाभि-स्थान रूपी मथुराकी परावाणी रूपिणी देवकीसे स्फुरित होते हैं; यथा—

"नाभिहृत्कंठजिह्वोत्थाश्चतस्रः क्रमतो गिरः।
परा तथा च पश्यन्ती मध्यमा वैखरी च ताः॥
श्रीसीतारामयोस्तत्त्वं वर्णनं सा परा भवेत्।"
(जिज्ञासा-प॰ क)

अर्थात्—नाभि, हृदय, कण्ठ और जिह्वासे क्रमशः परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणीके उत्थान होते हैं। श्रीसीतारामतत्त्वका वर्णन परावाणीका कार्य है (जीवतत्त्व-निरूपणमें पश्यन्ती, अर्थ, धर्म, और काम आदिमें मध्यमा तथा व्यवहारमें वैखरी वाणीकी प्रवृत्ति रहती है)।

श्रीकृष्णकी भाँति 'रा' अकेला ही मुखरूपी गोकुलमें आकर जीभरूपिणी यशोदाजीसे प्रकट होता है। श्रीयशोदाजी की भाँति जिह्वा भी इस 'रा' को अपने पुत्रकी भांति निजोच्चरित ही मानती हैं और मकाररूपी बलरामजीको ओष्ठ स्थान रूपिणी रोहिणीने भी प्रसिद्धरूपमें अपना स्पर्श-जन्यपुत्र ही समझा है। ये दोनों (यशोदा और रोहिणीकी भाँति) इन दोनों वर्णोंको परावाणी रूपिणी देवकीके गर्भ-संभूत नहीं जानतीं। वैखरी वाणीसे नाम लेनेमें मकार उच्चारणके समय जीभसे ओष्ठका संयोग होता है, यही यशोदा और रोहिणीकी मित्रतासे बलरामजीकी प्राप्ति है।

श्रीकृष्ण और बलरामजीके एकत्र होनेपर श्रीयशोदाजी-के द्वारा ही दोनोंका लालन-पालन होता था। वैसे ही जीभ-को भी श्रद्धा एवं उत्साहसे पुत्रवत् निजोच्चरित दोनों वर्णोंका अहर्निशि लालन-पालन रूपमें रटन करना चाहिये। यहाँ तक उत्पत्ति एवं संगका रूपक हुआ और क्रिया कही गई। आगे इनके स्वामित्वसे लाभ दिखाते हैं—

'हरि हलधरसे'—क्लेश हरण करनेवालेको 'हरि' कहते हैं। भाव यह कि यदि जीभ यशोदाजीकी भांति स्नेहपूर्वक दोनों वर्णोंका लालन-पालन करती रहे तो ये दोनों वर्ण (रा म) इसके ऊपर आनेवाली सभी बाधाओंके क्लेशोंका हरण करते हुए इसे आनन्दमय रखते हैं।

सम्बन्ध—जैसे श्रीयशोदाजीसे सेवित कृष्ण-बलरामने उनपर आई हुई सभी बाधाओंको स्वतः जान-जानकर, उनसे उनकी रक्षा की है। वैसे जीभसे सेवित श्रीरामनाम अपने आश्रित जापककी काल, कर्म, गुण और स्वभावकी बाधाओं-से रक्षा करता है। यह नाम-वंदनाके नवें दोहेके प्रसंगोंसे दिखाता हूँ, क्योंकि वही दोहा इस 'स्व-स्वामि' सम्बन्धके साक्षात्कारका प्रकाशक है।

गोकुलमें श्रीयशोदाजी दोनों बालकोंका आनन्दपूर्वक पालन कर रही थीं उसी समय वहां अपने कुचोंमें कालकूट लगाकर पूतना आई। उसने श्रीकृष्णको दूधके साथ विष पिलाकर मारना चाहा, परन्तु उसके छलको भगवान्ने जान लिया और उसे मार डाला, उसे माता की-सी गति दी; यथा—

"गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातुकी गति दई ताहि कृपालु यादवराइ॥"

वैसे ही जापक (सतयुगी) शुद्ध सत्त्व वृत्तिसे नामा-राधनमें निमग्न रहता है और कालवृत्ति पूतनाकी भाँति संयोग-वियोग आदि द्वारा विषय सम्बन्धी हर्ष-विषाद आदि कालकूट लगाकर आती है, वह आत्मवृत्ति नाशक है। जैसे पूतनाने सुन्दररूपसे आकर श्रीकृष्णको दूध पिलानेके मिषसे विष देना चाहा था। वैसे ही काल प्रेरित लोग जापकके पास नाना भोग सामग्री एवं मिष्टान्न आदि लेकर आते हैं और

अपनी बातोंमें इसका नाम-जप छुड़ा देते हैं। उनका भाव तो यह रहता है कि इससे जापक भिक्षासे अवकाश पा विशेष नाम रटेगा। नाम शिशु मोटा होगा, पर इसमें जापक उनके कनौड़ होकर पाप-पुण्य एवं दुःख-सुखमें भागी यही होता है, इसका विषवत् परिणाम है। वहां श्रीकृष्णने उसे मार डाला, वैसे यहां नाम जापकको विवेक देता है, उससे यह इन संयोग-वियोगोंसे निर्लिप्त होकर विशेष नामरत हो जाता है। इसी को नाम वन्दनाके नवें दोहेमें कहा है—

"नाम काम तरु काम कराला।
सुमिरत समन सकल जगजाला॥"

इसमें संयोग-वियोग आदि जगत् के जाल रूपमें कालकी करालतासे नामका रक्षकत्व कहा गया है। काल-बाधासे यहां चित्त-वृत्तिकी रक्षा है। जैसे वहां यशोदा आदि श्रीवृन्दावन आये। वैसे जापककी वृत्ति त्रेतायुगकी सी कभी प्राप्त होती है, कुछ रजोगुणका संपर्क रहता है। हृदयमें बुद्धि प्रधान रहती है। वहां कृष्ण-बलराम बछड़े चराने लगे थे, तब ब्रह्माजीके मोहकी बाधा हुई थी। वैसे ही नाम जापककी बुद्धिके देवता ब्रह्माकी अनवधानतासे बुद्धिपर कर्मबाधा होती है, इसमें कर्तृत्वाभिमान आता है। वहां भगवानने अपना सृष्टि करना दिखा उनका मोह छुड़ाया। वैसे ही नाम द्वारा विवेक प्राप्त हो जाता है कि कर्मों के कर्तृत्वमें ईश्वरका नियाम्य होनेसे जीव स्वतन्त्र कर्त्ता नहीं है। इस प्रकार नाम कर्मबाधाका निवारण करता है, यही नाम वंदनाके नवें दोहेमें कहा है—

"राम नाम कलि अभिमत दाता।
हित परलोक लोक पितु माता॥"

अर्थात् जापकका लोक परलोक हित-विधायक नाम ही है, सभी मनोरथ यह पूर्ण करता है। 'मैं अपने कर्मोंसे लोक-परलोकके मनोरथ सम्पन्न करता हूँ' यह भ्रम नहीं रहता। इस लक्ष्यसे बुद्धिकी कर्म-बाधासे रक्षा होती है।

जैसे वहां वृन्दावनमें ही कालीदहमें कालीनागकी बाधाका संयोग, गोवर्धन पूजापर इन्द्रका कोप और श्रीनन्दजीके वरुणलोक जानेकी बाधा हुई थी। तीनों बाधाओंसे श्रीकृष्णने ही रक्षा की थी।

वैसे ही बुद्धिकी ही कार्यावस्था त्रिधा अहंकार है, इसके तीनों गुणोंकी बाधायें होती हैं। जापकको द्वापर युगकी वृत्तिमें गुण बाधासे रक्षा की आवश्यकता होती है।

सत्त्वगुण बढ़कर सुखकी स्पृहा बढ़ा तदर्थ सत्कर्मकी प्रेरणा करता है। जैसे वहां कंसने नन्द आदिसे कालीदहके कमल मांगे थे। वैसे यहां मनरूपी कंस कर्म चेष्टापर आत्मविवेक रूपी कमलवत् निर्लिप्त वृत्तिकी कांक्षा करता है। वह वृत्ति निष्काम कर्मसे प्राप्त होती है। किन्तु जापक निवृत्त चित्तसे नाम रत है। अतः इस कर्मके अंगभूत सत्त्वगुण यमुनाके कालीदहके समान और कर्म-वृत्ति सहस्रों विषैली कामना रूपी फणोंसे युक्त कालीनागके समान भयंकर जान पड़ती है। इससे यह नन्द, यशोदाकी भांति रोता है।

वहां श्रीकृष्णने अपनी क्रीड़ासे यमुनाजीके उस दहमें कूदकर कालीनागको नाथकर कमलपुष्प दे कंसको सन्तुष्ट कर दिया है और कालीनागको सदाके लिये अन्यत्र भेज दिया है। वैसे ही नाम कर्मयोगके फलरूप आत्मविवेकका साक्षात्कार कर मनको सन्तुष्ट कर देता है और बढ़े हुए सत्त्वगुणको शान्त कर देता है यथा—

"जथा भूमि सब बीजमय, नखत-निवास अकास।
राम नाम सब धरममय, जानत तुलसीदास॥"
(दोहावली २६)।

"राम नाम लेत होत सुलभ सकल धरम।"
(विनय० १३१)।

वहां पर इन्द्रपूजा छोड़कर भगवान्ने गोवर्द्धन पूजा कराई है, इसपर इन्द्रने कोपकर भारी वर्षा की है।

भगवानने गोवर्धन धारण कर उसीके द्वारा इन्द्रका मद चूर्ण किया है। वैसे ही जापकपर रजोगुण वृद्धिमें चपलता आती है और इन्द्रियोंके देवोंकी तृप्ति करनेकी आवश्यकता पड़ती है। तब नामरूपी श्रीकृष्ण यह विवेक देते हैं कि इन इन्द्रियोंके द्वारा भक्ति करो; क्योंकि हृषीक (इन्द्रियों) की तृप्ति हृषीकेशकी सेवामें होती है और—

"हृषीकेश हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।"

भक्ति करती हुई इन्द्रियां अन्तःकरणके साथ पवित्र हो तृप्त हो जाती हैं। परन्तु वहां इन्द्रके कोपकी भांति इन्द्रियां भक्ति करते समय विषय स्पृहाओंकी झड़ी लगा देती हैं। तब यहाँ नाम द्वारा भगवान् कृपा कर इसकी श्रद्धाका धारण कर इससे भक्ति करा इसके प्रारब्ध सम्बन्धी विषय चेष्टाओंको भक्तिमें लगा समाप्त कर देते हैं। आगेके लिये कर्मसंस्कार बनते ही नहीं। यही इन्द्रके जलकी समाप्ति है। इन्द्र अधीन हो गया, वैसे ही इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं। यह नाम द्वारा रजोगुणसे रक्षा है।

वहाँ श्रीनन्दजी एकदशी व्रतकर ब्रह्ममहूर्त्तसे पहले यमुना स्नान करने गये। वहींसे वरुणके दूत उन्हें पकड़ ले गये, तब श्रीकृष्णने उन्हें छुड़ाया है। उसी प्रसंगमें वरुणसे भी पूज्य श्रीकृष्णको देखकर श्रीनंदजीको उनके ऐश्वर्यका विवेक हुआ है।

वैसे जापकपर तमोगुण वृद्धिमें विवेक द्वारा उसे शान्त करनेकी आवश्यकता पड़ती है। नन्दजीने एकादशी व्रत किया था और उसी प्रसंगमें वे बाँधे गये थे, वैसे यह भी एकादशी व्रतपर दृष्टि देता है; यथा—

"एकादसी यक मन बस करि सेवहु जाय।
सोइ व्रत कर फल पावै आवागमन नसाइ॥
(विनय० २०३)।

एकादशी विष्णु भगवान्‌की ग्यारहवीं इन्द्रिय है। उस दिन मुमुक्षु अपनी ग्यारहवीं इन्द्रिय मनको वश करके उसके द्वारा व्यापक (विष्णु) से अन्न त्याग कर यह भाव प्रकट करता है कि मैं अब संसारमें जन्म नहीं चाहता; यथा—

"अन्नमयं हि सौम्य मनः" (छान्दो० अ० ६)...

तथा—

"अन्नाद्भवन्ति भूतानि।" (गीता० अ० ३)।

यही विवेक है। पुनः यह शास्त्र रूपी यमुनामें मनन रूपी स्नान में समझता है कि जीभके देवता वरुणके द्वारा मैं बाँधा गया हूँ। रसनाके भोगसे ही तृष्णा-बन्धन होता है। नाम रूपी कृष्ण उस बन्धनसे भी छुड़ाकर अपने ऐश्वर्य का ज्ञान करा देते हैं।

इस प्रकार विवेकदे नाम तमोगुणसे रक्षा करता है; क्योंकि तमोगुणसे शब्दादि विषय होते हैं, उन्हींसे जीव भव-बन्धनमें पड़ता है।

इस प्रकार नाम कर्म, भक्ति और विवेक देकर तीनों गुणोंकी बाधाओंसे रक्षा करता है, इसीको नाम वंदनाके नवें दोहेमें स्पष्ट कहा है—

"नहिं कलि करम न भगति विवेकू।
राम नाम अवलंबन एकू॥"

यहाँ नाम द्वारा गुणबाधा से त्रिधाअहंकारकी रक्षाका प्रसंग है।

जापक मुमुक्षु पर कभी प्रारब्धानुसार कलियुगकी वृत्ति आती है। तब यह कलि-ग्रसित जगत्‌के अनुसार स्वभाव बाधासे मनकी रक्षा चाहता है। उससे रक्षाका प्रसंग नाम वन्दनाके नवें दोहेके अंतमें कहा गया है—

"कालनेमि कलि कपट निधानू।
नाम सुमति समरथ हनुमानू॥"

अर्थात् कपट–निधान कलियुग कालनेमिके समान है और नाम सुन्दर मतिमान्, बलवान् श्रीहनूमान्‌जीके समान है।

विशेष—हनूमान्‌जीने सुमतिसे कालनेमिके कपटको जानकर बलसे उसे मार डाला है। वैसे ही नाम जापकको सुमति देकर कलियुगके जालका ज्ञान करा देता है और फिर बलरूपी वैराग्य देकर उससे उसका नाश करा देता है। बल ही वैराग्य है।

यथा—

"जब उर बल बिराग अधिकाई।"

इस प्रकार नामका स्वामित्व संक्षेपमें कहा गया कि यह अपने आश्रित जापककी काल, कर्म, गुण और स्वभाव-बाधा पर क्रमशः इसके चित्त, बुद्धि, अहंकार और मनकी रक्षा करता है। स्पष्ट भी कहा गया है; यथा—

"काल करम गुन सुभाउ सबके सीस तपत।
राम नाम महिमाकी चरचा चले चपत॥"
(विनय० १३०)।

नाममें ये सब गुण स्पष्ट भी कहे गये हैं; यथा—

"धर्म कलत्रमाराम, हरिधाम पथि संबलं, मूलमिदमेव एकं।
भक्ति वैराग्य विज्ञान सम दान, दम नाम आधीन साधन अनेकं॥
तेन तप्तं; हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं।
येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमनिसमनवद्यमवलोक्य कालं॥"
(विनय० ४६)।

प्रसंग विस्तारके भयसे मैंने यहाँ स्वभाव-बाधा प्रकरण तो बहुत ही सूक्ष्ममें लिख दिया है। स्वभाव-बाधामें श्रीकृष्ण-बलरामका प्रसंग छोड़कर नामको श्रीहनूमान्‌रूप कहा है। श्रीकृष्ण चरितमें बड़े विस्तारमें सब बातें आती, इस रूपकमें सहजमें आ गई हैं। उपर्युक्त सभी प्रसंग यहाँ संकेत मात्र कहे गये हैं। जिन्हें विस्तारसे समझना हो, वे ऊपर नोटमें लिखे हुए 'श्रीमन्मानसनाम वंदना' देखें।



कितना सरल, कितना कठिन!

[श्रीकृष्ण दत्तजी भट्ट]

महात्मा चरणदासने साधु जीवन बितानेके लिए केवल दस बातें बतायी हैं—

वाणीसे

(१) झूठ न बोले,
(२) निन्दा न करे,
(३) कडुवा न बोले,
(४) मौन रहे।

शरीरसे

(१) चोरी न करे,
(२) व्यभिचार न करे,
(३) हिंसा न करे।

मनसे

(१) खोटी चितवन छोड़े,
(२) वैर छोड़े,
(३) अभिमान छोड़े!

कितनी सीधी, कितनी सरल बातें हैं!

वाणीसे हम रात दिन झूठ बोलते हैं, दूसरोंकी निन्दा करते हैं, ऐसे व्यंग्य वाण छोड़ते हैं कि 'श्रवण द्वार ह्वै संचरै, बेधै सकल सरीर'—इन बातोंको छोड़ना है और इसके लिए अधिकसे अधिक समय तक मौन रहना है।

शरीरसे हम चोरी न करें, दूसरेकी चीज न लें, दूसरोंकी बहूबेटीपर बुरी नजर न डालें और किसीको सतायें नहीं। किसीको तकलीफ न पहुँचायें।

मनसे हम खोटी चितवन छोड़ दें, किसीकी चीजपर खोटी दृष्टि न डालें, किसीके प्रति वैरभाव न रखें, किसीसे दुश्मनी न पालें, किसी चीजका, रुपये पैसे धन दौलत, स्त्री-पुत्र, विद्याबुद्धि, पद-सम्मान किसी वस्तुका, जातिवर्ण, कुल वैभव, यहां तक कि शरीरका भी, इस 'पानी भरी खाल' का घमण्ड न करें।

सिर्फ इतना ही तो करना है। सोचनेकी बात है कि इसमें कौनसी बात कठिन है। क्या मुश्किल है इसमें? भला इसमें ऐसी कौनसी बात है जो हम करना चाहें और न कर सकें?

(१) झूठ बोलनेमें मुश्किल हो सकती है, एक बात छिपानेके लिए दस बातें बनानी पड़ सकती हैं पर सच बोलनेमें क्या मुश्किल है?

(२) निन्दा करनेमें मुश्किल हो सकती है, उसके चलते दुश्मनी हो सकती है, पैसेकी हानि हो सकती है, तरह तरहकी खुराफातें खड़ी हो सकती हैं, पर पर निन्दा न करनेमें, किसीकी चुगली न खानेमें क्या मुश्किल हो सकती है?

(३) कडुवा बोलनेमें मुश्किल हो सकती है, उसके चलते आदमी सबका कडुवा बन सकता है, तरह तरहका उससे नुकसान हो सकता है, पर कडुवा य बोलनेमें क्या मुश्किल है?

(४) व्यर्थ बकवाद करनेमें मुश्किल हो सकती है, उसके चलते तरह तरहकी झंझटें पैदा हो सकती हैं, पर चुप रहनेमें, मौन रहनेमें क्या मुश्किल है?

(५) चोरी करनेमें मुश्किल हो सकती है, पकड़े जाने पर मार पड़ सकती है, जेल जाना पड़ सकता है, बदनामी हो सकती है, पर चोरी न करनेमें क्या मुश्किल है?

(६) व्यभिचार करनेमें मुश्किल हो सकती है, आफत आ सकती है, भारी हानि उठानी पड़ सकती है, पर ऐसा न करनेमें क्या मुश्किल है?

(७) हिंसा करनेमें मुश्किल हो सकती है, पत्थरका जवाब पत्थरसे मिल सकता है, पर हिंसा न करनेमें क्या मुश्किल है?

(८) खोटी चितवन रखनेमें मुश्किल हो सकती है, उससे लोभ आ सकता है, क्रोध आ सकता है, मोह आ सकता है, पर खोटी चितवन न रखनेमें क्या मुश्किल है?

(९) वैर रखनेमें मुश्किल हो सकती है, वैरका बदला भयंकर हो सकता है, पर वैर न रखनेमें क्या मुश्किल है?

(१०) अभिमान करनेमें मुश्किल हो सकती है, घमंडीका सिर नीचा हो सकता है, पर अभिमान न करनेमें क्या मुश्किल है?

इतनी सीधी सादी बातें हैं, पर हमसे इतना भी नहीं हो पाता! पगपगपर हमें कठिनाईका बोध होता है। सच बोलने जाते हैं, झूठ बोल बैठते हैं। अपनी बात कहने जाते हैं, दूसरेकी बुराई कर बैठते हैं। मीठी बात करनेकी सोचते हैं, मुंहसे जहर उगल देते हैं। शान्त रहना चाहते हैं और अशान्तिका दर्वाजा खोल बैठते हैं। शारीरिक और मानसिक दोषोंकी भी ऐसी ही कहानी है!

सच पूछा जाय तो हमारा हाल वही है कि "दिल तो चलता है, मगर टट्टू नहीं चलता!"

पर हम यदि साधु बनना चाहते हैं, साधक बनना चाहते हैं, अपना कल्याण करना चाहते हैं, परमार्थ पथपर अग्रसर होना चाहते हैं, मालिकके दरबारमें अपनी रसाई चाहते हैं तो सबसे पहले हमें इन दस सीधी सादी सरल बातोंको जीवनका अंग बनना पड़ेगा फिर ये कितनी ही कठिन क्यों न हों?

"हरिनो मारग छे शूरानो, नहिं कायरनुं काम जोने।"

श्रीवृन्दावनधाममें भगवान

लेखक—श्रीगोविन्दसहायजी वर्मा, साहित्यरत्न

प्रत्येक तीर्थ अपने-अपने प्रभावकी एकरूपता रखते हुए भी कुछ ऐसी व्यक्तिगत विशेषताएँ लिए रहता है, जो अनिर्वचनीय होते हुए भी अनुभवगम्य होती हैं। विश्वमें भारत ही एक ऐसा देश है, जिसमें अनेक तीर्थ वास्तविक सार्थकता लिए हुए स्थित हैं। यह तो इतिहास सिद्ध बात है कि विश्वको आलोक प्राची ही ने दिया है।

तीर्थ इस लोक में अवस्थित रहते हुए भी उससे कुछ न्यारे रहते हैं। श्रीवृन्दावनधाम वह क्षेत्र है—जहाँ भगवान श्रीकृष्णने अपनी भुवन मोहनी बालकेलि की है। कवियोंने इस भूमिकी जो प्रशंसा-की है, कदाचित ही और किसी अन्य भूमिकी हो। भक्त तो व्रज-रजके कण-कणमें आप भी उसी दिव्य ज्योतिके दर्शन पाते हैं। कालिन्दीके कूल, वंशीवट, निधिवन, सेवाकुंज इत्यादि अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ भक्तोंको वही साकार दर्शन होता है। यद्यपि वृन्दावन अब वह बन नहीं रहा। ऊँची-ऊँची अट्टालिका आकाश चुम्बी मन्दिरोंके स्वर्णकलश, सड़कें चहल-पहल आदि उसे 'नगरत्व'का जामा पहना चुकी हैं। परन्तु इस धाममें एक अनश्वर प्रकाश आज भी उसी रूपमें है, जिसमें वह युग-युग पहले था।

भावना, विषयको अपने अनुरूप बना लेती है। यहाँ कुछको अँधेरा, दिखेगा, जिनकी आँखें पश्चिम-की चकाचौंधसे चौंधियाई हैं; यहाँ उन्हें उदासीनता दीखेगी—जिनके लिए भौतिकतासे परे कुतूहलके अतिरिक्त कुछ नहीं, यहाँ भगवत्-दर्शन होंगे, जो उसके लिए पागल हैं। इन तीनों से अलग एक और वर्ग है, जो ईमानदारीसे कुछ खोज करना चाहता है।

वृन्दावन वह धाम है जो कृष्णको जन्म देकर स्वयं कृष्णमय बन गया है। कितने ही भक्तोंने इसकी रजसे लोट-लोटकर अपने जीवनको सफल बनाया है। यह वह भूमि है, जहाँ किम्वदन्तीके अनुसार 'राधाकृष्ण कहें सबै आक ढाँक अरु कैर'। यह वह पुण्य स्थल है—जिसके कण-कणमें उस विभुकी आत्मा व्यक्त है। भक्तप्रवर सूरदास, महाप्रभु, हितहरिवंश, नंददास आदि अनेक भक्त रत्नोंकी जन्मदात्री यही व्रजभूमि है। कुछ भी हो, समयकी सत्ता सभी क्षेत्रोंमें स्वीकार करनी ही पड़ेगी। विपिन-बिहारी की यह लीलाभूमि उसके लिए अपवाद नहीं है।

वृन्दावनधाममें अनेक विभूतियाँ अवतरित हैं। बहुतोंने वास्तविक भक्ति की है, कुछ ऐसे भी भक्त यहाँ आते रहते हैं, जो परिस्थितिके मारे हुए थे। सभी व्यक्ति एकसे तो नहीं होते। इन भक्तोंमें असली, नकली और फसली तीनोंका मिश्रण होने लगा। बंगालकी कुलीन प्रथाने समाजके साथ जो पाप किया है, वह दन्तकथा मात्र नहीं है। सैकड़ों विधवाएँ आजभी अपने जीवनको अभिशाप रूपमें लेकर इसकी दुःख गाथा कहती हैं। इन विधवाओंको आश्रय दो ही क्षेत्रोंमें मिला—एक तो काशी दूसरे वृन्दावनधाम। वृन्दावनधाममें इन हतभागनियोंकी

दशा कम कष्टकर न थी। कुछ वर्ष पहले ये विधवायें पावनभूमि में अपने जीवनका भाररूप लेकर समाज-के लिए कष्टमय भार बनी फिरती थीं, मंदिरोंमें, सड़कों पर, गली कूचोंमें 'हरे कृष्ण' के नामपर भीख माँगना ही इनका काम था। पवित्र भूमिमें ये नारकीयताका दृश्य उपस्थित करती थीं। परन्तु भगवानका खेल कुछ विचित्र ही है।

संवत् १९७५ के लगभग प्रभु प्रेरणासे एक भगवत् भक्तके मनमें यह समस्या आयी। अपनी लाखोंकी संपत्ति उसने इनकी सेवाके लिए अर्पित कर दी। तब लाख कोई छोटी रकम नहीं। इस सन्तने वृन्दावनमें एक 'भजनाश्रम' खोला। ये विधवायें इस आश्रममें आठ घंटे नाम सङ्कीर्तन किया करती थीं। आश्रमकी ओरसे उनकी जीविकाके निर्वाहकी व्यवस्था थी। आश्रमने कुछ उतार चढ़ाव भी देखे, परन्तु वह अपने सेवा पथमें निरन्तर बढ़ता ही गया। आज इसके अन्तर्गत कई संस्थायें काम कर रही हैं। लगभग ९०० विधवायें भजन करती हैं और उनपर एक लाख के लगभग वार्षिक व्यय होता है। वृन्दावनमें आज भिखारियोंकी संख्या बहुत थोड़ी मिलेगी। जिस विभूतिने इस आश्रमको स्थापित किया, उसने समाज और व्यक्तिका कितना कल्याण किया है, यह प्रत्यक्षदर्शी ही भलीभाँति जान सकता है।

आश्रमके उक्त संस्थापक अभी जीवित हैं। उनकी आयु ८५ वर्षके लगभग है। वैभवकी गोदमें पला हुआ यह कर्मठ तपस्वी वर्षोंसे रूखे सूखे जीवनपर अपना निर्वाह करता है, घी दूध स्पर्श नहीं करता। उसकी मान्यता है कि जो भोजन हम इन निराश्रित विधवाओं को दे सकते हैं, उतना ही हमें स्वयं खाने-का स्वत्व है। इतना होते हुए भी वह स्वस्थ है, प्रसन्न हैं।

हमें इस विभूतिके दर्शन पानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसका एकमात्र उपदेश था—"भगवन्नाम सङ्कीर्तन।" नाम-सङ्कीर्तनका क्या प्रभाव है, यह एक स्वतन्त्र विषय है। हम तो यही धारणा लेकर लौटे कि यही साकार तीर्थ है। ऐसे ही साकार तीर्थोंके पुण्यपर पृथ्वी टिकी है।

रामके सम्मुख हो जाओ

दरिया गैला जगत से, समझ औ मुख से बोल।
नाम रतन की गाँठड़ी, गाहक बिन मत खोल॥
दरिया साँचा राम है, और सकल ही झूठ।
सनमुख रहिये राम से, दे सबही को पूठ॥

दरिया साहब

रामचरितमानसकी अनुक्रमणिका

(लेखक—शास्त्री पं० श्रीगोविन्दजी दूबे "साहित्य रत्न")

—: गताङ्क से आगे :—

अब, ईश्वरसे विपरीत जो जीव है, उनके धर्मोंका लक्षण स्पष्ट कराये देते हैं।

हरष विषाद ज्ञान अग्याना।
जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥

जीव ईश्वरसे विलग है कोई इसे पुत्र मानते हैं, कोई अंश तथा कोई परिणाम मानते हैं। जीव ईश्वरका सजातीय होते हुए भी अनादिकालसे उससे विलग हो गया है, और भूल गया है, ईश्वरका अंश होते भी माया की सहायतासे इसने विजातीय गुणोंका आश्रय ग्रहण कर लिया है, हरष-विषाद-ज्ञान-अज्ञान अहमिति, अभिमान, जीव के धर्म स्वाभाविक धर्म हो गए हैं, वास्तविक नहीं थे। ए धर्म जीवात्मा में ही हैं परमात्मा में नहीं तुम्हें नरनाट्यमें जो विषाद देखकर सन्देह हुआ था वह धर्म ईश्वरका नहीं जीव का है, ईश्वर तो द्वंद्वातीत है, ईश्वर और जीवका सजातीय सन्बन्ध जातीयता में है गुणों अथवा धर्ममें नहीं अतः सन्देह अनुपयुक्त है।

अंशोनानाप्यपदेशादन्यथा·········अर्वायत एके प्रकाशादिवच्चैवं परः ।

इस प्रकार ईश्वर जीवके धर्मोंको विपरीत दिखलाकर पुनः राम का ब्रह्मत्व प्रतिपादन करते हैं—

राम ब्रह्म व्यापक जगजाना।
परमानन्द परेस पुराना॥
पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि, प्रगट परावर नाथ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ कहि सिव नायकमाथ॥

राम ब्रह्म हैं; व्यापक हैं, इस बातको संसार जानता है; परम आनन्दकी राशि सबसे परे और सबसे प्राचीन हैं; वे पुरान-प्रसिद्ध पुरुष हैं; प्रकाश की राशि और मायादिक समस्त जगत्के जो स्वामी हैं वही राम दशरथनन्दन रघुकुलमें उत्पन्न मेरे भी स्वामी हैं। जो वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्म है वही योगियों का ईश्वर है राम इन दोनोंसे भिन्न नहीं है एक ही है। ऐसे राम पर जो सन्देह करते हैं वे अग्यानी हैं; अपनी भूल को वे जबरदस्ती भगवान् पर डालते हैं। बात असल यह है कि मायालिप्त जीव को ब्रह्म का स्वरूप समझ तो आता नहीं है वे उसे अपनी स्थितिकी भाँति तौलते हैं अर्थात् अपने समान उसे समझने का प्रयत्न करते हैं इसी में भ्रम हो जाता है। अपने सन्देह को अन्य पर आरोपित करनेका नाम अध्यास है; कोई व्यक्ति आकाशमें बादलोंके समुदायको देखकर यह कह उठे कि सूर्यको बादलोंने ढक लिया तो यह अनुपयुक्त है; भला समस्त ब्रह्माण्डको प्रकाश देनेवाला सूर्य कभी बदलीसे ढक सकता है, जिस प्रकार यह कुविचार है उसी प्रकार राम पर सन्देह भी! उमा! भगवान् राम पर सन्देह करना इस प्रकार है। जिस प्रकार आकाशमें धूल धूम और अन्धकार हों! अर्थात् इनकी सत्ता उसमें रहते भी जिस प्रकार इनसे निलिर्त रहता है उसी प्रकार भगवान् रामकी सत्ता भी है।

इस प्रकार अध्यासवादके अनन्तर विवर्तवाद द्वारा पुनः उसीका प्रतिपादन करते हैं—

विषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक ते एक सचेता॥

सबका परम प्रकाशक जोई।
राम अनादि अवधपति सोई॥

विषय तथा इन्द्रियां उनके देवता और जीवात्मा ए सबके सब क्रमशः एकसे एक चैतन्य हैं, विषयोंसे इंद्रियां चैतन्य उनसे उनके देवता और उनसे चैतन्य जीवात्मा है; इन सबमें जिस शक्तिसे चैतन्यता आती है जिसके प्रकाशसे इनका संचालन होता है वह पर ब्रह्मकी शक्ति ही है; उस शक्ति का उस चैतन्यताका उस प्रकाशका प्रदाता पर ब्रह्म ही है; और वह राम है कोई अन्य नहीं। विवर्तवादमें ईश्वरको जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान कारण माना गया है, उसकी सत्तासे ही जगत्को जीवात्माको तथा इन्द्रियोंको उसके प्रकाशसे ही शक्ति मिलती है; वही समस्त जगत्का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्ता और भर्त्ता है वही संसार में वस्त्रोंमें पटकी भांति अथवा दोनोंमें धागेकी भांति व्याप्त है—

"अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।"
मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय
मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे मणिगणादिव"
(गीता ७।६।७)

अब त्रिपुटीके द्वारा भी उक्त विषयका प्रतिपादन करते हैं। प्रत्येक शास्त्रकारने अपने विषयका प्रतिपादन करनेकी दृष्टिसे पारिभाषिक शब्दोंको बना लिया है जिन्हें त्रिपुटी कहते हैं, त्रिपुटी अर्थात् तीन पुट वाली जिसमें ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेय, ध्याता, ध्यान, ध्येय आदि 'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारंच मत्वा" (श्वे ३०।१।१२) के आधार पर निर्मित है जिससे विषय समझना सरल हो जाता है; उसी शैली पर यहां भी प्रकाशक प्रकाश्य और प्रकाशकी त्रिपुटीका प्रतिपादन किया गया है। प्रकाशक जो सबको प्रकाश देनेवाला है, प्रकाश्य अर्थात् जिस पर प्रकाश पड़ता है वह जगह तथा प्रकाश अर्थात् चेतनता। इस प्रकार जिस शक्तिसे इस समस्त जगत्को चैतन्यता मिलती है वह ब्रह्म राम ही है अन्य नहीं—

जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू।
मायाधीश ज्ञान गुन धामू॥

यह वेदान्त द्वारा भगवान् रामके ब्रह्मत्वके प्रतिपादन का प्रकरण चल रहा है अतः शांकर वेदान्त द्वारा और प्रतिपादन करते हैं—पूर्ण वेदान्त तथा शांकर वेदान्तकी प्रक्रिया में थोड़ा-सा अन्तर है अतः उसे भी उद्धृत किये देते हैं फलमें नहीं।

आचाचार्य भगवान् शंकरने अपनी वेदान्त रूपी भीति "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापम्"की आधार शिला पर खड़ी की है अतएव जगत्की मिथ्या सत्ता स्थापित करके भी रामका ब्रह्मत्व प्रतिपादन करते हैं।

शंकराचार्यने ब्रह्म जगत्की सत्ता मिथ्या सिद्ध की है समस्त दीखने वाले जितने भी अस्मदादि पदार्थ हैं वे सब ही मृगजल अथवा सीप रजतकी भाँति है जिस प्रकार मृगजलमें जलका आभास तथा सीपमें रजतका आभास होता है उसी प्रकार इस जगतमें सत्यकी प्रतीति मात्र होती है परिणामतः कुछ नहीं है। यह संसार असत्य होता भी जिसकी सत्तासे सत्यसा आभासित होता है वह राम है; जो तीनों कालोंमें मिथ्या है परन्तु इस सन्देहको कोई दूर नहीं कर सकता माया जड़ है और ब्रह्म चेतन है केवल जड़में क्रिया हो नहीं सकती वह चेतनके संयोगसे ही कुछ कार्य कर पाती है इसलिए दोनोंके संयोगसे यह जगत् सत्यइव प्रतीत होता है। वास्तविक ज्ञान होने पर जिस प्रकार सीपमें चांदीका भ्रम मिट जाता है उसी प्रकार ब्रह्म विषयक ज्ञान होनेपर जगत्की यथार्थ सत्ता प्रतीत हो जाती है तब सब सन्देह दूर हो जाते हैं; शुद्ध चेतन ही रह जाता है। चेतन भी बिना जड़के संयोगके कुछ नहीं करता न तो शुद्ध चेतन में क्रिया होती और और न जड़ में इन दोनोंके संयोगने यह दुःख उपस्थित कर रखा है इस प्रकार यह भ्रम जिसकी

कृपासे मिट जाता है। यह स्वप्नकी प्रतीति जागने पर जिसकी कृपासे मिट जाती है वही ब्रह्म राम है। दुःख प्रदाता जगत् भी जिसके संकल्प का परिणाम है, अर्थात् उसने प्रलयकाल के अनन्तर यह संकल्प किया 'एकोऽहं बहुस्याम'' मैं एक बहुत होऊँ। जगत रूपमें बन गया अतः यह जगत् जिसके संकल्पका परिणाम है वही ब्रह्म राम है। अब उपनिषद प्रतिपाद्य उसके अलौकिक कार्योंका वर्णन करके भी ब्रह्मत्व सिद्ध किया गया है—

बिनुपद चलइ सुनइ बिनु काना।
× × ×
अस सब भांति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाइ नहीं बरनी।
अपाणि पादो जवनो ग्रहीता,
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
सर्वेत्ति वेद्यं नच तस्यास्ति वेत्ता
तमाहु रग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥
(श्वे० उप० ३।१६)

अलौकिक अर्थात् लोकसे विभिन्न। लौकिक व्यवहारोंमें मनुष्य अथवा कोई भी जीव पांवसे चलते हैं, कानसे सुनते हैं हाथसे कार्य करते हैं आदि कर्त्तव्य देखे जाते हैं परन्तु उसके विपरीत कर्त्तव्य इनसे भिन्न है अतएव जब वह लौकिक कर्त्तव्योंसे भिन्न कर्म करनेवाला है तो जगत्से भिन्न होना भी सिद्ध है अतः वह ब्रह्म जो है वह राम ही है। उसे इस प्रकार विरुद्धार्थी शब्दों द्वारा कहनेका अर्थ यह है कि वह विराट रूपसे प्रगट होनेके कारण सबका कर्त्ता धर्त्ता और भोक्ता है और प्रत्यक्ष न दिखनेके कारण वह समस्त इन्द्रियोंसे रहित है, भला ऐसे अप्रत्यक्षी विराटकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है। ऐसे ब्रह्मको जिसका वेद और विद्वान् प्रकार गाना करते हैं तथा मुनि लोग योगके साधनसे आधार जिसका ध्यान करते हैं वही कोशलपति दशरथनन्दन राम है अन्य दूसरा कोई नहीं।

इस एक ही दोहेमें ईश्वरवादी दो शास्त्रोंके सिद्धान्तोंकी ओर संकेत करके यह सिद्ध कर दिया है कि उपर्युक्त दोनों शास्त्र प्रतिपादित ईश्वर राम ही हैं। आस्तिक दर्शनोंमें ईश्वरवादके प्रतिपादक ए दोही शास्त्र हैं। क्योंकि न्याय और वैशेशिकने तो परमाणुवादके आधारपर जगत्के पदार्थोंका वर्णन किया है, सांख्यने प्रकृति को सब कुछ माना है और पुरुषको उदासीन तथा अलग माना है। पूर्व मीमांसाने'कर्मेति ब्रह्म' का प्रतिपादन किया है इस प्रकार चार अलग हो जाने पर दो ही रह जाते हैं। जो ईश्वरवादको प्रधान मानते हैं, अतः अन्त में दोनोंके शब्दोंका उल्लेख करके स्वमत स्थापित किया। पार्वती! तुमने मेरे विषयमें पूछा सो जिसके नामका निरन्तर स्मरण करके मैं काशीमें मुक्तिका प्रसाद बांटता हूं वह समस्त जगत्का स्वामी मेरा भी स्वामी है। संसारी साधारण जब जिसके पावन नामका एक बार भी उच्चारण कर लेते हैं वे संसार सागरको गोपद इव पार कर लेते हैं। ऐसी राम नामकी महिमा बतलाकर तथा उमाको भगवान्की कृपाधिकारिणी समझकर भविष्यमें ऐसे सन्देह न करनेके विषयमें आदेश देकर अपने उपदेशका उपसंहार करते हैं।

राम सो परमात्मा भवानी। तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी।
अस संसय आनत उर माहीं ग्यान विराग सकल गुन जाहीं।

भगवान् के चरित्र, नाम, लीला तथा धामके वर्णन सुननेका ही यह माहात्म्य है कि वह जिस उद्देश्यसे किया जाता है। सफल हो जाता है। परन्तु उसके लिए चाहिए अटूट श्रद्धा, अपूर्व विश्वास। पार्वतीके श्रद्धा विश्वासका परिणाम यह स्पष्ट हुआ कि—

सुनि सिवके भ्रम भंजन बचना।
मिटि गइ सब कुतर्ककी रचना॥
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती।
दारुन असंभावना बीती॥

सन्देह दूर हुआ और भगवान् रामका साक्षात् स्वरूप सामने आया, अज्ञान मिटा ज्ञानोदय हुआ और वास्तविकताका पता चला तब अपनी कृतज्ञता प्रकाश करते हुए अपने पूर्व-कथित प्रश्नोंमें प्रथम विभागके प्रश्नोंके उत्तरकी याचना कर उसका और स्पष्टीकरण किया।

प्रथम जो मैं पूछा सोई कहहु।
जौं मोपर प्रसन्न प्रभु अहहू॥
राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी।
सर्व रहित सब कर पुरवासी॥
नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू।
मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतू॥

पहिले कहे हुए प्रश्नोंके दो विभाग मान लेनेके कारण तथा यहाँ पहिले भागकी ओर संकेत करानेसे—बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज रामकी शंकाका समाधान हो जाता है। यहां यह शंका होती है कि पार्वतीजीने पूर्वमें भगवान् रामकी लीलाके अनन्तर परम धाम गमनकी बात भी पूछी जिसका रामायणके उत्तर काण्डमें राज्य करनेके अनन्तर कोई उत्तर नहीं दिया। क्या भगवान शंकर कहनेमें भूल गए अथवा पार्वती ही भूल गईं। पार्वती सरीखे सावधान श्रोताने रामायणकी कथाके अनन्तर यह कृतज्ञता प्रकाशित की—

तुम्हरी कृपा कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।
जानेहु राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह॥ (पार्वती)
गिरिजा सुनहु विसद यह कथा।
मैं सब कही मोर मति जथा॥

समाधानः—पार्वतीने 'प्रथम जो मैं पूछा सोई कहहु' कहकर अपने उक्त प्रश्नको वापिस ले लिया था।

भक्त भगवान्की पूजनमें आवाहन ही करते से विसर्जन नहीं; अतएव भगवान्को आगमन दिखाकर उनका विसर्जन न कराना विचार कर रामायणमें परमधाम गमन नहीं कहा, इसी शैलीका भागवतादि स्मृतियोंमें व्यक्त किया गया है।

कोई कोई अमराईके गमनको परमधाम गमन मानते हैं जो युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता।

इस प्रकार राम चरित ग्रंथककी नींव होनेके कारण यह विषय मानसकी भूमिका मानना उपयुक्त है, इसके नाना मत मतान्तरोंके समावेशके कारण भी यह प्रसंग मानसकी भूमिका कहा जा सकता है क्योंकि—

एहि मह आदि मध्य अवसाना।
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥

इस प्रकार समस्त संसारमें जिनकी सत्ता है जो व्यक्त अथवा अव्यक्त रूपसे सबमें व्याप्त है उस परमेश्वरके नामका जप तथा स्वरूपका ध्यान प्रत्येक जीवका कर्तव्य है! बिना उसकी सन्निधिके आज तक किसी भी जीवको शान्ति नहीं मिली हैं और न मिल सकती है अतएव अपने जीवनका चरम उद्देश्य समझ कर सदैव उसीका भजन करना चाहिए। यही मानसका तथा इस लेखकका मत है। सियावर रामचन्द्रकी जय।

अध्यात्म-प्रसङ्ग

ले०—श्रीराजनारायणजी द्विवेदी शास्त्री

सा० र० सा० अ०

राम को नाम जपो निसि वासर,
रामहि को इक आसरो भारो।
भूलो न भूल की भौरन में
'पद्माकर' चाहि चितौनि को चारो।
ज्यों जल में जल जात के पात,
रहै जग में त्यों जहान ते न्यारो।
आपने से सुख औ दुख दौरि,
जु और को देखै सो देखनहारो।
तुलसी हठि हठि कहत
नितचित सुनि हित करि मानि।
लाभ राम सुमिरन बड़ो,
बड़ी बिसारे हानि॥
तुलसी ममता रामसों
समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख
दास भये भव पार॥

एक समयकी बात है। एक गोबरा कीटको किसी भँवरेने अपने निवास स्थान सरोवरमें निमंत्रित किया। वहाँ सत्संगसे लाभ उठाकर भरपेट खाने और सौरभ लेनेकी बात थी। भ्रमरकी बात सुनकर नीच गोबराके मनमें सन्देह जग गया। वह सोचने लगा कि भ्रमरकी क्या हस्ती कि मेरा पेट भर सके। शायद वह धोखा देकर मुझे बुला लेगा और निखंड रखकर मेरी अंतड़ी सुखा देगा। मुझे प्रतीति नहीं होती, विश्वाससे बाहरकी बात है। क्योंकि स्वयं वह इधर-उधर टहल मचाकर पुष्प-रसका लोभी है। सुगंधमें सना हुआ रसमय जीवन बिताता है। परन्तु गोबराकी भूल धारणा थी। और भी बिलकुलविपरीत दिशा में।

यह सिद्धान्तकी बात है कि मानव अपने मनका दास है। परिस्थितियाँ उसे वैसा करनेको बाध्य करती हैं। जिस वातावरणमें वह रहेगा उसकी वास्तविक दशा वैसी ही हो जाएगी। चिन्तानुकूल भावनाएं स्पष्ट हो जाती हैं। मनको भूतसे उपमा दी गई है। वह मनरूप प्रेत निष्काम नहीं बैठ सकता सदा इसको एक-न एक काम चाहिए। यदि काम न हो तो गंदी बातोंके कुराज्यमें चक्कर लगावेगा। निष्काम बैठते ही संसारकी चहल-पहलमें मशगूल हो जाएगा।

गोबराके मनमें असंतोष और सन्देहका द्वन्द्व होने लगा। वह सोचता, उसके यहाँ जानेपर खाना मिलेगा या योंही फाकाकशी ही कटेगी। अथवा मेरे मन तथा शरीरके अनुकूल खातिरी ही न होगी। या वह सिर्फ निमंत्रण देकर अपमानित तो न करेगा इस तरह कल्पनाके विशाल क्षेत्रमें तर्क-वितर्क करने लगा। और अन्तिम निर्णय किया कि षट्पद्के यहां चलना ही उचित है। मगर सन्देह-भय से भोजन ले लेता हूँ। यह कहकर उसने राहखर्च (मल) साथ लेकर यात्रा कर दी।

जब वह सुविशाल सरोवरके कमल वनमें प्रस्तुत हुआ तब उसकी नाक फटने लगी। चतुर्दिकसे सुगंधने उसके शरीरपर आधिपत्य जमा लिया। ऊबकर गोबरा वहाँसे भागना ही चाहता था कि मिलिन्दकी दृष्टि उसपर पड़ी।

षट्पद् आवभगतके साथ अपने स्थानको घुमाकर दिखाया। सुस्वागत होनेपर भी गोबरा व्याकुल होकर तड़पने लगा। नाक बन्द कर मन ही मन चंचरीकको कोसने लगा। और कभी भी उसके यहाँ न आऊंगा ऐसी प्रतिज्ञा मनमें कर ली। गोबराने कहा भाई! मुझे छोड़ दो! बेदम मर रहा हूं, इतनी कृपा अवश्य करो, पांव पड़ता हूँ! भंवरा उसके माथे पर मँडराते हुए प्रतिवाद किया—विना भोजनके तुम यहांसे नहीं जा सकते। गोबरा चिन्तासागरमें गोता खाने लगा'''कि कमलकीसुगंधिसे मेरी नानी मरी जाती है, और यह खानेको कह रहा है। यदि खाना चाहूं तो यह कमल-मधु खिलायेगा। वैसा होनेपर मेरे प्राण निकल जाएंगे। इसी चिन्तामें वह समय टालता रहा और भँवरेकी अनुपस्थितिमें वहाँसे नौ दो ग्यारह हो गया। रास्तेमें मलोंकी ढेरीपर बैठकर साथके पाथेय (मल) को खाकर तृप्त हुआ, अपार हर्ष पाया।

उसी गोबरेकी दशा सत्संग हीन मिथ्या तर्कवागीश पुरुषोंकी हो रही है। सत्संग, शास्त्र-पठन और इन्द्रिय-दमन तो पार नहीं लगता, उलटे उन्हीं सुकर्मोंकी निन्दा पेटभर की जाती है।

मनमें राग-द्वेष-लोभ, अभिमान और शंकायें घनीभूत हैं; पर ऊपरसे सज्जन और चरित्रवान बननेका स्वांग रचा जा रहा है। नाममें श्रद्धा-भक्ति नहीं है किन्तु अहर्निश चर्चा छिड़ी रहती है भौतिक-विज्ञान की। आज दुनियामें भौतिकवादका दानव अपने अतृप्त रक्तकी प्यास लेकर खड़ा है। आज मानव संहारकी चारो ओर तैयारियाँ जारी हैं। शक्तिके लिए देशोंमें होड़ लगी है। हिंसक हथियारोंका भंडार भरा जा रहा है। मगर क्या इनके वावजूद मानवता एक अज्ञात अभावमें पड़ी हाहाकार नहीं कर रही है? क्या उसका अंतर इस भौतिक चका-चौंधसे तृप्त है। नहीं। आज अमेरिका जैसा धन,धान्य परिपूर्ण देश भी अध्यात्मवादकी सरिताको शीतल-जल... इच्छुक है। जबतक अध्यात्मवादमें श्रद्धा न होगी, कु... भावना न मिटेगी, कर्तव्य ज्ञान कोसों दूर रहेगा। इ... सबसे बड़ी चीज हैं संत दर्शन और उनका सत्सङ्ग। उ... पास बैठनेसे चरित्रोंका सौरभ उमड़ जाता है। शनैः श... उदात्त वृत्तियाँ जगने लगती हैं। कालांतरमें कर्तव्य... सुमार्ग चमकने लगता है। अभ्यास और भौतिकता... विरागका संयोग ज्यों ज्यों उन्नत होगा मनकी व्याकुल... उसकी अशांति स्वयं मिट जाएगी। संसारको क्षणभंगु... समझनेवाला अनित्य माननेवाला विराग सम्पन्न ... जायेगा। विषयोंसे जबतक वितृष्णा न होगी संसारके स... सुधार ममतारूपी चट्टानपर चूर्ण-विचूर्ण हो जाएँगे।

दूसरी बात है कि खान-पान-शिक्षा दीक्षा और रह... सहन इतना गिर गया है कि मानसिक पवित्रता ... उसकी परिमार्जित चेतना आती ही नहीं। मन ... तरंगोंमें लहराता ही नहीं। इस युगमें वैसा होना मह... कठिन व्यापार है। इस युगमें वादोंकी (अध्यात्मआदि... व्याख्या मुखसे हो जाएगी पर काममें न लाया जाएगा... कथनी होगी, करनी न होगी। आज तो कुछ लोग स्टे... पर लंबी-चौड़ी हांक देते हैं, परन्तु यदि आप छिपक... उनके आचरणोंका पता लगावें तो उनकी पापकी ... कलई खुल जाएगी। परन्तु इन कामोंमें उनका दोष न... है इस युगका असर है। कलयुगका निम्नस्वरूप स... समाहित है। यही कारण है कि धार्मिक प्रवृत्तिसे विर... और संसारसे प्रगाढ़ अनुराग हो रहा है। आज दा... निकताकी थोथी दलील करनेवाले बहुत मिलेंगे। उन... पास बैठिये तो मालूम होगा ब्रह्मकी महिमा हैं, कि... चिकनी मिट्टीपर वे फिसल जानेवाले ब्रह्मवादी हैं! ... समझ रखिये!

एक बार कलयुग वीतराग संत श्रीरामानंदजी मह...

राजके सम्मुख हाथ जोड़ कर बोला—स्वामी मैं निम्न कर्मकर्त्ता-धर्महर्त्ता, अशुभमय कलयुग हूं। उद्धार मार्ग ढूंढ़ते हुए आपके निकट आया हूं। मेरा कर्म और व्यवहार सभी निकृष्ट है, सर्वत्र मेरा साम्राज्य है, कलिने कहा अतः इस समय मैं सभी धर्मोंको नाककील दिया हूं। ब्राह्मण खोटी वृत्तिमें और धर्म विरुद्ध अपना आचरण बनाये हैं। शूद्र स्वल्प पढ़कर भी अपनेको ज्ञानी और संभ्रांत कुलोत्पन्न मान रहे हैं। भाईका खून भाई पी रहा है। नारी धर्म अपने स्थानसे च्युत हो गया है। राजा स्वार्थी और सुधारक मतलबी हैं। न्यायके नामपर हत्या लूट और घूसखोरीका बाजार गर्म है। अशांति और हाहाकार है। नैतिक स्तर रसातलमें विदा हो गया है। आध्यात्मिक अवनतिके कारण अन्नके लाले पड़ रहे हैं। पेटके आगे धर्मकी तिलांजलि दी गई है। धर्मकी ओर बढ़नेवालेको मैं कठिन परीक्षामें डाल देता हूं। परीक्षामें अनुत्तीर्ण होकर वह तड़पने लगता है। तथा धर्मध्वंसक वन बटमारोंके दलमें मिल जाता है। वहां भी वह अपने पूर्वार्जित पुण्यका फल (सुख-आराम) पाता है, किन्तु उसकी यह उक्ति होती है कि घूस-चोरी और अन्यायमें बड़ा मजा है। अतः यही सबको करनी चाहिए —उस नराधमकी प्रजल्पना होती है। 'देखादेखी पुण्य और देखादेखी पाप' सबोंकी मनोवृत्ति उसी हेय मार्गकी ओर हो रही है। यह है मेरा (कलयुग) विस्तृत साम्राज्य!

परन्तु हे कृपानिधान! आचार्यजी, इस घृणित राज्यका अधीश्वर होते हुए भी मैं हरि भक्तोंसे डरता रहता हूं। रामनाम लेनेवालों की किञ्चित् परीक्षा लेता हूं। और उसके गुणोंको चमकाकर पुनः रक्षा भार मेरे ऊपर आ जाता है। बस, रामनामका सहारा लेनेवालोंके सिवाय मैं किसी अन्यको सुपथ पर नहीं चलने देता। यह मेरा अकाट्य नियम है। सुमार्ग पर चलनेवालोंकी मेरी परीक्षाएं पग पग पर होती हैं। उसमें कोई विरला ही सफलता प्राप्त कर लेता है। करोड़ोंमें शायद एक कोई ज्ञानी भक्त! क्योंकि दो-चार परीक्षाएं होते ही लोग धर्मपराङ्मुख हो जाते हैं। और अधिक क्या कहूँ विशेष परीक्षा लेनेका तो अवसर ही नहीं प्राप्त होता!

यह सुनकर कलियुगके उद्धारका विषय बनाकर रामानंद स्वामीजीने उसको शिष्य बना डाला। किसी समय कलियुगको भ्रमण करते हुए देखकर जानकीजीने संबोधित कर कहा कि हे कलियुगेश्वर! मैं सख्त सजा दूंगी यदि तूने राम भक्तोंको अनुतप्त किया तो। यह सुनकर रामभक्तोंको न सतानेकी उसने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली। पर उसने कहा कि बाध्य होकर रामभक्तोंको निखारनेके हेतु दो-एक परीक्षा लूंगा। जगज्जननी सीता माताने तथास्तु कहा। तबसे कलियुग रामनाम अमृत पानकर आनंद लूटता है। रामनाम उसे अधिक प्रिय है। रामभक्तोंकी रक्षा उसका अपना परम कर्तव्य है। कलियुग में रहकर विषय-वासनाओंसे धीरे धीरे पृथक होनेका अभ्यास कर कुसंस्कारोंको निश्चिन्ह कर देना चाहिए। करुणा-मुदिता और मैत्रीकी भित्ति सुपुष्ट करनी चाहिए। और राम भजनमें चौकस रहना चाहिए। जब सबको एक-न-एक दिन अवश्य कालके गालमें समा जाना है तब क्यों न दिल खोलकर धर्मार्थ करते हुए भजन भावमें लग जाया जाय।

'अंत काल पछितावोगे प्राण जाएंगे छूट'
यह तन कर फल विषय न भाई।
भजिए राम सब काम बिहाई॥

अजायबघर

(लेखक—रावत, श्रीचतुर्भुजदासजी चतुर्वेदी)

उस सर्वशक्तिमान सर्वेश्वर अखलेश्वर प्रभुका यह विश्व अजायबघर है जिसमें नाना प्रकारके जीव-जन्तु, जड़-चेतन और लता-गुल्म आदि हैं। प्रभु अपने प्रत्येक प्राणीको भोजन देता है और प्रत्येककी प्रत्येकसे रक्षा करता है। वनविभाग (Natural History Section) में अनेक प्रकारकी जड़ी बूटी, पशु-पक्षी, बन-उपवन तथा रम्य-सुरम्य पर्वत स्थानोंके मनोहर दृश्य देखते ही बनते हैं। इनमें जो षट् ऋतुएँ आती हैं वे अपने वैभवसे और भी इन स्थानों पर चार चाँद लगा देती हैं। जिस प्रकार सरकारी वस्तु छूनेसे आदमीको यह भय रहता है कि कहीं कोई देख न ले, नहीं तो चोरीके अपराधमें दण्डित होना पड़ेगा, उसी प्रकार यदि जीव प्रभुसे डरने लगे जो सर्वत्र हैं तो उसका जीवन ही सुधर जाय! प्रभुके अजायबघरमें एक भक्तोंका भाग है जिनसे प्रभुका अस्तित्व संसारमें रहता चला आया है।

नश्वर शरीरपर मान-गुमान करनेवाले नास्तिक जो परमब्रह्म परमेश्वरको नहीं मानते हैं वे इन्हीं भक्तोंके किये अथवा दिखाये गये चमत्कारको नमस्कार करते देखे गये हैं और वे भक्त भक्तिमें सराबोर हुए हैं।

भक्त शिरोमणि सूरदास तथा तुलसीदास इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। आज जिनकी भक्तिरसकी वाणीमें मनुष्य अनेक विभोर हो रहे हैं और अपनेको धन्य समझते हैं। भक्त तुलसीदासकी रामायण तथा भक्त सूरदासके पद ऐसा कौन है जिसे मालूम हों।

अपने जीवनमें शिक्षा ग्रहण कर अनुभवभरी वाणीमें भक्त तुलसीदासजीने कहा है।

नर तनु पाइ विषय मन देहीं।
पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं॥

कैसा ऊँचा उपदेश है। मनुष्य शरीर पाकर जो विषय वासनाओंमें अपना मन लगाता है (और जो अपनेको ईश्वर भक्तिसे विमुख रखता है) वह शठ दुष्ट पामर नीच मनुष्य सुधा (अमृत) को त्याग कर यानी प्रभुकी परमपावन भक्ति छोड़कर विषय रूपी विष प्राप्त करता है।

संसारी विषय वासनाएँ उस विषके समान जिसे प्राप्त कर जीवकी अकाल मृत्यु होती है और वह जैसा आया वैसा ही जाता है; अतः प्रत्येक प्राणीको भगवानकी भक्ति-प्राप्तिका साधन करना चाहिये; इससे कभी वह परमभक्त बन ही जायगा।

करत करत अभ्यासके जड़ मति होत सुजान।
रसरी आवत जाततें सिलपर परत निशान॥

वे जीव धन्य हैं जो भगवानकी भक्ति रूपी सरितामें अवगाहन करते रहते हैं।

बीज चाहे सीधा डाला जाय चाहे उल्टा, तो समय पाकर उत्पन्न ही होता है; ऐसे ही भगवानका नाम "भाय कुभाय अनख आलस हूँ" किसी प्रकारसे भी लिया जाय कार्य करता ही है।

जिस प्रकार मैले वस्त्रको साबुन क्रमशः उसके मैलको छांटता रहता है, उसी प्रकार भगवानका पवित्र नाम प्राणीके हृदयकी मैलको धो डालता है और फिर उसे पूर्ण प्रकाश मिल जाता है। ज्ञानरूपी प्रकाशको प्राप्त कर वह इहलोककी समस्त वस्तुओंको तुच्छ समझने लगता है और यह जब ही हो सकता है जब वह प्राणी प्राणपणसे प्रभु भक्त होनेका बीड़ा उठाये। वह नित्य प्रति मन्दिरोंमें दर्शन करने जाय; नित्य प्रभुके नामका कीर्तन करे। उन नित्यके आचरणोंसे भगवानकी भक्ति बढ़ती है और जब वह प्राणी सर्वथा निर्दोष हो जाता है तो प्रभुके इस विश्व अजायबघर के भक्तोंके भागमें स्थान प्राप्त कर लेता है।

ध्यान रखिये, इस प्रभुके अजायबघरकी वस्तुओं पर न तो अधिक ममता ही रक्खो और न प्रत्येक वस्तुकी प्राप्तिकी हवस ही रक्खो। प्रभुरचित वस्तुओंको देखकर मन बहला लो पर लिप्त न हों।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

दैव

(लेखक—श्री शम्भुनाथजी चतुर्वेदी)

पञ्चैतानि महाबाहो! कारणानि निबोध मे।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्॥
अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवाऽत्र पञ्चमम्॥

महाभारतके युद्धस्थलमें अवस्थित कौरव पाण्डवोंकी सेनाओंके मध्य गुरुजनोंके निकटस्थ संबन्धियों और स्वजनोंको देख कर अर्जुन विमोहित हो गये और कर्तव्य कर्मको भूल गये! उन्होंने अपने सारथि सखा श्रीकृष्णसे स्पष्ट शब्दोंमें कह ही तो दिया कि अब मैं इस पृथ्वीके राज्यके लिये तो क्या, त्रिलोकीके राज्यके लिये भी आवश्यकता हो तो युद्ध नहीं करूँगा। उस संकटके समय श्रीकृष्णचन्द्रने अपने प्रिय सखाके प्रति कर्तव्य मार्गका जो निर्देश किया वह श्रीमद्भगवद्गीताके नामसे प्रसिद्ध है। इस गीतामें कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोगका अद्भुत संमिश्रण है और 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी" के अनुसार भिन्न २ दृष्टिकोणसे उसे देखते हैं। इस गीतामें भगवानने अपने प्रिय सखाको उस संकटके समयमें कर्मकी गहन गतिको सूक्ष्मरूपसे समझाकर निष्काम कर्म करनेका मंत्र कानमें फूक दिया और "रसरी आवत जात तें सिल पर होत निशान" के अनुसार विविध प्रकारसे युद्धके लिये प्रवृत्त किया। इसी निष्काम कर्मयोगका तत्त्व उपरोक्त दो श्लोकोंमें जैसे निचोड़ कर रख दिया हो। किसी भी कर्मकी सिद्धिके लिये ज्ञान योगमें वर्णित यह पांच मुख्य कारण होते हैं।

१—किसी भी कार्यको प्रारम्भ करनेके लिये आधार अथवा स्थल।

२—कार्यका सम्पादन करनेवाला।

३—विविध साधन जिनकी आवश्यकता पड़ती है।

४—विविध प्रकारकी चेष्टाएँ।

५—और अन्तमें दैवकी सहायता। यह अदृष्ट दैव देवताके अधीन है। यदि दैव अनुकूल है तो कार्यकी सफलतामें विलम्ब नहीं होता और यदि दैव प्रतिकूल है तो विलम्बकी तो कौन कहे, सफलताके स्थान पर असफलता ही मिलती है।

दैव, भाग्य अथवा प्रारब्धको प्रत्येक मतावलम्बी मानते हैं। विविध प्रयत्न करने पर भी यदि सफलता न मिली अथवा कोई आकस्मिक दुर्घटना घट गई तो उसे देवाधीन कह कर ही संतोष करना पड़ता है।

"उद्योग और भाग्य" अर्थात् "तक़दीर और तदबीर" का विषय गहन, गुह्य और विवाद ग्रस्त होते हुये भी आर्य संस्कृतिमें अकर्मण्यताका स्थान नहीं है और "भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्" को मानते हुए भी हमारा आदर्श रहा है।—"उद्योगिनम् पुरुषसिंहम् उपैति राज्य-लक्ष्मी" और इसी भावनाकी गूंज मानसमें कर्मठ रामानुज लक्ष्मणके शब्दोंमें मिलती है।

नाथ! दैव कर कौन भरोसा।
कादर मन कर एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा॥

अब पहिला प्रश्न यह होता है कि दैव क्या है और दूसरा प्रश्न इसके साथ ही साथ यह होता है कि इसका संचालक कौन है?

अनन्त जन्मोंकी वासनाएं जीवको संस्कार चक्रमें घुमा रही हैं। प्रत्येक जीवके अन्तःकरणमें प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण यह तीन कर्मसंस्कार होते हैं। जन्म जन्मान्तरके किये हुये शुभाशुभ कर्म तो हुये संचित, प्रत्येक जन्ममें जो नवीन कर्म किया जाय उसे क्रियमाण कहते हैं और पूर्व जन्मके जिन कर्मोंके द्वारा स्थूल शरीर मिलता है उन्हें प्रारब्ध कर्म कहते हैं।

कर्म जन्मान्तरीयं यत्प्रारब्धमिति कीर्तितम्
शंकर० अपरोक्षानुभूतिः ९२

बहुत जन्मोंके पश्चात् परमात्माके सम्बन्धमें वास्तविक ज्ञान हो जाने पर अन्य कर्म तो ज्ञानाग्निमें जलकर भस्म हो जाते हैं परन्तु प्रारब्ध कर्मोंका तो भोग द्वारा ही क्षय होता है।

प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षयः।

इच्छा न रहनेपर भी सुखदुःखजनित भोग स्वतः ही उपस्थित हो जाते हैं।

पूर्वजन्मार्जिता विद्या पूर्व जन्मार्जितं।
पूर्व जन्मार्जितं युरायमग्रे धावति धावति॥

इस दैव के संचालक शुभाशुभ कर्म फलके देनेवाले देवता विधाता हैं। यह दैव अमिट है और जब जैसी होनी होती है वैसे ही आनिक उपस्थित हो जाते हैं जिनके वश प्राणी उसके प्रतिकूल नहीं जा पाते।

तुलसी जस भवतव्यता तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै ताहि तहां लै जाय॥

मानसमें तो स्थल स्थल पर इस दैवकी ही दुहाई गोस्वामीजीने दी है और वास्तवमें देखा जाय तो राम चरितका आधार यह दैव ही है। राजा दशरथका विवाह कौशल्या देवीसे होनेवाला था। रावणको यह ज्ञात हुआ कि इन देवीजीसे जो पुत्र होगा वही उसका वध करेगा। उसने यत्नपूर्वक बरातको छिन्न भिन्न कर दिया जो नौकाओंसे जा रही थी। किसी तरह दशरथ बच गये और उनका विवाह हो गया और जब रावणके अत्याचारसे धरा और देवता अकुला गये तब भगवानने स्वयं कौशल्या देवीके उदरसे पूर्व वचनानुसार जन्म लेकर रावणका वध किया!

परन्तु यदि भगवान या उनके अनन्य भक्तकी कृपा हो जाय तो यह भावी भी बदल सकती है। जैसे एक न्यायालयकी आज्ञाके विरुद्ध यदि अपील उच्च न्यायालयमें की जाती है तो उसके लिये योग्यसे योग्य वकील किया जाता है और उसकी समझमें यदि मामला ठीक २ आ गया तो वह अपनी प्रतिभासे द्वारा हुआ मुकद्दमा जितवा देता है। इसी प्रकार भगवद्भक्तोंकी कृपासे भावी भी मिट सकती है।

करि न सकें का संत विष्णु हित जै व्रत धारें।
भाग्य अन्यथा करें रेख पै मेख हु मारें॥

श्रीभागवत चरित ३।१२

संत कृपासे ही तो नारद नारदमुनि हो गये। अजामिलके भाग्यका पांसा तनिक संत-कृपासे पलट गया। मार्कण्डेयकी आयु केवल ६ वर्षके लिये ही सीमित थी परन्तु संत-कृपासे वह चिरजीवी हो गये।

गोस्वामी तुलसीदासजीने भी यही मत मानसमें प्रकट किया है।

भाविहु मेंट सकहिं त्रिपुरारी।

और इसी भावनाको विनयपत्रिकाके निम्नलिखित पदमें कितनी सुन्दरता से दर्शाया है। महादेवजीके प्रति पार्वतीजीसे ब्रह्माजी शिकायत अथवा व्यंग स्तुति रूपमें निवेदन करते हैं।

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये विनु, बेद बड़ाई भानी॥१॥
निज घरकी बरबात विलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिवकी दई सम्पदा देखत, श्रीशारदा सिहानी॥२॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुखकी नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक संवारत, हौं आयो नकवानी॥३
दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी॥४
प्रेम प्रसंसा विनय व्यंग जुत, सुनि विधिकी बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत मातु मुसकानी॥५

वि० प० ५

सृष्टि शासनमें मुख्य कार्य तीन ही हैं—सृष्टिकी रचना, पोषण और संहार। प्राणियोंको पूर्व जन्मार्जित शुभाशुभ कर्मानुसार फल भोगनेके लिये विधाता तो संसार सागरमें छोड़ देते हैं। कर्म भोग भोगनेके उपरान्त लय करनेके समय और इस बीच भरण-पोषण करनेके लिये अन्य अधिकारी अपने अधिकारानुसार कार्य संचालन करते हैं। इन तीनों अधिकारियोंका अधिकार-क्षेत्र सीमित ही है जिसमें प्रदत्ताधिकारानुसार ही वह वर्तते हैं। इनसे ऊपर भी एक शक्ति है जिससे यह अपने २ अधिकार प्राप्त करते हैं और उसकी मायामें फंस कर उस परम शक्तिकी इच्छानुसार नाच नाचते हैं।

विज्ञ पाठकोंको स्यात् स्मरण होगा कि ब्रिटिश शासनके अन्तर्गत मान्ट फोर्ड सुधारोंके पूर्व भारतीय विधानमें एक ही व्यक्ति सम्राटका प्रतिनिधि (वायसराय) प्रधान शासक (गवर्नर जनरल) तथा प्रधान सेनापति (कमांडर-इन चीफ) होता था। विधान वेत्ताओंने इसे (Trinity in unity) की संज्ञा दी है। इसी "Trinity in unity" की झलक सृष्टि शासनमें भी पूर्णतया भासित होती है। यद्यपि यह अधिकार पृथक् २ अधिकारियों को सौंपे गये हैं परन्तु उनका मूल स्रोत है भगवान श्री हरि।

आश्रय सबके वही अखिल पति अलख अगोचर।
रचना कूं विधि बनें भरन कूं हों विश्वम्भर॥
सृष्टि समेटें सर्व हि तबहि हर शिव कहलावें।
यों वे व्यापक ब्रह्म विविध विधि रूप बनावें॥

श्रीभागवत चरित १।१६

इसीका आभास हमें विष्णुपुराणके निम्नलिखित श्लोकमें पूर्णतया मिलता है।

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णु शिवात्मिकाम्।
स संज्ञायाति भगवानेक एव जनार्दनः॥

वि० पु० १।२।६६

जो सकल भूतोंमें अद्वितीय रूपसे व्याप्त सबके अन्तरात्मास्वरूप परमात्मा प्रकृतिके कर्मोंके साक्षी तथा निर्लिप्त अधिष्ठाता मात्र हैं।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च

अतः सिद्ध होता है कि गीतामें उपरोक्त श्लोकोंमें वर्णित "देव" से अभिप्राय अंगन्यासमें उल्लिखित देवता श्रीहरि ही से है जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः॥

इस देवके अनुकूल होनेपर अन्य शेष कारण भी सहाय होते हैं अन्यथा वे भी प्रतिकूल ही होते हैं। विष्णु सहस्रनाममें जहां उनके नाम "धाता विधाता धातुरुत्तमः" हैं वहीं "करणं कारणं कर्ता विकर्ता" आदि भी उन्हींकी संज्ञा है अतः किसी भी कार्यकी सफलताके हेतु उन्हीं श्रीहरिकी शरण लेना चाहिये।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥



विरह

दरिया हरि किरपा करी, विरहा दिया पठाय।
यह विरहा मेरे साधको, सोता लिया जगाय॥
विरह बियापी देहमें, किया निरंतर वास।
ताला मेंली जीवमें, सिसके साँस उसाँस॥
दरिया विरही साधका, तन पीला मन सूख।
रैन न आवै नीदड़ी, दिवस न लागै भूख॥
विरहिन पिउके कारने, ढूँढ़न बनखँड जाय।
निसि बीती पिउ ना मिली, दरद रहा लपटाय॥

—दरिया साहब

भोगोंमें सुख कदापि नहीं

संसार के भोगों में सुख है ही नहीं, जो वस्तु जहाँ नहीं है, वह वहाँ कैसे मिलेगी। ढूँढ़ते रहो, दर दर भटकते रहो सिर पटकते रहो, सर्वत्र और सदा अन्त में निराशा, निर्वेद और व्यथाके ही थपड़े लगेंगे। सुख—सच्चा और स्थायी सुख तो है—भगवान्में और उन भगवान्की प्राप्ति होती है त्यागसे।

जो पुरुष त्यागसे प्राप्त होनेवाले निर्मल सुखका अनुभव करता है, वह भोगोंकी ओर कभी आँख उठाकर देखता ही नहीं। हाँ, भोगोंके प्रचुर प्रलोभन भाँति भाँतिसे सज धजकर उसके सामने स्वयमेव आते है उसे अपनी ओर खींचनेके लिये, परन्तु वह उन्हें उसी प्रकार ठुकरा देता है जैसे बहुमूल्य रत्नोंको पा जानेवाला मनुष्य रंग बिरंगे काँचपत्थरोंको।

त्यागीको अपनी सन्तोषमयी वृत्तिसे और त्यागभरी स्थितिसे जो सुख प्राप्त होता है, उसकी तुलना भोगोंके—धन, मान, यश, आराम, अधिकार आदिके सभी सुख सर्वथा तुच्छ और नगण्य हैं। सची बात तो यह है कि भोग सुख वस्तुतः सुख ही नहीं है। बुद्धिहीन मनुष्योंको भ्रमके कारण ही उसमें सुखकी प्रतीति होती है। असलमें तो उनसे दुःख ही उत्पन्न होते हैं, इसीसे बुद्धिमान् लोग भोगोंमें अपने मनको नहीं फँसने देते—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥
(गीता ५।२२)

जो वस्तु अनित्य, परिवर्तनशील और अपूर्ण है, उससे कभी सच्चा और स्थायी सुख मिल ही नहीं सकता। इसीलिये आज जो किसी भोग सामग्रीसे—धनसे, मानसे, सन्तानसे, सत्तासे अपनेको सुखी मानता है, वही कल रोता विलपता देखा जाता है।

त्यागमें पहले-पहले कुछ कठिनाई सी लगती है, कुछ कर्कशता-सी प्रतीत होती है, इसीसे मन उससे भागना चाहता है; परन्तु गहराईसे विचार कर देखनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि जितनी कठिनाइयाँ, जितने क्लेश, जितनी कर्कशता और जितनी पीड़ा भोग-पदार्थोंकी प्राप्तिके साधनमें और प्राप्त होनेपर उनके संरक्षणमें हैं, उतने त्यागमें कदापि नहीं हैं। वरं त्यागकी कठिनाई और भोगकी कठिनाईमें जातिगत बड़ा भेद है। त्यागकी कठिनाई सात्त्विक है और भोगकी कठिनाईमें राजसिकता तथा तामसिकता है। त्यागकी कठिनाईका परिणाम परम अमृतकी प्राप्ति है और भोगकी कठिनाईका परिणाम विषमयी ज्वाला है, जो लोक-परलोकके जीवनको जलाकर सर्वथा यातनापूर्ण और जर्जरित कर देती है।

भोग भ्रमाते हैं और त्याग स्व-रूपमें स्थिति कराता है। भोगोंसे कभी न पूरी होनेवाली भयानक इच्छा, कामना और वासनाएँ उत्पन्न होती हैं जिनसे सदा दुःख-ही-दुःख मिलते हैं एवं त्यागसे वे सब-की-सब क्षीण होती हैं तथा खूराक न मिलनेसे—ईंधनके अभावमें आग बुझ जानेके समान—स्वयमेव बुझ जाती हैं, मर जाती हैं।

त्यागसे जीवनमें शान्ति मिलती है—'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्' और शान्तिसे मनुष्य परमानन्दस्वरूप परमात्माका साक्षात्कार करता है। भोगसे अशान्ति प्राप्त होती है और वह जीवको जबर्दस्ती नरकानलमें दग्ध होनेके लिये ले जाती है।

यदि तुम 'भोगोंमें सुख है' इस भ्रान्तिको त्यागकर भोगोंका मोह छोड दोगे तो शीघ्र ही सुखी हो जाओगे और तुम्हारा यह त्यागका सुखी जीवन तुम्हें भगवान्की ओर ले जायगा। एवं ऐसा करनेपर तुम्हें निश्चय ही भगवान्की प्राप्ति हो जायगी।

—'कल्याण' से

श्रीवृषभानुनन्दिनीसे प्रार्थना

सच्चिदानन्दघन दिव्यसुधा रस सिंधु व्रजेन्द्रनन्दन राधा-वल्लभ श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रका नित्य निवास है प्रेमधाम व्रजमें और उनका चलना फिरना भी है व्रजके मार्गमें। यह मार्ग चित्तवृत्तिनिरोध सिद्ध महाज्ञानी योगीन्द्रमुनीन्द्रोंके लिये अत्यन्त दुर्गम है। व्रजका मार्ग तो उन्हींके लिए प्रकट होता है, जिनकी चित्तवृत्ति प्रेमधन रस सुधा-सागर आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंकी ओर नित्य निर्बाध प्रवाहित रहती है,—जहाँ न निरा निरोध है और न उन्मेष ही, बल्कि दोनोंकी चरम सीमाका अपूर्व मिलन है। इस पथपर अबाध विहरण करती हुई वृषभानुनन्दिनी रासेश्वरी श्रीराधारानीका दिव्य वसनाञ्चल विश्वकी विशिष्ट चिन्मय सत्ताको कृतकृत्य करता हुआ नित्य खेलता रहता है, किसी समय उस वासना ञ्चलके द्वारा स्पर्शित धन्यातिधन्य पवन लहरियोंका अपने श्रीअङ्गसे स्पर्श पाकर योगीन्द्र मुनीन्द्र दुर्लभ गति श्रीमधुसूदन-पर्यन्त अपनेको परमकृतार्थ मानते हैं, उन श्रीराधारानीके प्रति हमारे मन, प्राण, आत्मा सबका नमस्कार!

यस्याः कदापि वसनाञ्चलखेलनोत्थ-
धन्यातिधन्यपवनेन कृतार्थमानी।
योगीन्द्रदुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि
तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि॥

जो सबके हृदयान्तरालमें नित्य निरन्तर साक्षी और नियन्तारूपसे विराजमान रहनेपर भी सबसे पृथक् गोपवधूटी-विटरूपमें वर्तमान रहते हैं, जो समस्त बन्धनोंको तोड़कर सर्वथा उच्छृङ्खलताको प्राप्त हैं, जिनके स्वरूपका सम्यक् ज्ञान ब्रह्मा, शङ्कर, शुक, नारद और भीष्मादि 'महतो महीयान्' पुरुषोंको भी नहीं है अतएव वे हार मानकर मौन हो जाते हैं, उन सर्वनिमातीत, सर्वबन्धनविमुक्त, नित्यस्ववश, परात्पर परम पुरुषोत्तमको भी जो श्रीराधिका-चरण रेणु इसी क्षण वशमें करनेकी अनन्त शक्ति रखता है, उस अनन्तशक्ति श्रीराधिका चरण रेणुका हम अपने अन्तस्तलसे बार बार भक्ति पूर्वक स्मरण करते हैं।

यो ब्रह्मरुद्रशुकनारदभीष्ममुख्यै-
रालक्षितो न सहसा पुरुषस्य तस्य।
सद्यो वशीकरणचूर्णमनन्तशक्तिं
तं राधिकाचरणरेणुमनुस्मरामि॥

विश्वप्रकृतिके प्रत्येक स्पन्दनमें बिन्दुरूपसे जो विदग्ध-भाव, अनुराग, वात्सल्य, कृपा, लावण्य, रूप (सौन्दर्य) और केलिरस (माधुर्य) वर्तमान है, रासेश्वरी, नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीवृषभानुनन्दिनी उन्हीं सातों रसोंकी अनन्त अगाध उदधि हैं। इस प्रकार नित्यानन्दरसमय सप्त समुद्रवती श्रीराधिका श्यामसुन्दर आनन्दकन्दके नित्य दिव्य रमणानन्दमें अनादिकालसे ही उन्मादिनी हैं—नित्य कुलत्यागिनी हैं। इन्हींके सहज सरल स्वच्छभावके शुद्ध रससे इन्हींके भावानुरागरूप दधिमण्डसे इन्हींकी वात्सल्यमयी दुग्धधारासे, इन्हींकी परम स्निग्ध घृतवत् अपार कृपासे, इन्हींकी लावण्य मदिरासे, इन्हींके छविरूप सुन्दर मधुर इक्षुरससे और इन्हींके केलिविलासविन्यासरूप क्षारतत्त्वसे समस्त अनन्त विश्वब्रह्माण्ड नित्य अनुरञ्जित, अनुप्राणित और ओतप्रोत हैं। ऐसी अनन्त विचित्र सुधारसमयी, प्राणमयी विश्वरहस्यकी चरम तथा सार्थक मीमांसामूर्ति श्रीवृषभानुनन्दिनीका दिव्य स्फुरण जिसके जीवनमें नहीं हो पाया, उसका सभी कुछ व्यर्थ—अनर्थ है। देवी राधिके! अपने ऐसे दिव्य स्फुरणसे मेरे हृदयको कृतार्थ कर दो।

वैदग्ध्यसिन्धुरनुरागरसैकसिन्धु-
र्वात्सल्यसिन्धुरतिसान्द्रकृपैकसिन्धुः।
लावण्यसिन्धुरमृतच्छविरूपसिन्धुः
श्रीराधिका स्फुरतु मे हृदि केलिसिन्धुः॥

श्रीराधिके! वह शुभ सौभाग्य क्षण कब होगा, जब तुम्हारा नाम-सुधा रसका आस्वादन करनेके लिये मेरी जिह्वा विह्वल हो जायगी, जब तुम्हारे चरणचिह्नोंसे अङ्कित वृन्दारण्यकी वीथियोंमें मेरे पैर भ्रमण करेंगे—मेरे सारे अङ्ग उसमें लोट-लोटकर कृतार्थ होंगे, जब मेरे हाथ केवल तुम्हारी ही सेवामें नियुक्त रहेंगे, मेरा हृदय तुम्हारे चरणपद्मोंके ध्यानमें लगा रहेगा और तुम्हारे इन भावोत्सवोंके परिणामरूप मुझे तुम्हारे प्राणनाथके चरणोंकी रति प्राप्त होगी—मैं तुम्हारे ही सुख साधनके लिये तुम्हारे प्राणनाथकी प्रणयिनी बननेका अधिकार प्राप्त करूँगा।

राधानामसुधारसं रसयितुं जिह्वास्तु मे विह्वला
पादौ तत्पदकाङ्कितासु चरतां वृन्दाटवीवीथिषु।
तत्कर्मैव करः करोतु हृदये तस्याः पदं ध्यायतात्
तद्भावोत्सवतः परं भवतु मे तत्प्राणनाथे रतिः॥

—'कल्याण'

प्रेमी पाठकोंसे निवेदन

इस बार उन्नीस वर्ष बाद २०१० वैशाख से पुरुषोत्तम मास का अवसर आया है; इस पुरुषोत्तम मास में दान देने और पुण्य कर्म करने का अनन्त फल होता है।

निःसीमदिव्यबीजानि वर्द्धन्ते कोटिशो यथा।
तथा कोटिगुणं पुण्यं कृतं मे पुरुषोत्तमे॥

भगवान कहते हैं कि जैसे खेत में बोये बीज करोड़ों गुना बढ़ते हैं, वैसे ही मेरे पुरुषोत्तम मास में किया हुआ पुण्य करोड़ों गुना बढ़ता है।

अमावस्या यदा पार्थ सोमवारान्विता भवेत्।
तदा पुण्यतमः कालो देवानामपि दुर्लभः॥

हे पार्थ! जब अमावस्या सोमवारयुक्त होती है, तब सर्वोत्तम पुण्यकाल आता है। ऐसा समय देवताओं को भी दुर्लभ होता है।

इस अधिक मास में सोमवती अमावस्या, वैधृति संक्रान्ति एवं व्यतिपात के पर्वों का भी समावेश है। वैसे तो हर तृतीय वर्ष आनेवाले पुरुषोत्तम मास का बहुत माहात्म्य होता है किन्तु इस बार वैशाख होने के कारण और भी अधिक माहात्म्य है। इसलिये इस पुण्य काल में विशेष रूप से भजन, पूजन एवं दान आदि पुण्य कार्य होने चाहिये।

श्री भजनाश्रम में भजन करनेवाली माइयों को इस काल में अन्न वस्त्र वितरण कराना चाहिये एवं इस माह में माइयों द्वारा भजन कराना चाहिये। देश, काल, पात्र का विचार कर दिया दान सात्त्विक दान होता है; अतः देश, श्री वृन्दावन धाम श्रीकृष्णचन्द्रजी की लीलाभूमि, 'पात्र' भजन करनेवाली गरीब माइयाँ, 'काल' पुरुषोत्तम माह—सब बातें उपयुक्त हैं। यहाँ माइयाँ प्रति माह ९ घन्टे भजन करती हैं और ८।≈) आठ रुपया सात आना एक माह का खर्च लगता है। आप जितनी माइयों द्वारा भजन कराना चाहें ८।≈) प्रति माहके हिसाबसे मनीआर्डर या बीमा द्वारा भेजियेगा। सोमवती अमावस्या आदि पर्वोंके दिन अन्न-वस्त्र-वितरण कराना चाहें तो आपका समाचार आनेसे वितरण कर दिया जायेगा।

जिन सज्जनोंकी फुटकर सहायता आवेगी, वह सब एकत्रित कर अमावस्या व पूर्णिमाके दिन माइयोंको अन्न या वस्त्र वितरण किया जावेगा।

निवेदक—मन्त्री श्रीभगवान भजनाश्रम, वृन्दावन (मथुरा)

श्रीभगवन्नाम-जप कराइये



श्री वृन्दावनमें लगभग ८५० गरीब माइयाँ प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल ६ घण्टे परम मंगलमय श्रीभगवन्नामका जप एवं संकीर्तन करती हैं इन्हें आश्रम द्वारा अन्न, वस्त्र और पैसोंकी सहायता दी जाती है। एक माई प्रतिदिन एक लाख श्रीभगवन्नामजप कर लेती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

कलियुगमें संसार-सागरसे पार उतरनेका एकमात्र सुगम उपाय श्री भगवन्नाम-जप करना ही शास्त्रोंमें वर्णित है। सभी महानुभावोंको स्वयं अधिक-से-अधिक भगवन्नाम-जप करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

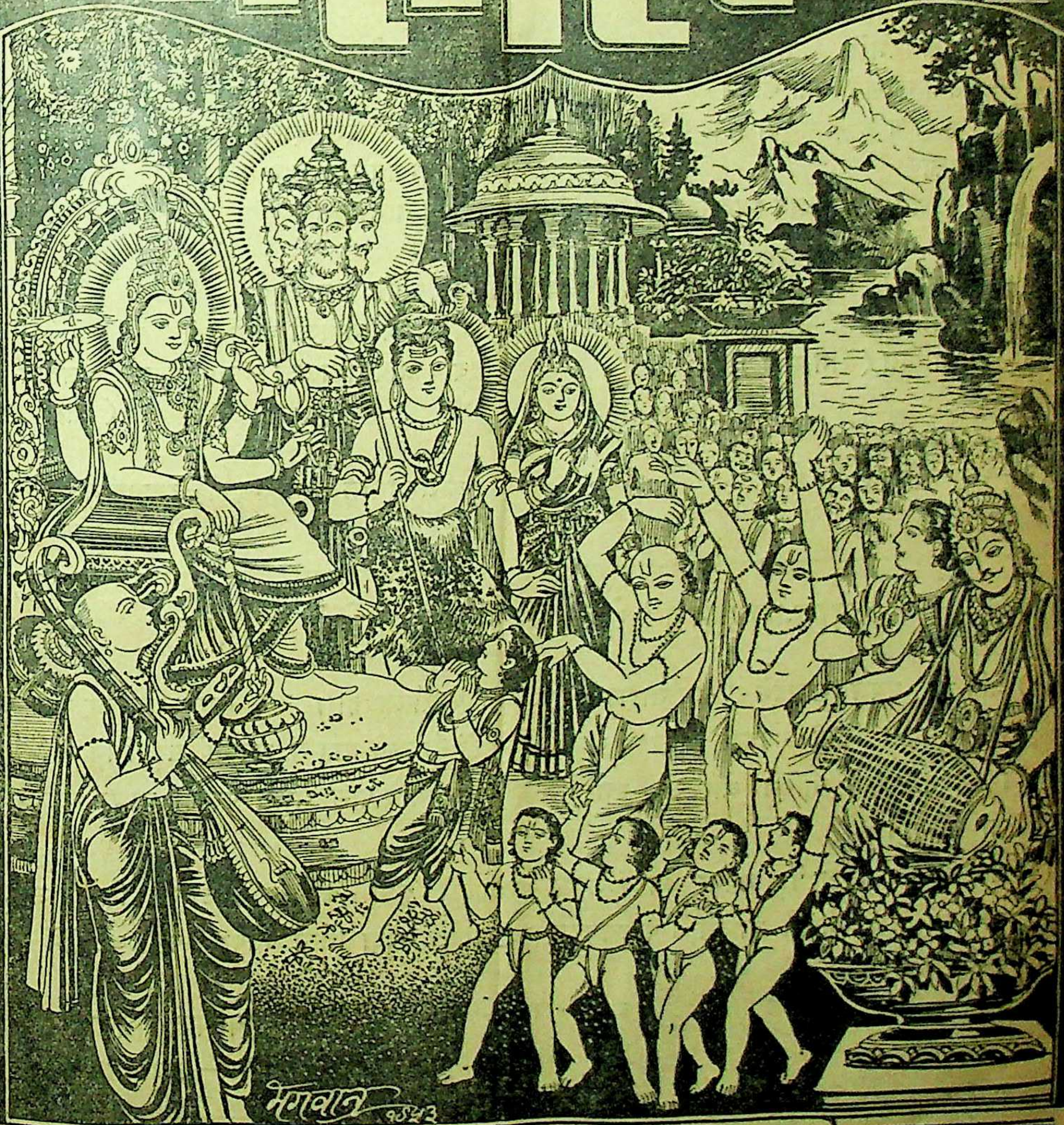
जो महानुभाव अपनी ओरसे गरीब माइयों द्वारा श्रीभगवन्नामजप कराना चाहें, वे कृपाकर हमें सूचित करें। भजनाश्रममें लगभग ८५० गरीब माइयाँ आती हैं, जिनमें-से इस समय लगभग ५०० माइयाँ दान दाताओंकी ओरसे भजन कर रही हैं। बाकी माइयोंसे भजन करानेके लिये हम सभी प्रेमी सज्जनोंसे निवेदन करते हैं कि आप अपनी-अपनी श्रद्धा और प्रेम के अनुसार जितनी माइयों द्वारा जितने मासके लिये भजन कराना चाहें, अवश्य करावें एवं अपने इष्ट-मित्रोंको भी भजन करानेके लिये प्रोत्साहित करें।

एक माईको नित्य प्रति साढ़े चार आनेकी सहायता दी जाती है। इस हिसाबसे एक मासका ८।≈) और एक वर्षका १०१।)खर्च लगता है। पत्र-व्यवहार एवं मनीआर्डर भेजनेका पता :—

मन्त्री—श्रीभगवान-भजनाश्रम,
पोस्ट—वृन्दावन

सम्पादक तथा प्रकाशक—गौरीशंकर ..., श्रीभगवान-भजनाश्रम, वृन्दावन (मथुरा)।
मुद्रक—राममोहन शास्त्री, श्रीगोविन्द मुद्रणालय, काशी।

नाम माहात्म्य



वर्ष १२] वृन्दावन [अङ्क ५

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

[मई सन् १९५३]

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावोंसे प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताहमें "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जाते हैं; फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले, उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भेजा जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्रव्यवहारमें अपना ग्राहक-नम्बर लिखनेकी कृपा करें एवं उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजने चाहिये। पत्रव्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पतेपर स्पष्ट अक्षरोंमें लिख कर भेजिये।

व्यवस्थापकः—"नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम
पोस्ट—वृन्दावन (मथुरा)

सम्पादक तथा प्रकाशक—गौरगोपाल मानसिंहका, श्रीभगवान् भजनाश्रम, वृन्दावन (मथुरा)।
मुद्रक—राममोहन शास्त्री, श्रीगोविन्द मुद्रणालय, काशी।

श्रीहरिः



वर्ष १३ || "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन, मई सन् १९५३ || अङ्क ५

नैया पार लगा दे

ओ हरि नैया पार लगा दे !
तुम बिनु मेरा यह भव सूना, चल चल, तनिक उसे बहला दे ॥
रात अँधेरी पथ भी सूना, दीपक बिन भय मेरा दूना।
पल पल जलकी बढ़ती सीमा, अरे सहारा दे जा आके ॥
वर्षा घोर पवन पुरवैया, डगमग डोले मेरी नैया।
रक्षक बन जा कृष्ण कन्हैया ! तू कर करुणा सत्वर आके ॥
छिन गिरती छिन ही उतराती, मृत्यु-हिंडोले चढ़ती जाती।
बढ़ती जाती हो मदमाती, रिस क्यों ऐसी, टुक समझा दे ॥
बच्चे करते दैया ! दैया ! नहिं आया अबतक रखवैया।
व्यर्थ पुकार हुई है मैया, रख ले लाज जनक कहलाके ॥
छिन छिन बढ़ती चीख पुकारें, अंधकार अति, बादल कारे।
क्योंकर त्राण विपतसे पावै, दे जननी बन दर्शन आके ॥
भयसे सुध-बुध सबने खोई, रूठा ईश्वर कहता कोई।
डूबी नौका आओ साई, मैं तव पैयाँ पडूँ लजाके ॥

कल्याण से

सुख कैसे मिले ?

(लेखक-श्रीस्वामीजी रामसुखदासजी)

जो मन-इन्द्रियोंको अनुकूल मालूम देता है वह सुख और जो प्रतिकूल मालूम देता है वह दुःख है। यह है सुख दुःख की साधारण जनताकी परिभाषा।

हम सोचते हैं कि हमें रोटी, कपड़ा, मकान, सवारी, जमीन, खेत, न्याय, विद्या, औषधि आदि वस्तुएं सस्ती और पुष्कलमात्रामें प्राप्त हो जायं तो हम सुखी हो जायं। किन्तु विचारिये, जिसके पास उक्त पदार्थ प्रचुर मात्रामें हैं, क्या वह वास्तवमें सुखी है ? कदापि नहीं। क्योंकि पदार्थोंके बढ़नेसे उनकी लालसा बढ़ती हैं और वस्तुओंकी लालसा ही सम्पूर्ण दुःखोंकी कारण है। गीतामें अर्जुन ने भगवान्से जब दुःखोंके कारण रूप पापोंका हेतु पूछा तब भगवान्ने पापाचरणका हेतु काम (लालसा) को बतलाया है। तथा दुःखका कारण भी लालसा ही है। कैदमें, नरकादिमें या जहीं-कहीं भी कोई दुःखी देखनेमें आते हैं, उन सबके दुःखों के कारण पूर्व में लालसासे किये हुये पाप या वर्तमानमें पदार्थोंकी लालसा ही है। तथा लालसा (चाह) करनेसे पदार्थ मिलने भी नहीं। संसारी लोग भी चाहनेवालेको नहीं देते, बल्कि जो नही लेना चाहता, उसे लोग आग्रह और प्रसन्नता पूर्वक देना चाहते है। किसी व्यक्तिको यदि सम्पूर्ण संसारकी उपर्युक्त सभी मनचाही वस्तुयें मिल जायं तब भी उनसे तृप्ति नहीं हो सकती, प्रत्युत उसकी लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती जायेगी। 'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई'। इस लालसाके बढ़ानेका अर्थ यही है कि आपको अपनेमें कमीका अनुभव है और जबतक अपनेमें कमीका अनुभव होगा तबतक सुख हो ही कैसे सकता है, प्रत्युत दुःख ही बढ़ेगा।

जरा गम्भीरतासे सोचेंगे तो आपको मालूम हो जा[एगा] कि पदार्थोंके मिलनेसे सुख नहीं होगा। वरन् पदार्थ मि[लने] से दुःखकी कारण इच्छा (चाह) और बढ़ेगी। क[हा] भी है—

> यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
> नालमेकस्य तृप्त्यर्थमिति मत्वा शमं व्रजेत्॥
> न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
> हविषा कृष्णवर्त्मेव भूयए वाभिवर्धते॥

पृथ्वीमें जितने भी धान्य-चावल, जौ, गेहूँ, सु[वर्ण] पशु और स्त्रियां हैं, वे सबके सब मिलकर एक मनु[ष्य] तृप्तिके लिये भी पर्याप्त नहीं है। ऐसा मानकर तृष्[णा] शमन करें। क्योंकि विषय पदार्थोंके उपभोगसे कामना [कभी] शान्त नहीं होती, बल्कि जैसे घीकी आहुति डालने पर [अग्नि] और भड़क उठती है, वैसे ही भोग-वासना भी भो[ग] भोगनेसे प्रबल होती जाती है।

सभी मनुष्य चाहते तो सुखको ही हैं, परन्तु सु[ख] सामग्री इन संसारकी वस्तुओंको ही समझते हैं। इस[लिये] इन्हींको प्राप्त करना चाहते हैं। आज पृथ्वी पर ढाई [अरब] मनुष्य माने जाते हैं। उनमेंसे प्रत्येक व्यक्तिको संसा[रकी] समस्त वस्तुयें कैसे मिल सकती हैं। क्योंकि वस्तुओं[पर] सभीका हक है एवं वस्तुयें सब मिलकर सीमित हैं। उनके चाहनेवाले हैं बहुत अधिक जब एक को भी पूरी [वस्तुएँ नहीं] मिल सकती तब प्रत्येकको सभी वस्तुएँ पूरी कैसे मि[लें]। मान ले, यदि सभीको मिल भी जायें तब भी इन वस्[तुओंसे] सुख होना सम्भव नहीं। क्योंकि चेतन जीवको केवल चिन्मयतासे ही शान्ति मिल सकती है, अपूर्ण और ...

जड़ वस्तुओंसे नहीं। यदि इन नश्वर पदार्थोंके संयोगसे मूर्खतावश जो सुख प्रतीत होता है। उसे सुख मान भी ले तो भी जड़ वस्तुयें तो प्रतिक्षण परिवर्तन शील और नाशवान् हैं तथा जीव नित्य और अविनाशी है। अतः इन दोनों का नित्य संयोग कैसे रह सकता है?

तो फिर सुख कैसे मिले। सुखका उपाय क्या है? सुख का उपाय है—चिन्मय परमात्माकी प्राप्तिका लक्ष्य तथा धर्म व न्यायका आचरण। अभिप्राय यह है कि जब हमारे आचरण धर्मयुक्त होंगे और जब हम न्यायसे प्राप्त अपने हक के अतिरिक्त और ग्रहणकी इच्छा नहीं करेंगे, तभी असली सुखकी उपलब्धि हो सकेगी। यह होगी त्याग और उदारता आने से। जिन वस्तुओंको हम सुख देनेवाली समझते हैं, उनको जब हम सभी त्याग और उदारताके भावसे एक दूसरे को देना चाहेंगे, और लेना नहीं चाहेंगे, तब उन वस्तुओंकी स्वत ही बहुतायत हो जायगी और लेनेवाले ही जायेंगे कम। उस समय हमारी उदारताके फलस्वरूप दैवी शक्ति भी पूरा काम करेगी, जिससे वस्तुओंका उत्पादन भी अधिक होगा। इस प्रकार सर्वत्र सुखका ही साम्राज्य छा जायगा।

त्याग और उदारताकी भावनासे हमारा मन ज्यों-ज्यों जड़ पदार्थोंकी तरफसे हटेगा, त्यों त्यों वह चेतन परमात्माकी तरफ लगेगा। जड़की ओरसे दृष्टि हटते ही चेतनकी ओर स्वतः ही होगी। तब उसकी जो यह मूल धारणा थी कि इन पदार्थोंमें सुख है, वह मिट जायगी। तथा वह चेतन परमात्मा बोध-स्वरूप और आनन्द स्वरूप हो उसकी ओर लक्ष्य दृढ़ हो जाने पर जीव स्वयं ही ज्ञानवान् और आनन्द-स्वरूप हो जायगा। फिर तो ऐसे पुरुषके दर्शन, भाषण और स्पर्शसे दूसरे जीवोंको भी सुख पहुंचेगा; फिर वह स्वयं महान् सुखी है, इसमें तो कहना ही क्या है! जो अपने स्वार्थका त्याग करके जनताका हित चाहता है और बदलेमें किसी भी जड़ चीजको लेना नहीं चाहता, वही असली सुखी है।

कुछ भाइयोंकी यह धारणा है कि धनी आदमियोंके पास जो धन है, उसे छीनकर अभावग्रस्तोंको वितीर्ण कर दिया जाय तो सब सुखी हो जाय। किन्तु सोचना चाहिये कि धनी आदमियोंको जिस जातिका सुख प्राप्त है, वह तो दुःखवाला (दुःख पूर्ण) ही सुख है। जिससे ये रातदिन जलते रहते हैं, इन्हें कभी शान्ति नहीं मिलती। अतः उनसे जो सुख मिलेगा, वह तो उसी जातिका सुख मिलेगा, जो कि दुःख पूर्ण हो तथा जिससे धन छीना जायगा उसे तो महान् कष्ट होगा ही, उसे कष्ट देकर लेनेसे लेनेवालेको भी सुख कैसे होगा, जलन ही होगी तथा वह धन जिसे दिया जायगा, जहां जायगा वहां भी दुःख अशान्ति और जलन ही प्राप्त होगी।

यह सिद्धान्त है कि देनेवाला दे ही दे और लेनेवाला सेवक, प्रचारक लेना ही न चाहे। इससे देनेवालेको तो उदारता पैदा होकर प्रसन्नता होगी और देनेवालेकी प्रसन्नता से लेनेवालेको भी त्याग पूर्वक लेनेसे आनन्द आवेगा। तथा वह अमृतमय पदार्थ जहां जायगा वहां भी सुख शान्ति और आनन्द ही पैदा करेगा। तभी सबको सुख मिलेगा और तभी सबके हृदयके भाव उदार होंगे। क्योंकि सुख वस्तुओंमें नहीं सुख है हृदयकी उदारता में। शास्त्रका वचन है—

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णा क्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥

'संसार में जो भी कामोप भोगका सुख है तथा जो दिव्य महान् सुख है— ये दोनों ही तृष्णा नाश होनेवाले सुखके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं है।'

किसी कविने भी क्या ही सुन्दर कहा है—

चाह गयी चिन्ता मिटी मनुवा बे परवाह।
जिसको कछू न चाहिये सोई शाहन्शाह॥

अतः यह बात सिद्ध हो गयी कि पदार्थों के अभाव में दुःख नहीं, दुःख है पदार्थोंके अभावके अनुभवमें मान

लीजिये, एक आदमीने एकादशीको निराहार व्रत किया और एक दूसरे आदमी को उस दिन कुछ भी उपार्जन न होनेसे निराहार रहना पड़ा। इन दोनोंको ही अन्नादि पदार्थोंके संयोगका अभाव है, किन्तु एक प्रसन्नतापूर्वक व्रत रखकर सुखी होता है और दूसरा पेटमें अन्न न पहुंचने से दुःखका अनुभव करता है। अतः अभावका अनुभव ही दुःख है। यदि अभावमें ही दुःख हो तब तो विरक्त साधु संन्यासियोंको भी दुःख होना चाहिये क्योंकि उनके पास न तो स्त्री है, न धन है, न मकान है, न कपड़े हैं, न सवारी है, और न पहलेसे किया हुआ उदरपूर्तिके लिये इन्तजाम है। किन्तु इन सबके न रहते हुये भी वे सबके सब बड़े सुखी हैं। क्योंकि उनके पास जाकर बड़े बड़े महाराजा और धनी भी अपने अन्तःकरण की जलन मिटाकर सुखी होते हैं। इसका कारण यह है कि वे पदार्थोंके अभावमें भी नित्य भावरूप सच्चिदानन्द परमात्मा की अनुभूति करके मस्त रहते हैं। वास्तवमें अभावका अनुभव होता है। मूर्खता से। इसलिये चाहे कितना ही अभाव क्यों न हो, मनुष्यको अभावका अनुभव न करके नित्य भावरूप परमात्माका चिन्तन करना चाहिये। जो पदार्थोंके न होनेसे या उनकी कमी होनेसे अभाव या कमी का अनुभव नहीं करेगा, वह भगवानके मङ्गल विधानके अनुसार आये हुये दुःखमें दुखी नहीं होगा। प्रत्युत उसमें अपने पूर्व कृत पापोंका [illegible] और भगवानकी कृपा समझकर सुखी ही होगा।

जो धनको मूल्य देकर रोटी कपड़े आदि पदार्थोंसे [illegible] पाना चाहते हैं वे भूल करते हैं। जड़को मूल्य देनेसे [illegible] होगा और अधर्मका आचरण होनेसे सुख कभी न [illegible] और न होगा ही। इसके विपरीत, यदि सत्य चेतना [illegible] अक्षय सुखके भण्डार भगवान्‌को मूल्य देकर उनके [illegible] (भगवान्‌के भावोंके अनुभव और प्रचार द्वारा) सुख पा[illegible] चाहेंगे तो सदाके लिये सुखकी प्राप्ति हो जायगी।

इसलिये हमें परमात्माकी प्राप्तिका ही लक्ष्य बना[illegible] चाहिये। तथा सांसारिक पदार्थोंसे सदा विरक्त रहना [illegible] उनकी लालसाको मनमें आने ही नहीं देना चाहिये। [illegible] तत्परतासे परमात्माके चिन्तनमें सहायक सत्शास्त्रोंका अध्य[illegible] संत-महात्माओंका संग, परमात्मासे स्तुति-प्रार्थना [illegible] निरन्तर नाम का जप निष्काम भाव पूर्वक करना चाहिये।

कलियुगमें तो केवल परमात्माके नामके जपको [illegible] गुप्त रूपसे, निष्काम भाव पूर्वक, निरन्तर ध्यान सहि[illegible] आनन्द और आदरसे करता है। उसे परमानन्द स्वरू[illegible] परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र और सहज ही हो जाती है—

गुप्त अकाम निरन्तर, ध्यान सहित सानन्द।
आदर युत जपसे तुरत, पावत परमानन्द॥

हे विधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया॥
सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥
नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमलअनुरागा॥
एक बानि करुणानिधान की। सो प्रिय जाके गति न आन की॥
होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन॥

कितना सरल, कितना कठिन !

(२)

[श्रीकृष्ण दत्तजी भट्ट]

छोटी छोटी सी सिर्फ तीन बातें :—

(१) परापवादमें मूक बन जाओ,

(२) परदार निरीक्षणमें अन्धे बन जाओ,

(३) परधन हरणमें पंगु बन जाओ।

मतलब ?

(१) किसीकी निन्दा मत करो। किसीकी चुगली मत खाओ। ऐसा कोई प्रसंग आजाय तो तुम्हारी वाणी मूक बन जानी चाहिये।

(२) परस्त्रीकी ओर कुदृष्टिसे मत ताको। ऐसा कोई प्रसंग आये तो तुम्हारी आंखें अन्धी बन जांय।

(३) पराये धनको मत छुओ। दूसरेका धन, लेने जानेसे लंगड़ा हो जाना अच्छा।

कितनी सीधी, सरल बातें हैं !

कहा गया है कि:—

मूकः परापवादे
परदारनिरीक्षणेऽप्यन्धः ।
पंगुः परधानहरणे
स जयति लोकत्रये पुरुषः ॥

इन तीन बातोंको जो कर ले सो तीनों लोकोंको जीत ले !

× × ×

इतना सीधी बातें और इन्हें कर लेनेपर कोई भी व्यक्ति त्रिभुवनविजयी बन सकता है।

तब जरूर इनमें कोई कठिनाई है। तीनों लोकोंको जीतना दालभातका कौर तो है नहीं।

सोचिये तो पग-पगपर हमें महसूस होगा कि ये तीनों बातें देखनेमें जितनी छोटी और सरल मालूम होती हैं, उतनी सरल हैं नहीं। सारा जीवन शास्त्र आ जाता है इनके भीतर।

सो कैसे, शायद आप पूछें।

तो सुनिये।

परापवादमें मूक बनना बड़ा कठिन है।

हम जिस दफ्तरमें काम करते हैं, उसमें कितने ही और भी कर्मचारी हैं। एकसे दूसरेका स्वार्थ टकराता है। अपने स्वार्थकी रक्षा करना कौन नहीं चाहता ? और बस, परापवादका सिलसिला शुरु हो जाता है।

× × ×

परापवाद बन्द करना है तो स्वार्थ त्यागके लिए भी तैयार रहना होगा।

काम भी जमकर करना होगा और तरक्की भी न चाहनी होगी अर्थात् सन्तोष वृत्ति भी अपनानी होगी।

बहुतसे दफ्तरोंमें ऐसे भी कर्मचारी रहते हैं जो कामके नामपर मक्खी भी नहीं डुलाते, पर परापवाद के बलपर ही तरक्कीपर तरक्की पाते चले जाते हैं। उनसे ईर्ष्या भी नहीं करनी होगी। इस प्रकार परापवाद त्यागनेके लिए ईर्ष्याको भी धो बहाना होगा।

× × ×

संसारमें तरह तरहके लोग हैं। रोज ही हमें सैकड़ों, हजारों आदमियोंसे काम पड़ता है। इनमें बहुतसे ऐसे हैं जिनसे हमारे स्वार्थमें बाधा पहुँचती है। बहुतसे लोग ऐसी अनेक बातें कर देते हैं जो हमें पसन्द नहीं आती, जो हमारे मनके अनुकूल नहीं होती, जिनसे हमारे 'अहं' को ठेस लगती है, जिनसे हमारे माने हुए मान सम्मानमें कमी आती है, प्रतिष्ठा घटती है, बस हमारी वाणी उनके विरुद्ध जहर उगलने लगती है। परापवाद

छोड़नेका मतलब हुआ कि हम इन सब बातोंकी रत्ती भर भी पर्वाह न करें। तात्पर्य, हमें सहनशील बनना होगा।

× × ×

मन जब कलुषित होता है, चित्त जब मलिन होता है, बुद्धि जब विकृत होती है, तब घर और बाहर, दफ्तर और दूकान, स्कूल और कालेज, क्लब और होटल, यत्र तत्र सर्वत्र हम पराये दोष ही खोजा करते हैं, दूसरोंकी बुराइयां खोजनेमें, दूसरोंकी गलतियां निकालनेमें, दूसरोंका अपवाद करनेमें, दूसरोंकी निन्दा करनेमें हमारी जीभ बड़ा रस लेती है। हमारे कान—"पर अघ सुनइ सहस दस काना" वृत्ति धारण कर लेते हैं। परापवादका त्याग करनेके लिए हमें वाणीपर तो नियन्त्रण लगाना ही होगा, कानोंपर भी रोक लगानी पड़ेगी।

इतना ही नहीं, हमें यह वृत्ति भी धारण करनी पड़ेगी।

जाके भावे जो करो
भलो बुरो संसार।
'नारायण' तू बैठ कर
अपनो भवन बुहार॥

कहना न होगा, परापवादका त्याग करनेके लिए हमें

१—स्वार्थ त्याग करना होगा,
२—ईर्ष्या छोड़नी पड़ेगी,
३—सहनशील बनना होगा,
४—वाणीपर नियन्त्रण करना होगा,
५—कानोंपर नियंत्रण और लगाना होगा
६—चित्त शुद्धि और करनी होगी।

+ + +

परापवाद छोड़नेके लिए हमें अपने हृदयको उदार बनाना होगा, सन्तोष वृत्ति अपनानीप ड़ेगी, सहनशीलता धारण करनी पड़ेगी और चित्तके मलको धो बहाना होगा। इस कसौटीपर हम केवल तभी खरे उतरेंगे जब हमारे मुखसे किसी भी व्यक्तिके लिए कभी भी कोई भी निन्दाका शब्द न निकले। किसीके दोषोंपर हमारी दृष्टि जाये ही नहीं। हमारी दृष्टि सर्वत्र मंगल ही मंगल देखे। मंगलमय प्रभुकी सृष्टिमें अमंगल है ही कहां?

+ + +

परदार निरीक्षणमें अन्धा बन जाना भी बड़ी कड़ी साधना है। मायाका जाल बड़ा आकर्षक है। बड़े बड़े ऋषि मुनि भी इसके आगे घुटने टेक बैठे हैं। हम साधारण प्राणियोंका तो कहना ही क्या! हमारी रुपरसकी प्यासी आखें दिनरात विषय वासनाकी मदिरामें डूबी रहती हैं।

इस विषयमें अन्धे बननेका अर्थ यह नहीं कि हम अपनी आंखें फोड़ डालें अनेक अन्धे भी तो व्यभिचारी पाये जाते हैं। जरूरत है विषय शक्तिको उखाड़ फेंकने की। भोगी, रोगी और योगीकी पहचान आंखोंसे ही होती है। आंखें रहें, पर वे पवित्र रहें। उनमें मलिनता न रहे। उनमें विषय विकार न रहे।

और, इसके लिए हमें पगपग पर सावधान रहना होगा। हमारा दृष्टि चांचल्य रुक जाना चाहिये। पैरोंकी ओर दृष्टि करके चलनेका हम अभ्यास करते करते ऐसा स्वभाव बना डालें कि जो देखने लायक नहीं है, उसकी ओर हमारी दृष्टि जाये ही नहीं।

आज हमारी आंखोंमें अबजा और कानोंमें

तबला बसा हुआ है। उसे निकाले बिना साधनाके पथपर अग्रसर होना सम्भव ही नहीं है।

अवगुन मूल सूलप्रद,
प्रमदा सब दुःख खानि"

प्रमदाके आकर्षणमें विश्वामित्र सरीखे महात्मा तक फंस जाते हैं। उसके "खण्डित हि जगत्सर्वं स देवासुरमानुषम्"—सबको मोह पाशमें बांध लिया है। उससे बचनेके लिए सभी इन्द्रियोंका कठोर संयम करना होगा। विलाशी जीवनका परित्याग करना होगा। आंखें पवित्र बनानी पड़ेंगी, शरीरका अंग अंग पवित्र बनाना पड़ेगा। ब्रह्मचर्यका अर्थ है—सर्वेन्द्रिय संयम। एक भी इन्द्रियको छुट दी नहीं कि प्रमदा आकर सारी साधना पानी फेर देगी। यहांतक कि उसका स्मरण तक त्याग देना होगा। गीतामें विषयोंके ध्यानसे पतनकी जिस सीढ़ीकी शुरुआत बतायी गयी है वह बुद्धिनाशतक ले जाती है और अन्तमें गहरे ले जाकर डुबा देती है। क्यों न हो,

"विवेक भ्रष्टान्नांम भवति विनिपातः शतमुखः।"

और परधन हरण ?

आज हम सब पल भरमें करोड़पति बननेका स्वप्न देखते हैं। जुआ, सट्टा, वर्गपहेली, शब्द पहेली, रेस—जैसे अनेक साधन पुकार पुकार कहते हैं कि परधन हरणके लिए हम कितने आतुर हैं।

चोरी, जालसाजी, डाका, विश्वासघात, छल प्रपंच, ४२० आदि न जाने कितनी तरकीबें हमने निकाल रखी हैं, दूसरेकी जेबसे रकम खींच कर अपनी जेबमें डाल लेने की।

हम कमसे कम काम करके अधिकसे अधिक पैसा खींचनेके लिए जमीन आसमानके कुलाबे एकमें मिलानेको उत्सुक रहते हैं।

जो व्यक्ति परधन हरणमें पंगु बनेगा, वह पसीना बहाकर ही पैसा लेगा। मुफ्तके धनको वह ठोकर मार देगा। ईमानदारी ही उसका सम्बल होगी और यह तो तय है कि ऐसा कोई काम वह कभी न करेगा जिसमें किसी अन्यके स्वत्वका अपहरण होता है। वह रुखी और सूखी रोटी में ही सन्तोष मानेगा, चुपड़ी उसे नहीं चाहिये, सपनेमें भी नहीं।

और यहीं मुझे उस आर्य रमणीकी तपस्या स्मरण आती है जिसने पतिका निधन होते ही पतिकी सम्पत्ति जर जमीन और बैलका यह कहकर त्याग कर दिया था कि इस सम्पत्तिके लिए जब मैंने अपना पसीना नहीं बहाया तो इसके उपभोगका मुझे अधिकार ही क्या है!

\+ + +

स्पष्ट है कि ये तीनों छोटी छोटी बातें, देखनेमें सरल लगनेपर भी, हैं बड़ी कठिन।

\+ + +

साधनाका पथ ऐसा ही कंटकाकीर्ण है। इसपर बढ़नेके लिए सिर कटाना पड़ता है।

तभी न 'कबीर' ने कहा है—

"सीस काटिके भुंह धरे
तापर राखे पांव।"

यह तो सिरका सौदा है। प्राणोंकी बाजी है। मन, वचन, कर्म—सबकी शुद्धि करनी पड़ती है इस मार्ग में।

और जो इसमें समर्थ हो सकेगा उसका त्रिभुवन विजयी बनना निश्चित है, सर्वथा निश्चित।

"जग जीतनेसे बढ़कर है नफ्स जीत लेना!"

कृष्ण कृष्ण कहले मनुवा कृष्ण कृष्ण कहले

(लेखक—भक्तरामशरणदासजी)

श्रीकृष्ण कृष्ण कहले मनुवा कृष्ण कृष्ण कहले उठ बहुत सो लिया अपना सब कुछ खो लिया । अब आँखें खोल और कृष्ण कृष्ण कह अपना अपने कुल का कल्याण कर । अरे बहुत खा लिया बहुत पी लिया पर भूख प्यास आज तक शाँत नहीं हुई शाँता तो तुझे एक मात्र गला फाड़ फाड़कर श्रीकृष्ण कृष्ण कहने से श्रीकृष्ण कृष्ण का कीर्तन सुननेसे श्रीकृष्ण कृष्ण श्रवण करनेसे, श्रीकृष्ण प्रेममें निमग्न होनेसे, श्रीकृष्ण प्रेमका अद्भुत प्याला पीने मतवाला बन जानेसे ही होगी अन्यथा लाख सर पटक संसारमें चाहे जितना भटक, दुनिया भरके पदार्थ गटक पर शाँती नहीं होगी, नहीं होगी, नहीं होगी । शान्ति चाहता है, सुख चाहता है तो एकमात्र प्रभु श्रीकृष्णको मीराके श्रीगिरधरनागरको, सूरके श्यामको, नरसीके साँवालियाको याद कर, पुकार और उसीसे मिलनेके लिये तड़फड़ाहट पैदा कर ।

रामनाम बिनु सुनहु खगेशा ।
मिटहिं न जीवन केर कलेशा ॥

बस यदि संसारसे मुक्त होना चाहता है, सच्ची सुख शान्ति प्राप्त करना चाहता है, अपना अपने कुलका उद्धार चाहता है, प्रभुसे दो दो बातें करना चाहता है, तो बस एकमात्र यही उपाय है कि लोक लज्जाको छोड़कर प्रेममें पागल मतवाला बनकर श्रीकृष्ण कृष्ण कह श्रीकृष्ण कृष्णका कीर्तन कर, कृष्ण कृष्णका जप कर । आप श्रीकृष्ण कृष्ण कह और मित्रोंसे कृष्ण कृष्ण कहला और इतना श्रीकृष्णनामामृतका पानकर जो कृत-कृत्य हो जाय । श्रीकृष्ण नामामृतका पान करके तु फूले अंग न समायेगा और फिर लाख प्रयत्न करने पर भी तू श्रीकृष्ण नाम लेना कदापि न छोड़ेगा । श्रीकृष्ण नाममें जो आनंद है जो मजा है वह सारे संसारकी खाक छान कर देख ले पर ऐसा आनन्द कहीं पर भी ढूंढे नहीं मिलेगा । श्रीकृष्णनाम लेने में, श्रीकृष्णकीर्तनमें जो सुख शान्ति है वह सारा चक्रवर्तीराज्य मिलने पर भी नहीं प्राप्त होगा । श्रीकृष्णके नाममें जो मधुरता है, जो अद्भुत रस है वह सारे संसार की बोतल चाटने पर भी प्राप्त नहीं होगी । श्रीकृष्ण नामको पाकर हिन्दू तो क्या मुसलमान ताजबीबी, रसखान, हरीदास जैसे—हजारों मुसलमान तक तिलक छापे लगा श्रीकृष्ण कृष्ण गा अपने को कृतकृत्य कर गये, धन्य-धन्य कर गये, निहाल कर गये और इस प्रकार श्रीकृष्ण नामके बलपर जन्म-मृत्युके चक्करसे छुटकारा पा गये । ऐ हिन्दू राम कृष्ण, महर्षी मुनियोंकी संतान फिर भी तू हिन्दू होकर भी श्रीकृष्ण नामामृतका पान क्यों नहीं करता ? तू व्यर्थ ही क्यों चक्कर में फंस रामकृष्णको काल्पनिक मान श्रीकृष्णनामामृतके पान करनेसे अपनेको वंचितकर रहा है ? श्रीकृष्ण कदापि काल्पनिक नहीं श्रीकृष्णका अहर्निशाकीर्तनकर, श्रीकृष्णका स्मरणकर, श्रीकृष्ण नामका जपकर श्रीकृष्ण कथाका श्रवणकर, श्रीकृष्ण मंदिरों का दर्शन कर, श्रीकृष्ण भक्तोंका सत्संगकर, श्रीकृष्ण गुणानुवादगायन कर इसीमें तेरा कल्याण है, तेरी जातिका कल्याण है, तेरे देशका कल्याण है । आ आ श्रीकृष्ण कृष्ण गा, श्रीकृष्ण कृष्ण गाकर निर्भय हो जा और स्वयं तर और दूसरोंको भी तार जा । बोल बोल गला खोलकर बोल—

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे ।
हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

राधिका

(ले०—अकिन्चन, राधेश्याम द्विवेदी, साहित्य मनीषी,)

माधुर्य और आल्हाद की अधिष्ठात्री देवी राधिका,

चित्त को अपने उस दिव्य संगीतसे आप्लावित कर दे जा तेरे श्री चरणों की मधुर एवं आल्हाद भयी मन्दाकिनीके रूपमें कल कल निनादित है,

विध्वंसक विज्ञानमें उलझे हुये श्रमित मस्तिष्क की पीडित रगोंको मानव पूजा एवं मानव प्रेमको प्रसाद लुटानेवाले अपने श्रीचरणोंमें टिका कर शीतलता एवं शान्ति प्रदान कर,

हमारे चितकी विपरीत दशा पर देखी, तू तरस खा, द्रवित हो जा, यह चित्त विषको अमृत, दुखको सुख, अशान्तिको शान्ति, घृणाको प्रेम, स्वार्थको कर्त्तव्य, अधिकार प्राप्तिको लक्ष्य मान बैठा है, कैसी करुण एवं दयनीय दशा है मां इस चित्तकी, कि जिसके कारण वह निरन्तर दुखी रहता है, ऐसी ही अवस्थामें तो मां, पुण्यमयी दृष्टि करना तेरा काम है,

मां, यह धारणा बना दे कि चित्त अन्तर्मुखी होकर कल्याणके उद्यानको सींचे, विनाशके गर्त्तको न भरे,

आदि शक्ति, राधिका

अणु बम, उद्जन बम, हाईड्रोजन बमको ही शक्ति माननेवाले मति वालोंको तू सुमति एवं विवेक दे कि जिससे वे उसका खोखलापन और असारता का अनुभव करें और केवल उस शक्तिका मनन एवं ध्यान करें कि जो नैतिकता तथा अध्यात्म बल का आधार है।

योग माये, राधिका,

कंसके अत्याचार, अनाचार एवं शोषणसे त्राण दिलानेवाली शक्ति तू ही तो थी, तेरा रंग मंच विस्तीर्ण है। आज विश्वको शोषण एवं अत्याचार अनाचारसे मुक्ति चाहिये,

भगवती राधिका,

वैभव और विलासकी चकाचौंधमें सुन्दरताको देखनेवाले नेत्रोंमें अपने श्री चरणोंकी प्रभा छिटका दे,

जगज्जननी राधिका,

नारियोंको मातृत्वकी उच्चासन पर विराजमान रहकर अपने गौरवको अक्षुण्ण रख सकनेकी क्षमता प्रदान कर, तथा नरोंमें मातृत्व मति प्रदान कर, जिससे यह तेरा पुत्र जगत सुखी एवं समृद्धिशाली बने।

मेरी आराध्य, राधिका

सृजन, स्थिति, लयके अधीश्वर जिसके चरणों की कृपा चाहते रहते हैं, अनादि और अनन्तके हृदय भृंगकी जो मञ्जरी है उसकी चरण रज इस अकिन्चनकी आराध्य, सेव्य, उपास्य है। वही इस किंकरकी गीता और गायत्री है।

भक्त जगतको यह पावन सन्देश है कि वे अविलम्ब प्रत्येक कार्य करते हुये क्षण क्षण राधिकाकी कृपा का अनुभव करें। और अपना लक्ष्य एक मात्र राधिकाके श्रीचरणोंकी उपासना रखते हुये अपना लोक जीवन मधुर एवं आह्लाद मयी बनायें और परलोकमें श्रीजीके लीला क्षेत्रमें चाकरीका सुख लूटें।

निखिल लोक नायिका, भक्त वर दायिका
प्रेम सुख साधिका, कृष्ण प्रिया राधिका

श्रीभगवानभजनाश्रम एवं वृन्द्रावनभजना- श्रमके आय व्ययका विवरण
मितीमगसरसुदी ६ सं० २००६ से मिती पोह सुदी ८ सं० २००६ तक मास १ का

१३५३॥)	सहायता प्राप्त	१३०)	वृद्ध माइयोंको दीना
६६८२)	माई भजनका प्राप्त	५३५)	कर्मचारियोंका वेतन
१५०॥)	मासिक चन्दा सालाना चन्दा	१२४॥।=)॥	पोस्टेज खर्चा
६३२॥)	विशेष सहायता	३८८।=)॥	खुदरा खर्चा
	१२४१८॥)	४०)	कर्मचारियोंकी रसोई
८३६७॥)॥	भजन करनेवाली माइयोंको पैसादीना		६५८५॥।-)॥

श्रीभगवान भजनाश्रम एवं श्रीवृन्द्रावन भजनाश्रममें सहायता देनेवाले सज्जनोंकी नामावली
[मितीमगसरसुदी ६ सं० २००६ से मिती पोहसुदी ८ सं० २००६ तकका महीना एकका]

७॥-)	श्री रतीलालजी हीरालालजी	अहमदाबाद	११)	,, शिवरामजी सालिगरामजी	,,
२००)	,, कानोडिया सप्लाई कं०	कानपुर	३१)	,, स्योनाथदासजी प्यारेलालजी	,,
४००)	,, अनन्तरामजी कन्हैयालालजी	कानपुर	११)	,, मुरारीलालजी राधेश्यामजी	,,
२०)	,, रघुनाथजी सुरजकरनजी	काँरजा	११)	,, गोटीरामजी रत्नलालजी	,,
११)	,, ठाकुरदासजी	कलकत्ता	५)	,, रघुनाथसहायजी किरोडीमलजी	,,
१०)	,, जीवनलालजी	कम्वाय	५)	,, विहारीलालजी अग्रवाल	,,
११)	,, वच्छराज फेक्टरी	खाँमगाँव	५)	,, वद्रीदासजी व्रजमोहनजी	,,
११)	,, पन्नालालजी राधाकिशनजी	,,	११)	,, वैजनाथजी रावतमलजी	,,
५१)	,, सीठपारख एण्ड कम्पनी	,,	७५)	,, गंगारामजी जाट	गनेशगढ़
११)	,, झुभनवाला कम्पनी	,,	५)	,, रामनारायनजी रुडमलजी	छपरा
११)	,, आनन्दजी गोविन्दजी	,,	२०)	,, लुनकरनघी	जैपुर
११)	,, अर्जुनजी खीमजी	,,	११)	,, साँवलरामजी पोद्दार	जहानाबाद
११)	,, सीतारामजी वृन्द्रावनजी	,,	५१)	,, गनेशमलजी फतेहचन्दजी	तुमसर
११)	,, मोहनलालजी भंवरलालजी	,,	१५)	,, मोगीलालजी मोतीलालजी	पानसर
२१)	,, माँगीलालजी छगनलालजी	,,	११)	,, रामप्रतापजी पूरनमलजी	विराटनगर
११)	,, भाईदास भुरानदास		१०)	,, चोकसी भानुप्रसादजी रसिकलालजी	वल्लभ
११)	,, चन्दूलालजी कान्तीलालजी	,,	५)	,, मनीवाईनी पोद्दार	भागलपुर
११)	,, जीवनलालजीनाथानी	,,	६२)	,, विशनदास कन्हीरामजी	,,

५)	,, नरसिंहदासजी आनन्दीरामजी	,,	२१)	,, मायारामजी दुर्गाप्रसादजी	,,
२१)	,, चन्दूलालजी रामेश्वरदासजी	मुजफ्फरनगर	८।≡)	,, हनुमानकी माँ	राँची
२१)	,, चन्दूलालजी घनश्यामदासजी	,,	१०)	,, दुरगाबाई	,,
२१)	,, मुसद्दीलालजी आत्मारामजी	,,	५)	,, लक्ष्मीनारायणजी सुरजमलजी	सेमापुर
२१)	,, जवाहरलालजी नृसिंहदासजी	,,	३४॥)	,, फुटकर	
			१३५३॥)		

श्रीभगवान भजनाश्रममें माइयों द्वारा भजन कराने वाले सज्जनोंकी नामावली
[मितीमगसर सुदी ९ सं० २००६ से मिती पोह सुदी ८ सं० २००६ तक महीना १ का]

३३॥।)	श्री बाबूलालजी हेडमास्टर	अर्जुनपुर	८।≡)	,, किसनलालजी खेतान	,,
२००)	,, रामनारायनजी रामसुखजीझंवर	अमरावती	८।≡)	,, सीतल बाबू	,,
२००)	,, किसनलालजी मोतीलालजी	,,	२५।-)	,, बिहारीलालजी भरतीया	,,
१००)	,, झूमरमलजी गोपीकिसनजी	,,	२५।-)	,, तीजादेवीजी भरतिया	,,
१२६॥-)	,, ब्रजवल्लभजी मुखिया वैद्य	आगरा	१०१।)	,; विशेश्वरलालजी लाट	,,
३१।)	,, बी० पी० शर्मा	अजमेर	५०६।)	,, बैंजनाथजी नारसरिया	,,
२५।-)	,, रामलालजी गोयल	,,	१०१।)	,, सुरजमलजी भीमराजजी	,,
१६॥।=)	,, रामकुवारजी मुदडा	इन्दोर	१०१।)	,, बद्रीनाथजी झंवर	कुटासा
१०)	,, जी० के० अग्रवाल	इटावा	१००)	,, बीणाबाईजी	कानपुर
१६॥।=)	,, घीसालालजी शिवाजीरामजी	ओझर	२५।-)	,, हरेकिशनजी	,,
२५।-)	,, रामनिवासजी दरगढ़	किसनगढ़	६७॥)	,, जदुनन्दनप्रसादजी	,,
८।≡)	,, राधाकिसनजी काकर्ण	,,	८।≡)	,, रघुबीरप्रसादजी गुप्त	करेली
१६॥।=)	,, बैंजनाथजी जालान	कलकत्ता	८।≡)	,, चुन्नीलालजी राधाकिशनजी	कोय
२५।-)	,, छोटेलालजी कानोडिया	,,	२५-।)	,, बंजरगलालजी पाटोदिया	केन्दुपट्ना
१०१।)	,, मानिकचन्दजी बागड़ी	,,	८।≡)	,, हरनारायनजी राधाकिशनजी	खामगाँव
१०१।)	,, गंगाधरजी मुरारका	,,	८।≡)	,, तनसुखरायजी श्रीरामजी	,,
१०१।)	,, बद्रीदासजी	,,	८।≡)	,, रामचन्दजी लालचन्दजी	,,
१०१।)	,, पुसारामजी कन्हैयाँलालजी	,,	८।≡)	,, शिवचरनजी होतीलालजी	,,
५०६।)	,, सीतारामजी शुभकरनजी	,,	१०१)	,, खन्डेलवालब्रादर्स	,,
२५।-)	,, ज्वालाप्रसादजी परसरामपुरिया	,,	८।≡	,, नथमलजी अग्रवाल	,,
१०१।)	,, हीरानन्दजी सेवारामजी	,,	८।=)	,, राधाकिसनजी नन्दलालजी	,,

८।≈)	,, लालचन्दजी गोविन्दरामजी	,,	८।≈)	,, केसरीचन्दजी राठी	जोरहाट
२५।-)	,, केडिया आईल मिल्स	,,	१७)	,, बालचन्दजी लालचन्दजी	डूगरगढ़
२५।-)	,, मानिकलालजी कानजी	,,	२५।-)	,, ताडिया लि०	तिलारा
८।≈)	,, गंगारामजी प्रेमसुखदासजी	,,	२५।-)	,, लच्छमीबाईजी	तराना
२५।-)	,, मथुरादासजी मंगलजी	,,	२५।≈)	,, बद्रीनारायनजी	तेजपुर
१६॥≈)	,, गनेशमलजी चम्पालालजी	,,	१६॥≈)	,, राधाकिशनजी डालमिया	देहली
१०१।)	,, हनुमानदासजी विलासरामजी	,,	१६॥≈)	,, घनश्यामदासजी केडिया	,,
८।≈)	,, सुखदेवजी रामजी	,,	५०॥≈)	,, हिन्दुस्तान इन्डस्ट्रीज	,,
८।≈)	,, शंकरलालजी नारायणदासजी	,,	५०॥≈)	,, आत्मारामजी की माता	,,
१६॥≈)	,, जगन्नाथजी कीनीवाल	,,	२५।-)	,, द्वारकाप्रसादजी कृष्णप्रसादजी	,,
२५।-)	,, श्रीनिवासजी जानकी प्रसादजी	,,	८।≈)	,, मागीलालजी मुरारीलालजी	,,
८।≈)	,, कुन्जीलालजी किसनगोपालजी	,,	१०१।)	,, रामकुवारजी	,,
१६॥≈)	,, भगवानदासजी गजाधरजी	,,	८।≈)	,, रामकुवारजी वेदप्रकाशजी	,,
८।≈)	,, लखमीचन्दजी रामचन्दजी	,,	८।≈)	,, मुन्शीरामजी ठाकुरदासजी	,,
२५।-)	,, गजानन्दजीसखील	,,	१०१।)	,, गौरीशंकरजी [illegible]हला	,,
२५।-)	,, विरधीचन्द एन्ड कम्पनी	,,	१६॥≈)	,, नानकचन्दजी सीतारामजी	,,
८।≈)	,, नारायनदासजी मेहता	,,	८।≈)	,, हरदेवदासजी छन्नूमलजी	,,
८।≈)	,, टीकमदासजी रत्नलालजी	,,	१६॥≈)	,, कोलेश्वरराऊतवीन	धूबड़ी
८।≈)	,, रामलालजी टीकुलालजी	,,	४२≈)	,, राधाकिशन एन्ड कम्पनी	,,
८।≈)	,, माखरिया एन्ड रुगटा कम्पनी	,,	१८।≈)	,, विहारीसाहनी बनिया	नैपालगंज
८।≈)	,, केलाचन्दजी देवचन्दजी	,,	८।≈)	,, दमडी भगतजी	पीरपैंती
८।≈)	,, लादुरामजी बंजरगलालजी	,,	२०२॥)	,, शंकरदासजी केलाशचन्दजी	फतेहगढ़
८।≈)	,, मोहनलालजी रामकिशनजी	,,	१०१।)	,, भोलानाथजी मदनलालजी	,,
५०)	,, हीरालालजी हनुमानबक्सजी	खेजरोली	२११)	,, राधाकिसनजी नथमलजी	बिलासपुर
६।॥)	,, सादुरामजी हनुमानबक्सजी	,,	१०१)	,, नथमलजीकी माताजी	,,
१००)	श्री गिरजामलजी भुरामलजी	गोहाटी	८।≈)	,, वैजनाथजी भिवानीवाला	घरगढ़
८।≈)	,, जगदीशप्रसादजी अग्रवाल	गडेरिया	८।≈)	,, किशोरीलालजी सन्तलालजी	,,
२५।-)	,, कृष्णगोपालजी सारडा	चाईबासा	८।≈)	,, जैयलालजी अग्रवाल	,,
२५।-)	,, मथुराप्रसादजी पूरनमलजी	चक्रधरपुर	१०१।)	,, द्वारिकादासजी गोविन्दरामजी खेतान	बम्बई
२५।-)	,, मुरलीधरजी	झुगसलाई	६)	,, मानिकस्वरूपजी	,,

१०१)	,, जोहरीमलजी रामलालजो	,,	१०१)	,, गोपीरामजी	,,
१०१)	,, सागरमलजी मोदी	,,	१०१)	श्री हनुमानदासजी प्रहलादरायजी	भागलपुर
२०१॥)	,, वन्शीधरजी नन्दलालजी	बरेली	५०॥≋	,, शिवभगवानजी मोहनलालजी	,,
५१)	,, रामरिखदासजोख्यालीरामजी	,,	१०१)	,, बालकिशनदासजी सूरजमलजी	,,
५१)	,, व्रजकिशोरजी खत्री	,,	८।≋)	,, हनुमानदासजी	,,
१६॥।-)	,, श्रीचन्दजीभवर	बीकनेर	८।≈)	,, किसनलालजी	,,
८।=)	,, कमलाबाईजी	वृन्दावन	८।≋)	,, नारसीलालजी	,,
१०)	,, रनछोडदासजी गिरधरदास	बड़ोदा	८।≋)	,, भेरोबक्सजी चिंरजीलालजी	,,
१०१)	,, स्योवक्सजी रामेश्वरदासजी	वडाकड	५०॥=)	,, जयरामदासजी हनुमानदासजी	,,
१०१)	,, लक्ष्मीनारायनजी केदारनाथजी	,,	१६॥।=)	,, लक्खीप्रसादजी	,,
१०१)	,, पीरामलजी सागरमलजी	,,	८।≈)	,, रत्नलालजी केडिया	,,
१०१)	,, हरीरामजी	,,	८।≈)	,, मोतीलाली प्रेमसुखदासजी	,,
१०१)	,, मुरलीधरजी दूधानी	,,	८।≈)	,, रामजीवनजीकोमांजी	,,
१०१)	,, ओंकारमलजी	,,	८।≈)	,, गोपीराम झुनझुनवाला	,,
१०१)	,, मेघराजजी गौरीदत्तजी	,,	८।≈)	,, तारनीप्रसादजी	,,
१०१)	,, सीतारामजी नारायनदासजी	,,	१०१)	,, नन्दकिशोरजी महेश्वरी	मेरठ
५१)	,, वद्रीदासजी सुहासरिया	,,	८।≈)	,, रामकिसनजी	,,
५०॥=)	,, श्रीधरजी श्रीरामजी	,,	४८॥।-)	,, भरतसिंहजी राधोमलजी	,,
५०॥=)	,, रामलालजी केजडीवाल	,,	५०॥=)	,, रनीरामजी हीरालालजी	,,
१०१)	,, सागरमलजी लक्ष्मीनारायनजी	,,	५०॥=)	,, उत्तमचन्दजी परमानन्दजी	मद्रास
२५।-)	,, गोरखरामजी रामप्रसादजी	भद्रपुर	२५)	,, रामप्रतापजी जगदीशप्रसादजी	मुरादाबाद
१०१)	,, रामचन्द्रजी रामेश्वरदासजी	भागलपुर	१०१)	,, गंगाबाईजी	मुडगांव
१०१)	,, हरिनाथजी बीजराजजी	,,	१०१)	,, विद्याधरजी गोपालदासजी	मथुरा
१०१)	,, ख्यालीरामजी केदारनाथजी	,,	३३॥)	,, दहीरामजी मोहनलालजी	मुजफ्फरनगर
१८॥)	,, गुप्तदानी	,,	१०१)	,, गुलाबीबाईजी	रांची
६।=)	,, स्वर्गीयधाईबाई	,,	८।≈)	,, कावरा	,,
१०१)	,, हरचन्दजी आनन्दीरामजी	,,	१०१)	,, गुप्तदानीसज्जन	,,
१०१)	,, वल्देवदासजो नारायनदासजी	,,	२५।-)	,, हरिटेक्सटाईल	,,
१०१)	,, गोपालरायजी रामचन्दजी	,,	८।≈)	,, मनभरीगोईनका	,,
२५।-)	,, रामचन्दजी भगवानदासजी	,,	१०१)	,, ज्वालादत्तजी गोविन्दरामजी	,,

८।।)	,, शंकरजी की मां जी	,,	८।≤)	,, जयनारायनजी 'मुहालीरामजी	,,
८।≤)	,, वाईवरजी	,,	१०१।)	,, वरारखदेशी वनस्पति	,,
७।।)	,, आनन्दीबाईजी	,,	१६।।।=)	,, सम्पतरामजी नाहय	,,
१०१।)	,, रामनारायणजी	,,	८।≤)	,, पुरसोतमदासजी गोविन्दजी	,,
१३।≤)	श्री प्रभुलालजी दयाकिशनजी	रूपेडिया	८।≤)	,, मदनलालजी टिवडेवाला	,,
८।≤)	,, गनेशीलालजी	,,	८।≤	,, रंगलालजी जयपुरिया	,,
८।≤)	,, जगदीशप्रसादजी केडिया	रानीगंज	१६।।।=)	,, जोगीदासजी परमसुखदासजी	,,
८।≤)	,, दुखहरणजी मिश्र	,,	२५।-)	,, गनेशदासजी भीवराजजी	शे
८।≤)	,, डेडराजजी कन्हैयालालजी	रेहावाडी	८।≤)	,, मदनानन्दजी	,,
२५।-)	,, मानिकचन्दजी तोतारामजी	लशकर	८।≤)	,, जयकिशनजी द्वारिकाप्रसादजी	,,
१७≤)	,, सुरजमलजी सारडा	सरदारशहर	८।≤)	,, श्रीनिवासजी जानकीदासजी	,,
१६।।।=)	,, हनुमानदासजी द्वारिकादासजी	शेगांव	८।≤)	,, सालिगरामजी चम्पालालजी	,,
१६।।।=)	,, मदनलालजी नारायनदासजी	,,	१६।।।=)	,, हरदत्तरायजी रामप्रतापजी	,,
८।≤)	,, कुँजीलालजी देवीसहायजी	,,	२५।-)	,, खुवचन्दजी गोरधनदासजी	,,
८।≤)	,, धनजी भुराभाई	,,	८।≤)	,, सत्यनारायनजी मेहता	,,
२५।-)	,, केवलरामजी रामेश्वरजी	,,	८।≤)	,, लक्ष्मीनारायनजी घमन्डीरामजी	,,
२५।-)	,, व्रजलालजी मंगलजी	,,	१६।।।=)	,, नन्दलालजी विट्ठलदासजी	,,
१६।।।=)	,, बल्देवदासजी लक्ष्मीनारायणजी	,,	८।≤)	,, भाईलालपारख	,,
२५।)	,, ठेकेदार करसनदास	,,	८।≤)	,, तेजपालजी हनुमानदासजी	,,
८।≤)	,, नेमीचन्दजी लक्ष्मीचन्दजी	,,	८।।)	,, लक्ष्मीनारायनजीसुरजमलजीसेमापुर	फ्रे
२५।-)	,, धन्नालालजी मोतीलालजी	,,	१०१।)	,. चोथमलजी वियानी शिवसागर	,,
२५।-)	,, वजरगलालजी नानकरामजी	,,	१६।।।=)	,, मालचन्दजी कावरा	,,
८।≤)	,, ताराचन्दजी रंगलालजी	,,	२५)	,, वद्रीलालजी रामप्रतापजी	सेन्
२५।-)	,, वालमुकुन्दजी महादेवजी धानुका	,,	२५)	,, सोहनलालजी सुगनचन्द	हिन्दुमल
१६।।।=)	,, विजय सिंह दान सिंहजी	,,	८।≤)	,, प्रभुदयालजी अग्रवाल	हेवर
२५।-)	,, केसरीमलजी गंगारामजी	,,	१०१।)	,, गुप्तदानी	
२५।-)	,, मोहनलाल भीमजी	,,			
२५।-)	,, रामचन्दजी वसुरीरामजी	,,	६६८२)		
१६।।।=)	,, मोहनलालजी टिवडेवाला	,,			
८।)	,, भगवानदासजी वैद्य	,,			

श्रीभगवान भजनाश्रम तथा वृन्दावन भजनाश्रममें मासिक चन्दा सालाना चन्दा देनेवाले सज्जनोंकी नामावली

[मिति मगसर सुदी ६ सं० २००६ से मिति पोह सुदी ८ सं० २००८ तक मास १ का]

१२) श्री आदर्श प्रिन्टीग प्रेस के कर्मचारियों से प्राप्त अजमेर
२०) ,, रामचन्दजी देशाई अहमदाबाद
१०) ,, जदुनन्दप्रसादजी सुधाकर महाराज कानपुर
५०) ,, दीपंजाब एक्सचेन्ज देहली
२०) ,, हुक्मचन्दजी दलाल ,,
१०) ,, परसरामजी महावीरप्रसादजी ,,
५) ,, श्रीसुरजप्रसादजी वलियां
१२॥) ,, हीरालालजी मानिकलालजीपटेल बम्बई
६) ,, नन्दलालजी जोसी वासवांडा
५) ,, कुंजलालजी हनुमानदासजीखेमका सिरसा

१५०॥)

श्रीभगवान भजनाश्रम तथा वृन्दावन भजनाश्रम में भाइयों को विशेष सहायता देनेवाले सज्जनों की नामावली
(मिती मगसर सुदी ६ सं० २००६ से मिती पोह सुदी ८ सं०२००६ तक मास १ का)

८००) श्री रामनारायनजी रामसुखजीभंवर अमरावती
६३॥) ,, कपिलदेवजी पान्डे कजरू
८) ,, मगनलालजी हरगोविन्दजी नवसारी
११) श्री इन्द्रजीतजी सरावगी लशकर
१०) ,, कोडामलजी लक्ष्मीनारायनजी लाडनून
१०) ,, गुप्तदानीसज्जन

६३२॥)

गायत्री-गान

(रचयिता—निशिकान्त आयुर्वेदाचार्य)

मेरे रक्षक मेरे स्वामी, सभीका त्राण करते हैं। तेरे चरणोंमें आकर हम, सभी गुणगान करते हैं॥

जगत्-स्रष्टा, जगत् भर्ता,
हैं सुखके धाम वह स्वामी।
सत् चिदानन्द ईश्वरका
हृदयमें ध्यान धरते हैं॥
करे रक्षा बचाकर दुःखसे,
जैसे सदा सुख दें।
जगत्में मातृवत सबका
प्रभू कल्याण करते हैं॥
लिखा सम्पूर्ण श्रुतियोंमें,
जगत् स्रष्टा है ज्योतिर्मान।

उसीके पाप नाशक तेज-
का हम ध्यान धरते हैं॥
तेरे उस तेजसे भगवन्!
हमारी बुद्धि हो प्रेरित।
सदा शुभ कर्ममें रत हो,
विनय दिन रात करते हैं॥
जो बन कर छन्द-गायत्री,
हैं व्यापक विश्वमें सारे।
उसी ही ब्रह्मका यह ब्रह्म
सब गुण गान करते हैं॥

मांस खानेकी आदत

डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी एम० ए० पी० एच, डी०

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपनः॥

अर्थात् पीड़ित प्राणियोंकी पीड़ा देखकर दयामें जिनका मन द्रवीभूत हो जाता है, उसको ज्ञानसे, मोक्षसे, जटा बढ़ाने एवं भस्म लेपनसे क्या सरोकार।

अपने शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये हम मानव न मालूम क्या-क्या काम करते रहते हैं, तरह-तरह के पदार्थ खाते रहते, भाँति-भाँति की कसरतें करते तथा अनेक प्रकार-की उछल कूद किया करते हैं। कोई कहते हैं कि मांस खाना केवल भ्रम माना है। जिस प्रकार छींक आ जानेपर हम समझ बैठते हैं कि अब कार्य सम्पन्न होनेमें सन्देह है, उसी प्रकार न मालूम क्यों कर और कबसे हमारे दिलोंमें यह बात बैठ गई है कि मांस हमारा खाद्य पदार्थ है, अर्थात् गेहूँ, जौ, चना आदि की जगह इसका सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। इसके साथ ही एक अन्य ऐसा भी वर्ग है जो मांस भक्षणको अपने लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी समझता है। उनके विचारसे मांस खाना सेहतके लिये निहायत जरूरी चीज है। वे लोग अपने कथन की पुष्टिमें यहां तक कह डालते हैं कि जो लोग मांस नहीं खाते वे गलती करते हैं। हमारे पूर्वज, भारतीय ऋषि मुनि आदि भी मांस खाते और स्वस्थ एवं दीर्घजीवी होकर आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। आजकलका विपुल डाक्टरी मत भी इस पक्षको कभी कभी अपना समर्थन प्रदान कर देता है। डाक्टरी रिपोर्टोंमें इस प्रकार की बातें लिखी रहती है कि "मांस में गेहूँसे ज्यादा ताकत होती है, उसमें सबसे अधिक प्रोटीन होते हैं। वह बहुत ही जल्दी हजम हो जानेवाला पदार्थ है, तथा मांस खानेसे मांसकी वृद्धि होती है। आदि जो भी हो, हम मानव हिंस्र पशुओंके समान जीव हत्या एवं जीव भक्षणके आदी हो गये हैं और अपने स्वाद के लिये किसी भी जीवधारी का शरीरान्त करनेमें तनिक भी संकोच नहीं करते। मांस भक्षणकी यह प्रवृत्ति स्वभावतः कसाइयों की एक बड़ी संस्था तैयार कर रही है। इस सम्बन्ध में मुझे एक घटना याद आती है।

आज ३० वर्ष पहिले की बात है। हमारे दर्शन शास्त्रके प्रोफेसर श्रीमन्मानी एक दिन अपने कमरेमें बैठे हुए कुछ गम्भीर अध्ययन पढ़ रहे थे। यकायक इनकी पुस्तकके ऊपर घासके कुछ तिनके गिर पड़े। इनका ध्यान उचट गया। एकाग्रता भंग हो गई और अध्ययनमें व्याघात पहुँचा। क्षुब्ध होकर ऊपरकी ओर देखने लगे उन्होंने देखा कि कमरेके रोशनदानमें कबूतरके दो बच्चे खेल रहे हैं। उनकी छीना-झपटीके कारण ही सम्भवतः घासके ये तिनके नीचे गिर पड़े थे। रोशनदानमें कबूतरी ने न मालूम कबसे घोसला बना रखा होगा।

प्रो० मन्मानीको क्रोध आया और उन्होंने मिस्त्री बुला कर १५ मिनटके अन्दर रोशनदान बन्द करा दिया। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। उन्होंने विजय गर्वकी एक लम्बी सांस ली और अध्ययन छोड़कर कालेज जानेकी तैयारी करने लगे। उनका वश चलता तो उसी समय वे विश्वके समस्त पक्षियोंको, विशेषकर कबूतरोंको, मार डालते।

इतनेमें ही एक कबूतरी उस बन्द रोशनदानके पास

आकर बैठ गई। मन्मानी साहबकी दृष्टि भी उसपर जाकर पड़ गई। कबूतरी लगभग १५ मिनटतक चुपचाप वहीं बैठी रही। बीच बीचमें वह रोशनदानकी ओर चोंच मारती और विवश होकर बैठ जाती थी। अन्दर बैठे हुए दोनों बच्चे भी कुं कूं कर रहे थे। मन्मानी साहब इस दशाको बड़े ध्यानसे देख रहे थे। मातृप्रेम फूटकर कबूतरीकी अश्रुधाराके रूपमें निकल पड़ा। मां बच्चेका विछोह साकार होकर श्रीमन्मानीकी आँखोंके सामने नाचने लगा। मन्मानी साहबका हृदय पुकार कर कह रहा था कि उन्होंने ही मां बच्चेको विलग किया है। वे ही इस पापके भागी हैं। मन्मानी साहबने सम्हलकर अपने आपको समझाया।" इसमें पाप कैसा ? अपने योग क्षेम और स्वास्थ्यके लिये हमें यथा शक्ति प्रयत्न करते रहना चाहिए। इन कबूतरोंने मेरे अध्ययनमें बाधा डाली, मैंने उन्हें दण्ड दे दिया। यदि मुझे मां बेटोंको अलग करते हुए पाप लगता है तो क्या ईन्हें मेरे अध्ययनमें बाधा डालनेका पाप नहीं लगेगा। ठीक ही हुआ, जो ईन्हें मैंने अपने कियेका फल..." बात अधूरी ही रह गई। मन्ममानी साहबके सम्मुख बैठी हुई कबूतरी कहने लगी "तुम फल देनेवाले कौन होते हो। यह काम तो किसी और ही के हाथमें है। यदि मनुष्यमें ही यह शक्ति आजाये, तब तो निर्बल जीवधारी इस महीतलपर जीवित ही न रह सके। विश्वमें केवल एक वही व्यक्ति रह सके जो सर्वशक्तिमान हो और अस्तित्वके निमित यहां निरन्तर एवं अबाध संग्राम होते रहें। तुम भूलते हो मन्ममानी। यह कार्य तो जगन्नियन्ताने स्वयं अपने ही लिये रख छोड़ा है। क्या यही है तुम्हारे दर्शन शास्त्रके अध्ययनका फल। तुम मानव तो अपने आपको बुद्धि सम्पन्न जीव समझते हो, यानी तुमने तो हमें जान बूझकर हानि पहुँचाई है। हम पशु पक्षी सर्वथा बुद्धि विहीन है और फिर तुम्हारे अध्ययनमें बाधा डालनेवाले तो ये अबोध बालक थे। निश्चय ही तुम्हारे कष्टका कारण निरा अज्ञात है। हमने तुम्हें जानबूझकर एवं सोच समझकर तो कष्ट नहीं दिया है। फिर किसका पाप बड़ा हुआ। हमारा या तुम्हारा। अरे अपनेको पशु जगतसे ऊपरके निवासी माननेवाले सभ्य मानव तनिक अपने कलेजे पर हाथ रख कर तो विचारो। इस समय यदि तुम्हें कोई गोला मार दे और तुझे खोजती हुई तेरी मां आवे तो..." बस करो, अब अधिक कुछ नहीं सुना जायेगा।" मन्ममानी साहब चिल्ला उठे। अपनी अन्तरात्मा की धिक्कार भरी पुकारने उन्हें विह्वल कर दिया। विकल होकर वह कुर्सीपर बैठ गये। उस समय उन्हें ऐसा लग रहा था जैसे समस्त विश्वके समस्त पापोंका भार उन्हींके सिरपर चढ़ा हुआ है और अब वह एक क्षण भी जीवित न रह सकेंगे, उनकी पत्नी खड़ी खड़ी उनका मस्तक सहला रही थीं।

मन्मानी साहबने तुरन्त ही रोशनदानका दरवाजा खुलवाया और मां बेटेके पुनर्मिलनका आनन्द लिया।

उक्त घटनाके बाद ही उनमें यह विशाल परिवर्तन हो गया। कबूतरकी मां आज दिनतक कभी कभी आकर उनके कानमें कह जाती है। अपनी तन्दुरुस्तीके लिये कोई अगर तेरे बच्चेको मारकर खाने लग जाये, तो...

पशुओंको जीवित रहनेका अधिकार है नहीं। हमें इस प्रश्नपर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

"मन्मना भव"

(लेखक पं० श्रीबैजनाथजी अग्निहोत्री)

दुःख रहित अविनाशी सुखके लिये, आवश्यकता है, वैराग्य और अभ्यासकी। व्यक्ति और वस्तुमें आसक्त होना ही है राग और इनसे अनासक्त होना है वैराग्य। वैराग्य होता है दो कारणोंसे—एक तो दुःख पड़नेसे और दूसरा बुद्धिसे समझकर। हमार- जिस व्यक्ति या वस्तुमें राग है, उससे अब हमें बारंबार निराश होना पड़ता है या उसके सेवनसे अत्यधिक कष्ट होता है, तब मन उससे हट जाता है। यह वैराग्य निम्नश्रेणीका माना जाता है। द्वितीय प्रकारका वैराग्य स्थायी तथा उत्तमकोटिका है। हमने समस्त भोग पदार्थों | व्यक्ति और वस्तुओंका विवेचन कर /जान लिया कि इनमें सुख नहीं है, किन्तु व्यक्ति या वस्तुके रागवश होकर मन उन्हें चाहता है और जबतक वह मिल नहीं जाता मनमें असन्तोष बना रहता है, यही दुःख है। भोग्य वस्तु मिल जानेपर वह असन्तोष दूर हो जाता है, यही सुख है। हम समझ लेते हैं कि इस भोग पदार्थमें सुख है, पर वह सुख उसमें नहीं है। वास्तवमें बात है कि हम स्वयं सुखके केन्द्र हैं, और उस सुखके अक्षय भण्डारसे कुछ सुखका अंश निकालकर, व्यक्ति या वस्तुमें रख देते हैं। जबतक वह अंश पुनः नहीं लौट आता तबतक हमें असन्तोष रहता है। ऐसा जानकर उस भोग्य पदार्थसे मन हट जाता है, यही वास्तविक वैराग्य है। किन्तु यह वैराग्य होता किसमें है? जिसने अपने सुनिश्चित धार्मिक कर्मोंको निष्काम भावसे किया है। इसीसे स्वकर्मोंको सबका आधार माना गया है।

व्यक्ति या वस्तुसे मनकी आसक्ति हट जानेपर भी मनकी गति अवरुद्ध नहीं हो जाती है और इतने मात्रसे ही अक्षय सुखका भण्डार भी नहीं मिल जाता। मन इन्द्रियोंके द्वारा भोग भोगोंके या स्वयं उनके पक्ष अथवा विपक्षका चिन्तन करेगा। अथवा बुद्धि द्वारा आत्मचिन्तन या ईश्वर ध्यानका प्रयत्न करेगा। बिना किसी आश्रयके मन रह नहीं सकता, अतः मनको एक आश्रय देना ही होगा। जैसा आश्रय होगा वैसे ही मनका निर्माण होगा और जैसा मन होगा वैसा ही फल होगा। निश्चय ही मनका एक सुदृढ़ अधिष्ठान है। देश, काल भेदसे रहित, निरुपाधिक, नित्य, चेतन आनन्दस्वरूप आत्मा ही वह अधिष्ठान या आश्रय है। बिना अपने अधिष्ठानके मन कहीं भी चिरशान्ति या अक्षय सुख नहीं पा सकता। जिस प्रकार फेन, बुद्‌बुद्, तरंगादिका अधिष्ठान जल है, वैसे ही मनका अधिष्ठान आत्मा है। इस अपने अधिष्ठान आत्मामें मनको बारंबार लगानेका प्रयत्न करना ही 'अभ्यास' है। यह अभ्यास सर्वोत्कृष्ठ है और साधन समान व्यक्ति सूक्ष्म बुद्धिवाला ही कर सकता है।

इससे कुछ निम्नश्रेणीका अभ्यास है, सोपाधिक ईश्वरमें मन लगाना। चर-अचर, स्थूल-सूक्ष्म समस्त जगतको ईश्वर स्वरूप मानकर निरन्तर ईश्वर भावनासे मनको लगाना। यदि इतनी उच्च भावना करनेमें असमर्थता हो तो अपने रुचिके अनुकूल किसी भी एक रूपको चुना जा सकता है। भगवान् वासुदेवका चतुर्भुज स्वरूप जो सर्वालङ्कारोंसे विभूसित, पीतवस्त्र पहिने हुये, कमल सदृश नेत्रोंवाले, श्यामवर्ण, सुन्दरता, करुणा, मधुरता, एवं गम्भीरताके सागर हैं, इनमें मनको लगाना चाहिये। अथवा शिव, गणेश, देवी, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, गुरु, माता, पिता आदिक किसीमें ईश्वर भावनासे मनको लगाना चाहिये।

अति चंचल बन्दर यों तो शान्त प्रतीत होता है, किन्तु जब कोई उसे बांधना चाहता है तब वह इधर उधर भागता है और बन्धनसे छूटनेका प्रयत्न करता है, वैसे ही जब ईश्वरमें मनको लगाया जाता है तब वह अति चंचल होकर इधर उधर भागता है, किन्तु इससे मुमुक्षुको न घबड़ाना चाहिये और शनैः शनैः धैर्यसे लगे रहना चाहिये, कुछ दिनोंमें मन शान्त होकर ईश्वरमें लग जाता है। मुमुक्षुको चाहिये कि धर्मफल भूत अर्थमें और काममें आसक्त न होकर मोक्षरूप पुरुषार्थसे अत्यन्त आसक्त मनवाला हो। मन जब एकाग्रतासे स्थिर हो जावेगा तब मनोवृत्तियोंका ताला बन्द रहेगा तैल धारावत्। तभी 'मन्मना भव' का यथार्थ भाव प्रकट होगा और अविनाशी सुखकी प्राप्ति होगी।

संसारकी भीषणता एवं जीवनकी विषमताके कारण कभी न कभी भक्तिका उद्रेक होता ही है। जब जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजीने जो ज्ञान सिद्धान्तोंके प्रचारक ही नहीं अपितु स्वयं ज्ञान मार्त्तण्ड थे, भक्तिको व्यवहारिक क्षेत्रमें स्वीकार कर लिया, तब औरोंकी बात ही क्या है? सन्ति सम्प्रदायमें भी जहाँ निर्गुणकी उपासना चलती है भक्तिका सन्निवेश पाया जाता है। निर्गुण ब्रह्मको ज्ञेय न मानकर उपास्य मानते हैं। उपासकके लिए जिस अवलम्बनकी आवश्यकता है, वह गुण और आचार रहितमें प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए उनकी सारी भक्ति गुरुमें जा लगती है, जो निर्गुणकी भाँति परमसाध्य न होकर उस साध्यका साधन मात्र है। भारतवर्षमें भक्ति या उपासना ज्ञानके विरोधमें खड़ी नहीं हुई, वरन् उसी प्रकार एक साधन रूपमें गृहीत हुई, जिस प्रकार कर्म और ज्ञान माने गए।

भक्ति हृदयकी वह रसात्मक अनुभूति है, जिसके द्वारा हमें अखिल विश्वमें ब्रह्मकी व्यक्त प्रवृत्तिका सरस आभास मिलता है। चित्तकी इस सरसताको त्यागकर इधर उधरकी कौन सुनेः—

विविध भांति मोहि मुनि समझावा,
निर्गुन मत मम हृदय न आवा।
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा,
सगुन उपासन, कहउ सुनीसा।

रसात्मक अनुभूति सर्वांगको सुधारस सिंचित बना देती है और अन्य वेद्य विषयोंको तिरोहित कर देती है। अन्य वेद्य विषयोंके तिरोहित होनेपर ही वह हृदयमें प्रवेश करती है। यदि ऐसा न होता तो यह क्यों कहा जाताः—

"प्रेम एव परो धर्म्मः"...

प्रेम हरिको रुप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप
एक होइ द्वै में लसै, ज्यों सूरज और धूप।

भक्तोंके इसी प्रेमके फलस्वरूप भगवानको इस मही तल पर प्रकट होना पड़ता हैः—

सो केवल भगतन हित लागी;
परम कृपाल प्रनत अनुरागी।

रामके प्रेम विना सब कुछ निरर्थक एवं व्यर्थ है सुनिए भरतजीके वचनः—

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरवान
जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन।

भगवानके प्रेमकी महिमा कुछ है ही ऐसी। गोस्वामीजी कहते हैंः—

रामहिं केवल प्रेमु पियारा,
जानि लेउ सो जाननि हारा।

यह विशुद्ध प्रेम ही भक्तोंका सबसे बड़ा बल है, तथा भगवानका प्रगट होना उनके लिए सबसे बड़ा आश्वासन है।

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन विगत विनोद
सो अज प्रेम भगति वश, कौसल्याके गोद।

भगवानकी प्रेम सुधा बात करते ही "जेहि जाने जग जाय हेराई" वाली अवस्था प्राप्त हो जाती है भक्ति रसके प्रवाहसे जब "रसो वैस" का ज्ञान हो जाता है तो संसार

स्वयं खो जाता है। "जेहि पाए बैकुंठ अरु हरि हूँ की नहिं चाहि"। और तो और बेचारी मुक्तिको भी कोई नहीं पूछता। उसका तिरोधान तो स्वयं ही हो जाता है:—

राम उपासक मुक्ति न लेहीं,
तिन कहँ राम भगति निज देहीं।

श्रीमद्भागवतका भी यही वचन है:—

नकिंचित् साधवी धीरा भक्ता ह्यैकांति नौ मम
वांछन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्।

मेरे एकान्त भक्त धीर साधुजन कुछ नहीं चाहते, मम प्रदत्त कैवल्य और अपुनर्भवकी भी कामना नहीं रखते। परमभागवत राजा परीक्षित भक्ति अवतार श्रीशुकदेवजीसे कहते हैं:—

नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमयि बाधसे।
पिबंतं त्वन्मुखाम्भोजच्चुतं हरिकथामृतम्।

भक्ति सुधारस सिंचनका प्रभाव ही अनूठा है।

पगी प्रेम नंदलाल के, हमें न भावत जोग।
मधुप राज पद पाइकै भीख न मांगता लोग।

और भी सुनिए:—

सो सुख कामु धरमु जरि जाऊ,
जहं न राम पद पंकज भाऊ।
जोगु कुजोगु ज्ञान अज्ञानू,
जहं नहिं राम प्रेम परिधानू।

शरभंगजीने मुक्ति छोड़ी, भगवानमें लीन होना अस्वीकार कर दिया। उन्हें चाहिए थी केवल भेद भक्ति ताकि भगवान के कमल मुख से निःसृत सुधा पान कर सकें—

सीता अनुज प्रभु नील जलद तनुस्याम
मम हिय वसहु निरन्तर सगुन रुप श्रीराम

भगवान राम जब अपना भूप रुप छिपा लेते हैं, तब सुतीक्ष्ण जी 'विकल हीन मनि फानिवर' की भांति व्याकुल हो उठते हैं, परन्तु दूसरे ही क्षण आंखे खोलते ही—

आगे देखि राम तन स्यामा,
सीता अनुज सहित सुख धामा।
परेउ लकुटि इव चरननिह लागी,
प्रेम मगन मुनिवर बड़ भागी।

महर्षि अगस्त कहते हैं—जद्यपि ब्रह्म अखंड अनन्ता।

अनुभव गम्य भजहि जेहि सन्ता।
अस तव रुप वरवा नउं जानउं;
फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउ।

बालिने भी यहि बरदान मांगा था 'जेहि जौन जन्मों कर्म बस तहं राम पद अनुरागऊँ।

द्रष्टाकी दृष्टि में पन्ना २ परमात्मा के रहस्य ग्रंथका एक पन्ना है। यही है ब्रह्मानन्द का अनुभव। यही है वह भक्ति जिसे पाकर' कुर्वांति कृतिनः केचिच्चतुर्ग तृणोपमम्।

परमात्मा के चरणरज के प्रेरक न तो कैलाश की कामना करते हैं, न स्वर्गकी न सार्वभौमकी, न राज्यकी, न योग सिद्धिकी, न अपुनर्भव की। उद्धवसे भगवान स्वयं कहते हैं—

न साधयदि मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागी मया भक्तिर्ममोर्जिता।

भागवतः और भी सुनिए।

यत्कर्मभिर्यत्तपसा मान वैराग्यतश्चयत्
योगेन दान धर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि।
सर्व मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लमसेञ्जसा भागवत

जो कर्मसे, तपसे, ज्ञानसे, वैराग्यसे, योगसे, धर्मसे एवं अन्य श्रेयों से पाया जा सकता है, वह सब मेरा भक्त एवं भक्ति योग द्वारा ही पा जाता है।

जहं लसिंग साधन वेद बखानी,
सब कर फल हरि भगति भवानी।
और फिर—जाते वेगि द्रवउं मैं भाई,
सो मम भगति भगत सुखदाई।

ऐसी भक्तिको कौन न अपनाएगा उसके प्राप्त हो जाने पर सन्देह एवं मायाके लिए हृदयमें स्थान ही नहीं रह जाता। काग भुसुंडी जी तो स्पष्ट ही देते हैं—

तब ते मोहि न व्यापी माया,
जब रघुनायक अपनाया ।

जिस शरीर द्वारा हमें आनन्द प्राप्त होता है, उससे मोह ही जाता है, उसे हम किसी भाँति नहीं छोड़ना चाहते, फिर जिस शरीर ने भागवत् भक्तिका सुधारस सिंचनका आनन्द भोगा है, वह काग भुसुंडिजीको कितना प्यार न होगा ?

ताते यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह
निज प्रभु दरसन पायउं गए सकल सन्देह

ब्रह्मानन्द एवं भक्ति रसामृतका तनिक भी तिरोधान हो, यह उन्हें सह्य नहीं इसी कारण उन्हें एक ही रट लगी रहती थी—

राम भगति जल मन मन मीना ।
किमि बिलगाइ मुनीस प्रवीना ।
सोइ उपदेस कहहु करि दाया ।
भरि लोचन बिलोकि अवधैसा ।
तब सुनिहउं निर्गुन उपदेसा ।

और उचित ही —था लाभुकि क्छु भगति समाना।

प्रभू प्रार्थना (राग माँड़)

लेखक—ब्रा० पन्नालालजी "माधुरीदास" जतारा (झाँसी)

हे प्रभू विनती हमारी गिरवर धारी, आज तेरे दरबार।
दुस्तर अगम अथाह भरौ है यह सागर संसार॥
त्रष्ण की तरल तरङ्ग निरुपै चञ्चल विषय व्यार।
मोह के मच्छ औ क्रोध के कच्छ हैं कामत करी अपार॥
गर्व को ग्राह महा भय कारी दौड़े दांत पसार।
पञ्च तत्त्व की विरचित नैया मेरी, पड़ी मजधार॥
मूर्ख मलाह सलाह न माने मन मति अंध गँवार।
नीर ज आवै चलो नवद्वार ते होय नहीं उपचार॥
दूजो न दीखै सहाय कछू प्रभू है अब डूबनहार।
ज्यों गज टेर सुनी हरि बादिन त्यों यह मेरी पुकार॥
राधिका बल्लभ श्री बृजराज जू कीजिये अंगीकार।
दीन के बन्धू अनाथ के नाथ जो हो तुम पायोद्धार॥
तौ तरनी यह "माधुरीदास की बेग करो भवपार॥ १॥

—:o:—

सदाचार

धर्मराज युधिष्ठिरके पूछनेपर पितामह भीष्मने सदाचारका वर्णन इस प्रकार किया—

दुराचारी, दुष्ट चेष्टावाला, दुष्टबुद्धि और घोर दुष्ट कामोंके करनेमें साहसी मनुष्य असत् पुरुष कहलाता है। इसके विपरीत सदाचारमें लगे हुए पुरुषको सत्पुरुष कहते हैं। जो पुरुष राजमार्गमें (आम रास्तोंपर), गोशालामें और अन्नके ढेरके पास या अन्नसे भरे खेतमें मल-मूत्रका त्याग नहीं करते, नित्य प्रातःकाल शौचादि क्रियाके बाद मिट्टी-जलसे भलीभाँति हाथ-पैर आदि धोकर नदीमें स्नान-आचमन कर शुद्ध जलसे पितरोंका तर्पण करते हैं, वही सत्पुरुष कहलाते हैं। जहाँ नदी न हो, वहाँ सरोवर, बावड़ी या कुएंपर स्नान करके तर्पण आदि नित्य कर्म करने चाहिये। नित्य सूर्यका उपस्थान करना, सूर्योदय होनेपर न सोना, प्रातःकाल पूर्वाभिमुख होकर और सायंकाल पश्चिमकी ओर मुख करके दोनों समय नियमसे सन्ध्या-वन्दन करना, भोजनके समय दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख धोकर पूर्वकी ओर मुख करके मौन धारणकर भोजनकी निन्दा न करते हुए सात्त्विक और रुचिकर पदार्थ खाना, भोजनके बाद हाथ धोकर उठना, रात्रिमें भीगे पैर न सोना ये सभी सदाचार हैं। कल्याण चाहनेवाले पुरुषको मार्गमें आये हुए यज्ञशालादि पवित्र स्थान, बैल, देवता और गायोंके बैठनेके स्थान, चौरास्ते, ब्राह्मण, धर्मनिष्ठ मनुष्य और पवित्र वृक्षादिकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये और अतिथि, अपने नौकर और पोष्य वर्गके लिये भोजनमें कदापि पंक्तिभेद न करना चाहिये (अर्थात् अपने लिये अच्छा और इन सबको उससे हीन भोजन न देना चाहिये)। मनुष्यको उचित है कि प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय सन्धिकालमें भोजन न करे। हवनके समय अग्निमें हवन करने-वाला और केवल ऋतुकालमें ही स्त्री-समागम करने-वाला पुरुष ब्रह्मचारी ही मानने योग्य होता है। ब्राह्मणोंके भोजनके बाद अवशिष्ट बचा भोजन माताके दूधके समान हितकारी होता है, इसलिये कल्याणकारी पुरुषोंको ऐसा ही भोजन करना चाहिये। वृथा मिट्टीको खुरचनेवाले, दाँतोंसे नख काटनेवाले, तिनका तोड़नेवाले और सर्वदा जूँठे हाथ रखनेवालेकी आयु कम हो जाती है। मांस गील[illegible] पुरुष यगुर्वेदकी जाननेवाले अध्वर्युके संस्कारयु[illegible] यशका, मनुष्योंके लिये वध किया हुआ आदि कोई सा भी मांस न खाय और ऐसे हिंसायुक्ष कोई भी कर्म न करे। अपने देशमें या परदेशमें कहीं भी अपने स्थानपर आये हुए अतिथिको भूखा नहीं रहने देना चाहिये। जीविकाके लिये उपार्जन किया हुआ हर एक प्रकारका द्रव्य पिता आदि बड़ोंको समर्पण कर देना चाहिये। गुरुजन जब अपने पास आवें, तब उन्हें उत्तम आसन देकर प्रणाम पूजादिद्वारा उनका यथायोग्य सत्कार करना चाहिये। ऐसा आचरण करनेवाले मनुष्य दीर्घायु, यशस्वी और लक्ष्मीवान् होते हैं। उदय होते हुए सूर्यको और नंगी पर-स्त्रीको किसी भी कालमें नहीं देखना चाहिये। अपनी स्त्रीसे भी केवल ऋतुकालमें एकान्त[illegible] समागम करना चाहिये। इसके सिवा न तो अपनी नग्न स्त्रीको देखना चाहिये और न उसके सा[illegible]

एक शय्यापर सोना चाहिये और न स्त्रीके साथ एक थालीमें भोजन ही करना चाहिये। गुरु ही सब तीर्थोंका सार है और अग्नि सब पवित्र पदार्थोंका निचोड़ है। शिष्ट पुरुषोंके आचरण पवित्र हैं और गायकी पूंछके बालोंका स्पर्श किये हुए पदार्थ पवित्र माने जाते हैं। अपने परिचितोंसे मिलनेपर उनसे कुशल-समाचार पूछना और प्रातः सायं ब्राह्मणोंको प्रणाम करना मनुष्यमात्रका कर्तव्य है। देव-मन्दिरमें, गायोंके बीचमें, ब्राह्मणोंके कर्मोंमें, वेद-शास्त्रोंके स्वाध्यायमें और भोजन करते समय द्विजोंको दहिना हाथ ऊपर रखना चाहिये। सबेरे, शाम नित्य ब्राह्मणोंका विधिपूर्वक पूजन करनेसे व्यापारियोंकी व्यापारमें उन्नति होती है, किसानोंकी खेती उत्तम होती है, धनधान्यकी वृद्धि होती है और इन्द्रिय-तृप्तिकारक उत्तम पदार्थ प्राप्त होते हैं। ब्राह्मणको भोजन कराते समय यजमान अन्न परोसकर पूछे कि 'ठीक है न?' तब भोजन करनेवाला उत्तर दे कि 'बहुत ठीक है' जल देकर कहे 'तृप्तिकारक है न?' तब पीनेवाला कहे कि 'सुतर्पम्' (बड़ा तृप्तिकारक है)। पायस आदि देकर कहे कि 'अच्छी बनी है?' तब ब्राह्मण कहे कि 'सुश्रृतम्' (अच्छी बनी है) हर एक रोगी मनुष्य हजामत बनवानेपर, छींक आनेपर, स्नान और भोजन करनेपर (सब पुरुष) ब्राह्मणोंको प्रणाम करें, यह प्रणाम आयु देनेवाला होता है। सूर्यके सामने बैठकर लघुशंका नहीं करनी चाहिये और अपने मलको नहीं देखना चाहिये। अपनेसे बड़ोंको न तो 'तू' कहना चाहिये और न उनका नाम लेकर ही पुकारना चाहिये। अपनेसे छोटे या समान अवस्थावालोंका नाम लेनेमें अथवा उन्हें 'तू' कहनेमें दोष नहीं है। पापी मनुष्योंका हृदय ही उनके पाप-कर्मोंको बता देता है, जो अपने किये हुए पापोंको जान-बूझकर महापुरुषोंके सामने छिपाते हैं वे निःसन्देह पतित हो जाते हैं। अपने किये हुए पापोंको मनुष्य नहीं बतलाते तो क्या है (अन्तरिक्षचारी) देवता तो उन्हें देखते ही हैं। अपने पापोंको गुप्त रखनेसे किया हुआ पाप-कर्म उल्टा पापमें और प्रवृत्त करके मनुष्यके पापोंको बढ़ाता है और धर्मको गुप्त रखनेसे धर्मकी वृद्धि होती है। इसलिये धर्मको सदा गुप्त रखनेका प्रयत्न करना चाहिये और पापको कभी नहीं छिपाना चाहिये। किये हुए पापोंको मनुष्य भूल जाता है, परन्तु वह धर्मविरुद्ध पाप करनेवाला यह नहीं जानता कि उसका वह पाप उसे वैसे ही ग्रस लेगा जैसे चन्द्रमाको राहु ग्रसे बिना नहीं छोड़ता। आशासे एकत्र किया हुआ धन बड़े ही दुःखसे भोगनेमें आता है। विद्वान् ऐसे धनसंग्रहके कार्यकी प्रशंसा नहीं करते और मृत्यु भी उसकी यह राह नहीं देखती कि उसने आशापूर्वक एकत्रित किये हुए धनका उपभोग किया है या नहीं। धर्मका आचरण शुद्ध मनसे होता है इसलिये मनसे सदा सबका भला मनाना चाहिये। धर्माचरण करनेमें दूसरेकी सहायता या साथकी अपेक्षा नहीं करनी चाहिये। धर्म ही मनुष्योंकी जड़ है, धर्म ही स्वर्गमें देवताओंको अमर बताता है। जो धर्माचरण करते हैं, वे मृत्युके अनन्तर भी नित्य सुख भोगते हैं।

(कल्याणसे)



अमूल्य वचन

'निष्काम भावसे जीवोंकी सेवा करनेसे और किसीकी भी आत्माको कष्ट न पहुँचानेसे भगवान्‌में प्रेम हो सकता है।'

'जो मनुष्य भगवान्‌की नित्य समान दयाका प्रभाव जान लेता है, वह भगवत्-भजनके सिवा अन्य कुछ भी नहीं कर सकता।'

'जबतक मनुष्यको भगवान्‌के ध्यानका पूर्ण आनन्द नहीं आता, तभीतक वह संसारके विनाशी विषयोंका चिन्तन करता है, उनमें राग करता है और उन्हें प्राप्त करनेकी कामना करता है। भगवान्‌के ध्यानका आनन्द मिल जानेपर तो वह एक पलके लिये भी भगवान्‌को नहीं भूल सकता।'

'विषयोंमें फँसे हुए मनुष्योंको प्रेमपूर्वक सत्संगमें लगाना चाहिये। जीवोंको श्रीनारायणके शरण करनेके समान उनकी दूसरी कोई भी सेवा नहीं है; यह सेवा सच्चे प्रेमियोंको अवश्य ही करनी चाहिये।'

'१—मनसे निरन्तर श्रीभगवान्‌का ध्यान करना और उन्हें प्राप्त करनेकी तीव्र इच्छा करनी चाहिये। २—वाणीसे श्रीभगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन सदा-सर्वदा करना चाहिये। ३—शरीरसे प्राणीमात्रको भगवान्‌का स्वरूप समझकर निष्काम भावसे उनकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये।'

'मन बड़ा ही पाजी और हरामी है। इससे दबना नहीं चाहिये। संसारके आरामोंसे हटाकर इसे बहुत जोरसे श्रीहरिके भजन-ध्यानमें लगाना चाहिये।'

'संसारके अनित्य पदार्थोंमें प्रेम करके अमूल्य जीवनको व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। सच्चे दयालु और परम धन परमात्माके साथ प्रेम करना चाहिये और उनकी शरण होकर उनकी दयालुता और प्रेमका आनन्द लूटना चाहिये।'

'श्रीभगवान्‌में अनन्य प्रेम होना चाहिये, निरन्तर विशुद्ध प्रेमसे उनका स्मरण होना चाहिये। दर्शन न हो तो कोई परवा नहीं. प्रेमको छोड़कर दर्शनोंकी अभिलाषा भी नहीं करनी चाहिये। सच्चे प्रेमी भक्त दर्शनके भूखे नहीं होते, प्रेमके पिपासु होते हैं। प्रेमके सामने मुक्ति भी कोई वस्तु नहीं है।'

'प्रभुके मिलनेमें इसीलिये विलम्ब होता है कि साधक भक्त उस विलम्बको सह रहा है, जिस क्षण उसके लिये प्रभुका वियोग असह्य हो जायगा, प्रभु बिना उसके प्राण निकलने लगेंगे, उसी क्षण भगवान्‌का मिलन होगा। जबतक भगवान्‌के बिना उसका काम चल रहा है, तबतक भगवान् भी देखते हैं कि इसका मेरे बिना काम तो चल ही रहा है फिर मुझे ही इतनी क्या जल्दी है!'

'भगवान्‌की प्रबल शक्तिके सामने मायाकी शक्ति कुछ भी नहीं है। जो मायाके वशमें हैं, माया उन्हींके लिये प्रबल है। परमात्मा और उसके प्रभावको जाननेवाले भक्तोंके सामने मायाकी शक्ति कुछ भी नहीं है। यदि मनुष्य परमात्माके शरण होकर उसके स्वरूपको जान ले तो मायाकी शक्ति कुछ भी न रह जाय। जीव परमात्माका सनातन अंश है, अपनी शक्तिको भूल रहा है, इसीसे उसे माया प्रबल प्रतीत होती है, यदि भगवत्कृपासे अपनी शक्तिको जाग्रत कर ले तो मायाकी शक्ति सहज ही परास्त हो जाय। मायामें अज्ञान ही हेतु है। अज्ञानके नाशसे ही मायाका नाश है, अज्ञानका नाश भगवत्-शरणागतिसे हो सकता है।'

'गुणातीतकी वास्तविक स्थितिको दूसरा कोई भी नहीं जान सकता। वह स्वसंवेद्य अवस्था है। परन्तु जो अपनेमें ज्ञानीके लक्षण हैं कि नहीं, इस बातकी परीक्षा करता है, उसे ज्ञानी नहीं समझना चाहिये। लक्षणोंके खोजनेसे उसकी स्थिति शरीरमें सिद्ध होती है। ज्ञानीकी सत्ता ब्रह्मसे भिन्न है नहीं, फिर खोजनेवाला कौन साध करे?'

(श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके व्याख्यान और पत्रोंसे संकलित)

॥ श्रीहरिः ॥

नाम-माहात्म्यके नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नामके माहात्म्यका वर्णन करके श्रीभगवन्नामका प्रचार करना, जिससे सांसारिक जीवोंका कल्याण हो ।

नियम :—

१—"नाम-माहात्म्य" में श्री पूर्व आचार्य महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्ध सन्तोंके उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा और भक्तिसम्बन्धी लेख एवं श्रीभगवान् और उनके भक्तोंके चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखोंके बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करनेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। लेखोंमें प्रकाशित मतका उत्तरदायी सम्पादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरीसे आरम्भ होता है। ग्राहक किसी भी मासमें बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरीके अंकसे निकले सभी अंक दिये जायँगे।

४—जिनके पास जो अंक न पहुँचे, वे अपने डाकखानेसे पूछें, वहाँसे मिलनेवाले उत्तर को हमें भेजनेपर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे भेजना चाहिये। वी० पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं और समय भी अधिक लगता है।

७—समस्त पत्रव्यवहार व्यवस्थापक, "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन (मथुरा) के पतेसे करना चाहिये।



श्रीभगवन्नाम-जप कराइये

श्री वृन्दावनमें लगभग ८५० गरीब माइयाँ प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल ६ घण्टे परम मंगलमय श्रीभगवन्नामका जप एवं संकीर्तन करती हैं इन्हें आश्रम द्वारा अन्न, वस्त्र और पैसोंकी सहायता दी जाती है। एक माई प्रतिदिन एक लाख श्रीभगवन्नामजप कर सकती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

कलियुगमें संसार-सागरसे पार उतरनेका एकमात्र सुगम उपाय श्री भगवन्नाम-जप करना ही शास्त्रोंमें वर्णित है। सभी महानुभावोंको स्वयं अधिक-से-अधिक भगवन्नाम-जप करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

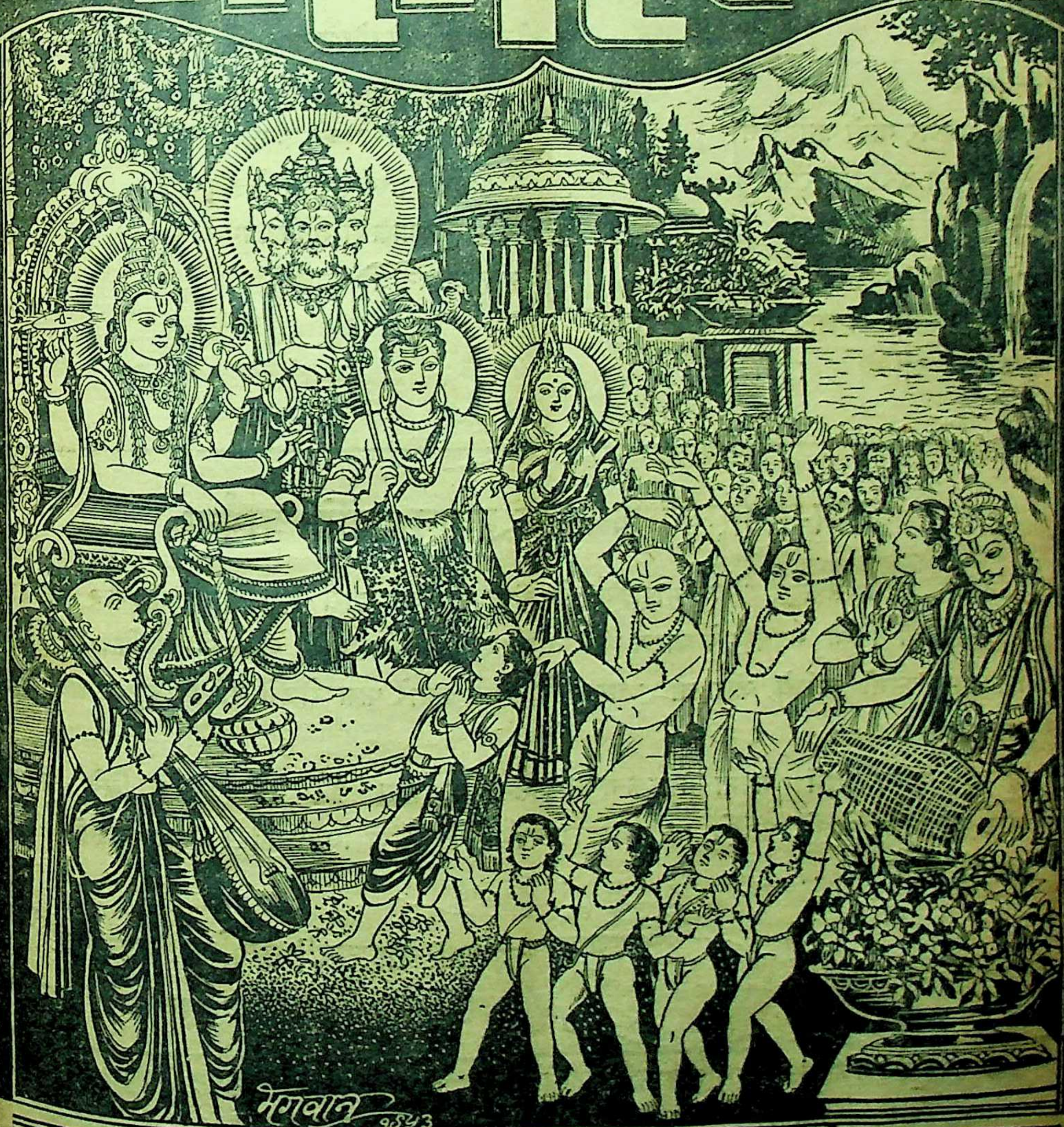
जो महानुभाव अपनी ओरसे गरीब माइयों द्वारा श्रीभगवन्नामजप कराना चाहें, वे कृपाकर हमें सूचित करें। भजनाश्रममें लगभग ८५० गरीब माइयाँ आती हैं, जिनमें-से इस समय लगभग ५०० माइयाँ दान दाताओंकी ओरसे भजन करती हैं। बाकी माइयोंसे भजन करानेके लिये हम सभी प्रेमी सज्जनोंसे निवेदन करते हैं कि आप अपनी-अपनी श्रद्धा और प्रेम के अनुसार जितनी माइयों द्वारा जितने मासके लिये भजन कराना चाहें, अवश्य करावें एवं अपने इष्ट-मित्रोंको भी भजन करानेके लिये प्रोत्साहित करें।

एक माईको नित्य प्रति साढ़े चार आनेकी सहायता दी जाती है। इस हिसाबसे एक मासका ८।≡) और एक वर्षका १०१।) खर्च लगता है। पत्र-व्यवहार एवं मनीआर्डर भेजनेका पता :—



मन्त्री—श्रीभगवान-भजनाश्रम,
पोस्ट—वृन्दावन

नाम माहात्म्य



वर्ष १३] वृन्दावन [अङ्क ६

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

[जून सन् १९५३]

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावोंसे प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताहमें "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जा हैं; फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखि शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले, उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भे जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्रव्यवहारमें अपना ग्राहक-नम्बर लिखनेकी कृपा करें एवं उत्तरके लिये जवा कार्ड या टिकट भेजने चाहिये। पत्रव्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पतेपर स्पष्ट अक्षरोंमें लि कर भेजिये।

व्यवस्थापकः—"नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम

पोस्ट—वृन्दावन (मथुरा)

सम्पादक तथा प्रकाशक—गौरगोपाल मानसिंहका, श्रीभगवान् भजनाश्रम, वृन्दावन (मथुरा)।
मुद्रक—राममोहन शास्त्री, श्रीगोविन्द मुद्रणालय, काशी।

श्रीहरिः



वर्ष १३ || "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन, जून सन् १९५३ || अङ्क ६

भगवद्वन्दना

'यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

'ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुत् देवतागण जिनकी सुन्दर-सुन्दर सुशोभन स्तोत्रोंके द्वारा स्तुति-प्रार्थना करते रहते हैं, तथा सामवेदपाठी विद्वान् सज्जन जिनका अङ्ग, पद, क्रम और उपनिषदोंके साथ-साथ वेदोंके पाठ द्वारा गान करते रहते हैं और जिन्हें योगयुक्त सज्जन ध्यानमें निश्चल रूपसे स्थित होकर उस ध्यानमें ही तन्मय हुए अन्तःकरण द्वारा देखते रहते हैं एवं उनकी यथार्थ उपासना न करनेवाले देव, दानव अथवा मनुष्य भी जिनके तत्त्व को पूर्णतः नहीं जान पाते, उन परम देव परमेश्वरको हमारा नमस्कार है।'

निष्कामता

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

रामू और गोपाल दोनों एक ही गाँव रामपुराके रहनेवाले थे। दोनों ही कहार थे। गोपाल इच्छानगरी-नरेशके प्रधान मन्त्रीके पेशकारके घर जूँठे बर्तन माँजने, झाड़ू लगाने आदिका काम करता था। रामूसे उम्रमें बड़ा था। पर सम्बन्धके नाते भाई था। रामूका पिता गाँवमें प्रतिष्ठित माना जाता था। रामू कहारके घर पैदा हुआ था। वह बड़ा बुद्धिमान् था और उसमें सात्विक गुणोंकी स्वाभाविक ही बहुतायत देखी जाती थी। रामूके हृदयमें भगवद्भक्ति, विनय, संतोष और निष्कामता आदि गुणोंका विशेषरूपसे विकास हो गया था। उसका चेहरा भी राजकुमारका-सा सुन्दर था। गाँवके सभी लोग उससे प्यार करते थे। और उसने पंद्रह वर्षकी उम्रमें ही गाँवके वयोवृद्ध पं० रमाकान्तजीसे, जो बड़े संयमी, सदाचारी तथा भगवद्भक्त विद्वान् थे और नगरकी ऊँची अध्यापकीको छोड़कर निःस्वार्थभावसे गाँवके लड़कोंको पढ़ाते थे, अच्छे विद्याभ्यासके साथ ही बहुत-से सद्गुण भी प्राप्त कर लिये थे।

रामूका गाँव रामपुरा इच्छानगरी राजधानीसे थोड़ी ही दूरपर था। एक दिन तड़के ही रामू नहा-धोकर घरसे चल दिया और पौ फटते-फटते इच्छानगरी जा पहुँचा। उसने खोजते-खोजते गोपालके घर पहुँचकर सहसा गोपालके चरण पकड़ लिये। गोपाल उस समय बिछौनेसे उठा ही था। रामूको इस तरह देखकर सकपका गया और आह्लाद तथा आश्चर्यसे उसके चेहरेकी ओर देखने लगा।

'भैया! तुम धन्य हो,' रामूने पैर पकड़े हुए ही कहा। 'अरे भैया! तुम आये, बड़ा अच्छा किया। गाँवमें सब कुशल तो है? पर तुमने मेरे पैर क्यों पकड़ लिये? तुम तो वैसे मेरे भाई हो।' गोपाल पीछे हटते हुए एक साँसमें कह गया।

'भैया! तुम्हारी महिमा मैं क्या कहूँ; बस, तुम धन्य हो।' रामूने गद्गद वाणीसे फिर कहा।

'भैया! वैसे तो मैं तुम्हारे घरका आदमी हूँ। और मेरा काम देखो, तो मैं महाराजा साहेबके दीवानके पेशकारके जूँठे बर्तन माजनेवाला नीचे दर्जेका नौकर हूँ; मैं धन्य कैसे हो गया?'' गोपालने जिज्ञासासे कहा?

'भैया! इसीलिये तो तुम धन्य हो! तुम जानते हो हमारे महाराजा उच्च कोटिके महापुरुष हैं; वे अनन्यभक्त ज्ञानी और योगी महात्मा हैं।' रामूने गोपालके पैरोंसे चिपके हुए ही कहा।

'पर इससे क्या हुआ। इन सद्गुणोंसे सम्पन्न तो महाराजा हैं न?' पैर छुड़ाते हुए गोपालने कहा—'मुझमें तो कोई गुण नहीं है।'

उसने आदर और प्रेम भरे शब्दोंमें कहा—'भाई! ऐसे महापुरुष महाराजाके दीवानके पेशकारकी नौकरी मिलना क्या कोई साधरण बात है? मुझे तो ऐसी नौकरी मिल जाय तो मैं अपने जीवनको कृतार्थ समझूँ। बल्कि तुम्हारी ही सेवाका अवसर मिल जाय तो भी मेरा जीवन धन्य हो सकता है।' रामू यों कहकर गोपालके मुँहकी ओर देखने लगा।

गोपालपर रामूके शब्दोंका बड़ा प्रभाव पड़ा। गोपालने कहा—'भैया! पेशकार साहेबको तो आदमीकी जरूरत

ही थी। वे मुझसे कह रहे थे। तुम आ गये और तुम चाहते भी हो। अतः आज ही मैं तुम्हें काम दिलवा दूँगा।'

× × × ×

रामू पेशकारके यहाँ बड़ी लगनसे काम करने लगा था। महीना पूरा होनेपर गोपालके हाथ भेजे हुए वेतनको जब उसने नहीं लिया, तब पेशकारने उसे बुलाकर कहा—

'तुम अत्यन्त उत्साह, श्रद्धा, प्रेम तथा तत्परतासे दिन-रात काम करते हो। काम भी पहले नौकरसे दुगुने कर लेते हो। इतना काम तो कोई नौकर करता ही नहीं। फिर भी गत मासमें तुमने वेतन नहीं लिया: इससे मैं बहुत लज्जित हूँ। मैं समझता हूँ, तुम्हें दस रुपये मासिक बहुत कम हैं। तो अब तुम जितना कहो, उतने ही रुपये प्रतिमासके लिये निर्धारित कर दूँ।'

रामूकी प्रसन्नताकी सीमा न थी। उसे शुद्ध सात्त्विक एवं दिव्यगुणसम्पन्न नरपतिके दीवानके पेशकारके पास रहनेका स्थान जो मिल गया था। और इसी कारण वह अहन्ता-ममता तथा आसक्ति और स्वार्थको त्यागकर अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसमन्वित हृदयको लेकर निष्काम भावसे सेवा कर रहा था। पेशकार उससे अत्यन्त संतुष्ट हो गया था। रामूने पेशकारकी बात सुनकर अत्यन्त विनयसे उत्तर दिया—'मेरे वेतन न लेनेका यह कारण नहीं था कि तनख्वाह कम थी।'

पेशकार चकित था। उसे रामूकी बातपर सहसा विश्वास नहीं हुआ। उसने पूछा—'तो इतना अथक श्रम किसलिये करते हो?'

'आप अच्छी तरह जानते हैं, हमारे महाराजा उच्च-कोटिके महापुरुष हैं। वे योगी, ज्ञानी, ईश्वरभक्त और साक्षात् महात्मा हैं। आप उनके दीवानके पेशकार हैं। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे आपकी चाकरीका अवसर प्राप्त हुआ है। तनख्वाह इससे बढ़कर और क्या होगी?' रामूने नतमस्तक होकर उत्तर दिया।

'अमराईकी इमलीमें आम नहीं, इमली ही फलती है। ठीक उसी तरह राजा साहब तो तुम जैसा कहते हो वैसे ही हैं, पर मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ मुझमें वे कोई भी गुण नहीं हैं, जो उनमें विद्यमान हैं। मेरी चाकरीसे तुम्हें क्या लाभ है?' पेशकारने उत्सुकतासे प्रश्न किया।

'आप हैं तो उन्हींके दीवानके पेशकार। मेरे भाग्यमें आप-जैसे पुरुषोंकी सेवा कहाँ? भगवान्‌की बात तो दूर रही, उनके आश्रित भक्तोंके दासानुदासोंके दासानुदासकी सेवा प्राप्त कर लेना भी बहुत बड़ा सौभाग्य है। क्योंकि उनके सम्पर्कसे कभी-न-कभी भगवदनुरागी महापुरुषोंके दर्शन प्राप्त हो सकते हैं। इसी तरह आपकी सेवा करते-करते मुझे कभी दीवानजीके भी दर्शन हो जायँगे, जो उन भगवद्भक्त राजाके निकटतम सम्पर्कमें रहा करते हैं,'—रामूने सरलतासे मनकी सच्ची बात कह दी।

'दीवानके दर्शनकी कौन बात है? उनका दर्शन तो मैं तुम्हें कल ही करवा सकता हूं।' पेशकार रामूकी पवित्र भावनापर मुग्ध हो गये थे। उन्होंने कहा—'दीवानजी प्रातःकाल साढ़े आठ बजे न्यायालयमें आते हैं और मैं वहाँ आठ बजे चला जाता हूँ; तुम नौ बजेतक एक गिलास चाय और जल लेकर वहाँ आ जाना।'''और वेतनके लिये जितने रुपये कहो, तुम्हारे घर भेज दूँ।'

'मुझे रुपये की आवश्यकता नहीं है। घरका काम चल जाता है। मुझे तो श्रीदीवानजीके दर्शनसे ही सब कुछ मिल जायगा।' रामूने अनुनय-विनयसे रुपये लेना अस्वीकार कर दिया।

पेशकार रामूकी ओर देख रहे थे। वे उसके स्वभावकी मन-ही-मन प्रशंसा करने लगे।

× × ×

गद्दीपर मसंदके सहारे बैठे हुए दीवानने दरवाजेकी ओर देखा। एक सुन्दर अनजान नौ वान हाथमें गिलास लिये बड़ी मुग्धदृष्टिसे एकटक उनकी ओर देख रहा था, जैसे कोई भगवान्‌का दर्शन कर रहा हो। दीवानने कई बार देखा, उसकी पलक झपती ही नहीं थी। वह अतृप्त नेत्रोंसे दीवानकी ओर देख ही रहा था।

'यह कौन है और यहाँ क्यों खड़ा है?' दीवानने पेशकारसे पूछा।

'श्रीमान्! यह आपका नौकर है। आज मैं चाय पीकर नहीं आ सका था तो यहीं लेकर आ गया।' पेशकारने जवाब दिया।

'अच्छा पहले चाय पी लो'—दीवानने कहा।

पेशकारने चाय पीया और फिर काममें जुट गये। पर दीवानपर रामूकी परम मुग्ध और आकर्षक प्रेमभरी दृष्टिका प्रभाव पड़ चुका था। वे रह-रहकर बरबस रामूकी ओर देख लेते थे। रामूने चायके बर्तन माँज-धोकर वहाँ झाड़ू लगा दिया। फिर दीवानजीके जूते साफ करनेमें जुट गया। साथ ही वह रह-रहकर दीवानकी ओर उसी श्रद्धा और प्रेमभरी दृष्टिसे देख भी लेता था।

'यह लड़का तो बड़े प्रेम और उत्साहसे बिना कहे ही काम करता है। और सो भी कितनी फुर्ती और सफाईके साथ। क्या देते हो इसे?' दीवानने पेशकारसे पूछा।

'श्रीमान्!······यह काम तो बहुत और बहुत सुन्दर ढंगसे करता है। पर लेता कुछ भी नहीं।'

आश्चर्यचकित होकर दीवानने रामूको तुरंत पास बुला लिया और पूछ बैठ 'तुम बिना कुछ लिये ही बड़े प्रेमसे काम करते हो, इसका कारण बता सकोगे?'

'सरकार! सिर्फ आपके दर्शनके लिये। आज मैं धन्य हूँ'—रामूने दबती जबानसे कह दिया।

'मुझमें ऐसी कौन-सी बात है, भैया?' दीवानने आकर्षित होकर रामूसे पूछा।

'दीवानजी! आप तो जानते ही हैं कि हमारे महाराजा साहब बहुत उच्चकोटिके महापुरुष हैं। वे योगी, ज्ञानी, भक्त और महात्मा हैं। आप ऐसे पवित्रात्मा नरेशके दीवान हैं। आप-जैसे पुरुषोंके दर्शन होना कोई साधारण बात है? जिनके बड़े भाग्य होते हैं, उन्हें ही आप-जैसे पुरुषोंका दर्शन मिलता है।' रामूने बड़े प्रेम और विनयसे कहा।

'जब तुम्हारी ऐसी भावना है, तो तुम हमारे ही पास रह सकते हो'—दीवानपर प्रेमका जादू चल गया था।

रामू आश्चर्यचकित था। अत्यन्त मुदित होकर उसने कहा—'आपके चरणोंका सामीप्य पाकर मैं अपनेको परम सौभाग्यशाली समझूँगा।'

'भाई! इसे तो मैं अपने पास रखना चाहता हूँ'—दीवानने पेशकारकी ओर मुँह फेरकर कहा।

'आप प्रसन्नतापूर्वक रख लें'—पेशकारने स्वीकृति दे दी।

× × ×

'मेरे पास काम करते तुम्हें बहुत दिन बीत गये और जिस प्रेम तथा उत्साहसे तुम काम करते हो, वैसे साधारण नौकर तो कर ही नहीं सकते; परन्तु आजतक तुमने कुछ भी लिया नहीं, इससे मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। वेतन न सही, पर पारितोषिकके रूपमें तुम कुछ अवश्य स्वीकार कर लो। दो-चार सौ जितना कहो, मैं तुम्हारे घर भिजवा दूँ'—दीवानने बड़े स्नेहसे कहा।

'घरवालोंका काम चल जाता है सरकार! रुपयेकी आवश्यकता नहीं है।' रामूने श्रद्धालु भक्तकी भाँति उत्तर दिया।

'रुपया नहीं भेजते तो और कोई चीज भेज दो। मैं तुम्हारी सेवाका बहुत आभार मानता हूँ। कुछ

तुम्हारा प्रत्युपकार करना चाहता हूँ'—अनुरोधपूर्वक दीवानजीने कहा।

'ऐसा कहकर आप मुझे लज्जित न करें। आपकी सेवा ही सबसे बढ़कर मेरा उपकार है, क्योंकि आप एक महान् पुरुषके दीवान और देशके परम सेवक हैं। मेरे लिये तो आपके दर्शन भी दुर्लभ थे। आपने मुझे सेवाका सौभाग्य देकर सदाके लिये ऋणी बना लिया है। आपकी सेवा करते करते कभी मेरा परम सौभाग्य होगा तो आपकी कृपासे महाराजके भी दर्शन हो जायँगे'—रामूने मनकी बात व्यक्त कर दी।

'राजा साहबके दर्शनोंकी क्या बात है। वह तो तुम्हें कल ही करवा सकता हूँ। मैं दरबारमें बारह बजे जाता हूँ और राजासाहब वहाँ एक बजे आते हैं। कल मंगलवारका व्रत है। तुम जानते हो मैं उस दिन बिना खाये ही जाया करता हूँ और मेरे लिये फलाहार वहीं पहुँचाया जाता है। तुम दो बजे फलाहार लेकर वहाँ आ जाना। पर कुछ रुपये अवश्य घरपर भिजवा दो'—दीवानने आग्रह किया।

'मैं आपका चिरऋणी हूँ, सरकार! मुझे रुपया नहीं चाहिये।'—रामूका मस्तक श्रद्धासे नत हो गया था।

× × ×

राजाकी दृष्टि आनन्दसमुद्रमें निमग्न रामूपर पड़ गयी थी। उन्होंने उसमें विलक्षण आनन्दका अनुभव किया। वह एकटक राजा साहबकी ओर देख रहा है और हर्षोत्फुल्ल हो रहा है। इसे उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया था। दीवानसे उन्होंने पूछा—'यह कौन है और किस लिये खड़ा है?'

श्रीमान्! यह आपका सेवक है। आज मंगलवार है, इससे फलाहार लाया है।' दीवान बोले।

'अच्छा तुम पहले फलाहार कर लो।' राजाने आज्ञा दी।

दीवानने अलग जाकर फलाहार किया और फिर लौटकर अपने कार्यमें लग गये और रामू जूँठे बर्तन साफ करके दीवान और महाराजके जूते साफ करने लगा। साथ ही वह महाराजकी ओर देख-देखकर आनन्दातिरेकसे विह्वल होता जा रहा था। वह मन्त्रमुग्धकी भाँति हो गया था। उसकी इस दशाका अनुभव राजाने भी किया।

'यह लड़का बड़ा उत्साही मालूम होता है। इसे वेतन क्या दिया जाता है?' राजाने दीवानसे प्रश्न किया।

'सरकार! काम तो यह बड़ी ही तत्परता तथा प्रेमोत्साहसे करता है, परंतु वेतन आग्रह करनेपर भी कुछ नहीं लेता'—दीवानने जवाब दिया।

महाराजको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने रामूको बुलाकर पूछा—'तुम बिना कुछ लिये ही इतने प्रेम और उत्साहसे काम करते हो, इसका क्या कारण है?'

'सरकार! बिना कुछ लिये ही कैसे? इन्हींकी तो कृपा है जो मैं आज सरकार-जैसे अप्रतिम महापुरुषके दर्शन कर कृतकार्य हो गया। मेरा अहोभाग्य है, जो मैं आज सरकारके दर्शन कर रहा हूँ'—रामू गद्गद हो गया था।

'तुम अपनेको कृतकार्य मानते हो, ऐसी कौन सी बात है?'

'सरकार महापुरुष हैं। सरकार जैसे योगी, ज्ञानी और महात्माके दर्शन बहुत ही दुर्लभ हैं और बड़े ही भाग्यसे होते हैं। आज सरकारके दर्शन करके मैं परम धन्य हो गया हूँ। मेरा जन्म आज सफल हो गया। सरकारकी कृपासे मैं आज सचमुच कृतार्थ हो गया'—रामूने महाराजके चरण पकड़ लिये।

'यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे साथ सदा रह सकते हो'—नरपति प्रभावित हो चुके थे।

'यह तो मेरे लिये परम सौभाग्यकी बात है। इस से

बढ़कर मेरे लिये और हो ही क्या सकता है।'—रामूका मस्तक नरपतिके चरणोंपर था।

'इस बच्चेको मेरे पास रहने दो'—राजाने दीवानसे कह दिया। उनके हृदयमें स्नेह उमड़ने लगा था। दीवानने सिर झुका लिया।

× × ×

'मैं तुम्हारी सेवासे बहुत संतुष्ट हूँ; परंतु तुम न रुपया लेते हो और न कुछ घरपर ही भिजवाते हो। मैं तुम्हारा आभारी हूँ। तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो कहो; मैं तुम्हारा कुछ भी अभीष्ट हो, पूरा करना चाहता हूँ।' राजा बोले।

'महाराज! जब सरकार इस नगण्य दासपर संतुष्ट हैं तो मैं सब कुछ पा गया। मुझे रुपयेकी आवश्यकता नहीं है।' रामूने उत्तरमें कथा।

'मैं तुम्हारा आभार मानता हूँ। मेरे संतोषके लिये तुम्हें कुछ न-कुछ लेना ही होगा'—नरेशने पुनः आग्रहपूर्वक कहा।

'ऐसा कहकर मुझे लज्जित न करें। मुझे तो सरकारकी सेवाके सामने समस्त भौतिक वस्तुएँ अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होती हैं। इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिये। इसपर भी यदि आप आग्रह करते हैं तो फिर मैं जो माँगूँ, आपको वही देना होगा।' रामूने मधुर शब्दोंमें कहा।

'निश्चय ही तुम जो माँगोगे, मैं दे दूँगा' नरेशने निश्चित कर लिया था इसके माँगनेपर समस्त राज्य भी प्रसन्नतापूर्वक दे दूँगा।

'मैं सदा-सर्वदा सरकारके चरणोंके साथ रह सकूँ। मुझे सरकार कभी एक क्षणके लिये भी अपनेसे अलग न करें'—श्रद्धाविगलित हृदयसे रामू महाराजके चरणोंमें लोट गया

'इसमें कौन सी बात है। तुम तो अधिक से-अधिक मेरे साथ रहते ही हो। कुछ और माँग लो।'

'बस, मैं यही चाहता हूँ।'

'मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तुम प्रसन्नतापूर्वक मेरे साथ रहो।'

× × ×

'रात्रिमें शयनकक्षमें मेरे पीछे कैसे?'

'महाराज! नित्य समीप रहनेकी आज्ञा मिल चुकी है।' हाथ जोड़े रामूने तुरन्त जवाब दे दिया।

'आओ'—महाराजने कहा।

'तुम्हारे कोई पुत्र नहीं था। अब इसको तुम्हारी सेवाके लिये पुत्ररूपसे लाया हूँ'—राजाने महारानीसे कहा।

'बहुत अच्छा'—रानीने रामूकी ओर देखा और उसके मनोहर मुखमण्डलको देखकर उसके नेत्रोंसे स्नेहाश्रुओंकी बूँदें टपक पड़ीं। वात्सल्य उमड़ आया। रामू मन्त्रमुग्ध शिशुकी भाँति महारानीकी ओर देख रहा था।

× × ×

'अबतक तो यह काम-काज देख रहा था; पर अब सब कागजातपर आजसे यही सही किया करेगा और इसकी सही मेरी सही समझी जायगी'—राजाने दीवानसे कह दिया। वे रामूकी सेवासे अत्यन्त संतुष्ट थे। रामू तीक्ष्णबुद्धि था, और था महाराजका अनन्य सेवक एवं उनके गुणोंको अपनेमें सहज ही धारण करनेवाला। अतः थोड़े ही दिनोंमें उसने बड़ी योग्यता प्राप्त कर ली थी। रामू पढ़ा-लिखा भी था ही।

दीवानने आज्ञा शिरोधार्य कर ली। कागजोंपर सही रामूकी होने लगी।

कुछ दिन बाद!

'मेरे कोई संतान नहीं है। मैं तुम्हें युवराजके पदपर बैठाना चाहता हूँ'—नरेशने रामूसे कहा। वे उसे पुत्रकी भाँति प्यार करने लग गये थे।

'सरकार मुझे लज्जित न करें। मैं सरकारकी चरण-सेवा नहीं त्याग सकता। इतने बड़े लाभकी तुलनामें राज्य-सुख तुच्छ है'—रामूने सेवापरायण पुत्रकी भाँति उत्तर दिया।

राजाने उसकी बात मान ली और आज्ञा देकर उससे राजकार्य कराने लगे।

× × ×

मैं तो आपका सेवक हूँ। यह सब आपहीकी कृपासे प्राप्त है'—दीवानके चरण पकड़कर रामूने कहा।

'अरे, आप महाराजके प्रतिनिधि हैं। आप सिंहासनके अधिकारी हैं। मुझे लज्जित न करें'—घबराये हुए दीवान किसी प्रकार रामको सिंहासनपर बैठानेमें सफल हो सके। दीवान दरबारमें आये थे।

'मैं तो आपके चरणोंका चाकर हूँ। यह सब आपकी ही कृपासे मुझे प्राप्त हुआ है।' रामू पेशकारके पैर पकड़ कहने लगा और उसे सिंहासनपर बैठानेके लिये अपनी ओर खींचने लगा।

बेचारा पेशकार किसी कामसे आ गया था। बड़ी कठिनाईसे रामूको सिंहासनपर बैठाकर अपने स्थानपर बैठा।

'भैया! तुम्हारी ही कृपासे मुझे यह सिंहासन प्राप्त हुआ है, चलो सिंहासनपर बैठो'—सिंहासनसे उतरकर दौड़ते हुए पेशकारके पुराने नौकरके पास जाकर रामूने विनयपूर्वक कहा।

'पेशकार साहब और दीवान साहबके सामने मैं ऊँचे आसनपर कभी नहीं बैठ सकता। आप मुझे लज्जित न कीजिये'—कहकर पेशकारका नौकर वहीं पृथ्वीपर बैठ रहा। वह किसी कामसे आ गया था। रामूमें अहंकारका लेश भी नहीं था।

× × ×

विनयके तुम मूर्तिमान् स्वरूप हो। अहंता-ममता तो तुम्हें स्पर्श भी नहीं कर सकी है। अत्यन्त छोटे कर्मचारीसे लेकर ऊँचे पदाधिकारीतक सभी तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हैं। तुममें शासन ग्रहण करनेकी अपूर्व योग्यता और क्षमता भी दीखती है। अतएव तुम मेरी बात मानकर राजपद स्वीकार करो। अब मैं एकान्तवास करना चाहता हूँ—राजाने रामूके सामने प्रस्ताव रक्खा।

'सरकार! सदा-सर्वदा अपने चरणोंके समीप रखनेका मुझे वरदान दे चुके हैं, फिर एक क्षण भी मुझे अलग कैसे कर सकेंगे। मुझे राजपदकी बिल्कुल इच्छा नहीं है। सरकार ऐसा कहकर मुझे लज्जित न करें और मैं सरकारसे एक क्षण भी अलग नहीं रह सकूँगा। मैं राजपद स्वीकार करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ, इसके लिये प्रेमपूर्वक क्षमा चाहता हूँ'—रामूने विनय, प्रेम और दृढ़ताके स्वरोंमें अपना निर्णय नरेशको सुना दिया।

'मेरे साथ रहकर राज्यका शासनपद ग्रहण करो'—महाराजको विवश होकर अपनी इच्छा परिवर्तित करनी पड़ी।

'रामू अब राजाके साथ रहकर राज्यका काम सँभालता था।'

× × ×

रामू कहारकी यह कल्पित कहानी दृष्टान्तरूपसे कही गयी है। इसे परमार्थ विषयमें इस प्रकार घटना चाहिये। परमात्माकी प्राप्तिके मार्गमें चलनेवाले साधक पुरुषको यहाँ रामू कहार समझना चाहिये। भगवान्के दासका दासानुदास पेशकारके यहाँ रहनेवाला नौकर गोपालको समझना चाहिये। भगवान्के दासका दासानुदास पेशकारके यहाँ रहनेवाला नौकर गोपालको समझना चाहिये। भगवान्का दासानुदास उस पेशकारको समझना चाहिये और दीवानको भगवान्का दास तथा इच्छानगरीके महाराज

साहबको साक्षात् भगवान् समझना चाहिये। महाराज साहबके भक्ति, ज्ञान, योग आदिको भगवान्‌के गुण तथा प्रभाव समझने चाहिये। राजाकी रानीको ईश्वरकी शक्ति भगवती देवी समझना चाहिये। राज कहारका वेतनसे लेकर राजपदतक कुछ भी स्वीकार न करना निष्कामभावसंयुक्त स्वार्थका त्याग तथा श्रद्धा प्रेमपूर्वक उत्साह से काम करनेको उसका साधन समझना चाहिये। उसके श्रद्धा, भक्ति, विनयपूर्वक अहंकाररहित बर्तावको ही आदर्श शिष्टाचार समझना चाहिये। राजपदको मुक्ति और राजाके नित्य समीप रहनेको ही उच्चकोटिका विशुद्ध प्रेम समझना चाहिये।

इस दृष्टान्तसे हमें यह शिक्षा लेनी चाहिये कि अहंकार, ममता, आसक्ति और स्वार्थको त्यागकर श्रद्धाभक्ति और विनयपूर्वक निष्कामभावसे भगवान्‌की आज्ञाका पालन करें तथा मुक्तिकी भी इच्छा न रखकर निष्काम प्रेमभावसे भगवान्‌के नित्य समीप रहकर भगवान्‌का निरन्तर स्मरण रखते हुए ही सेवा करनेका आग्रह रखें।

[कल्याण से]

वैराग्य

(लेखक—स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

तपसामपि सर्वेषां वैराग्यं परमं तपः।

यज्ञ, दान, जप, योग, तीर्थ, व्रत, स्वाध्याय आदि पुण्य कर्मरूप सभी प्रकारकी तपस्याओंमें वैराग्य परम तप है; क्योंकि अन्यान्य धार्मिक कार्य (तप) सकामभावसे करनेपर उनके द्वारा स्वर्गादिकी प्राप्ति होती है और निष्कामभावसे करनेपर ही वे परमात्माकी प्राप्तिके साधन बनते हैं, परन्तु वैराग्य तो निष्कामभावसे ही होता है। सकामभाव और वैराग्य—दोनों एक जगह रह ही कैसे सकते हैं। अतः पारमार्थिक साधकके लिये एक वैराग्य ही बहुत आवश्यक और परम उपयोगी है। जबतक वैराग्य नहीं, तबतक चाहे जितनी डींगें मारें, उससे कोई भी आध्यात्मिक कार्य सिद्ध नहीं होता। दूसरी ओर, यदि हमें बातें करना नहीं आता, ज्ञानयोग तथा हठयोगकी युक्तियाँ भी हम नहीं जानते, तो भी केवल वैराग्य होनेपर ध्यान आदि साधन सरलतासे स्वयमेव होने लगते हैं, ध्यान आदिकी युक्तियाँ बिना सीखी हुई स्वतः स्फुरित होने लगती हैं। जबतक संसारके पदार्थोंमें राग है और प्रभुमें प्रेम नहीं, तबतक वैराग्य नहीं। वैराग्य नाम है सांसारिक पदार्थोंमें आन्तरिक रागके अभावका। बाहरी स्वाँगका नाम वैराग्य नहीं है। वैराग्य भीतरी त्यागके भावका वाचक है।

वैराग्य कई हेतुओंसे होता है—दुःखसे, भयसे, विचारसे, साधनसे और परमात्मतत्त्वके बोधसे। इन सबमें पूर्व-पूर्व वैराग्यकी अपेक्षा उत्तरोत्तरका वैराग्य श्रेष्ठ है।

दुःखसे होनेवाला वैराग्य—घर, धन, स्त्री, पुत्र, परिवार आदिकी अनुकूलता न होनेपर तथा परिस्थितिकी प्रतिकूलता प्राप्त होनेपर जो मनमें संसारके त्यागकी उकताहटसे भरी भावना होती है, उसे दुःखसे होनेवाला वैराग्य कहते हैं। यह दुःखसे होनेवाला

वैराग्य असली नहीं; क्योंकि हमें आराम नहीं मिला, दुत्कार मिली, तिरस्कार मिला या मनमानी चीज नहीं मिली तो मनमें भाव आया कि छोड़ो संसारको, इसमें क्या पड़ा है। संसारमें तो केवल दुःख-ही-दुःख भरा है। इस प्रकारका वैराग्य तो सभीको हो सकता है। कुत्ता भी तनी हुई लाठी देखकर भागता है, अपनी जान बचाता है। अतः वह यथार्थ वैराग्य नहीं। इसमें जो उकताहट है और अनुकूलताका अनुसन्धान है, वह वैराग्य नहीं। उसमें तो राग ही कारण है; क्योंकि दुःखके कारण हटनेपर अर्थात् अनुकूलता प्राप्त हो जानेपर वह त्यागका भाव रहना कठिन है। यदि प्रतिकूलता न रहे, सब कुटुम्बीजन मनोऽनुकूल सेवा करने लगें, तो फिर वैराग्य भूल जाता है। उसमें केवल जो पदार्थोंको दुःखका कारण समझनेका भाव है, वही बैराग्यका अंश है। इस प्रकार दुःखके कारण होनेवाला वैराग्य यथार्थ वैराग्य नहीं है, किंतु उस समय यदि सङ्ग अच्छा मिल जाय तो वही वैराग्य अधिक बढ़कर आत्मोद्धारमें कारण बन सकता है। इसलिये उसे भी वैराग्य कह सकते हैं।

भयसे होनेवाला वैराग्य—दुःखसे होनेवाले वैराग्यको अपेक्षा भयसे होनेवाला वैराग्य श्रेष्ठ है। स्वास्थ्यका भय, राज्यका भय, समाजका भय, मान-प्रतिष्ठाका भय, जन्म-मरणका भय और नरकोंका भय—इन अनेक प्रकारके भयोंसे होनेवाले रागके अभावको 'भयसे होनेवाला वैराग्य' कहते हैं।

भोगोंके भोगनेसे शरीर शिथिल होता है, रोग बढ़ते हैं, शक्तिका ह्रास होता है, कार्य करनेका साहस नहीं होता—आदि-आदि क्लेशोंके भयसे जो हरेक चीजके खाने-पीने और स्त्रीसङ्ग आदि भोगोंसे मनका हटना है, एवं इसी प्रकार रोगादिके हो जानेपर उनकी वृद्धि न हो जाय, अतः उनमें कुपथ्यरूप भोगोंसे जो मनका हटना है, यह 'स्वास्थ्यनाशके भयके कारण होनेवाला वैराग्य' है।

जुर्माना, कारागार, फाँसी आदिके भयसे चोरी, व्यभिचार, डकैती, हिंसा आदि अत्याचार-अनाचारसे प्राप्त होनेवाले भोगोंसे जो मनका हट जाना है, वह 'राज्यभयसे होनेवाला वैराग्य' है।

जाति-बहिष्कार, आर्थिक व्यय, लड़के-लड़कीके विवाहमें कठिनता, समाजमें बदनामी आदिके भयसे जो जातिके नियमोंको भङ्ग करके भोगोंके भोगनेकी इच्छाका त्याग करना है, वह 'समाज भयसे होनेवाला वैराग्य' है।

वेश्यागमन, मदिरापान, हिंसा आदिसे कुल-परम्परागत मानका नाश होगा तथा लोग हमें नीची दृष्टिसे देखेंगे—ऐसे विचारसे लौकिक मर्यादाको छोड़कर भोगोपभोगके त्यागका जो भाव है, यह 'मान-प्रतिष्ठाके भयसे होनेवाला वैराग्य' है।

जन्म-मरणका प्रधान कारण है—पदार्थ, क्रिया भाव और व्यक्ति आदिमें आसक्ति रहना। अतः इन पदार्थोंका चिन्तन होगा तो मरनेके समय भी इन्हीका स्मरण होगा और अन्तकालीन स्मरणके अनुसार ही आगे जन्म होगा—इस भयसे पदार्थ, क्रिया आदिमें जो रागका न रहना है, यह 'जन्म-मरणके भयसे होनेवाला वैराग्य' है।

काम, क्रोध, लोभ आदि वृत्तियोंके वश होकर शास्त्रके विपरीत पदार्थोंका अन्यायपूर्वक सेवन करनेसे वैतरणी, असिपत्रवन, लालाभक्ष्य, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक आदि नरकोंकी प्राप्ति होगी, वहाँ अनेक भयानक कष्ट भोगने पड़ेंगे, यहाँका विषय-

सुख तो क्षणिक होगा परंतु इसके परिणाममें प्राप्त होनेवाली नारकीय पीड़ा अत्यन्त भयानक और बहुत समयतक रहनेवाली होगी—इस भयके कारण मनके काम-क्रोधादिसे हटनेको 'नरकोंके भयसे होनेवाला वैराग्य' कहते हैं ।

इस प्रकार भयसे होनेवाले वैराग्यके कई रूप हैं । इनमें नरकोंके भयसे होनेवाला वैराग्य अन्य भयोंसे होनेवाले वैराग्यकी अपेक्षा स्थायी और श्रेष्ठ है, पर यह भी असली वैराग्य नहीं है । इसमें भी पदार्थोंसे सूक्ष्म राग नहीं छूटा है । केवल भयके कारण पदार्थोंसे मन हटा है—यह भयसे होनेवाला वैराग्य है, भय न रहे तो इस वैराग्यका रहना भी कठिन है ।

विचारसे होनेवाला वैराग्य—भयसे होनेवालेकी अपेक्षा विचार—विवेकसे होनेवाला वैराग्य ऊँचा है । विचारका अर्थ है—सत्-असत्, सार-असार, हेय-उपादेय और कर्तव्य-अकर्तव्य आदिका विवेक । इस विवेकसे जो असत् असार, हेय और अकर्तव्यका मनसे परित्याग है अर्थात् इनके प्रति मनके रागका जो अभाव हो जाना है, उसको विचारसे होनेवाला वैराग्य कहते हैं । विषय-सेवन करनेसे परिणामतः विषयोंमें राग—आसक्ति बढ़ती है, जो कि सम्पूर्ण दुःखोंका कारण है और विषयोंमें वस्तुतः सुख है भी नहीं । केवल आरम्भमें सुख प्रतीत होता है । गीतामें कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥
विषयेन्द्रियसंयोगाद् यत् तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसं स्मृतम् ॥
(५ । २२; १८ । ३८)

'जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं । इसलिये हे अर्जुन ! बुद्धिमान—विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता ।'

'जो सुख विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होता होता है, वह पहले—भोगकालमें अमृतके तुल्य प्रतीत होनेपर भी परिणाममें विषके तुल्य है, इसलिये वह सुख राजस कहा गया है ।'

विषयोंमें सुख होता तो बड़े-बड़े धनी, भोगी और पदाधिकारी भी सुखी होते । पर विचारपूर्वक देखनेपर पता चलता है कि वे भी दुखी ही हैं । पदार्थोंमें शान्ति है नहीं, हुई नहीं, होगी नहीं और हो सकती नहीं । विचारशील व्यक्तिको तो पदपदपर अनुभव भी होता है कि इनमें सुख नहीं है ।

चाख चाख सब छाड़िया माया-रस खारा हो ।
नाम सुधारस पीजिये छिन बारंबारा हो ॥

जो-जो भोग सुख-बुद्धिसे भोगे गये, उन-उन भोगोंसे धीरज नष्ट हुआ, ध्यान नष्ट हुआ, रोग उत्पन्न हुए, चिन्ता हुई, व्यग्रता हुई, पश्चात्ताप हुआ, बेइज्जती हुई, बल गया, धन गया, शान्ति गयी एवं प्रायः दुःख-शोक-उद्वेग आये—ऐसा यह परिणाम प्रत्यक्ष देखनेमें आता है । इससे मालूम होता है कि विषयोंमें सुख नहीं है । जिस प्रकार स्वप्नमें जल पीते हैं पर प्यास नहीं मिटती, उसी प्रकार पदार्थोंसे न तो शान्ति मिलती है और न जलन ही मिटती है । मनुष्य सोचता है कि इतना धन हो जाय, इतना ऐश्वर्य हो जाय, तो शान्ति मिलेगी, किंतु उतना हो जानेपर भी शान्ति नहीं होती, उल्टे पदार्थोंके बढ़नेसे उनकी लालसा और बढ़ जाती है'—जिमि प्रति आ

लोभ अधिकाई।' धन-परिवार होनेपर उनके और बढ़नेकी लालसा होती है। राज्य होनेपर राज्य और बढ़ जाय, यह लालसा होती है। इस प्रकार 'और हो जाय', 'और हो जाय'—यह क्रम चलता ही रहता है। किंतु संसारमें जितना धन-धान्य है, जितनी स्त्रियाँ हैं जितनी सामग्रियाँ हैं, वे सब-की-सब एक साथ किसी एक व्यक्तिको मिल जायँ, तब भी उनसे उसे तृप्ति कभी नहीं हो सकती। शास्त्रमें कहा है—

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
एकस्यापि न पर्याप्तमिति मत्वा शमं व्रजेत्॥

इसका कारण यह है कि जीव परमात्माका अंश तथा चेतन है और पदार्थ प्राकृत तथा जड हैं। चेतनकी भूख जड पदार्थोंके द्वारा कैसे मिट सकती है। भूख है पेटमें और हलवा बाँधा जाय पीठपर तो भूख कैसे मिटे। प्यास लगनेपर गरमागरम बढ़िया से-बढ़िया हलवा खानेसे भी प्यास नहीं मिट सकती। भूखे व्यक्तिकी भूख ठंडा जल पीनेसे कैसे निवृत्त हो सकती है। इसी प्रकार जीवको प्यास तो है चिन्मय परमात्माकी, किंतु वह उस प्यासको मिटाना चाहता है जड पदार्थोंके द्वारा? इसमें मुख्य कारण है—अविवेक। जीवका अविवेक मिटानेमें पदार्थ सर्वथा असमर्थ हैं, अतः वे शान्ति प्रदान नहीं कर सकते। उल्टी राह चलनेसे गन्तव्य स्थानपर कैसे पहुँचेंगे। चाहे ब्रह्माजीकी आयुके कालतक जीव ऐश्वर्यके संग्रह और भोगोंके भोगनेमें लगा रहे तो भी उसकी भूख कभी नहीं मिट सकती, उसे शान्ति नहीं मिल सकती। शान्ति तो तभी मिलेगी जब कामनाका अत्यन्त अभाव होगा।

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत् सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥

'जो भी संसारमें इष्ट पदार्थोंके मिलनेसे सुख होता है तथा जो स्वर्गीय महान् सुख है, वे सब सुख मिलकर भी तृष्णानाशके सुखके सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं हो सकते।'

न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्तिनः।
यत् सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तशालिनः॥

'एकान्तशील वीतराग मुनिको जो सुख है, वह सुख न तो इन्द्रको है न चक्रवर्ती सम्राट्को ही।' संतोंने क्या ही सुन्दर कहा है—

ना सुख काजी पंडितां ना सुख भूप भयाँ।
सुख सहजाँ ही आवसी तृष्णा रोग गयाँ॥

'तृष्णारूपी रोगके चले जानेपर सुख सहज ही आ जायगा।' जबतक पदार्थोंकी लोलुपता है, दासता है, तबतक सुख कहाँ। दासता, लोलुपता, दीनता मिटनेपर ही सुख होगा और यह मिटेगी चाहके न रहनेपर।

चाह गयी चिंता मिटी मनुवा बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये सो जग शाहन्शाह॥

जबतक चाह है, तबतक चिन्ता नहीं मिटती और जबतक चिन्ता नहीं मिटती, तबतक सुख नहीं हो सकता।

पिङ्गला नामकी एक वेश्या थी। यह बड़ी प्रसिद्ध थी। बहुत से भोगी, धनी उसके यहाँ आया करते थे और उसे धन दिया करते थे, किंतु एक दिन रात्रिको वह राह देखती ही रह गयी, पर कोई धन देनेवाला आया ही नहीं। इससे वह बड़ी उद्विग्न थी। इतनेमें ही उसने देखा कि उधर दत्तात्रेयजी अपनी मस्तीमें झूमते हुए चले आ रहे हैं। उनको देखकर वह विचारने लगी कि 'इस जनक राजाकी

विदेहनगरीमें मैं ही एक ऐसी मूर्खा हूँ, जो दूसरे पुरुषोंसे सुख और तृप्ति चाहती हूँ। वे मुझे क्या सुख देंगे, मेरी क्या तृप्ति करेंगे। यदि उनके पास सुख होता और वे मुझे सुख दे सकते तो मेरे पास उस लेने क्यों आते। जो स्वयं अपनी प्यास नहीं बुझा सकता, वह दूसरेकी क्या बुझायेगा। जो स्वयं टुकड़ेके पीछे कुत्तेकी तरह सुखके लिये दर-दर भटकता है, वह औरोंको क्या सुख देगा।' दत्तात्रेयजीकी मस्ती देखकर उसके मनमें ऐसे विचार आये और उसे वैराग्य हो गया। उसने सोचा—'अबतक मैंने बड़ी भूल की, अब मैं अपना अमूल्य समय नष्ट नहीं करूँगी।' उसके विषयमें श्रीशुकदेवजीने कहा है—

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।
यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला॥

(श्रीमद्भा० ११।८।४४)

'आशा ही सबसे बड़ा दुःख और वैराग्य ही सबसे बड़ा सुख है। पिङ्गला वेश्याने जब पुरुषकी आशा त्याग दी, तभी वह सुखसे सो सकी।'

सचमुच आशा ही दुःखों और पापोंकी जड़ है। गीतामें अर्जुनने भगवान्‌से प्रश्न किया है कि 'मनुष्य पाप करना नहीं चाहता, फिर भी बलात्कारसे किसकी प्रेरणासे पाप करता है?' इसपर भगवान्‌ने उत्तरमें कामनाको ही पापका कारण बतलाया। जितने नरकोंकी भीषण यातना सह रहे हैं और जिनके चित्तमें शोक उद्वेग हो रहे हैं तथा जो न चाहते हुए पापाचारमें प्रवृत्त होते हैं, उन सबमें कारण भीतरकी कामना ही है। कामना प्रत्येक अवस्थामें दुःखका अनुभव कराती रहती है—जैसे पुत्रके न होनेपर पुत्र होनेकी लालसाका दुःख, जन्मनेपर उसके पालन-पोषण, विद्याध्ययन और विवाहादिकी चिन्ताका दुःख और मरनेपर अभावका दुःख होता है। कामनाके रहनेपर तो प्रत्येक हालतमें दुःख ही होगा। अतएव जिस प्रकार आशा ही परम दुःख है, इसी प्रकार निराशा—वैराग्य ही परम सुख है। स्त्री, पुत्र, परिवार—सब आज्ञाकारी मिल जाय, तब भी सुख नहीं होगा। सुख तो इनकी कामनाके परित्यागसे ही होगा। ऐसा विचारकर पिङ्गला अपनी सारी धन-सम्पत्तिको लुटाकर वैराग्यके नशेमें निकल जाती है और निश्चय करती है कि मैं परमात्माका ही भजन-ध्यान करूँगी और परम सुखी हो जाऊँगी।

मैवं स्युर्मन्दभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः।
येनानुबन्धं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति॥
तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः।
त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम्॥
संतुष्टा श्रद्दधत्येतद् यथालाभेन जीवती।
विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै॥

(श्रीमद्भा० ११।८।३८-४०)

(अवश्य मुझपर आज भगवान् प्रसन्न हुए हैं) अन्यथा मुझ अभागिनीको ऐसे क्लेश ही नहीं उठाने पड़ते, जिनसे 'वैराग्य' होता है। मनुष्य वैराग्यके द्वारा ही सब बन्धनोंको काटकर शान्ति लाभ करता है। अब मैं भगवान्‌का यह उपकार आदरपूर्वक सिर झुकाकर स्वीकार करती हूँ और विषयभोगोंकी दुराशा छोड़कर उनपर परमेश्वरकी शरण ग्रहण करती हूँ। अब मुझे प्रारब्धानुसार जो कुछ मिल जायगा, उसीसे उसीसे निर्वाह कर लूँगी और संतोष तथा श्रद्धाके साथ रहूँगी। मैं अब किसी दूसरेकी ओर न ताककर 'अपने हृदयेश्वर आत्मस्वरूप प्रभुके साथ ही विहार करूँगी।'

सुख यदि पदार्थोंमें होता तो राजा महाराजा

राज्यका और पदार्थोंका त्याग क्यों करते। राजा भर्तृहरिने कहा है—

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलने क्षमः॥

'अकेला, स्पृहारहित, शान्तचित्त, करपात्री और दिगम्बर होकर हे शम्भो। मैं कब अपने कर्मोंको निर्मूल करनेमें समर्थ होऊँगा।'

भर्तृहरि सब कर्मोंका निर्मूलन यानी अत्यन्ताभाव हो—ऐसी अवस्था केवल चाहते ही थे, ऐसी बात नहीं, वे उसे प्राप्त करके ही रहे। उनकी व्याकरणके नियमोंकी कारिकाएँ (श्लोक) देखनेमें आती हैं, उनका बड़ा सुन्दर साहित्य मिलता है। वे व्याकरण-साहित्य आदिके प्रकाण्ड विद्वान् थे और वे अध्ययन आदि जिस कालमें लगे उसे उन्होंने बड़ी तल्लीनतासे किया। जब राज्यकार्य हाथमें लिया, तब उसे बड़ी तत्परतासे और लगनसे सँभालते रहे। रात्रिमें स्वयं वेष बदलकर घूमते और निरीक्षण करते कि मेरी प्रजाको कोई कष्ट तो नहीं है। इस प्रकार प्रजाका पालन भी किया। सारे काम किये, पर किसी जगह भी टिके नहीं, अटके नहीं। पर जब वैराग्य ले लिया, तब फिर उसे छोड़कर कहीं गये नहीं। ठीक ही है—रहने योग्य, ठहरने योग्य एक निर्भय स्थान तो वैराग्य ही है; अन्य तो सभी भयप्रद हैं। स्वयं भर्तृहरि कहते हैं—

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वंवस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

'भोगोंमें रोगादिका, कुलमें गिरनेका, धनमें राजाका, मानमें दैन्यका, बलमें शत्रुका, रूपमें बुढ़ापेका, शास्त्रमें विवादका, गुणमें दुर्जनका और शरीरमें मृत्युका भय सदा बना रहता है। इस पृथ्वीम मनुष्योंके लिये सभी वस्तुएँ भयसे युक्त हैं। एक वैराग्य ही ऐसा है, जो सर्वथा भयरहित है!'

जीवन का कर्तव्य से

जी भर-भर गावो जगमोहन

(रचयिता—श्री जगमोहन प्रसाद बी० ए० एल० एल० बी० जयपुर सिटी)

रे मन माधव सों कर प्रीत।
पल घड़ि निशि दिन मास बरस कर, जाय उमरिया बीत॥
मोर मुकुट शिर कानन कुण्डल, कट शोभित पटपीत।
उर वैजन्ती चरनन नूपुर, कर लोने नव नीत॥
दृश्य जगत नयनों का टोना, है अदृश्य हरि मीत।
जी भर भर गावो जगमोहन, कृष्ण मिलन के गीत॥

राम राम जपो राम राम

(लेखक भक्तरामशरणदासजी पिलखुवा)

ऐ धर्मप्राण भारतके सनातनधर्मी हिन्दुवों ! ऋषि मुनियोंकी संतानों !! तुम्हारा बड़ा ही सौभाग्य है कि जो तुम्हारा भारतमें जन्म हुवा, तुम्हें मनुष्य योनि मिली, तुम्हें हिन्दू घरमें पैदा होनेका सुअवसर मिला, तुम्हें सनातनधर्मी होनेका गोरव प्राप्त हुवा इसलिये अब तुम्हारा परम-कर्तव्य है, एकमात्र कर्तव्य है जिस प्रकार भी हो, जैसे भी हो तुम श्रीरामराम कह कहकर, श्रीराम राम जपकर, श्रीरामराम कीर्तन कर, श्रीरामराम स्मरण कर, श्रीरामराम लिखकर श्रीरामनामामृतका पानकर भवसागरसे बेड़ापार कर अपना जीवन सार्थक कर लो। हिन्दुओं यह समस्त विश्वमें खाली तुम सनातनधर्मी हिन्दुओंके ही भागमें श्रीरामनामामृतका पान करना लिखा है तुम्हें ही यह अद्भुत सौभाग्य प्राप्त हुआ है इसलिये श्रीराम-नामामृतका पान करनेसे कदापि भी न चुको। जितना लूट सको श्रीरामनामको लूटो, जितना श्रीरामनामामृतका पान कर सको कर लो, जितना इसका रसास्वादन कर सको कर लो फिर पता नहीं इंग्लैण्ड, अमेरिका, रूस आदि न याने कहाँ २ जन्म मिले, न जाने कौनसी योनी मिले और न जाने किस नास्तिक घरानेमें जन्म हो जो सारा जीवन कुत्ते पालते, खाते पीतेमें ही चला जाय और यह मौका हाथ न लग सके ? भारतके अतिरिक्त और सनातनधर्मी हिन्दूके अतिरिक्त कहीं पर भी श्री श्रीरामनामका प्याला पीनेको, श्रीरामनाममें मतवाला होनेको, श्रीरामनामामृतका पान करनेको, श्रीरामप्रेममें निमग्न होनेको नहीं मिल सकेगा।

श्रीरामनामकी लूट है लूट सके तो लूट।
अंतकाल पछतायेगा जब प्राण जायेंगे छूट॥

अरे पगले ! हाथमें आये लड्डूको क्यों फेंकता है ? अरे पगले ! खीरकी थालीमें लात क्यों मारता है ? अरे ! सामने रक्खे अमृतको फेंक विष क्यों पीता है ? अरे श्रीरामनाम साक्षात् अमृत है इसे पीकर अमर कौ[न] नहीं हो जाता ?

ऐसो रामनाम रसखान।
मूर्ख याको कभी न पीवे पीवे चतुर सुजान॥
नरसी जीने तुलसीजीने पीया याको तोल तोल।
गोपीचन्द भरथरीने पीया याको डोल डोल॥
शंकर और पारवतीने पीया याको घोल घोल॥

अरे जिसने भी श्रीरामनाम अमृतमुँह लग ग[या] उसने फिर नहीं छोड़ा और फिर तो वह श्रीरामनाम[के] पीछे ऐसा पागल बना कि अपना राजपाट तक भी धूलि[में] मिला दिया और दिन रात एक कर दिया, भूख प्यास[को] भी भुला दिया, घर बारसे नाता तोड़ दिया और श्रीराम-नामामृतके पान करनेवालोंसे नाता जोड़ लिया। जो म[जा] जो आनंद, जो सुख शान्ति श्रीरामनाममें है वह न [तो] धन मालमें हैं, राजपाटमें हैं, न स्वर्गलोकमें है, न इन्द्र[-]पदमें है श्रीरामनामके आगे सब सुख फीके प[ड़] जाते हैं नीरस हो जाते हैं। इसी श्रीरामनामके पी[छे] पागल होकर प्रहलादजीने अपने पितासे बैर मोल लिया, इसीके पीछे पगली होकर मीरावाईने जहरका प्याला पिया, इसके पीछे दीवाना होकर सूरने अपने नेत्रोंको फोड़[ा] इसीके पीछे मतवाला होकर नरसीने धन लुटाया। [य]ह मजा, यह आनंद ही ऐसा है कि जिसकी बराबरी कोई [क]र ही नहीं सकता। श्रीरामनामपर लट्टू होनेवालेकी चरण-धूलीको मस्तकपर लगानेके लिये बड़े २ चक्रवर्ती सम्राट बड़े २ शाहनशाह भी लालायित रहा करते हैं औरपीछे पीछे हाथ बाँधे घूमा करते हैं। इसलिये आवो आवो जल्दी आवो श्रीरामराम गावो, कृत कृत्य हो जावो और अपना बेड़ापार कर सदाके लिये दुःखोंसे छुटकारा पावो। बोलो

श्रीराम राम राम राम राम।
श्रीराम राम राम राम राम।

रामनामकी टेर

(लेखक--श्रीशम्भुदयालजी मोतिलेवाला)

आवाजसे टेर उसीको दी जाती है जिसके लिये दिलमें विश्वास हो कि वह यहां कहीं जरूर है—किसीका बाप घरसे, ऊँची मक्काओंके खेतोंमें काम करनेको चला गया था। बेटेको उससे मिलना था, बाप उसे मिलता तो नहीं था, पर वह जानता था कि बाप इन मक्काओंमें है। उसने नामकी टेर लगायी। बाप अपने बेटेकी आवाज पहचान कर आमिला।—जब कोई दीवारकी आड़में बोलता है, तो हम आवाजसे पहचान सकते हैं कि बोलनेवाला बुड्ढा, जवान, मर्द, स्त्री, तन्दुरुस्त या बीमार कैसा है। आवाज चाहे सूक्ष्म स्वरमें है जो दीखनेमें नही आती फिर भी उसमें देहके सूक्ष्म गुण भरे रहते हैं।

दुनियाँ शक करती है कि प्रभुके कान तो हैं नहीं तो हमारी टेर भव सागरमें कैसे सुनलेगा? अव्वल तो जिस कारीगरके पास कान न हों तो दुनियाँमें इतने कान कहाँसे लगा देगा? दूसरे कानोंको उथल, पुथल, चीर, फाड़कर जरा देखो तो क्या उनमें कोई सुननेवाला बैठा दीखता है?—जब देहसे प्राण निकलते हैं तो प्राण प्रकाश—अन्धेरा, खुशबू—बदबू या आवाज कुछ भी नहीं करते। फिर ऐसे अतिसुक्ष्म प्राण निकलनेपर कान भी नहीं सुन सकते। तो क्या मूर्ख दुनया फिर भी विश्वास नहीं कर सकती कि देखना, सूंघना सुनना निराकार प्रभु ही किया करता है? जब अन्दर जान है तो टेरका सुननेवाला अन्दर है। अव्वल तो देहके कान, कान बनानेवालेके ही हैं, अगर तुम (अहंकार) ने उसकी देहको अपने किसी नामसे अपना लिया है तो भी एक कान (टेलीफोन से नौकर और मालिक दोनों ही अपने अपने बुलावेको सुन सकते हैं वह तुम्हारे कानोंसे ही सुन लेगा—जैसे माता अपने बेवस बच्चेकी टेर पर न आवे यह बात असम्भव है। ऐसे वह पिता भी टेर सुनकर नहीं आवे सो असंभव है (गजकी टेर) सुनकर प्रभुके प्रत्यक्ष होनेकी घटना प्रसिद्ध ही है।

अगर तुम्हारी आवाजमें खेलने, कूदने, या अपनी ही महिमाके मनोरंजनके संस्कार गूंज रहे हैं तो फिर मां खेलते बच्चेके कामोंमें क्यों आवेगी? माँ को तो बच्चेकी खुशी हर हालतमें चाहिये। दुनियाँ भक्तोंपर हंसा करती है लोग प्रश्न करते हैं कि—बहुतसे भक्त माला तो फेरते हैं पर चित्त तो किधर ही रहता है? तो इसका उत्तर यह है कि किसी बच्चेका दादा बाजार जानेको तय्यार हुआ तो बच्चेने भग कर दादाका पल्ला पकड़ लिया कि मैं भी चलूंगा और फिर बच्चेका ध्यान अपने साथियोंको देखने लगा। किसीने दादासे कहा बच्चेका ध्यान दूसरी तरफ है भग जाओ। दादाने कहा पर पल्ला जो पकड़ रखा है। ऐसे ही मालावालोंका ध्यान किधर भी हो पर मालारूपी पल्ला तो पकड़े हुए हैं, रामकी पकड़ है। प्रश्न—मंदिरोंमें कोई नाक पकड़े बैठा है, तो कोई मालमें ही ऊँघ रहा है, कोई मूर्ति पर जल दूध फेंक रहा है तो कोई गाल, खुड़ताल ही बजा रहा है,

क्या यह भी प्रेम भाव है ? दुनियाँमें कोई काम ही कर जांय तो भी ठीक हो ?

उत्तर—युवक होने पर ही स्त्रीके कामियोंको स्त्रीकी सुन्दरता खेंचा करती है, तो कोई स्त्रीकी तरफ घूरता है, कोई उसे सूंघता है, कोई उसके बचन सुनता है कोई वस्त्र, जेवर; मिठाई, क्रीम पाउडर उसपर चढ़ाता है। कोई उसके छूनेके ध्यान में ही लगा रहता है। ऐसे ही अन्तःकरणके निर्मल होने पर ही प्रभुके भक्तोंको प्रभुकी सुन्दरता खींचा करती है तो भक्त प्रभुकी प्राप्तिके लिये सब तरहसे सब ही कुछ करनेको तत्पर रहते हैं। जैसे हिजड़े शादी करनेवालोंपर हंसते हैं ऐसे मलीन अन्त.करण वाले रामके भक्तोंपर हंसते हैं।

काम करनेको दुनियाँमें असल तो काम दो ही हैं। एक तो कमाकर रोटी खाना; दूसरा रामका भजन करना। दुनियाँदारोंमें आजतक कोई भी ऐसा नहीं हुआ जिसने ऐसा कहा हो कि "मैंने दुनियाके सब काम खतम कर दिये। पर भक्त तो अनेकों ऐसे हुए हैं जो कह गये हैं कि "हम तो निष्काम हैं हमने सब कर्म खतम कर दिये हैं" फिर तुम ही बताओ कि भक्तोंका कर्तव्य ठीक है या कि नये नये आविष्कार खड़े करनेवाली दुनियां का ?

आनन्द का अनुसन्धान

(लेखक श्रीनरेशचन्द्रजी चतुर्वेदी)

आनन्द क्या है ? यह बड़ा ही जटिल प्रश्न है। यथार्थ में इसका उत्तर भी कोई नहीं है। जिस वस्तु से मनुष्य को प्रसन्नता प्राप्त होती है अथवा सुख मिलता है वही वस्तु उसके लिये आनन्द की वस्तु है। जिससे उसे सुख नहीं मिलता उसमें आनन्द का भी अनुभव नहीं होता।

नवजात शिशु का आनन्द है उसकी माता की गोद अथवा माता के स्तन पान में जिससे उसकी तृप्ति होती है और आनन्द का अनुभव करता है। बालक रो रहा है और यदि माता की गोद में पहुँच जाय तो शान्त हो जाता है और पयः पान से तो मुख पर प्रसन्नता के चिन्ह दृष्टगोचर होने लगते है। वह क्षण क्षण में बाल सुलभ क्रीड़ा में व्यस्त हो जाता है। अतः सिद्ध हुआ कि नवजात शिशु का आनन्द–स्थल है उसकी मां।

अबोध अवस्था से अब वह बाल्यावस्था में पदार्पण करता है। इस समय उसका आनन्द माता की गोद से हट कर समबयस्क बालकों के साथ क्रीड़ास्थली में हो जाता है। उस अवस्था का संसार ही निराला है। घर द्वार माता पिता भाई बहिन की चिन्ता बिल्कुल नहीं। केवल एक चिन्ता रहती है कि आज मिल कर क्या नया खेल खेलें। उनके लिये तो हुआ खेल और वृद्धजन उसे देते हैं उत्पात की संज्ञा। कहते हैं यह बालक बड़ा ऊधमी है। यह तोड़ना, वह तोड़ना इधर चढ़ जाना उधर से कूद पड़ना यही इस की दिनचर्या रहती है। तं.कोष्ठि

है। "बालक बन्दर एक स्वभाऊ" और यथार्थ में बात है भी यही कि बालकों का आनन्द है बन्दरों की भांति स्वच्छन्दता से विचरना।

बाल्यावस्था के बाद आई तरुणाई। मस्तिष्क भी कुछ परिपक्व हुआ। आनन्द के रूप में भी परिवर्तन हुआ। मस्तिष्क में उत्पन्न हुये पृथक पृथक भावों के अनुसार चित्त में आनन्द की लहरें भी उठतीं हैं और चिन्ता की हिलोरें भी। चिन्ता केवल पढ़ाई या परीक्षा में उत्तीर्ण भर हो जाने की होती है।

युवावस्था में प्रवेश होने पर एक से दो हो जाते हैं। विवाह हो जाने पर एक अपरिचित प्राणी से सम्पर्क में आते हैं। आनन्द का दृष्टिकोण अब बिल्कुल ही नवीन हो जाता है।

विचारों में मतभेद होते हुये भी दोनों जने यौवन की उत्ताल तरंगों में विभोर हो एक दूसरे में आनन्द ढूढ़ते हैं। यह आनन्द स्थाई नही होता और बाल बच्चे होते ही आनन्द तो रफूचक्कर हो जाता है और नोंन तेल लकड़ी को चिन्ता बढ़ जाती है। इसी प्रकार युवावस्था के पश्चात् प्रौढ़ और पुनः वृद्धावस्था आ जाती है और क्षणिक आनन्दप्रद सरतिओं में तैरता उतराता हुआ फिरता है परन्तु वास्तविक आनन्द, जिसकी खोज में यह प्राणी चिरकाल से है नहीं मिलता।

सौभाग्यवश पूर्व जन्मार्जित किसी पुण्य के प्रभाव से यदि भगवत् कृपा हो गई और किसी भी प्रकार का सत्संग हो गया तब उसके फलस्वरूप वास्तविक आनन्द के पथ पर अग्रसर हो जाता है। संसारके सभी प्रकार के अनुभव केपश्चात् यही भावना दृढ़ हो जाती है कि यदि आनन्द है तो त्याग में, वैराग्य में और किस सद्गुरुकी कृपा से सत् चित् आनन्द मय परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर उसी के अनुसन्धान में व्यस्त हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने यही भाव निम्नांकित पद में दर्शाया है।

यहै जानि चरण चित्त लायो।
नाहिंन नाथ अकारण को हित
तुम समान पुराण श्रुति गायो।
जननि जनक सुत दार बन्धु जन
भये बहुत जहं जहं हों जायो।
सब स्वारथ हित प्रीति करत कपट
चित काहू नहिं हरि भजन सिखायो।
सुर मुनि मनुज दनुज अहि किन्नर
मैं तनु धरि शिर काहि न नायो।
जरत फिरत त्रय ताप पाप वश
काहु न हरि करि कृपा जुड़ायो।
यत्न अनेक किये सुख कारण
हरि पद विमुख सदा दुख पायो।
अब थाक्यो जल हीन नाव ज्यों
देखत विपति जाल जग छायो।
मो कहं नाथ बूझिये यहि जाति
सुख निधान निज पति बिसरायो।
अब तजि रोष करहु करुणा
हरि तुलसिदास शरणागत आओ॥

वि० प० २४४

किसी भी कारण से जिसने इन दीनबन्धु दीनानाथ के राजीव चरणों की शरण ली उसी ने वास्तविक आनन्द पाया। रामचरित मानस में ऐसे अनेक प्रसंग आये हैं। अहिल्या को उसके पति के

श्राप से पत्थर हो जाना पड़ा परन्तु उस श्राप की अवधि निश्चित थी की जब श्रीराघव के चर्ण का स्पर्श होगा तभी इस शिला योनि से मुक्त हो कर पुनः अपने पूर्व स्वरूप को प्राप्त हो जायगो। गाधिसुवन को इस बात का पता था। उन्होंने राघव से कहा।

गौतम नारी शाप वश उपल देह धरि धीर।
चरण कमल रज चाहती कृपा करहु रघुवीर।

उस चर्ण रज के स्पर्श का क्या प्रभाव हुआ?

"रसत पद पावन शोक नसावन।
प्रकट भई तप पुंज सही॥
देखत रघुनायक जन सुखदायक।
सम्मुख ह्वै कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक शरीरा।
मुख नहिं आवै वचन कही॥
अतिशय बड़ भागी चरणन लागी।
युगल नयन जल धार बही॥

इस स्थान पर नयन जलधार बही का अर्थ है आनन्द का श्रोत फूट पड़ा। और उसी आवेश में कहती है।

मुनि शाप जो दीन्हा अति भल कीन्हा
परम अनुग्रह मैं माना
देखेउं भरि लोचन हरि भव मोचन यह लाभ
शंकर जाना।
विनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ
वर आना
पद पद्म परागा रस अनुरागा मम मन मधुप
करै पाना॥
जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रकट भई
सिव सिस धरी
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम शिर
धरेउ कृपालु हरी।
यहि भांति सिधारी गौतम नारी बार बार
हरि चरण परी
जो अति मन भावा सो वर पावा गई पति
लोक अनन्द भरी॥

यह है इन चर्णाम्भोजोका आनन्द!

अब धनुष यज्ञका प्रसंग है। जगत जननी जानकीजी, योगिराज जनकजीकी कन्याके ऊपर संकट है। वे रामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा करना चाहती हैं। धनुष यज्ञ चल रहा है। वे चाहती हैं कि यह धनुष केवल श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे ही टूटे। इसके लिये सब देवताओंकी मनौती मानती हैं पर कार्य पर्ण होते न देख उन्हीं चरण कमलोंका आश्रय लेती हैं।

सकुची व्याकुलता बड़ि जानी,
धरि धीरज प्रतीत उर आनी।
तन मन बचन मोर मन सांचा,
रघुपति पद सरोज मन रांचा॥

और जैसे इसकी सूचना वे तारके तार द्वारा राघवेन्द्रको मिल गई हो,

सियहिं विलोकि तकेउ धन कैसे।
चितव गरुड लघु व्यालहि जैसे॥

और चण भरमें ही धनुष टूट गया।

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े।
काहु न लखा देख सब ठाढ़े॥

धनुष भंग होनेपर सीताजीके आनन्दका वर्णन कौन कर सकता है?

अब आगे विभीषणके चरित्रमें देखिये। विभीषणने रावणके पैर पकड़ प्रार्थना की कि जानकीजीको श्रीरामको लौटा दो तो उस मूर्ख मदान्धने विभीषणके वक्षस्थलपर पाद प्रहार किया। यही नहीं उसको अपने दर्बारसे चले जानेको कहा। विभीषणने नीति ही निबाही। बड़े भाईको फिर भी समझाया। जब रावण न माना तो विभीषण यही कहते हुए चल पड़े :

देखिहौं जाइ चरण जलजाता।
अरुण मृदुल सेवक सुख दाता॥
जे पद परसि तरी ऋषि नारी।
दंडक कानन पावनकारी॥
जे पद जनक सुता उर लाये।
कपट कुरंग संग धर धाये॥
हर उर सर सरोज पद जेई!
अहो भाग्य मैं देखिहौं तेही॥

जिन पायनकी पादुका भरत रहे मन लाय।
ते पद आज विलोकिहौं, इन नयनन सों जाय॥

और भगवानके समीप पहुँच ही तो गये। चरण कमलोंको देखते ही उनको जो आनन्द मिला उसे गोस्वामीजीने कितनी सरसतासे वर्णन किया है :—

दूरहि ते देखे दोउ भ्राता।
नयनानन्द दानके दाता॥

राम वन गमनके पश्चात् जब भरतजी अयोध्या आये और उनको जब सब समाचार ज्ञात हुए तो उनकी वही दशा हुई जो एक मछलीकी बिना नीरके। तुरन्त ही चित्रकूटको प्रस्थान किया और जब दूरसे ही देखा कि लक्ष्मणजी भाईके चरण दाब रहे हैं आनन्दमें विभोर हो वहीं दूरसे ही दंड प्रणाम किया उस समय रामचन्द्रजीने बरबस उठा कर उनको गले लगाया उस समय वे दोनों ही नहीं अपितु उपस्थित समाज आनन्दसिन्धुमें मग्न हो गया। फिर जब श्रीरामने समझा-बुझाकर पादुका दे कर विदा किया तब अवधि तक उन पादुकाओंको ही सेवामें आनन्द मग्न रहे जैसे स्वयं श्रीरामजी सम्मुख हों। जब चौदह वर्षकी अवधि व्यतीत होनेपर अयोध्यामें प्रवेश किया उस समय—

गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज।
नमहिं जिन्हिं शंकर सुर अज॥

जिन पादारविन्दोंके ध्यानमें शंकर भगवान् तथा अन्य देवता निमग्न रहते हैं और नित्य यही वर मांगते हैं।

बार बार वर मांगहूं हर्षि देहु श्री रंग।
पद सरोज अनपायिनी, भक्ति सदा सत्संग॥

उन्हीं चरणाम्भोजोंका अवलम्बन लेनेसे ही वास्तविक आनन्दकी प्राप्ति होगी।

श्रीगोस्वामीजीने भी यही उपदेश दिया है :—

अस प्रभु दीन दयालु हरि, कारण रहित कृपालु।
तुलसिदास शठ ताहि भज, छांड़ि कपट जंजाल॥

अभ्यासमें निरत यह जीव परमानन्द रूपी सागरमें पहुँचेगा तो वास्तविक आनन्दकी लहरोंका प्रत्यक्ष अनुभव होगा। श्रीमद्आद्यशंकराचार्यके शब्दोंमें :—

यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम्।
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद् ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥
यद्दृष्ट्वा नापरं दृश्यं यद्भूत्वा ना पुनर्भवः।
यज्ज्ञात्वा नापरं ज्ञेयं तद् ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥

श्रीभगवान भजनाश्रम एवं वृन्द्रावन भजनाश्रमके आय व्ययका विवरण
मिती पोह सुदी ६ सं० २००६ से मिती माघसुदी ८ सं० २००६ मास १ का

२३६५।॥)	सहायता प्राप्त	७६३२=)	भजन करनेवाली माइयोंको पैसा दीना
७६०१≡)॥	माई भजनका प्राप्त	१३०)	वृद्ध माइयोंको दीना
१२४।)	मासिक चन्दा सालाना चन्दा	५३४।)	कर्मचारियोंका वेतन
६४४।)	विशेष सहायता	४०)	पोस्टेज खर्चा
		५०८॥।)॥।	खुदरा खर्चा
११६३५॥≡)॥		१००)	कर्मचारियोंकी रसोई
		६२४५=)॥।	

श्रीभगवान भजनाश्रम एवं वृन्द्रावन भजनाश्रममें सहायता देनेवाले सज्जनोंकी नामावली
मिती पोहसुदी ६ सं० २००६ से मीति माघसुदी ८ सं० २००६ तकका महीना १ का

१५०)	श्री साधुरामजी कालीचरनजी	आगरा
१५)	,, चम्पालालजी दुर्गाप्रसादजी	अजमेर
११)	,, भगवती बाबू	अमरावती
११)	,, ठाकुरदासजी वल्लभदासजी	,,
११)	,, दोलतरामजी नन्दलालजी	,,
११)	,, केसोरामजी काटून मिल्स	,,
११)	,, लक्ष्मी काटून मिल्स	,,
११)	,, कुन्जीलालजी कालानी	,,
११)	,, चम्पालालजी चितरका	,,
१०१)	,, मानसिंहका आईल मिल्स	,,
१००)	,, मनीदेवीजी	कलकत्ता
२०)	,, रघुनाथजी सुरजकरनजी	कौंरजा
६)	,, भाईगोपालजी मीठाभाईजी	कटक
५)	,, मोदी वच्छराजजी	,,
५१)	,, रामकुवारजी केलासचन्दजी	गया
५)	,, गनेशीलालजी	चायल
२५)	,, भगवानदासजी अग्रवाल	डवरूगढ़
५१)	,, रामेश्वरलालजी	,,
५१)	,, सालिगरामजी चुन्नीलालजी	,,
७१)	,, ओंकारमलजी ज्वालाप्रसादजी	धूवड़ी
३१)	,, नाथुरामजी तोलारामजी	,,
५१)	,, वालावक्सजी रामचन्द्रजी	,,
७१)	,, नेतरामजी कन्हैयालालजी	,,
२१)	,, ढाका बीडी स्टोर	,,
११)	,, रामचन्द्रजी भगवानदासजी	,,
५)	,, घनस्यामदासजी लक्ष्मीनारायनजी	नानपाड़ा
५)	,, जयनारायनजी गोवि-दलालजी	पुरलिया
११)	,, जयनारायजी हरिदासजी	,,
११)	,, गजानन्दजी आत्मारामजी	,,
२१)	,, गोपीरामजी शिवप्रसादजी	,,
२१)	,, हरखचन्दजी प्रयागनारायनजी	,,
५)	,, करनीदासजी सारडा	,,
५)	,, केदारनाथजी मल्ल	,,
११)	श्री प्रहलादरायजी रामगोपालजी	पुरलिया
५)	,, गोरीपदसेनजी	बलरामपुर
१३३।)	,, सुन्दरदासजी लालजी मुलजी	बम्बई

२१)	,, वासुदेवजी	भागलपुर	५)	,, केदारनाथजी रामभगतजी	सीली
११)	,, बाबूलालजी	मौं	२१)	,, मानिक सहावजी	,,
१६)	,, केदारनाथजी बनारसीदासजी	मुजफ्फरनगर	११)	,, केवलरामजी	शेगाँव
२१)	,, गोपालरायजी श्रीरामजी	,,	११)	,, बहादुरचन्दजी वयामलजी	,,
११)	,, गोरधनदासजी अनन्तरामजी	,,	५)	,, मेघराजजी सुगनचन्दजी	शिवसागर
११)	,, गोरधनदासजी श्यामलालजी	,,	५१)	,, मोतीरामजी रत्नचन्दजी	,,
१८)	,, ओंमप्रकाशजी दलाल	,,	५१)	,, नाथुरामजी जयदयालजी	,,
११)	,, परसरामजी	,,	५)	,, लादुरामजी सुन्दरमलजी	,,
११)	,, मथुरालालजी कावरा	राँची	११)	,, गुलाबचन्दजी शिवकरनजी	,,
५)	,, वालावक्सजी विरधीचन्दजी	,,	५)	,, गोपालजी	,,
११)	,, फराईलालजी	,,	७)	,, केसरदेवजी	,,
५)	,, भोलारामजी सॉवलरामजी	,,	५)	,, भवरलालजी रामपालजी	,,
५)	,, गोपीरामजी केडिया	,,	११०१)	,, बद्रीदासजी वाजोरिया	सहारनपुर
२५)	,, रामविलासजी रामेश्वरजी	लाडनूं	५८।)	खेर फूटकर प्राप्त	
				२६६५॥।)	

श्री भगवान भजनाश्रम में माइयों द्वारा भजन करानेवाले सज्जनों की नामावली मिती पोहसुदी ६ सं० २००६ से मिती माघ सुदी ८ सं० २००६ तक महीना १ का

२५।)	श्री बाँकेलालजी गुप्ता	अमरोहा	८।≈)	,, देवकिशनजी झंवर	,,
१६॥=)	,, गंगाबाईजी माँगीलालजी	अमरावती	८।≈)	,, केशवदेवजी बालकिशनजी	,,
५०॥=)	,, राधाबाईजी	,,	८।≈)	,, शिवनारायदजीवनेचन्दजी	,,
५०॥=)	,, सीताबाईजी	,,	८।≈)	,, बच्छराजफेक्टरी	,,
१६॥।=)	,, सुरजकरनजी	,,	८।≈)	,, लालसिंहजी बालकिशनजी	,,
८।≈)	,, दामोदरदासजी गनेडीवाला	,,	८।≈)	,, एस० पोद्दार कम्पनी	,,
२५।-)	,, दामोदरदासजी केडिया	,,	८।≈)	,, गनेशदासजी बालकिसनजी	,,
८।≈)	,, जगन्नाथ प्रसादजी मदनमोहनजी	,,	८।≈)	,, शिवनारायनजी किसनगोपालजी	,,
८।≈)	,, पन्नालालजी हरदेवदासजी	,,	८।≈)	,, मिश्रीलालजी बोथरा	,,
८।≈)	,, किशोरीलालजी कान्तीलालजी	,,	८।≈)	,, भाईदासजी कृष्णदासजी	,,
५०॥=)	,, रामकरनजी विशेश्वरलालजी	,,	८।≈)	,, सकरभाई लल्लुभाई	अहमदाबाद
८।≈)	,, बालकिशनजी विशनलालजी	,,	८।≈)	,, रामकुँमारजी मुदड़ा	इन्दोर

८।≶)	,, दुःखहरणजी मिश्र	ईमामगंज	१६॥=)	,, पन्नालालजी मुलचन्दजी	,,
८।≶)	,, जगदीशप्रसादजी केडिया	,,	८॥=)	,, गनेडीवाला	गोरखपु
१६॥=)	,, कन्हैयालालजी रुदमलजी	ओझर	२५)	,, सुखदेवप्रसादजी शंकरलालजी	गंगापुरसि
८।≶)	,, नारायनदासजी वंशीधरजी	,,	८।≶)	;, जगदीशप्रसादजी अग्रवाल	गड़ेरि
८।≶)	,, हरिरामजी बेरीवाला	कानपुर	१२=)॥	,, गुप्तदानी	गया
१६॥=)	,, सुरजभानजी	,,	२०२॥)	,, राधाकिशनजी	गोदा
१६॥=)	,, आसारामजी वृजमोहनजी	कपेली	२०२॥)	,, शिवदत्तरामजीधान्का	,,
१०१।)	,, देवकीनन्दनजी वीरेन्दकुमारजी	कलकत्ता	१०१।)	,, कासीरामजी	,,
१०१।)	,, महादेवलालजी खेतान	,,	५०॥=)	,, हरिरामजीगनपतरायजी	,,
८।≶)	,, कन्हैयालालजी मुद्दा	कलकत्ता	२५।-)	,, सुरजमलजी मदनलालजी	,,
२८=)	,, सत्यनारायनजी	,,	८।≶)	,, जवानीरामजी रामनारायनजी	घाट
२८=)	,, बल्देवदासजी बैजनाथजी	,,	८।≶)	,, रामदयालजी मंगतिरामजी	चौ
२८=)	,, महादेवीजी	,,	८।≶)	,, नानीवाई	चा
२८=)	,, श्रीमतीदेवीजी	,,	१०१)	,, नूनकरनजी मुलचन्दजी	जुगलबा
२८=)	,, गीगराजजी	,,	१६॥=)	,, लखी प्रसादजी पोद्दार	जाम
२०२॥)	,, पुरषोतमदासकम्पनी	,,	८।≶)	,, मनीदेवीजी पोद्दार	,,
१०१।)	,, वसन्तवाईजी	,,	८।≶)	,, प्रेमदासजी छगनलालजी	जोड़हा
१०१।)	,, खेतसीदासजी मोतीलालजी	,,	८।≶)	,, हरकचन्दजी राधाकिसन	,,
१०१।)	,, प्रभाशंकरजी जोसी	,,	१०१।)	,, मोहनलालजी करनानी	,,
१०१।)	,, राजकुमार एन्ड कम्पनी	,,	८।≶)	श्री डूगरमलजी भवरीलालजी	,,
२०२॥)	,, छगनलालजी मंगलचन्दजी	,,	३३॥।)	,, बन्शीधरजी वाहेती	,,
१०१।)	,, मंगतरामजी रतेरिया	,,	८।≶)	,, मोतीरामजी पंदमारामजी	,,
१०१।)	,, रामेश्वरजी जाजू	,,	८।≶)	,, किसनलालजी मालयानी	,,
२८=)	,, नागरमलजी सुजानगढ़वाले	,,	८।≶)	,, शिवनाथजी राधाकिसनजी	,,
८।≶)	,, रामकुमारजी	,,	८।≶)	,, जगन्नाथजी शिवनाथजी	,,
१०१।)	,, कनकलालजी मौर	,,	८।≶)	,, आसकरनजी	,,
१०१।)	,, मनसुखराय स्टोर	,,	३३॥।	,, अर्जुनलालजी श्रीगोपालजी	,,
१००)	,, हनुमानदासजी विलासरायजी	खाँमगाँव	८।≶)	,, जमनारायनजी	,,
१०१)	,, बालाबक्सजी घीसुलालजी	कुचामन	१६॥=)	,, शंकरलालजी रामकिसनजी	,,
१६॥=)	,, वालावक्सजी लादुरामजी	गोदिया	१६॥=)	,, बालचन्दजी करनानी	

८।≡)	,, कन्हैयालालजी ताराचन्दजी	झाड़सुगदा	८।≡)	,, माँगीलालजी	,,
१६।।।=)	,, माँगीलालजी वैजनाथजी	झालदा	८।≡)	,, कोलेश्वर राऊतवीन	धूबड़ी
८।≡)	,, लालचन्दजी अग्रवाल	,,	१०१।)	,, महावीरप्रसादजी	,,
८।≡)	,, किसनलालजी अग्रवाल	,,	१०१।)	,, घीसुलालजी पुरषोतमदासजी	,,
८।≡)	,, बदीदासजी आत्मारामजी	,,	५६।)	,, शंकरलालजी द्वारकाप्रसादजी	,,
२५।-)	,, नन्दकिशोरजी बाबूलालजी	,,	२५।-)	,, छगनमलजी चान्दमलजी	,,
२५।-)	,, गिरधारीलालजी केजड़ीवाल	,,	२५।-)	,, ताराचन्दजी मोहनलालजी	,,
८।≡)	,, नन्दलालजी केदारनाथजी	,,	२५।-)	,, चतुरभुजजी घीसालालजी	,,
८।≡)	,, फकीररामजी मेरुप्रसादजी	,,	२५।-)	,, धूवड़ीकल्डोसोर	,,
४३।।)	,, वंशीधरजी नागरमलजी	,,	१६।।।=)	,, श्रीलालजी पुरषोतमदासजी	,,
८।≡)	,, तिनसुखीया ठरडकम्पनी	डवरूगढ़	२५।-)	,, मुदरजीखेतान	,,
८।≡)	,, प्रह्लादरायजी देवड़ा	,,	८।≡)	,, गुप्तदानीसज्जन	,,
८।≡)	,, सीतारामजी सुरेका	,,	८।≡)	,, जेहिन्दसोफफेक्टरी	,,
२५।-)	,, रामरिखदासजी गंगाप्रसादजी	,,	१६।।।=)	,, भजनलालजी मोहनलालजी	,,
८।≡)	,, जोरावरमलजी महावीरप्रसादजी	,,	२५।-)	,, लक्ष्मीनारायनजी इन्दमलजी	,,
८।≡)	श्री रामप्रसादजी	डवरूगढ़	२५।-)	,, चान्दमलजी ओंमप्रकासजी	,,
२५।-)	,, उदेरामजी रावतमलजी	,,	८।≡)	,, गुप्तदानीसज्जन	,,
८।≡)	,, झावरमलजी मोसमीलालजी	,,	२५।-)	,, पुसारामजी किस्तुरचन्दजी धाई	,,
१६।।।=)	,, मंगलचन्दजी रामकुंवरजी	,,	२०)	श्री हरिरामजी शर्मा	नरईपुर
४≡)।।	,, श्री निवासजी वासुदेवजी	,,	१०१।)	,, चम्पालालजीकी माँजी	नागपुर
१०१।)	,, मंगलचन्दजी गोरधनदासजी	तिनसुखीया	१६।।।=)	,, काजूलालजी रामगोपालजी	निमोद
२००)	,, वाईमेवा	ताडपल्ली	१६।।।=)	,, सीतारामजी मेघराजजी	नोरतलखीपुर
८।≡)	,, सुशीलाजी	देहली	८।≡)	,, चुन्नीलालजी मंबिन्दप्रसादजी	पेन्डरा
३३।।।)	,, घनश्यामदासजी केडिया	,,	२५।-)	,, गिरधारीलालजी विहारीलालजी	पीरपेन्ती
३३।।।)	,, राधाकिशनजी डालमिया	,,	१०१)	,, सागरमलजी विश्वनाथजी	पटना
२५।-)	,, नारायनदासजी दलाल	,,	२५।-)	,, मदनगोपालजी भीखमचन्दजी	पुरलिया
८।≡)	,, इन्दमलजी ओंमप्रकाशजी	,,	२५।-)	,, रामगोपालजी नोपचन्दजी	,,
८।≡)	,, छेदीलालजी ब्रजवासी	,,	२५।-)	,, ठाकुरदासजी बद्रीनारायनजी	,,
१०)	,, परसरामजी दलाल	,,	२५।-)	,, रामकावेरी	,,
८।≡)	,, ठाकुरदासजी वसन्तलालजी	,,	८।≡)	,, महावीरप्रसादजी नारसीरया	,,

८४।=)	,, देवीप्रसादजी मधुसुदनजी	,,
२५।-)	,, किसनदयालजी रामजीवनजी	,,
१०१।)	,, मुरलीधरजी गोरीशंकरजी	,,
२५-।)	,, महादेवलालजी भगवानदासजी	,,
२५।-)	,, लेखराजजी सालिगरामजी	,,
२५।-)	,, गोवरधनदासजी वंजरगलालजो	,,
८।≥)	,, विश्वनाथजी जालान	,,
८।≥)	,, घनश्यामदासजी गंगाधरजी	,,
८।≥)	,, सौहनलालजी टाटिया	,,
८।≥)	,, जगदीशप्रसादजी	,,
८।≥)	,, दामोदरदासजी टाटिया ।	,,
२५।-)	,, केदारनाथजी वासुदेवजी	,,
८।≥)	,, लक्ष्मीनारायनजी भोमराजजी	,,
८।≥)	,, एकसज्जन	,,
८।≥)	,, तेजपालजीकानोडिया	,,
८।≥)	,, खेमानचन्दजी भगत	,,
८।≥)	,, केलारामजी गुरदतारामजी	फतेहावाद
८।≥)	,, रतीलालजी त्रिभुवनदासजी	वगाढ़
८।≥)	,, प्रयागचन्दजी अग्रवाल	,,
८।≥)	,, भीमराजजी ओंकारमलजी	,,
८।≥)	,, किरोठीमलजी अग्रवाल	,,
१७।।-)	श्री सेडमलजी गुप्ता	वरगढ़
१६।≥)	,, दयालचन्दजीशर्मा	,,
८।≥)	,, मंगतुरामजी अग्रवाल	वन्राद्वार
८।≥)	,, जमुनादासजी छोटेलालजी	,,
५)	,, गंगावाईजी	वारमेड
२५।-)	,, राधाकिसनजी	पावूलगाँव
८।≥)	,, डूंगरसी दासजी वन्शीधरजी	लडनेरा
८।≥)	,, चतुरभुजजी स्योप्रसादजी	,,
४≥)।।	,, उदेरामजी लक्ष्मीनारन्यनजी	,,

८।≥)	,, जगदीशप्रसादजी मायाशंकरजी	,,
८।≥)	,, श्रीनिवासजी	वगाईगाँ
१०१।)	,, मदनचन्दजी नारायनदासजी	वलरामपु
१०१।)	,, जगन्नाथदासजी सीतारामजी	,,
१०१।)	,, मोकरमलजी गजानन्दजी	,,
२५।-)	,, परमानन्दजी साधूरामजी	,,
८।≥)	,, विलासरायजी लक्ष्मीनारायनजी	,,
२५।-)	,, हनुमानदासजी श्रीनिवासजीकेडिया	,,
२५।-)	,, सालगरामजी लुहारीवाला	,,
२५।-)	,, सरस्वतीदेवीजी	भागल
२५।-)	,, मनोहरलालजी भगवानदासजी	,,
२५।-)	,, गंगाधरजी श्रीरामजी	,,
५०)	,, चौ० मिहखानसिंहजी यादव	भर्थ
८।≥)	,, हरेकृष्णजी अग्रवाल	मोस
८।≥)	,, छगनलालजी गोपीनाथजी	मु
१०१।)	,, जुगलकिशोरजी	
८।≥)	,, जोहरीप्रसादजी मक्खनलालजी	मुजफ्फरन
१६।।।=)	,, घन्नालालजी नन्दलालजी	
८।≥)	,, रामलालजी चन्दलालजी	
८।≥)	,, नथरायजी हरिप्रसादजी	
१६।।।=)	,, राजारामजी हृदयरामजी	
३३।।।)	,, नत्थीमलजी रामनिवासजी	
८।≥)	,, रत्नलालजी रामप्रतापजी	
८।≥)	,, ईश्वरदासजी नर्सिंहदासजी	
२८=)	श्री रामेश्वर लालजी नोरगरायजी	मनक
२≥)	" गोरीशंकरजी चोधरी	मनोहर
८।≥)	" रामदासजी बद्रीदासजी	रूपौ
५)	" वालमरामजी हलवाई	
१०१।)	" राजनारायणजीमिश्र	रामक
८।≥)	" राँचीमन्डार	

१६।।।=)	" ज्वालादत्तजी रंगलालजी	"
८।≶)	" छांजुरामजी भीमदत्तजी	"
१६।।।=)	" जेठमलजी रामकुंवरजी	"
८।≶)	" राधाकिशनजीमुरारका	"
५०।।=)	" नारमलजी	"
१०१।)	" भीमराजजी वन्शीधरजी	"
१०१।)	" चुन्नीलालजी गनपतरायजी	"
५०।।=)	" राधावल्लभजी नथमलजी	"
५०।।=)	" शिवनारायनजी हरीचन्दजी	"
५०।।=)	" केदारनाथजी वावूलालजी	"
५०।।=)	" भुरीभुखरेडीवाला	"
५०।।=)	" भीमराजजी स्योनारायनजी	"
५०।।=)	" कन्हैयालालजी महेश्वरी	"
५१।।=)	" गंगाधरजी दयारामजी	"
१६।।।=)	" रामकुंवारजी हरिशंकरजी	"
८।≶)	" मोहनलालजी मुलचन्दजी	"
१६।।।=)	" प्रहलादरायजीपोद्दार	"
१०)	" मदनलालजी बुर्गाप्रसादजी	रानीगंज
१६।।।=)	" गजानन्दजी छोटेलालजी	"
२५।-)	" गाडोदियास्वदेशीभन्डार	"
८।≶)	" रामस्वरूपजी दुवे	लशकर
४≶)।।	" ऊचन्दजीचाँडक	शिवसागर
८।≶)	" लालचन्दजी कन्हैयालालजी	"
५०)	" महादेवलालजीपोद्दार	सीली
१०१।)	" रामकुवारजी किशोरीलालजी	"
८।≶)	" रामदेवजी रघुनाथरायजी	"
८।≶)	" सुरजमलजीपोद्दार	"
८।≶)	श्री गुप्तदानी	सीली
८।≶)	" मोहनलालजी सुन्दरलालजी	शेगांव
१६।।।=)	" केवलरामजी कपूरचन्दजी	"
१६।।।=)	" हनुमानदासजी हरलालका	"
१७)	" लक्ष्मीनारायनजी सुरजमलजी	सेमापुरफेक्टरी
१०१।)	" व्रजलालजीखेमका	साहिवगंज
८।≶)	" जोहरीमलजी पद्मनाथजी	हाजीपुर
३३०।-)	" गुप्तदानी सज्जनो से	
७६०१≶)।।		

श्रीभगवान भजनाश्रम एंव वृन्दावन भजनाश्रम में मासिक चन्दा सालाना चन्दा देनेवाले सज्जनो की नामावली
(मिती पोह सुदी ६ सं० २००६ से मिति माघ सुदी ८ सं० २००६ तक का मांग १ का)

२०)	श्री रामचन्दजी देशाई	अहमदावाद
१२)	" हनुमानवक्सजी भुरामलजी	कलकत्ता
५)	" कछेदीलालजी अशोकसाहूजी	गदाकोटा
५०)	" पंजाब ऐक्सचेन्ज	देहली
१०)	" हुक्मचन्दजी दलाल	"
५)	" खेमचन्दजी मानमलजी	वीकानेर
१२।।)	श्री हीरालालजी मानिकलालजीपटेल	वम्बई
४)	" वावूलालजी कालूरामजी	मौ
६)	" उमरावलालजीरियायर्ड	फैजाबाद
११८।।)		

श्रीभगवान भजनाश्रम वृन्दावन भजनाश्रम में भाइयों को विशेष सहायता देनेवाले सज्जनो की नमावली

२०)	श्री हरिकिशनजी शीवप्रतापजी	काँरजा
२०)	" भकालालजी	चनपटिया
४०)	" वन्शीधरजीसोनथलिया	वृन्दावन
२००)	श्री हरद्वारीमलजी भीमराजजी	देहली
१००)	" दीनदयालजी प्रभूदयालजी	"
१८२।।)	" मुरलीधरजी श्यामसुन्दरजी	"
१००)	" शिवदासजी मुदडाट्रस्ट	"
२८२)	" ज्योतीप्रसादजी जगन्नाथजी	"
९४४।।)		

श्रीभगवन्नाम-जप कराइये



श्री वृन्दावनमें लगभग ८५० गरीब माइयाँ प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल ६ घण्टे परम मंगलमय श्रीभगवन्नामका जप एवं संकीर्तन करती हैं इन्हें आश्रम द्वारा अन्न, वस्त्र और पैसोंकी सहायता दी जाती है। एक माई प्रतिदिन एक लाख श्रीभगवन्नामजप कर सकती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

कलियुगमें संसार-सागरसे पार उतरनेका एकमात्र सुगम उपाय श्री भगवन्नाम-जप करना ही शास्त्रोंमें वर्णित है। सभी महानुभावोंको स्वयं अधिक-से-अधिक भगवन्नाम-जप करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

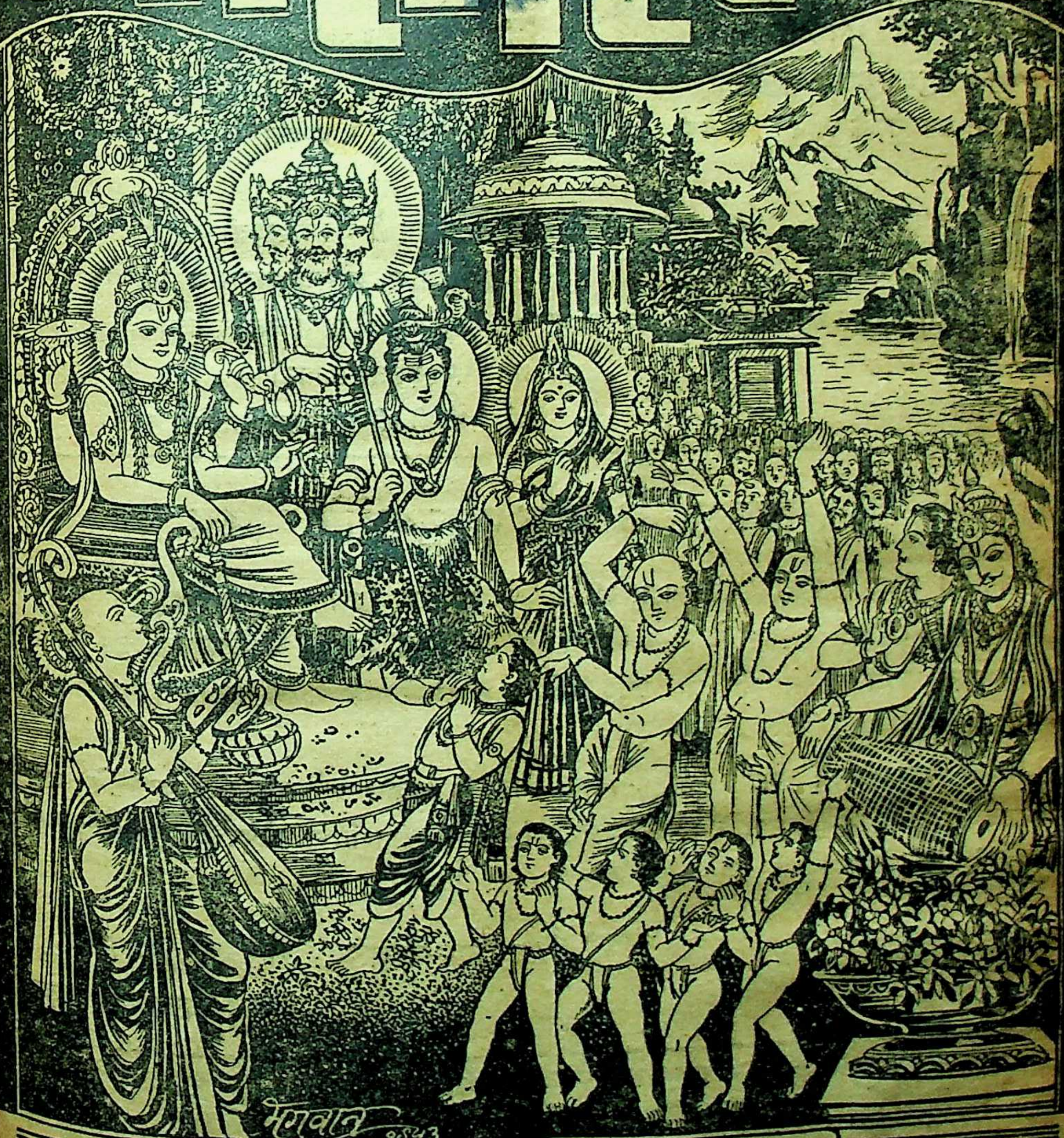
जो महानुभाव अपनी ओरसे गरीब माइयों द्वारा श्रीभगवन्नामजप कराना चाहें, वे कृपाकर हमें सूचित करें। भजनाश्रममें लगभग ८५० गरीब माइयाँ आती हैं, जिनमें-से इस समय लगभग ५०० माइयाँ दान दाताओंकी ओरसे भजन कर रही हैं। बाकी माइयोंसे भजन करानेके लिये हम सभी प्रेमी सज्जनोंसे निवेदन करते हैं कि आप अपनी-अपनी श्रद्धा और प्रेमके अनुसार जितनी माइयों द्वारा जितने मासके लिये भजन कराना चाहें अवश्य करावें एवं अपने इष्ट-मित्रोंको भी भजन करानेके लिये प्रोत्साहित करें।

एक माईको नित्य प्रति साढ़े चार आनेकी सहायता दी जाती है। इस हिसाबसे एक मासका ८।≈) और एक वर्षका १०१।)खर्च लगता है।

पत्र-व्यवहार एवं मनीआर्डर भेजनेका पता :—

मन्त्री—श्रीभगवान-भजनाश्रम,
पोस्ट—वृन्दावन

नाम माहात्म्य



वर्ष १३] वृन्दावन [अङ्क ७

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

[जुलाई सन् १६५३]

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावोंसे प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताहमें "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जाते हैं; फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले, उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भेजा जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्रव्यवहारमें अपना ग्राहक-नम्बर लिखनेकी कृपा करें एवं उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजने चाहिये। पत्रव्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पतेपर स्पष्ट अक्षरोंमें लिख कर भेजिये।

व्यवस्थापक:—"नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम
पोस्ट—वृन्दावन (मथुरा)

सम्पादक तथा प्रकाशक—गौरगोपाल मानसिंहका, श्रीभगवान् भजनाश्रम, वृन्दावन (मथुरा)।
मुद्रक—राममोहन शास्त्री, श्रीगोविन्द मुद्रणालय, काशी।

श्रीहरिः



वर्ष १३ || "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन, जुलाई सन् १६५२ || अङ्क ७

भगवती गङ्गाजी से प्रार्थना

भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं
विगतविषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि ।
सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे
तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद ॥

'हे भगवति गङ्गे ! मैं आपके पुनीत तट पर केवल जलमात्र पान करता हुआ और विषयों की तृष्णा से शून्य हुआ भगवान श्रीकृष्ण की उपासना करता रहूँ। हे समस्त पापों का भञ्जन करनेवाली, तथा स्वर्ग की सीढ़ियों पर चढ़नेमें सदा साथ देनेवाली अतिशय रसमय तरङ्गोंवाली देवि गङ्गे ! आप मुझ पर सदा कृपा करती रहें।'

व्रजसुन्दरियोंके भगवान्

(लेखक--श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

श्रीश्रीव्रजसुन्दरियोंको निबिड अरण्यमें छोड़कर आनन्दकन्द व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र अन्तर्धान हो गये। वे सब विरहके आवेशमें अपने प्राणप्रियतमको खोजने लगीं। खोजते खोजते कृष्णमय बन गयीं। तदनन्तर श्रीकृष्ण-दर्शन-लालसासे कातर होकर प्रलाप करने और फूट-फूटकर रोने लगीं। ठीक इसी समय श्यामसुन्दर उनके बीचमें मधुर-मधुर मुसकराते हुए प्रकट हो गये। उनका मुखकमल मन्द-मन्द मुसकानसे खिला हुआ था। पीताम्बर धारण किये हुए थे। गलेमें दिव्य वनमाला थी। उनका सौन्दर्य समस्त विश्वप्राणियोंके मनको मथनेवाले कामदेवके मनको भी मथनेवाला था। वे 'साक्षात् मन्मथमन्मथ' थे। करोड़ों कामदेवोंसे भी सुन्दर मधुर मनोहर श्यामसुन्दरको अपने बीचमें पाकर व्रजसुन्दरियोंके प्राणहीन शरीरोंमें मानो दिव्य प्राण लौट आये। उनके नेत्र आनन्द और प्रेमसे खिल उठे। हठात् प्रियतमके प्राकट्यसे उनके हृदयमें नवीन स्फूर्ति आ गयी। उनके एक-एक अङ्गमें नवीन चेतना जाग उठी उन्होंने अपने-अपने मनके अनुसार प्रियतमकी आव-भगत की, किसीने उनके कोमल कर-कमलको अपने हाथोंसे पकड़ लिया, किसीने चरणारविन्दका आलिङ्गन किया, किसीने चरण पकड़कर अपने हृदयपर रख लिया, किसीने उनका चबाया हुआ पान ग्रहण किया, किसीने प्रणयकोपसे विह्वल होकर, त्यौरी चढ़ाकर दूरसे ही भ्रुकुटिपूर्ण कटाक्षपात किया। और कोई कोई निर्निमेष नेत्रोंके द्वारा उनके मनोहर मुखकमलका मधुर मकरन्द पान करने लगीं। उनका रोम-रोम खिल उठा। इस प्रकार विरहताप प्रशमित होनेपर वे अपने प्राणधन श्यामसुन्दरको घेरकर बैठ गयीं। अब फिर हास्य कौतुक आरम्भ हुआ। आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र बड़े निष्ठुर हैं—बड़े छलिया हैं, यह बात उन्हींके मुखसे कहलानेकेलिए व्रजसुन्दरियोंने मानो एक पहेली-सी रखकर उनसे पूछा—

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम्।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः॥

(श्रीमद्भा० १० । ३२ । १६)

'श्यामसुन्दर! कुछ लोग तो ऐसे होते हैं, जो भजनेवालोंको ही भजते हैं—प्रेम करनेवालोंसे ही प्रेम करते हैं, कुछ लोग न भजनेवालोंको भजते हैं--प्रेम न करनेवालोंसे भी प्रेम करते हैं। तीसरे प्रकारके कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो भजनेवालोंको भी नहीं भजते--प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेम नहीं करते, फिर न करनेवालोंसे न करें, इसमें तो बात ही कौन-सी है। प्रियतम! बताओ, इन तीनोंमें तुम्हें कौनसा अच्छा लगता है?' व्रजसुन्दरियोंके कहनेका तात्पर्य यह था कि इन तीनोंमें तुम किस श्रेणीके हो--यह स्पष्ट कहो।

इसके उत्तरमें आनन्दकन्द नन्दनन्दन श्यामसुन्दरने कहा—

मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते।
न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा॥
भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा।
धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः॥
भजतोऽपि न वै केचिद् भजन्त्यभजतः कुतः।
आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः॥
नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्
भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये।
यथाधनो लब्धधने विनष्टे
तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद॥

एवं मदर्थोज्झितलोकवेद-
स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः।
मया परोक्षं भजता तिरोहितं
मासूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः॥
न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥
(श्रीमद्भा० १०। ३२। १७—२२)

भगवान्‌ने कहा, 'मेरी प्रिय सखियो! जो भजनेपर ही भजते हैं—प्रेम करनेपर ही प्रेम करते हैं, उनका तो सारा उद्यम ही सर्वथा स्वार्थपूर्ण है, उनमें न सौहार्द है और न तो धर्म ही है। निरा बनियापन है—लेन-देन है, स्वार्थके अतिरिक्त उनका और कोई भी प्रयोजन नहीं है। जो लोग भजन न करनेपर, प्रेम न करनेपर भी प्रेम करते हैं, जैसे स्वभावसे ही करुणामय सज्जन और माता पिता, उनका हृदय सौहार्दसे भरा होता है। उनका प्रेम सचमुच निर्मल है और वहाँ धर्म भी है। जो लोग भजन करनेपर भी नहीं भजते, प्रेम करनेपर भी प्रेम नहीं करते, फिर न प्रेम करनेपर प्रेम करनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं है। ऐसे उदासीन लोग चार प्रकारके होते हैं—आत्माराम, आप्तकाम, अकृतज्ञ और गुरुद्रोही। सखियो! यदि तुम मेरे सम्बन्धमें पूछती हो तो मैं इन तीनों (सापेक्ष, निरपेक्ष और उदासीन) मेंसे कोई-सा भी नहीं हूँ। मैं यदि प्रेम करनेवालोंसे कभी वैसा प्रेमका व्यवहार नहीं करता तो इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं उनसे प्रेम नहीं करता। मैं ऐसा इसीलिये करता हूँ कि उनकी चित्तवृत्ति मुझमें लगी रहे। मैं मिलकर फिर जब छिप जाता हूँ तो भक्तोंकी वृत्ति मुझमें सारूप्य प्राप्त कर लेती है। जैसे किसी निर्धन मनुष्यको बहुत,सा धन मिल जाय और फिर खो जाय तो उसका हृदय धनकी चिन्ता करते-करते धनमय हो जाता है, वह सब कुछ भूलकर उसीमें तन्मय हो जाता है वैसे ही मेरे छिप जानेपर भक्त मुझमें तन्मय हो जाते हैं। प्रियाओ! तुमलोगोंने अपनी समस्त वृत्तियोंको मुझमें अर्पण करके मेरे लिये लोकमर्यादा, वेदमार्ग और अपने आत्मीय-स्वजनोंको भी छोड़ दिया है। यहाँ मैं इसीलिये छिप गया था कि तुम्हारे मनमें अपने सौन्दर्य और सुहागकी बात न उठ सके, तुम्हारा मन केवल मुझमें ही लगा रहे। मैं प्रत्यक्षमें नहीं दीखता था, पर था तो तुम्हारे बीचमें ही। तुम्हारे प्रेमकी सारी दशाएँ देख रहा था। तुम्हारे प्रेममें निमग्न हो रहा था। अतएव तुम मुझपर दोषारोपण मत करो तुम सब मुझे बड़ी प्रिय हो और मैं भी तुम्हारा प्यारा हूँ। तुम्हारा प्रेम सर्वथा निर्मल है—इसमें कहीं भी स्वार्थकी गन्ध नहीं है। तुमने मेरे लिये गृहस्थीकी उन बेड़ियोंको तोड़ डाला है, जिन्हें बड़े-बड़े समर्थ लोग भी नहीं तोड़ सकते। यदि मैं देव शरीरसे—अमर जीवनसे अनन्त कालतक भी तुम्हारे प्रेम, त्याग और सेवाका बदला चुकाना चाहूँ तो नहीं चुका सकता। मैं सदाके लिये तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम अपने सौम्य स्वभावसे ही मुझे उऋण कर सकती हो। मैं तो ऋण चुकानेमें असमर्थ ही हूँ।'

श्रीव्रजसुन्दरियोंके प्राणधन भगवान् लेन-देन करनेवाले व्यापारी नहीं हैं। प्रह्लादको वरका प्रलोभन देनेपर प्रह्लादने श्रीभगवान् नृसिंहदेवसे कहा था—'जो सेवक आपसे अपनी कामनाएँ पूर्ण करना चाहता है, वह सेवक नहीं, निरा व्यापारी है (न स भृत्यः स वै वणिक्) और जो सेवकसे सेवा करानेके लिये, उसका स्वामी बननेके लिये उसकी कामनाएँ पूरी करता है, वह स्वामी नहीं।' भगवान्‌ने गीतामें जो कहा है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्॥
(४। ११)

जो मुझे जैसे भजता है, उसे मैं वैसे ही भजता हूँ, यह

तो साधारण नियम है। प्राणिमात्रके साथ भगवान्‌का यही व्यवहार है। पर यहाँ तो श्रीभगवान्‌ने इसको केवल स्वार्थ-पूर्ण उद्यम बतलाया है। क्योंकि इसमें स्पष्ट ही एक 'अपेक्षा' है। जहाँ अपेक्षा है, वहाँ शर्त है और शर्तमें न स्वतन्त्रता है और न हृदयका एकाङ्गीभाव ही। खरीदार और बेचनेवाला दोनों जैसे स्वार्थकी 'अपेक्षा'से मिलते हैं, इसमें भी वैसा ही है। पर व्रजसुन्दरियोंके या भक्तोंके भगवान् अपने भक्तोंके साथ 'किसी स्वार्थके उद्यम'से प्रेम नहीं करते। उनका पारस्परिक भजन या प्रेम सर्वथा अहैतुक, अतएव प्रेममूलक और प्रेमस्वरूप ही होता है।

श्रीव्रजसुन्दरियोंके (प्रेमी भक्तोंके) भगवान् माता-पिताकी भाँति केवल करुणामय 'निरपेक्ष' प्रेमी भी नहीं हैं। माता-पिता स्नेहवश संतानके दोषोंको ढक देते हैं। उनकी करुणा--दया संतानको कभी उदास नहीं देख सकती, इसलिये संतानमें दोष रह जानेकी सम्भावना रहती है। भगवान् अपने भक्तको सर्वथा निर्दोष—सारा कूड़ा कर्कट जलाकर खरा सोना बना देते हैं। अतएव वे न तो वणिकोंकी भाँति सापेक्ष हैं, न माता-पिताकी भाँति निरपेक्ष।

भक्तोंके भगवान् 'आत्माराम' भी नहीं हैं। आत्मारामगण अपने स्वरूपमें मस्त रहते हैं। उनकी दृष्टिमें जगत्‌का कोई महत्व नहीं है, फलतः वे जगत्‌से उदासीन रहते हैं। ऐसे आत्मारामके लिये कोई भी कर्तव्य नहीं है—'तस्य कार्यं न विद्यते।' (गीता ३। १७) परन्तु भगवान् तो अपने भक्तके लिए कार्य करते करते कभी थकते ही नहीं उनका कार्य कभी पूरा होता ही नहीं। वे अमर जीवनमें भक्तका कार्य करते रहनेपर भी कभी कामको पूरा हुआ नहीं मानते।

भक्तोंके भगवान् 'आप्तकाम' भी नहीं हैं। आप्तकाम वे होते हैं, जिनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हुई रहती हैं, जिन्हें किसी वस्तुकी वासना-कामनाकी गन्ध भी नहीं रहती। परन्तु भक्तोंके भगवान् तो भक्तके प्रेमपूर्वक अर्पण किये हुए पत्र-पुष्प, फल जल, यहाँतक कि चिउरोंकी कनियोंतकके लिये लालायित रहते हैं, और कई दिनोंके भूखे प्राणीकी तरह आँगनमें बिखरे हुए कणोंको चुन-चुनकर खा जाते हैं। वे व्रजसुन्दरियोंके साथ रसमयी रासक्रीड़ाकी कामना करते हैं। मुरलीमें मधुर स्वर भरकर उनको अपने समीप बुलाते हैं। वात्सल्यमयी यशोदामैयाका स्तनपान करनेके लिये मचल-मचलकर रोते हैं। और व्रजसुन्दरियोंके घरोंका माखन-दही चुरा-चुराकर भोग लगाते हैं।

भगवान् कृतघ्न भी नहीं हैं। वे एक बार प्रणाम करनेवालेके सामने भी सकुचा जाते हैं—'सकुचत सकृत प्रनाम किए हूँ', फिर भक्तकी तो बात ही क्या है। वे उसके तो अधीन ही हो जाते हैं। श्रीदुर्वासाजीसे भगवानने कहा है—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥
(श्रीमद्भा० ९।४।६३)

'दुर्वासाजी! मैं सर्वथा भक्तोंके अधीन हूँ, मुझमें तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है। मेरे साधु स्वभावके भक्तोंने मेरे हृदयपर अपना अधिकार कर लिया है। वे मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे।' अतएव भगवान् सदा ही कृतज्ञ हैं। कृतज्ञ कभी उदासीन नहीं होता।

आत्माराम और आप्तकाम भी उदासीन होते हैं परन्तु उनकी उदासीनता दूषित नहीं होती। वह तो उनके स्वरूपकी शोभा है। पर कृतघ्न और गुरुद्रोहीकी उदासीनता बड़ी भीषण होती है। इनमें भी गुरुद्रोही सबसे बढ़कर हैं। जो लोग मजेमें दूसरोंका माल उड़ाकर गर्वसे मूँछोंपर ताव देते हैं, उनसे भी वे अधिक बुरे हैं जो उपकारियोंके साथ द्रोह करते हैं। श्रीभगवान् ऐसे गुरुद्रोही नहीं हैं। वे भक्तोंका उपकार मानते हैं और अपनेको उनके सामने ले जानेमें भी सकुचाते हैं। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भक्त हनुमानसे कहते हैं—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥

इससे सिद्ध है कि भगवान् किसी भी श्रेणीके उदासीन भी नहीं हैं।

तो वे क्या हैं? वे हैं व्रजसुन्दरियोंके ऋणी—वैसे भक्तोंके चिरऋणी! वे सर्वसमर्थ सर्वैश्वर्यपरिपूर्ण होकर भी उनका बदला नहीं चुका सकते, अतएव वे अपेक्षासे प्रेम नहीं करते। वे सबके 'माता-धाता-पितामह' होकर भी माता पिताकी भाँति निरपेक्ष रहकर भक्तमें कोई दोष नहीं रहने देते। वे नित्य आत्माराम होकर भी उदासीन नहीं रह सकते। वे नित्य आप्तकाम होकर भी निष्काम नहीं रहते। वे अपने सहज उपकारोंसे सबको कृतज्ञ करनेवाले होकर भी स्वयं कृतज्ञ होते हैं। और वे एकमात्र जगद्गुरु होनेपर भी श्रीव्रजसुन्दरियोंको—श्रीराधारानीको अपना प्रेम-गुरु मानते हैं और उनसे कभी द्रोह नहीं करते। यह है परमप्रेमसुधासागर आनन्दकन्द व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रका अपने मुँहसे दिया हुआ आत्मपरिचय! भगवान्ने स्वयं श्रीउद्धवजीसे कहा है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥
(श्रीमद्भा० ११।१४।१५)

'उद्धव! मुझे तुम-जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रिय हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, मेरे आत्मस्वरूप शङ्कर, मेरे भाई बलरामजी और मेरी अर्धाङ्गिनी लक्ष्मीजी भी नहीं हैं। और तो क्या, मेरा अपना आत्मा भी मुझे उतना प्रिय नहीं है।'



जन्ममृत्युजराव्याधिसे छूटनेका सरल उपाय—भगवद् भजन

(१)

जिव जबतें हरितें बिलगान्यो। तबतें देह गेह निज जान्यो॥
मायाबस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रमतें दारुन दुख पायो॥
पायो जो दारुन दुसह दुख, सुख लेस सपनेहुँ नहिं मिल्यो।
भव सूल, सोक अनेक जेहि, तेहि पन्थ तू हठि-हठि चल्यो॥
बहु जोनि जनम, जरा, बिपति, मतिमंद! हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ़! बिचारु, लखि पायो कहीं॥

(२)

आनँद सिंधु-मध्य तव बासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा॥
मृग-भ्रम-बारि सत्य जिय जानी। तहँ तू मगन भयो सुख मानी॥
तहँ मगन मज्जसि, पान करि, त्रयकाल जल नाहीं जहाँ।
निज सहज अनुभव रूप तव खल! भूलि अब आयो तहाँ।
निरमल, निरंजन, निरबिकार, उदार सुख तैं परिहर्यो।
निःकाज राज बिहाय नृप इव सपन कारागृह पर्यो॥

(३)

तैं निज करम-डोरि दृढ़ कीन्हीं। अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं॥
ताते परबस पर्यो अभागे। ता फल गरभ बास-दुख आगे॥
आगे अनेक समूह संसृत उदरगत जान्यो सोऊ।
सिर हेठ, ऊपर चरन, संकट बात नहिं पूछै कोऊ॥
सो नित-पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवई।
कोमल सरीर, गँभीर बेदन, सीस धुनि धुनि रोवई॥

(४)

तू निज करम-जाल जहँ घेरो। श्रीहरि संग तज्यो नहिं तेरो॥
बहुबिधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हों। परम कृपालु ग्यान तोहि दीन्हों।

तोहि दियो ग्यान-बिबेक, जनम अनेक की तब सुधि भई।
तेहि ईसकी हौं सरन, जाकी बिषम माया गुनमई॥
जेहि किये जीव-निकाय बस, रसहीन, दिन-दिन अति नई।
सो करौं बेगि सँभारि श्रीपति, बिपति महँ जेहि मति दई।

(५)

पुनि बहुबिधि गलानि जिय मानी। अब जग जाइ भजौं चक्रपानी॥
ऐसेहि करि बिचार चुप साधी। प्रसव-पवन प्रेरेउ अपराधी॥
प्रेरयो जो परम प्रचंड मारुत, कष्ट नाना तैं सह्यो।
सो ग्यान, ध्यान बिराग, अनुभव जातना-पावक दह्यो॥
अति खेद ब्याकुल, अलय बल, छिन एक बोलि न आवई।
तब तीव्र कष्ट न जान कोउ, सब लोग हरषित गावई॥

(६)

बाल दसा जेते दुख पाये। अति असीम, नहिं जाहिं गनाये।
छुधा ब्याधि-बाधा भइ भारी। बेदन नहिं जानै महतारी॥
जननी न जानै पीर सो, केहि हेतु सिसु रोदन करै।
सोइ करै बिबिध उपाय, जातें अधिक तुव छाती जरै॥
कौमार, सैसव, अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै।
ब्यतिरेक तोहि निरदय! महाखल! आन कहुको सहि सकै॥

(७)

जोबन जुवती सँग रँग रात्यो। तब तू महामोह-मद मात्यो॥
ताते तजी धरम-मरजादा। बिसरे तब सब प्रथम बिषादा॥
बिसरे बिषाद, निकाय-संकट समुझि नहिं फाटत हियो।
फिरि गर्भगत-आवर्त संसृति चक्र जेहि होइ सोइ कियो॥
कृमि-भस्म-बिट-परिनाम तनु, तेहि लागि जग बैरी भयो।
परदार, परधन, द्रोहपर, संसार बाढै नित नयो॥

(८)

देखत ही आई बिरुधाई। जो तैं सपनेहुँ नहिं बुलाई॥
ताके गुन कछु कहे न जाहीं। सो अब प्रगट देखु तन माहीं॥
सो प्रगट तनु जरजर जराबस, ब्याधि सूल सतावई।
सिर-कंप, इन्द्रिय-सक्ति प्रतिहत, बचन काहु न भावई॥
गृहपालहूँते अति निरादर, खान-पान न पावई।
ऐसिहु दसा न बिराग तहँ, तृष्णा-तरंग बढ़ावई॥

(९)

कहि को सकै महभव तेरे। जनम एकके कछुक गनेरे॥
चारि खानि संतत अवगाहीं। अजहुँ न करु बिचार मनमाहीं॥
अजहुँ बिचारु, बिकार तजि, भजु राम जन-सुखदायकं।
भवसिंधु दुस्तर जलरथं, भजु चक्रधर सुरनायकं॥
बिनु हेतु करुनाकर, उदार, अपार-माया तारनं।
कैवल्यपति, जगपति, रमापति, प्रानपति गतिकारनं॥

(१०)

रघुपति-भगति सुलभ, सुखकारी। सो त्रयताप सोक भयहारी॥
बिनु सतसंग भगति नहिं होई। ते तब मिलैं द्रवै जब सोई॥
जब द्रवै दीनदयालु राघव, साधु संगति पाइये॥
जेहि दरस परस-समागमादिक पापरासि नसाइये।
जिनके मिले दुख-सुख समान, अमानतादिक गुन भये॥
मद-मोह लोभ-बिषाद-क्रोध सुबोधतें सहजहिं गये॥

(११)

सेवत साधु द्वैत-भय भागै। श्रीरघुबीर-चरन लय लागै।
देह-जनित बिकार सब त्यागै। तब फिरि निज स्वरूप अनुरागै॥
अनुराग सो निज रूप जो जगतें बिलच्छन देखिये।
सन्तोष, सम, सीतल सदा दम, देहवंत न लेखिये॥
निरमल, निरामय, एकरस, तेहि हरष-सोक न ब्यापई।
त्रैलोक-पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई॥

(१२)

जो तेहि पंथ चलै मन लाई। तौ हरि काहे न होहिं सहाई।
जो मारग श्रुति साधु दिखावै। तेहि पथ चलत सबै सुख पावै॥
पावै सदा सुख हरि-कृपा, संसार-आसा तजि रहै।
सपनेहुँ नहीं सुख द्वैत-दरसन, बात कोटिक को कहै॥
द्विज, देव, गुरु, हरि, संत, बिनु संसार पार न पाइये।
यह जानि तुलसीदास त्रासहरन रमापति गाइये॥

—गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी

राजा चक्ववेणके त्यागका प्रभाव

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

राजा चक्ववेणकी कहानी कहीं किसी पुस्तकमें तो मैंने नहीं देखी है; परम्परासे लोकविख्यात है। यह चक्ववेणका इतिहास वास्तविक है या काल्पनिक, मुझको पता नहीं। जो भी कुछ हो, हमें तो इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। वह कहानी इस प्रकार है—

एक समय चक्ववेण नामके एक राजा हुए थे। वे बड़े ही धर्मात्मा, सत्यवादी, स्वावलम्बी, अध्यवसायशील, त्यागी, विरक्त, ज्ञानी, भक्त, तेजस्वी, तपस्वी, और उच्चकोटिके अनुभवी महापुरुष थे। वे राज्यके द्रव्यको दूषित समझकर उसे स्वयं अपने और अपनी पत्नीके काममें नहीं लाते थे। प्रजासे जो कुछ 'कर' लिया जाता था, वह सारा-का-सारा प्रजाकी ही सेवामें लगा दिया जाता था। राज्यका कार्य वे निरभिमानपूर्वक निष्कामभावसे तन-मनसे किया करते थे। प्रजापर उनका बड़ा प्रभाव था। रामराज्यकी भाँति उनके राज्यमें कोई दुखी नहीं था, सभी सब प्रकारसे सुखी थे।

वे अपने शरीरनिर्वाहके लिये पृथक् खेती किया करते थे। स्वयं रानी बैलके स्थानमें हल-खींचा करती और वे बीज बोया करते। वे अपने ही खेतमें उपजे हुए अन्नसे अपना भरण पोषण करते थे। वे गन्ना, रूई, अनाज, फल और शाककी खेती किया करते थे। अपने खेतमें उपजी हुई रूईका ही वस्त्र बनाकर पहनते, अपने खेतमें उपजे हुए गन्नोंका ही गुड़ बनाकर खाते और अपने खेतमें उपजे हुए अन्न, फल, शाकको ही भोजनके काममें लाते थे। उनकी पत्नीके पास कोई भी आभूषण नहीं थे; क्योंकि वे राज्यके द्रव्यसे तो आभूषण बनाते नहीं और अपनी की हुई खेतीकी उपजसे केवल सादगीसे खाने पहननेका काम भर चलता था। खेतीके सिवा उन्हें राज्यके कार्योंमें भी तो समय देना पड़ता था। उनका जीवन एक सीधे सादे सदाचारी किसानके जैसा था। छः घंटे शयनके सिवा उनका सारा समय ईश्वरभक्ति, परोपकार, राज्यकार्य और कृषिके कार्योंमें ही बीतता था। उनका सब जीवोंके प्रति समता, दया और प्रेमका भाव समान था। वे सब प्राणियों को परमात्माका स्वरूप मानकर सबकी निष्काम प्रेमभावसे सेवा करते थे। वे स्वावलम्बी थे; अपने शरीरका काम स्वयं ही करते थे। किसी राज्यकर्मचारी या नौकर आदिसे नहीं कराते थे। वे जो कुछ भी कार्य करते, आसक्ति और अहङ्कारसे रहित होकर बड़े ही उत्साह और धैर्यसे किया करते।

एक दिनकी बात है। जिस देशमें राजा चक्ववेण रहते थे, वहाँ एक बड़ा भारी मेला लगा। उसमें नगरके अन्यान्य प्रान्तोंके लोग बड़ी भारी संख्यामें इकट्ठे हुए। राजा-रानीके दर्शनके लिये यों तो बराबर ही लोग आते रहते, पर मेलेके कारण नर-नारियों-की भीड़ कुछ अधिक रहती थी। राजाके पास अधिकतर पुरुष आते और रानीके पास अधिकतर स्त्रियाँ आया करती थीं। एक दिन बहुत-से गहनों और रेशमी वस्त्रोंसे सजी-धजी अनेक दासियोंसे घिरी हुई बहुत-सी धनी व्यापारियोंकी स्त्रियाँ

रानीका दर्शन करनेके लिये उनके पास आयीं। उन स्त्रियोंने कहा—'रानीजी ! आपके जैसे वस्त्र तो हमारी मजदूरनियाँ भी नहीं पहनतीं; आप हमारी दासियोंको देखिये, कैसे वस्त्राभूषण पहने हैं। आपके वस्त्राभूषण तो हमलोगोंसे भी बढ़कर होने चाहिये। जैसे ये हमारी दासियाँ हैं, उसी प्रकार हमलोग तो आपकी दासीके समान हैं। आपके स्वामी बड़े सम्राट् हैं, आप उनसे थोड़ा-सा भी संकेत कर देंगी तो वे आपके लिये हमलोगोंसे बढ़कर वस्त्राभूषणकी व्यवस्था कर देंगे। आप हमारी स्वामिनी हैं, इसलिये हमें आपको इस वेशमें देखकर दुःख होता है। ऐसे वस्त्र तो भीख माँगनेवाली भिखारिन भी पहनना नहीं चाहती। एक सम्राट्की महारानीके-जैसे वस्त्राभूषण होने चाहिये, हम उसी रूपमें आपको देखना चाहती हैं।' इस प्रकार कहकर वे अपना प्रभाव डालकर चली गयीं। रानीके चित्तपर उनकी बातोंका बड़ा असर पड़ा।

रात्रिमें जब महाराज आये, तब रानीने सब घटना उनको सुनायी और दिनमें जो कुछ धनी व्यापारियोंकी स्त्रियों ने कहा था, सब राजासे निवेदन किया एवं उनसे अनुरोध किया कि मेरे पहननेके लिये बहुमूल्य वस्त्र और भूषण मँगा दीजिये। राजाने उत्तर दिया—'कैसे मँगा दूँ। व्यवहारमें लाना तो दूर रहा, मैं राज्यके पैसोंको छूता भी नहीं, उससे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।' रानी भी बहुत उच्चकोटिकी पवित्र स्त्री थीं, किंतु वस्त्राभूषणोंसे सजी-धजी धनिकोंकी स्त्रियोंका उनपर काफी असर पड़ चुका था, अतः रानीने कहा—'चाहे जैसे भी हो, आप सम्राट् हैं और मैं आपकी पटरानी हूँ। मेरे लिये तो एक सम्राट्की पटरानीके योग्य बहुमूल्य वस्त्राभूषण मँगानेकी कृपा आपको करनी ही होगी।' पत्नीकी प्रीतिसे प्रेरित राजाने सोचा—'रानी कितना भी आग्रह क्यों न करें, मैं राज्यके द्रव्यको तो किसी भी हालतमें उपयोगमें ला नहीं सकता, किन्तु मैं सम्राट् हूँ; दुष्ट, अत्याचारी और बलवान् राजाओंसे 'कर' ले सकता हूँ।' यह सोचकर उन्होंने पर-राष्ट्रों तथा अधीनस्थ राज्योंके कार्यका सम्पादन करनेवाले मन्त्रीको बुलाया और कहा—'मन्त्री ! आप राक्षसराज रावणके पास जाइये और कहिये कि राजा चक्ववेणकी ओरसे मैं आया हूँ, उन्होंने मुझे आपसे 'कर' के रूपमें सवा मन सोना प्राप्त करनेके लिये आपके पास भेजा है।'

सम्राट्की आज्ञा पाकर मन्त्री कुछ आदमियोंको लेकर रथमें बैठकर समुद्रके किनारे पहुँचे और फिर जलयानके द्वारा समुद्रके उस पार पहुँचकर लङ्कामें प्रवेश किया तथा राजसभामें जाकर बड़ी नम्रता और सभ्यताके साथ सम्राट् चक्ववेण का सन्देश सुनाया। सन्देशको सुनते ही रावण हँसा और उनसे सभासदोंसे कहा—'देखो, ऐसे मूर्ख राजा भी संसारमें अभी हैं, जो ऋषि, देवता, राक्षस आदि सभीसे 'कर' लेनेवाले मुझ-जैसे बलवान् सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र महान् सम्राट्से भी करकी आशा रखते हैं।' उन्होंने राजा चक्ववेणके दूतको कैद करना चाहा, किन्तु सभासदोंके अनुरोध करनेपर उसे छोड़ दिया। वह रावणकी सभासे उठकर समुद्रके किनारे लौट आया।

तदनन्तर रावण जब रात्रिमें मन्दोदरीके पास महलमें गया, तब रावणने हँसकर मन्दोदरीसे विनोद करते हुए कहा—'कोई एक भारतवर्षमें चक्ववेण नामका राजा है। आज उसका एक दूत

सभामें आया था और उसने मुझसे सवा मन स्वर्ण 'कर' के रूपमें देनेको कहा। मुझे इसपर बड़ी हँसी आयी। देखो, संसारमें ऐसे मूर्ख भी अभीतक जीते हैं, जो मुझ-जैसे सबसे कर लेनेवालेसे भी कर लेनेकी आशा रखते हैं। मैं तो उसके दूतको कैद करना चाहता था, पर सभासदोंके अनुरोधसे उसे छोड़ दिया।'' मन्दोदरीने दुःख प्रकट करते हुए कहा—स्वामिन्! आपने बहुत बुरा किया। चक्ववेणको मैं जानती हूँ, वे सत्यवादी और धर्मात्मा राजा हैं। उनका चक्र चलता है। जो उनकी आज्ञाका पालन नहीं करता, उसका अनिष्ट हो जाता है। उस दूतको सन्तोष कराकर ही आपको उसे भेजना चाहिये था। उसका पता लगाकर अब भी उसको सन्तोष करा दें। नहीं तो, पता नहीं, हमारा कितना अनिष्ट हो जायगा।' रावण बोला—'तू बड़ी डरपोक है, मामूली मनुष्य-राजाओंसे तू इतना भय करती है, मैं इसकी कुछ भी परवा नहीं करता।' रानीने कहा—'कल प्रातःकाल मैं आपको चक्ववेणका प्रभाव दिखलाऊँगी।' प्रातः होते ही राजाके साथ मन्दोदरी महलके छतपर गयी, जहाँ वह रोज कबूतरोंको अनाज डाला करती थी। अनाज चुगने वहाँ बहुत-से कबूतर आया करते। मन्दोदरीने दाने चुगते हुए पक्षियोंसे कहा—'राजा रावणकी दुहाई है, खबरदार! दाने न चुगना।' किंतु वे चुगते ही रहे। फिर रानीने राजासे कहा—'देखिये, आपकी दुहाई देनेपर भी ये सब दाने चुगते ही रहे।' रावणने कहा—'मूर्खे! ये पक्षी बेचारे क्या समझें।' मन्दोदरी बोली—'अब आप राजा चक्ववेणके प्रभावको देखिये।' फिर उसने पक्षियोंसे कहा—सावधान! चक्ववेणकी दुहाई है, कोई दाने न चुगना।' इतना सुनते ही सब पक्षियोंने एक साथ दाने चुगना बंद कर दिया। उनमेंसे एक कबूतर बहिरा था, वह कुछ भी सुन नहीं पाता था, अतः उसने दाना उठा लिया। ज्यों ही उसने दाना उठाया त्यों ही उसकी गर्दन टूटकर गिर गयी। रानीने रावणसे कहा—'देखिये, राजा चक्ववेणकी दुहाईपर सबने दाने चुगने बंद कर दिये, एक बहिरे कबूतरने न सुननेके कारण दाना उठा लिया, जिससे चक्ववेणके चक्रसे उसका मस्तक कटकर गिर गया।' फिर रानी पक्षियोंसे बोली—'अब मैं चक्ववेणकी दुहाई हटा लेती हूँ, अब दाने चुगो।' तुरंत सब पक्षी दाने चुगने लगे। रानीने फिर कहा—'जो तुम्हारे सम्मुख खड़े हैं, उन राजा रावणकी दुहाई है, कोई भी दाने न चुगना।' किंतु राजा रावणके सामने रहते हुए भी किसीने परवा न की और वे दाने चुगते ही रहे। मन्दोदरीने रावणसे कहा—'देखिये, आपका इन पक्षियोंपर कुछ भी असर नहीं होता, परंतु राजा चक्ववेणके प्रभावपर विचार कीजिये, उनके सामने न रहते हुए भी उनका कितना असर है।' रावणने कहा—'मालूम होता है तुम्हारी इसमें कोई चालाकी या माया है। नहीं तो, ये पक्षी बेचारे क्या समझें।' ऐसा कहकर रावण टालमटोल करके राजसभामें चला गया।

इधर राजा चक्ववेणके मन्त्रीने समुद्रके किनारे एक नकली लङ्काकी रचना की। उसने कज्जलके समान अत्यन्त महीन मिट्टीको समुद्रके जलमें घोलकर रबड़ीकी तरह बना लिया तथा तटकी जगहको चौरस बनाकर उसपर उस मिट्टीसे ठीक लङ्का-जैसी एक छोटे परिमाणकी आकृति अङ्कित की। घुली हुई मिट्टीकी बूंदोंको टपका-टपकाकर उसीसे लङ्काके पर-

कोटे, बुर्ज और दरवाजों आदिकी रचना की। परकोटेके चारों ओर कँगूरे भी काटे गये एवं उस परकोटेके भीतर लङ्काकी राजधानी और नगरके प्रसिद्ध बड़े-बड़े मकानोंको भी छोटे आकारमें रचना करके दिखाया गया। इन सबकी रचना करनेके बाद वह पुनः रावणकी सभामें गया। उसे देखकर रावण चौंक उठा और उससे बोला—'क्यों जी! तुम फिर यहाँ किसलिए आये हो?' उसने कहा—'मैं आपको एक कौतूहल दिखलाना चाहता हूँ। आप मेरे साथ समुद्रतटपर चलिये।' रावण कौतूहल देखनेको उत्सुक हो गया और कुछ सभासदोंको साथ लेकर समुद्रतटपर गया, जहाँ उस मन्त्रीने छोटे आकारमें नकली लङ्काकी रचना की थी।

उसने रावणसे पूछा—'देखिये, यह ठीक ठीक आपकी लङ्काकी नकल है न?' रावणने उसकी अद्भुत कारीगरी देखी और कहा—'ठीक है, क्या यही दिखानेके लिये मुझे यहां लाये थे?' मन्त्री बोला—'नहीं नहीं, इस लङ्कासे आपको मैं एक कौतूहल दिखाता हूँ। देखिये, लङ्काके पूर्वका परकोटा, दरवाजा, बुर्ज और कंगूरे साफ साफ ज्योंके-त्यों दीख रहे हैं न?' रावणने कहा—'दीख रहे हैं।' मन्त्रीने कहा—'मेरी रची हुई लङ्काके पूर्व द्वारके कंगूरोंको मैं राजा चक्ववेणकी दुहाई देकर गिराता हूँ, इसके साथ ही आप अपनी लङ्काके पूर्वद्वारके कंगूरे गिरते हुए देखेंगे। इतना कहकर मन्त्रीने 'राजा चक्ववेणकी दुहाई है' कहकर अपनी रची लंकाके पूर्वद्वारके कंगूरे गिरा दिये। उनके गिरनेके साथ साथ ही रावणकी असली लंकाके पूर्वद्वारके कंगूरे गिरते हुए दिखायी दिये। यह देखकर रावणको बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद दूतने कहा—'अब मैं अपनी रची हुई लंकाके पूर्वके परकोटेके द्वारके आस-पासकी चारों बुर्जें मिटाता हूँ, इसके साथ-साथ ही आप अपनी असली लंकाकी बुर्जोंको भी मिटती हुई देखेंगे।' यह कहकर उसने चक्ववेणकी दुहाई देकर अपनी बनायी मिट्टीकी लंकाकी बुर्जें मिटा दीं, उसके साथ ही रावणकी असली लंकाके पूर्वद्वारकी बुर्जें भी चकनाचूर होकर नष्ट हो गयीं। यह देखकर रावणको बहुत ही आश्चर्य हुआ और उसे मन्दोदरीकी कही हुई बात याद आ गयी।

तदनन्तर राजा चक्ववेणके मन्त्रीने कहा—"राजन् आप यदि सवा मन सोना 'कर'के रूपमें नहीं देंगे तो भी राजा चक्ववेणको आपसे युद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। राजा चक्ववेणके प्रभावका चक्र चलता है। मैं अकेले ही आपकी लंकाको नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिये काफी हूँ। अभी राजा चक्ववेणकी दुहाई देकर आपकी लंकाको क्षणमात्रमें एक हाथके झटकेसे नष्ट किये देता हूँ। आप उस लंकाकी रक्षा कर सकें तो करें। यदि आपको लंकाकी रक्षा करनी है तो 'कर'के रूपमें सवा मन सोना दे दीजिये; इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।' रावणने सोचा—'मेरे देखते-देखते क्षणमात्रमें पूर्वद्वारके कँगूरे और चारों बुर्जें गिर गयीं, जो धातुनिर्मित और बहुत ही मजबूत थीं। इसी प्रकार इस सारी लंकाको नष्ट करना इसके बायें हाथका खेल है।' यह सोचकर रावणने सवा मन सोना करके रूपमें देना स्वीकार कर लिया और मन्त्रीसे कहा—'चलो, मैं आपको सवा मन सोना दे देता हूँ।' तत्पश्चात उसे सवा मन सोना देकर बिदा किया।

मन्त्री सवा मन सोना लेकर राजा चक्ववेणके पास वापस लौट आया। उसने राजा-रानीके पास जाकर उनके सामने सवा मन सोना रख दिया और

कहा—"आपकी आज्ञासे रावणसे 'कर'के रूपमें सवा मन सोना ले आया हूँ।" राजाके यह पूछनेपर कि तुमने यह सोना कैसे प्राप्त किया ?' उसने आद्योपान्त सारी घटना उनको कह सुनायी।

यह घटना सुनकर रानीको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसपर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने राजासे पूछा—'यह क्या बात है ? राजाने कहा—'हमलोग स्वावलम्बी होकर परिश्रमपूर्वक खेती करके अपना निर्वाह करते हुए वैराग्य और त्यागपूर्वक अपना जीवन बिताते हैं और निष्कामभावसे प्रजाके धनको प्रजाकी सेवामें ही लगा देते हैं, अपने व्यक्तिगत कार्यके लिये राज्यके पैसेको छूतेतक भी नहीं, इसीका यह प्रभाव है।'

यह सुनकर रानीका दिल बदल गया। रानी बोली—'स्वामिन् ! मैं बहुमूल्य वस्त्राभूषण नहीं पहनूंगी। जिस प्रकार अबतक नियमसे रहती आयी हूँ, वैसे ही रहूँगी, कुछ भी परिवर्तन नहीं करूंगी। धनी व्यवसायियोंकी स्त्रियोंके कुसङ्गसे मेरी बुद्धि त्याग, वैराग्य और धर्मसे विचलित हो गयी थी, किंतु अब उनके सङ्गका मुझपर कोई असर नहीं रह गया है। मैंने आपसे जो कुछ दुराग्रह किया, उसके लिये मैं क्षमा प्रार्थना करती हूँ। मेरे अपराधको आप क्षमा करें और इस स्वर्णको वापस लौटा दें।'

राजाने उसकी बात मानकर मन्त्रीसे कहा कि 'मन्त्री ! इसपर जो कुसङ्गका असर पड़ा था, वह ईश्वरकी कृपासे दूर हो गया है। अब इस धनको जहाँसे तुम लाये थे, वहीं वापस कर दो।' राजाकी आज्ञा होते ही मन्त्री वह स्वर्ण लेकर लंकापति रावणके पास पुनः गया और सभामें जाकर बोला—'महाराज चक्ववेणने आपका यह स्वर्ण वापस लौटा दिया है। उनकी पत्नीकी जो बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहननेकी अभिलाषा हो गयी थी, वह भगवत्कृपासे अब नहीं रही। अतः अब इसकी उन्हें आवश्यकता नहीं है।'

इस बातको सुनकर रावणके हृदयपर चक्ववेणके त्यागका और भी अधिक असर पड़ा। उसने वह स्वर्ण रखकर मन्त्रीको आदर सत्कारपूर्वक बिदा किया। मन्त्रीने वापस आकर राजा-रानीको स्वर्ण लौटा देनेका सब हाल सुना दिया। दूतकी बात सुनकर राजा-रानीको बहुत ही प्रसन्नता हुई। राजा चक्ववेणका प्रभाव यक्ष, राक्षस, देवता, मनुष्य, ऋषि, मुनि, पशु, पक्षी आदि सभीपर था।

इस कहानीसे हमलोगोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। प्रत्येक स्त्री-पुरुषको निष्कामभावसे अपने अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार न्याय और सत्यतापूर्वक अपनी जीविका चलानी चाहिये। दूसरोंके आश्रित होकर अपना जीवन-निर्वाह करना भी अपने लिये घृणास्पद है। झूठ, कपट, बेईमानी करके उपार्जित द्रव्यसे हमें यदि मेवा-मिष्टान्न भी मिल जायँ तो वे हमारे लिये विषके समान हैं; किन्तु अपने न्यायोपार्जित पवित्र द्रव्यसे एक मुट्ठी चने भी खानेको मिलें तो वे हमारे लिये अमृतके समान हैं। हमें बीमारी और आपत्तिकालके अतिरिक्त—नौकर-चाकर, स्त्री-पुत्र और शिष्य आदिके रहते हुए भी, अपने शरीरका काम जहाँतक हो सके, स्वयं ही करनेका अभ्यास डालना चाहिये, जिससे कि हमें दूसरोंके अधीन होकर जीना न पड़े। कल्याणकामी पुरुषोंके लिये दूसरोंके आश्रित होकर जीना लज्जास्पद है।

साथ ही, हमें समयको अमूल्य समझकर एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। हर समय भगवान्को याद रखते हुए परोपकार और शरीर-निर्वाह आदिका कार्य करते रहना चाहिये। छः घंटे सोनेके अतिरिक्त एक क्षण भी न तो समय व्यर्थ बिताना चाहिये और न उसका दुरुपयोग करना चाहिये। मनुष्यका जीवन बड़ा ही मूल्यवान् है। अतः क्षणमात्र भी उसे निकम्मा नहीं रहना चाहिये, अपनी बुद्धिसे हम जिसको सबसे बढ़कर कार्य समझें उसी कार्यको करते रहना चाहिये।

थोड़ी देरका कुसङ्ग भी मनुष्यके लिये बहुत हानिकर हो जाता है—इस बातको ध्यानमें रखकर नास्तिक, नीच, प्रमादी, भोगी, पापी, निकम्मे, आलसी, दूसरोंपर निर्भर रहकर जीवन-निर्वाह करने-वाले, बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण करनेवाले, खेल-तमाशा और मादक वस्तुओंका सेवन करनेवाले दुर्व्यसनी स्त्री या पुरुषोंका कभी भूलकर क्षणमात्र भी सङ्ग नहीं करना चाहिये और प्रमाद, आलस्य, निद्रा, भय, उद्वेग, राग, द्वेष, अहङ्कार और दुर्व्यसन आदिसे रहित होकर अपना जीवन विवेक, वैराग्य, त्याग और संयमपूर्वक निष्कामभावसे भजन ध्यान, सत्सङ्ग-स्वाध्यायमें ही बिताना चाहिये तथा सम्पूर्ण प्राणिमात्रको परमात्माका स्वरूप समझकर आसक्ति और अहंकारसे रहित होकर निष्काम भावपूर्वक तन-मनसे सबकी सेवा करनी चाहिये एवं सबपर समान भावसे हेतुरहित दया और प्रेम रखना चाहिये।

('कल्याण' से)

साधु-संग की महिमा

साधु संग संसार में, दुर्लभ मनुष शरीर।
सतसंगति सूं मिटत है, त्रिबिध तापकी पीर॥
साधु रूप हरि आप हैं, पावन परम पुरान।
मेटैं दुविधा जीव की, सबका करैं कल्यान॥
साधु-संग छिन एक कौ, पुन्न न बरन्यो जाय।
रति ऊपजै हरि नाम सूं, सबही पाप बिलाय॥
कोटि तीर्थ जग नेम ब्रत, साधु संग में होय।
विषय ब्याधि सब मिटत हैं, सांतिरूप सुख जोय॥
कलि केवल संसार में, और न कोउ उपाय।
साधु संग हरिनाम बिन, मनकी तपन न जाय॥
साधु संग जगमें बड़ो, जो करि जानै कोय।
आधौ छिन सतसंग को, कल्मष डारै खोय॥

दिव्य चक्षुसे देखो

श्री १०८ स्वामी ध्यानानन्दजी महाराज

किसी सम्बन्धीसे तुम्हारा उतना हित नहीं हो सकता जितना हित तुम अपने संयत चित्तके द्वारा देखोगे। संयत चित्तके भीतर राग-द्वेषका प्रवेश नहीं होता। सदा शुद्ध चिन्तन करो; चित्त अपने आप शान्त हो जायगा।

शुद्ध चिन्तन करना ही चित्तकी शुद्धता है और अशुद्ध चिन्तन करना ही चित्तकी अशुद्धता है।

तुम दया, कृपा, प्रेम, शान्ति जो कुछ भी उत्तम अथवा प्रिय समझते हो, जो कुछ तुम दूसरोंसे पानेकी इच्छा रखते हो वही तुम भी दूसरोंको दो। जो तुम्हें अप्रिय लगता हो उसे दूसरोंको भी कदापि न दो।

तुम जितना ही भोगजनित सुखोंका सेवन करोगे उतना ही उनकी तृष्णा प्रबल होगी। तृष्णाको तुम कभी तृप्त नहीं कर सकते। सुखकी तृष्णाने ही मनुष्यको पराधीन बना रक्खा है। विषयजनित सुखोंसे राग पहले सूक्ष्म रूपमें होता है; फिर क्रमशः बढ़ता है और फिर वही बादलके समान घना होकर सम्पूर्ण चित्तको आच्छादित कर लेता है। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विषय सुखोंका चिन्तन करनेसे चित्तमें उनका स्थान हो जाता है, इसलिये तुम चित्तको अनुपयुक्त विषयसे हटाकर उपयुक्त शुद्धके चिन्तनमें लगाते रहो। संस्कार अथवा संगसे प्रेरित चित्तकी आज्ञा न मानो। संकल्पसे चित्तकी चञ्चलता बढ़ती है इसलिये परमार्थ-पथके जो कुछ विपरीत हो उस संकल्पका ही त्याग करो।

सद् विवेक न होनेके कारण नश्वर पदार्थोंकी दासताने मनुष्यको सत्यानन्दसे विमुख कर रक्खा है। तुम्हें अपने परम लाभकी सिद्धिके लिये धनादिक पदार्थों एवं देहेन्द्रियों तथा मनकी दासताका त्याग करना ही पड़ेगा, तभी तुम आत्माके दिव्य गुणोंका विकास देख सकोगे और उन्हीं दैवी-गुणोंसे ही तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी।

जिससे तुम्हें कभी-न-कभी अलग होना ही पड़ेगा, जो तुम्हारे साथ सदा रह ही नहीं सकता उसे तुम कदापि अपना न समझो। बल्कि उसके संग रहते हुए संगाभिमानका त्याग कर दो।

केवल वस्तुओंको छोड़ देनेसे उनके बन्धनसे छुटकारा नहीं मिलता, वस्तुओंकी असारताको समझ लेने पर उनकी इच्छाका त्याग करनेसे स्वाधीनता प्राप्त होती है।

ध्यान रहे! कोई वस्तु बन्धनकारी नहीं है, सम्बन्धासक्ति बन्धनकारी है, कोई क्रिया बन्धनकारी नहीं है फलासक्ति बन्धनकारी है।

वासना स्थलसे शान्तिकी ओर जानेका पथ बाह्य जगत्में नहीं है, वह तुम्हारे अन्तः प्रदेशमें है और बुद्धि दृष्टिसे सद्विवेक प्रकाशमें ही दिखाई देता है।

तुम्हारी कुभावनाएँ ही तुम्हें पतनके गहरे गर्तमें गिराती हैं। तुम्हारे ही उत्पन्न किये हुए विचार रूपी देव और दैत्य तुम्हें चारों ओरसे घेरे रहते हैं, उन्हींसे तुम्हें सुख या दुःख प्राप्त होता है।

तुम जैसा चिन्तन करते हो वैसा ही तुम्हारा स्वभाव बनता है। चिन्तनके ही पुनः अभ्याससे संकल्प-रूपकी पुष्टि होती है, फिर कोई भी संकल्प जब अन्तरमें स्थान बना लेता है वह विनाशको प्राप्त नहीं होता; भले ही अन्य संकल्पके भारसे नीचे दबा दिया जाय।

तुम्हारा चिन्तन ही तुम्हारे शुभ या अशुभ होनेका दर्पण है। कर्म करते हुए विश्रामका और विश्राम करते हुए कर्म करनेका चिन्तन, भोगोंके साथ योगका और योगके मध्यमें भोगका चिन्तन-कर्तव्य-विधिका पालन करते हुए असफलताका और कर्तव्यविधिका पालन न करते हुए सफलताका चिन्तन, प्रवृत्ति-कालमें निवृत्तिका और निवृत्तिकालमें प्रवृत्तिका चिन्तन व्यर्थ चेष्टा है, जो कि अविवेक दशामें होती रहती है। तुम विवेक बलसे सभी अनावश्यक चिन्ताओंको मिटाते रहो।

दिव्य प्रकाश-साधन-संग्रहसे

उद्बोधनाष्टक

(रचयिता—पूज्य स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

हे दीनबन्धो ! आप बिन कोई न मेरा दीखता
'तेरे लिये मरते अभी' कह, बख्त पर सब लापता।
मुख बात में नहिं थी कमी नित चित एक हो खूब है
फिर काम पड़ते बान निकलै तू बड़ा बेकूफ है॥ १॥
जिनको सदा मैं जान अपना देखता था प्रेम से
करता नहीं परवाह भी हरि के भजन नित नेम से
वे सभी बस आज दिन अब हो गये हैं दूसरे
कण-लोभ से कूटी भुसी वह साफ निकला फूस रे॥ २॥
मैं देख चूका आज दिन जो मित्र मेरे प्रिय थे
सब से अधिक हितकार थे मेरी समझ में श्रेय थे।
जिनको हँसी में भी कभी कहता नहीं अपशब्द था
पर आज वे सब और हैं क्या मास था क्या अब्द था॥ ३॥
माता पिता भाई सुहृद अनजान स्वारथ साधते
हम साथ उनके मूर्ख बन उनकी ही राग अलापते।
क्या हम भी अपने स्वार्थ में मति को घुमायेंगे कभी
सब पोल खुलकर साफ असली रूप दीखेगा तभी॥ ४॥
रे चित्त ! अब भी मान जा ज्यादा गया नहीं अर्थ है
बस सूझ ऐसी पड़ गयी नाते सभी ये व्यर्थ हैं।
तब चाहिये क्या और कह बस हो गया प्रिय ! हो गया
दिल से समझ कर सोच ले बहुते दिवस तू खो गया॥ ५॥
खैर, अब भी तू मना जो शरण चाही श्याम की
याद रख तू छोड़ मत निसिदिन रटन हरिनाम की।
अति दीन हीन गरीब को वे तारने तैयार हैं
बस एक उसकी शरण जा अब भी तो बेड़ा पार है॥ ६॥
रे चित्त ! तू नहिं चेतता बरबस विषय में जाय है
जग जाय चाह की लाय है दुख पाय है पछिताय है।
नर काय पाय विहाय विष उरझाय मत संसार है
छिटकाय मन से वासना लिपटाय हरि पद सार है॥ ७॥
दीनबन्धो ! पतिततारण विश्वधारण भरण हो
ताप हरते अभय करते एक आप की शरण हो।
क्या कहूँ कहाँ तक कहूँ प्रभु ! आप अपना लीजिये
गुन हीन एक गरीब को हरि चरण शरण हि दीजिये॥ ८॥

—:o:—

स्वामी श्रीशङ्कराचार्यकृत श्रीविष्णु-स्वरूप-वर्णन

(अनुवादक—पं० श्रीगदाधरजी शर्मा, व्याकरणाचार्य)

लक्ष्मीभर्तुर्भुजाग्रे कृतवसति सितं यस्य रूपं विशालं
नीलाद्रेस्तुङ्गशृङ्गस्थितमिव रजनीनाथबिम्बं विभाति।
पायान्नः पाञ्चजन्यः स सकलदितिजत्रासनैः पूरयन्स्वै-
र्निध्वानैर्नीरदौघध्वनिपरिभवदैरम्बरं कम्बुराजः ॥१॥

जो लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णुकी भुजाके अग्रभागमें स्थान पा चुका है, जिसका स्वच्छ एवं विशाल स्वरूप नीलाचलके ऊँचे शिखरपर रहनेवाले चन्द्रमाके बिम्बकी भाँति प्रतीत होता है तथा मेघमालाकी गर्जनाको मात करनेवाले एवं सम्पूर्ण दैत्योंको भयभीत करनेमें तत्पर अपने भयंकर शब्दोंसे आकाशको व्याप्त करना जिसका स्वभाव ही है, वह शंखराज पाञ्चजन्य हमारी रक्षा करे ॥ १ ॥

आहुर्यस्य स्वरूपं क्षणमुखमखिलं सूरयः कालमेतं
ध्वान्तस्यैकान्तमन्तं यदपि च परमं सर्वधाम्नां च धाम।
चक्रं तच्चक्रपाणेर्दितिजतनुगलद्रक्तधाराक्तधारं
शश्वन्नो विश्वबन्धं वितरतु विपुलं शर्म धर्मांशुशोभम्

देवताओंने इस क्षण आदि सम्पूर्ण कालको ही जिसका स्वरूप कहा है, जो अन्धकारका नितान्त नाश करनेवाला एवं सम्पूर्ण धामोंका भी उत्तम धाम है तथा राक्षसोंके शरीरसे निकली हुई रक्तधाराओंसे जिसकी धार भींग चुकी है, जगत् जिसका पूजन करते हैं और धर्ममयी किरणोंसे जो सुशोभित है, भगवान् विष्णुका वह विशाल चक्र हमें अतिशय कल्याण प्रदान करे ॥ २ ॥

अव्यान्निर्घातघोरो हरिभुजपवनामर्शनाध्मातमूर्ते-
रस्मान्विस्मेरनेत्रत्रिदशनुतिवचः साधुकारैः सुतारः।
सर्वं संहर्तुमिच्छोररिकुलभुवनं स्फारविस्फारनादः
संयत्कल्पान्तसिन्धौ शरसलिलघटावार्मुचः कार्मुकस्य ॥३

भगवान् विष्णुकी भुजाके आमर्षणसे शब्दायमान जिसका विग्रह है, सम्पूर्ण शत्रुओंके संहारकी जिसे इच्छा लगी हुई है तथा कल्पान्तकारी संग्रामरूपी समुद्रमें बाण-रूपी जलकी वृष्टि करनेके लिये जो मेघ है, ऐसे धनुषकी स्पष्टरूपसे फैलती हुई टंकार जो विस्मय-विमुग्ध नेत्रवाले देवताओंके स्तुतिवचनों एवं साधुवादोंसे अधिक गम्भीर हो गयी है, हमारी रक्षा करे ॥ ३ ॥

जीमूतश्यामभासा मुहुरपि भगवद्बाहुना मोहयन्ती
युद्धेषूद्भूयमाना झटिति तडिदिवालक्ष्यते यस्य मूर्तिः।
सोऽसिस्त्रासाकुलाक्षत्रिदशरिपुवपुः शोणितास्वादतृप्तो
नित्यानन्दाय भूयान्मधुमथनमनोनन्दको नन्दको नः ॥४

मेघके समान श्याम वर्णवाली भगवानकी भुजायें विराजमान होकर युद्धकालमें अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक चलनेसे जिसकी मूर्ति बिजलीकी भाँति चमककर सबको मोहित कर रही है तथा भयभीत नेत्रवाले राक्षसोंके शरीरका रक्त पान करके जिसमें उन्माद छा गया है और जो श्रीहरिके मनको मोहित करनेमें संलग्न है, वह नन्दक नामक खड्ग हमें सदा आनन्द देनेवाला बने ॥ ४ ॥

कम्राकारा मुरारेः करकमलतलेनानुरागाद् गृहीता
सम्यग्वृत्ता स्थिताग्रे सपदि न सहते दर्शनं या परेषाम्।
राजन्ती दैत्यजीवासवमदमुदिता लोहितालेपनार्द्रा
कामं दीप्तांशुकान्ता प्रदिशतु दयितेवास्य कौमोदकी नः

भगवान् विष्णुके करकमलमें जो प्रेमपूर्वक स्थान पा चुकी है, जिसकी सुन्दर आकृति है, जिसका अगला भाग भली-भाँति गोलाकार है, जो एक बार भी शत्रुओंको सामने नहीं देख सकती, जो दैत्योंके जीवनरूपी मद्यका पान करके उन्मत्त हो गयी है, रक्तके आलेपसे जो भींगी हुई है तथा

जो भगवान् विष्णुको लक्ष्मीके समान प्रिय है, वह प्रकाशमान कौमोदकी गदा हमारी इच्छा पूर्ण करे ॥ ५ ॥

यो विश्वप्राणभूतस्तनुरपि च हरेर्यानकेतुस्वरूपो
यं सञ्चिन्त्यैव सद्यः स्वयमुरगवधूवर्गगर्भाः पतन्ति ।
चञ्चच्चण्डोरुतुण्डत्रुटितफणिवसारक्तपङ्काङ्कितास्यं
वन्दे छन्दोमयं तं खगपतिममलस्वर्णवर्णं सुपर्णम् ॥६॥

जो सूक्ष्म होनेपर भी विश्वके प्राण हैं, भगवान्के रथकी ध्वजापर जिनका स्वरूप सुशोभित है, जिन्हें केवल याद करनेसे ही सर्पिणियोंके गर्भ तुरंत गिर जाते हैं, चञ्चल एवं तीखे ठोरसे कटे हुए सर्पोंकी चर्बी और रुधिरसे जिनका मुख भींगा हुआ है तथा जो छन्दोमय, स्वच्छ एवं सुवर्णकी प्रतिभावाले हैं, उन पक्षिराज गरुड़को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६॥

विष्णोर्विश्वेश्वरस्य प्रवरशयनकृत्सर्वलोकैकधर्ता
सोऽनन्तः सर्वभूतः पृथुविमलयशाः सर्ववेदैश्च वेद्यः ।
पाता विश्वस्य शश्वत्सकलसुररिपुध्वंसनः पापहन्ता ।
सर्वज्ञः सर्वसाक्षी सकलविषभयात्पातु भोगीश्वरो नः ।७

जो जगत्प्रभु भगवान् विष्णुकी उत्तम शय्या हैं, जिन्होंने अकेले ही अखिल विश्वको धारण कर रक्खा है, जो सर्वस्वरूप; सर्वज्ञ, सर्वसाक्षी, विशाल यशवाले और सम्पूर्ण वेदोंके वेद्य-विषय हैं, विश्वकी निरन्तर रक्षा करना एवं समस्त दानवोंको संहार करना जिनका स्वाभाविक गुण है, वे सर्पराज भगवान् शेष सारे विषभयसे हमारी रक्षा करें ॥७॥

वाग्भूगौर्यादिभेदैर्विदुरिह मुनयो यां यदीयैश्च पुंसां
कारुण्यार्द्रैः कटाक्षैः सकृदपि पतितैः सम्पदः स्युः समग्राः।
कुन्देन्दुस्वच्छमन्दस्मितमधुरमुखाम्भोरुहां सुन्दराङ्गीं
वन्दे वन्द्यामशेषैरपि मुरभिदुरोमन्दिरामिन्दिरां ताम् ।८

मुनिगण जिन्हें वाग्, भू और गौरी देवी आदि भेदोंसे जानते हैं, एक बार भी जिनके करुणामय कटाक्ष पड़ जानेसे पुरुषोंको सारी सम्पदाएं आ मिलती हैं, कुन्द एवं चन्द्रमाके समान स्वच्छ मुसकान भरा तथा मधुर जिनका मुखकमल है, सब लोग जिनकी वन्दना करते हैं और भगवान् विष्णुका वक्षस्थल ही जिनका आश्रय है, उन सर्वाङ्ग सुन्दरी भगवती लक्ष्मीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥८॥

या सूते सत्त्वजालं सकलमपि सदा सन्निधानेन पुंसो
धत्ते या सत्त्वयोगच्चरमचरमिदं भूतये भूतजातम् ।
धात्रीं स्थात्रीं जनित्रीं प्रकृतिमविकृतिं विश्वशक्तिं विधात्रीं
विष्णोर्विश्वात्मनस्तां विपुलगुणमयीं प्राणनाथां प्रणौमि

परम पुरुषकी सन्निधि पाकर जो अखिल जगत्की निरन्तर सृष्टि करती हैं, सत्त्व गुणका आश्रय लेकर इस चराचर भूतसमुदायका धारण एवं पोपण करना जिनका स्वाभाविक कार्य है, सृष्टि, स्थिति और पालनमें संलग्न रहने पर भी जो विकार रहित हैं, जिनकी सत्ता जगत्में व्याप्त है, विश्वस्वरूप भगवान् विष्णुने जिन्हें प्राण-प्रिया मान रक्खा है, उन विशाल गुणवाली भगवती प्रकृतिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ९ ॥

येभ्योऽसूयद्भिरुच्चैः सपदि पदमुरु त्यज्यते दैत्यवर्गैः
येभ्यो धर्तुं च मूर्ध्ना स्पृहयति सततं सर्वगीर्वाणवर्गः।
नित्यं निर्मूलनेयुर्निचिततरममी भक्तिनिघ्नात्मनां नः
पद्माक्षस्याङ्घ्रिपद्मद्वयतलनिलयाः पांसवः पापपङ्कम् ॥१०

जिनसे द्वेष करनेके कारण दैत्यगण तुरंत ऊंचे पदसे हाथ धो बैठते हैं, जिन्हें मस्तकपर धारण करनेके लिये अखिल देवसमुदाय सदा अभिलषित रहता है तथा कमललोचन भगवान् विष्णुके दोनों चरणकमलके तलुए जिनके आस्पद हैं, वे रजकण भक्तिके अधीन रहनेवाले हममें जो पापपङ्क भरा है, उसे समूल नष्ट करे ॥ १० ॥

रेखा लेखाभिवन्द्याश्चरणतलगताश्चक्रमत्स्यादिरूपाः
स्निग्धाः सूक्ष्माः सुजाता मृदुललिततरक्षामसूत्रायमाणाः
दद्युर्नो मङ्गलानि भ्रमरभरजुषा कोमलेनाब्धिजायाः
कम्रेणाम्रेड्यमानाः किसलयमृदुना पाणिना चक्रपाणेः

चक्रपाणि भगवान् विष्णुके चरणमें सुशोभित जो चक्र मत्स्य आदि रूपवाली मनोहर रेखाएं हैं, वे हमें मंगल प्रदान करें। वे रेखाएं देवताओंसे सुपूजित, सूक्ष्म, सम्यक् स्पष्ट, कोमल और अत्यन्त पतले सूत्रके समान हैं। कोंपल की भांति मृदुल एवं भ्रमरोंके झुंड द्वारा सेवित जो लक्ष्मीका हाथ है, उससे वे उन्हें प्रेमपूर्वक सहलाया करती हैं ॥ ११ ॥

भक्तके भगवान्

(लेखक—श्रीगोविन्ददत्तजी त्रिपाठी)

भक्तके भगवान् विश्वमय हैं। भक्त उनको इच्छामय, ज्ञानमय, आनन्दमय, प्रेममय, यहाँतक कि सर्वमय मानकर अपने प्राणोंको तृप्त करता है और अपार आनन्द-सागरमें गोते लगाता है। भक्तके भगवान् जलमें, पवनमें, मरुमें, तरुमें, फूलमें, फलमें सर्वत्र व्याप्त हैं। भक्तिरसके पूर्णावतार प्रह्लादजीने जब कहा कि—'श्रीहरि केवल वैकुण्ठमें ही वास नहीं करते हैं, उनका निवास तो इस विशाल ब्रह्माण्डके प्रत्येक पदार्थमें है।' तो यह सुन हिरण्यकशिपुने क्रोधसे जलते हुए कहा कि 'रे मूर्ख! तेरे हरि यदि सकल पदार्थोंमें हैं तो क्या इस स्फटिकके खम्भेमें भी हैं?' प्रह्लादजीने विनयपूर्वक मस्तक नवाकर उत्तर दिया 'जगत्के प्रत्येक परमाणुमें जिनके चेतनांशकी स्फूर्ति है वह श्रीहरि निःसन्देह यहाँ भी हैं।' प्रह्लादजीको दृढ़ विश्वास था कि हरि जगन्मय हैं। वास्तवमें इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर अन्तमें हिरण्यकशिपुने भी प्रह्लादजीको 'कुलभूषण' कहा था। यद्यपि हिरण्यकशिपु भक्तिभावका साधक नहीं था परन्तु वह शत्रु-भावसे भगवत्प्राप्तिका एक महान् दृष्टान्त हो गया। उसको निःसन्देह भगवत्प्राप्ति हुई। इसमें सभी शास्त्र एकमत हैं।

किसी भी भावसे भगवान् को भजा जाय, सच्ची तन्मयता होनेपर भगवत्-प्राप्ति हो ही जाती है। श्रीनारदजी राजा युधिष्ठिरसे कहते हैं कि 'गोपियाँ कामभावसे भगवान्‌का भजन करके भगवत्पदको प्राप्त हुईं, कंसने भयसे ध्यान करके तथा श्रीकृष्ण द्वेषी शिशुपालादि राजाओंने द्वेषभावसे चिन्तन करके भगवान्‌के चरणोंमें स्थान प्राप्त किया, यादववंशी पुरुषोंने भगवान् श्रीकृष्णको आत्मीयरूपसे ग्रहण करके उनके चरणोंमें गति पायी, तुम भगवान्‌से स्नेह करके ही उनके कृपापात्र बने हो एवं मैं भी भक्तिको साधकर ही श्रीहरिके कृपाकणको पानेमें समर्थ हुआ हूँ।' श्रीकृष्णमें चित्त लगाती हुई गोपियाँ उनको कान्त सम्बोधन करती थीं, वह भ्राता-पुत्रका भाव प्रदर्शित नहीं करतीं थीं, वह प्यारे श्रीकृष्णको प्राणनाथ कहकर ही अतुल सुख-सागरमें डूब जाती थीं। श्रीकृष्णके उद्देश्यसे अनिवेदित उनका कुछ नहीं था। गोपियोंने जान लिया था कि हमारे प्राणेश्वर—ब्रजेश्वर—श्रीहरि इस विश्व-ब्रह्माण्डके सकल स्थानमें विद्यमान हैं, वह जिधर देखती थीं उधर ही श्रीकृष्णका दर्शन पाती थीं, अतएव वे लज्जा करके कहाँ छिपतीं और भय मानकर कहाँ भागकर जातीं? नौ प्रकारकी भक्तिमें अन्तिम लक्षण आत्मनिवेदन उनके हृदयमें प्रकट हुआ था; उन्होंने सम्पद् विपद्, सुख दुख, प्राण-मन, कुलमान—सभी श्रीकृष्ण प्यारेके उद्देश्यसे समर्पण कर दिया था। श्रीकृष्ण प्यारे के उद्देश्यसे समर्पण कर दिया था। श्रीकृष्णके सुख-दुःख के अतिरिक्त उनको और कोई सुख-दुःख नहीं मालूम होता था, उनका संसार एकमात्र प्राण प्रिय श्रीकृष्णमय हो गया था। इस तन्मयभावमें ही शत्रुता, मित्रता, स्नेह और अनवरत भक्ति आदि सकल मार्गोंकी समाप्ति है। कंसने भयसे और शिशुपाल, हिरण्यकशिपु आदिने द्वेषभावसे ही सकल स्थानोंमें हरिका दर्शन किया था।

आसीनः संविशन्तिष्ठन्पर्यटन्प्रवदन्पिबन्।
चिन्त्यमानो हृषीकेशमपश्यं तन्मयं जगत्॥

कंस बैठे हैं, देखा—चारों ओर कृष्ण हैं। उठकर घरमें गये, वहाँ भी देखा—सर्वत्र कृष्ण हैं, घबड़ाकर खड़े हो गये, तब भी देखा कि समस्त स्थानोंमें कृष्ण विराजमान हैं। विचरनेमें, सम्भाषण करनेमें, भोजन पान करनेमें, सर्वदा अन्तःकरणमें, श्रीकृष्णकी चिन्ता उदय होनेके कारण

कंसको मानो जगत् ही श्रीकृष्णमय प्रतीत होता था। यहाँ तन्मयता प्रकटरूपसे विद्यमान है। शिशुपाल आदिके अन्तःकरणमें सर्वदा हरिको पराजय करनेकी वासना उदित रहती थी, अतः वह प्रतिक्षण शत्रुरूपसे श्रीकृष्णका चिन्तन करके उनमें तन्मय हुए थे। यादवोंके आत्मीय ज्ञान और पाण्डवोंके स्नेहने वास्तवमें भगवान्को वशमें किया था। पाण्डवोंके दूत, सारथी आदि आनुगत्यको भगवान् अपना भूषण समझते थे, भक्तिके विषयमें नारद, शुक, शाण्डिल्य प्रह्लाद, ध्रुव आदि अनेक उज्ज्वल दृष्टान्त हैं, वे सब भगवान्में भगवद्भावना ही करते थे। भक्तगण पुत्रभाव, शत्रुभाव, सख्यभाव, कान्तभाव और महामहिम परमेश्वभाव आदि भिन्न-भिन्न भावोंसे चित्तमें चिन्तन करके भगवान्की चिन्तामें अनन्य अनुरागकर तन्मयता और परिणाममें तत्परताको प्राप्त हुए। साधनकी रीति भिन्न भिन्न होनेपर भी गति एक ही हैं। जगत्में जितने भी पदार्थ हैं, सब सब श्रीभगवान्की विभूति हैं। पति पुत्र, मित्र शत्रु आदि सभी भावोंसे भगवान्की भक्ति हो सकती है, जो भक्त जिस भावसे भगवान्को आत्मसमर्पण करता है भगवान् उसके सम्मुख उसी भावसे प्रकट होते हैं। भगवान्की मूर्ति भक्तके भावानुसार ही प्रकट होती है। भक्तके मनमें श्रीकृष्ण होंगे तो सन्मुख भी श्रीकृष्ण होंगे। मनमें भगवती माँ दुर्गा होंगी तो सामने भी उसीका रूप दिखायी देगा। ऐसे ही श्वेत, कृष्ण, नील, रक्त आदि विविध वर्णों और द्विभुज, चतुर्भुज, दशभुज, मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, स्त्री, पुरुष आदि भिन्न-भिन्न रूपोंमें भक्त अपने भगवान्की भावना कर सकता है। अपने मनमाने आभूषणोंसे वह अपनी इच्छानुसार भगवान्को सजा सकता है। श्वेत, नील आदि सभी भगवान्की स्फूर्ति हैं। श्रीराधाने श्रीकृष्णसे बिछुड़कर कितने ही कृष्ण-वर्णोंको मस्तक और हृदयमें स्थान दिया था, जब किसी प्रकार भी उनकी प्रबल पिपासा दूर न हुई, तब जगन्माताने स्वयं ही श्रीकृष्ण का वेष धारणकर सखियोंके साथ रहस्य सजाया था। उद्धवजी श्रीकृष्णका वेष धरकर ही समय व्यतीत किया करते थे। भगवान्के खोजनेके लिये घरसे निकलकर वनमें जानेकी भी आवश्यकता नहीं है। भक्तका मार्ग बड़ा सरल और स्वच्छ है। भक्त भगवान्की महिमाकी मधुरतासे तृप्त होकर विषयी-सा दीखनेपर भी वास्तवमें संन्यासी है। योगमार्गके साधन यम, नियम, प्राणायामादि बड़े कष्टसाध्य हैं। यही दशा ज्ञानकी है, उसमें विद्या चाहिये, बुद्धि चाहिये और भी अनेक साधनोंकी आवश्यकता है परन्तु भक्तिका सोता योग, ज्ञान, विज्ञानादि सभीको अपने उदरमें धारण किये हुए है। भक्तिमार्गमें चाण्डाल या व्याधका विचार नहीं। भगवान्में प्राणोंके संलग्न होते ही भक्तिका द्वार खुल जाता है, व्यर्थ विचार और वृथा झञ्झटमें टकराना नहीं पड़ता। भक्तके लिये बस, प्राणपट खोलकर श्रीहरिका चिन्तन करनेकी आवश्यकता है। ऐसा करनेसे तुरन्त प्रेमानन्द प्रकट हो जाता है, जगत्में दुर्लभ अमृतरसका पान करनेसे साधककी भवपिपासा शान्त हो जाती है फिर उस भक्तको मोक्ष पानेकी भी इच्छा नहीं रहती। वह सच्चिदानन्द-समुद्रमें सुखसे बड़वानलके समान जलना चाहता है। भक्तिके बिना ज्ञान व्यर्थ है और ज्ञानहीनसे भक्ति हो भी नहीं सकती। जिसको जाना ही नहीं; उससे प्रेम कैसे कर सकते हैं? भक्तके भगवान् किसी खास सम्प्रदायका आदर नहीं करते, उनके दरबारमें समतारूपी अटल मन्त्रीका हुक्म चलता है। भक्तिसम्प्रदायके आचार्य शाण्डिल्य ऋषिने भी ज्ञानकी उपेक्षा नहीं की है, भक्तिके सोतेमें तो ज्ञानमार्ग छिपा ही हुआ है। इसी प्रकार भक्ताचार्य-शिरोमणि देवर्षि नारदजीने भक्तिरहित केवल ज्ञानके द्वारा मुक्तिके सोपानमें एक चरण बढ़ाना भी कठिन कहा है।

जिसका भेद-भाव दूर हो गया है, जो सबमें समानभावसे भगवान्को देखता है उसे ही ज्ञानवान् कह सकते हैं, और प्रधान भक्त भी इसी परम ज्ञानके धनी होते हैं, जहाँ निरन्तर भगवान्का चिन्तन है वहाँ दूसरे ज्ञानको स्थान ही कहाँ है। भगवान् वादविवादसे दूर रहते हैं; साधक ज्ञानी हो या भक्तयोगी हो या कर्मी सभी अन्तिम उद्देश्यको सिद्धकर उस एक ही समरसानन्दसिन्धुमें निमग्न होते हैं।

वैराग्य

(लेखक—स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

(गताङ्क से आगे)

राजा भर्तृहरिको अपनी पहली अवस्थामें किये हुए कार्यों पर तो पश्चात्ताप ही हुआ, अन्तमें संतोष तो वैराग्यसे ही हुआ। वे कहते हैं—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

हमने भोगोंको नहीं भोगा; भोगोंने ही हमें भोग लिया, हमें समाप्त कर दिया। अच्छे कुलमें जन्म होनेपर भी उससे गिरनेका भय रहता है। धनवान्को अपने पुत्रसे भी भय लगता है, फिर राजासे भय हो, इसमें तो कहना ही क्या है! मानमें दीनताका भय बना रहता है तो बलमें रिपुका भय उत्पन्न हो जाता है। बुढ़ापेका भय तो प्रसिद्ध ही है। उस अवस्थामें मनुष्य तीन पगोंसे चलता है—

लकरी पकरी सुखरी करमें,
पग पंथ परे न भरे डग री।
नगरी तनरी सुपुरानि परी,
अब लूटत है भगरी बगरी॥
न घरी भर बैठ भज्यो सु हरी,
कथ कूर करी जगरी सगरी।
अब री बिरधापन बात बुरी,
सु अरी सम लागत है सुत री॥

एक संत कहते हैं—

जरा कुती जोबन ससो काल अहेरी लार।
पाव पलकमें मारसी गरब्यो कहा गँवार॥

जरा आनेपर वह बल, वह उत्साह, वह साहस कहाँ गया?

शास्त्रोंमें वाद-विवादका बड़ा भय रहता है। अन्य व्यक्तियोंकी अपेक्षा तो पढ़े-लिखेको ताप भी अधिक होता है। गँवारके केवल आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—ये तीन ताप होते हैं, पर पढ़े-लिखे विद्वान्के ताप सात होते हैं—(१) आधिभौतिक, (२) आधिदैविक, (३) आध्यात्मिक, (४) अभ्यास (शास्त्रका अभ्यास), (५) भङ्ग (अपमानका भय), (६) विस्मार (भूल न जाऊँ—इसकी चिन्ता) और (७) गर्व (विद्वत्ताका अभिमान)।

'गुणे खलभयम्'—जहां परीक्षक नहीं, गुणी नहीं, गुणग्राही नहीं, वहां मूर्खों में हमारा मूल्य ही क्या। एक गवैये थे। वे बड़ी सुन्दर सितार लेकर राजाके पास गये। पर राजा मूर्ख था, संगीतको क्या समझता! इसपर किसी कवि ने कहा—

रे गायक ये गायसुत तू जानत परवीन।
ये गाहक कड़बीन के तैं लीन्हीं कर बीन॥

गुण कितने ही हों, पर गुणग्राहक नहीं तो उन्हें कौन लेगा? भर्तृहरि कहते हैं—'हमारे पास बहुत विद्या थी, पर किसीने नहीं ली'—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्॥

इसी प्रकार एक कवि ने कहा है—

कौन सुनै कासों कहूँ सुने तो समुझै नाहिं।
कहना सुनना समझना मन ही का मन माहिं॥

'काये कृतान्ताद्भयम्'--शरीरके पीछे तो यमराज सदा ताकमें खड़े ही रहते हैं कि कब कलेवा करें---

इस श्वासका मूढ़ बिश्वास कहा
पल आवत ही रह जावता है।
सब पीर पैगम्बर खाक मिले
तेरो का अनुमान फुलावता है॥

बड़े-बड़े राजा-महाराजा हो गये। अब उनके महलों के टूटे-फूटे खँडहर पड़े हैं। उनको देखनेसे मन में वैराग्य होता है, जो सर्वथा अभयप्रद हैं। जिसके हृदयमें वैराग्य है, उसे शरीरके जानेका भी भय नहीं; फिर नाशवान् पदार्थों के चले जानेका तो भय ही क्या है। क्योंकि—

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत् स्वयममून्।
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति॥

विषय-पदार्थ चाहे दीर्घ कालतक रहें, पर एक दिन वे अवश्य जानेवाले हैं—चाहे हम उनका त्याग कर दें अथवा वे हमें त्याग दें। उनका विछोह अवश्य होगा। पर संसारी मानव स्वयं उनका त्याग नहीं करते। जब विषय-पदार्थ स्वतन्त्रतासे उनका त्याग करते हैं, तब उनके मनको बड़ा संताप होता है, परंतु यदि वे स्वयं उनका त्याग कर दें तो उन्हें अनन्त सुख-शान्तिकी प्राप्ति हो सकती है।

मनसे छोड़ देनेपर ये ही पदार्थ सुख देनेवाले हो जायँगे। जैसे, दस रुपये चोरी चले गये तो दुःख होता है; पर अपनी इच्छासे दान दे दिया तो सुख होता है, किंतु उनके सम्बन्धविच्छेदमें तो कोई भेद नहीं।

कहा परदेसी की प्रीति जावतो बार न लावै।
आत न देख्यो जात न जाण्यो
क्या कहियाँ बणि आवै॥१॥
जैसे बास फूलन तें बिछुरे
माहो माहि समावै॥२॥
जैसे संग सरायको दिन
ऊगे उठि जावै॥३॥
जैमलदास अगम रस घटमें
जो खोजै सो पावै॥४॥

—जानेवाला हो, उसे एक धक्का अपनी तरफसे दे दे और कह दे कि जा, चला जा तो मौज हो जाय।

एक जाट-दम्पति थे।—दोनोंमें खटपट चला करती। जाटनी बार बार कहा करती कि 'मैं अब तुम्हारे घर नहीं रहूँगी, चली जाऊँगी।' जाटने सोचा—'नित्य लड़ाई करती है, अन्तमें यह जायगी ही, इज्जत भी लेती जायगी। इससे तो इसे पहले ही त्याग देना अच्छा है।' एक दिन जब रातमें स्त्रीने स्पष्ट कह दिया कि 'कल सबेरे मैं चली ही जाऊँगी,' तब जाटने रातमें अपने कोठेपर खड़े होकर गाँव-वालोंको जोरसे घोषणा कर दी कि 'अब मुझे कोई उलाहना न देना, मैंने आजसे ही अपनी पत्नीका परित्याग कर दिया है। स्त्री चली नहीं गयी, उसे मैंने निकाल दिया है।' ऐसे ही संसारके समस्त पदार्थ जाटनीकी तरह हैं, अतः इन्हें पहलेसे ही त्याग दे। पदार्थों को स्वयं त्याग देनेपर ये परम शान्ति देनेवाले हो जाते हैं—

अंतहु तोहि तजैंगे पामर! तू न तजे अबही ते।

ऐसा विचार करके भर्तृहरि कहते हैं—

अजानन् दाहार्त्तिं पतति शलभस्तीव्रदहने
न मीनोऽपि ज्ञात्वा बडिशयुतमश्नाति पिशितम्।

विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्
न मुञ्चामः कामानहह ! गहनो मोहमहिमा ॥

'पतिंगा इस बातको नहीं जानता कि जलनेपर कैसी पीड़ा होती है, इसीलिये वह प्रचण्ड अग्निमें कूद पड़ता है। मछलीको भी वंसीमें लगा हुआ मांस-का टुकड़ा खाते समय पता नहीं रहता कि उसके भीतर लोहेका कांटा है। परंतु हम तो यह जानते हुए भी कि विषय-भोग विपत्तिके जालमें फंसानेवाले हैं, उन्हें छोड़ नहीं पाते। अहो ! हमारा कितना बड़ा और घना अज्ञान है।'

कई बार पदार्थोंको देखा, अनेक बार भोगोंको भोगकर देखा, फिर भी उनके पीछे पड़े हैं। पतिंगे आदि जानवर तो विषयसङ्गसे एक बार ही मरे, पर हमलोग तो भोगोंको भोगकर बार-बार मर रहे हैं, पर फिर भी चेत नहीं हो रहा है। बार-बार ठोकर लगनेपर भी संभलने का नाम नहीं लेते। आखिर कब अक्ल आयगी। बूढ़े हो गये, जीवनका अमूल्य समय चला गया; फिर भी विषयोंकी ओर लोलुपतासे देख रहे हैं ! पौत्रका, प्रपौत्रका मुंह देखना चाहते हैं। अरे, धनसे सुख मिलता दीखे तो धनी से पूछो; स्त्रियोंमें सुखका भ्रम हो तो जिसके दो तीन स्त्रियाँ हों, उससे पूछो, सामग्रीमें सुख दीखे तो अधिक सामग्रीवालोंसे मिलो। राज्यमें सुख दीखे तो राजाओंसे मिलकर बात कर लो। सुख तो कहीं नहीं मिलेगा, क्योंकि सुख तो केवल चाहके त्यागमें—वैराग्यमें ही है। कहा है—

चाह चूहड़ी रामदास सब नीचोंमें नीच।
तू तो केवल ब्रह्म था चाह न होती बीच॥

पर रागभरी दृष्टिवालोंको कोई वैराग्यवान् दीखता ही नहीं, जहां देखो वहां रागी-ही-रागी दीखते हैं। बात भी ठीक है, सच्चे वैराग्यवान् हैं ही कम, क्योंकि—

आदि अविद्या अटपटी घट घट बीच अड़ी।
कहो कैसे समझाइये कूए भाँग पड़ी॥

बातें बड़ी बड़ी वैराग्यकी बनाते हैं, पर पदार्थोंको भोगोंको देखकर जीभ लपलपाने लगती है। गीध बड़ा ऊँचा उड़ता है, पर उसकी दृष्टि नीचे सड़े मांसपर रहती है ! यह तो राग ही है !

जो सच्चा वैराग्यवान् होता है उसकी दृष्टि ही निराली हो जाती है। वैराग्यवान् जिधरसे निकल जाता है, उधर ही बड़ी मस्ती लहराने लगती है। वैराग्यवान् पुरुषकी सुखमयी स्थितिका वर्णन करते हुए भर्तृहरिजी कहते हैं—

मही रम्या शय्या मसृणमुपधानं भुजलता
वितानश्चाकाशो व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासङ्गमुदितः
सुखी शान्तः शेते विगतभवभीतिर्नृप इव॥

'विरतिरूपी कान्ताके प्रसङ्गसे प्रमुदित होकर पृथ्वीकी रमणीय शय्या, अपनी भुजलताका सुन्दर तकिया, आकाशरूपी चँदोवा, पवनरूप अनुकूल पंखा, चन्द्रमारूप सुन्दर दीपक आदि विविध सामग्रियोंसे युक्त भवभयसे विमुक्त पुरुष शान्तचित्त होकर राजाकी भांति सुखसे सोता है।'

वैराग्यवान् पुरुष शहरकी गंदी गलियोंमें विष्ठाके कीड़ोंकी तरह क्यों घूमेगा। एक साधु कहा करते थे कि 'मैं अपने मनको समझता हूँ कि तू भोजन वस्त्रादिकी कोई चाहना मत कर, नहीं तो तुझे शहरकी गंदी गलियां सूंघनी पड़ेंगी और बार-बार जन्मना-मरना पड़ेगा।' श्रीशङ्कराचार्यजी कहते हैं—

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं
पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।

मनुष्य विषयोंकी गंदगीका तनिक-सा विचार कर ले तो उसे उल्टी होने लग जाय।

गंदगीको कीड़ो मूढ़ मानत अनंदगी ।
मायाको मजूर बंदो कहा जाने बंदगी ॥

विषय-लोलुप जीव विषयोंमें रचे पचे रहकर सुख मानते हैं ! ऐसे व्यक्तियोंमें और कीड़ोंमें क्या अन्तर है।

गुल शोर बबूला आग हवा
सब कीचड़ पानी मिट्टी है ।
हम देख चुके इस दुनियाको,
सब धोखेकी-सी टट्टी है ॥

× × ×

दूरहिं ते पर्वत दिपै, बेस्या बदन बिभात ।
रनका बरनन, रम्य त्रय दूरहि से दरसात ॥

पर्वत और वेश्याका मुख दूरसे ही सुन्दर दीखता है तथा दूरसे ही रणका वर्णन रम्य प्रतीत होता है, पर वहां पहुँचनेपर अच्छे-अच्छेके छक्के छूट जाते हैं। इसी तरह वैराग्यवान्‌की मस्तीका अनुभव विरक्त ही करता है। हम पदार्थोंमें सुख खोजते हैं, पर पदार्थोंमें सुख कहाँ। भगवान् तो इस जगत्‌को दुःखालय और अशाश्वत बतलाते हैं। जिसमें हमारे बाप दादोंको भी सुख नहीं मिला, उसमें हमें सुख कैसे मिलेगा। रज्जबजी दूल्हा बने जा रहे थे। रास्तेमें गुरुसे मिलने गये तो गुरुने कहा—

रज्जब ! तैं गज्जब कियो, माथे बाँध्यो मौर ।
आयो थो हरिभजनको, करी नरक महँ ठौर ॥

रज्जबजीने कहा—'रज्जब गज्जब जब हुतो, जातो दुनिया साथ।' रज्जबजी ऐसे थे, जिन्हें—

जी० क० ३—

दादूसे सतगुरु मिले, सिष रज्जबसे जान।
एकहि सब्द सुलझि गये, रही न खैंचातान॥

एक ही शब्द काम कर गया ! वैराग्यवान् पुरुषोंको तो देखनेसे ही वैराग्य हो जाता है। वेश्याको दत्तात्रेयजी ने कहा कुछ नहीं, उसे उनको देखते ही वैराग्य हो गया ! क्योंकि वैराग्यवान् की मुद्रा ऐसी ही होती है।

खंडी हंडी हाथ में बंडी-सी कौपीन।
हंडी दिसि देखे नहीं, काया दंडी कीन॥

वैराग्य की बात में भी इतना आनन्द है तो फिर यदि हृदय से सच्चा वैराग्य हो जाय, तब तो आनन्द का कहना ही क्या। सच्चे वैराग्यवान के सामने बढ़िया वस्त्र पहन कर इत्र आदि लगाकर एवं शृङ्गार करके बैठनेवाले को बैठने में भी संकोच होता है। उपर्युक्त प्रकारका वैराग्य विवेक विचार से होनेवाला वैराग्य है। किंतु साधन से होनेवाला वैराग्य विचार से होनेवाला वैराग्य से भी श्रेष्ठ है। वाणी से राम-नाम का जप प्रारम्भ कर दिया—'राम राम राम राम राम'। शरीर रोमाञ्चित और पुलकित हो रहा है तथा हृदय में लबालब प्रेम भरा हैं, भगवान् की बात सुनकर ही नाचने लग जाता है। उस हालत में कभी भूलकर भी पदार्थों की ओर मन नहीं जाता, उसे स्वाभाविक ही भोगों से वैराग्य रहता है। मन तो भगवान् की ओर ही प्रतिक्षण बरबस खिंचता रहता है। उसके हृदय में प्रेमानन्द समाता नहीं। वह तो यही कहता रहता है कि 'गिरधारीलाल ! चाकर राखो

जी' और वह मीराकी तरह प्रेम में मस्त होकर नाचने लगता है।

पग घुँघरु बाँध मीरा नाची रे।

मतवाली मीरा प्रेम में मस्त होकर लगी नाचने। कारण क्या ? भजन का रस मिल गया। सांसारिक दृष्टि से ज्यादा-से ज्यादा आकर्षक मान-लड़ाई, यश-कीर्ति हैं; इनकी तो परवा ही क्या हो, उल्टी बदनामी से डर न लगकर वह मीठी लगने लगती है। मीरा कहती है—

या बदनामी लागे मीठी। राणाजी !
म्हाँने या बदनामी लागे मीठी।
थारे शहर को राणा! लोक निमाणो,
बात करे अणदीठी ॥
हरि मंदिर को नेम हमारे दुरजन
लोका म्हाने दीठी ॥ राणाजी०॥
साँकड़ी सेरयाँ में म्हारा सतगुरु मिलिया,
किस बिधि फिरूँ अफूटी।
म्हारो साँवरियो राणा घट-घट व्यापक,
थाँरे हियें री काँई फूटी ॥
सासु ननद म्हारी देराणी जेठाणी
बल-जल हो गयी अँगीठी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर
चढ़ गयो चोल मजीठी ॥ राणाजी० ॥

इस प्रकार साधन-भजन करने पर जो वैराग्य होता है, उससे पदार्थों में राग अपने-आप अनायास मिट जाता है। भजनानन्दी को पदार्थों से अरुचि करनी नहीं पड़ती। उसका मन तो भगवान् में सहज ही संलग्न हो जाता है। यदि कहें कि हम लोगों का मन हर जगह जाता है, तो ठीक है; हर जगह जाता है पर भगवान् पर नहीं जाता। और अगर भगवान् पर चला जाय तो फिर लौटकर संसार में आयेगा नहीं। मक्खी सब जगह जाकर बैठती है, पर आग पर नहीं। वह आग पर बैठती ही नहीं; पर यदि आग पर बैठ जाय तो फिर उठती ही नहीं। इसी प्रकार भगवान् में मन लग जाने पर फिर कहीं नहीं जाता, तद्रूप हो जाता है। अतः संसार से वैराग्य और भगवान् में प्रेम होने के लिये हम लोगों को बड़ी तेजी से भगवान् का भजन करना चाहिये—

कहै दास सगराम बड़गड़ै[1] घालो घालो घोड़ा।
भजन करो भरपूर रया दिन बाकी थोड़ा ॥
थोड़ा दिन बाकी रया कद पहुँचोला ठेट।
अधबिच में बासो बसो तो पड़सो किणरे पेट ॥
पड़सो किणरे पेट पड़ैला मारी फोड़ा।
कहै दास सगराम बड़ड़ै घालो घोड़ा ॥

एक भक्त दम्पति थे। पति पत्नी दोनों ही बड़े भजनानन्दी थे। उनके भजन करने का तरीका यह था कि वे अपने पास में कुछ उड़द रख लेते और एक माला फेरने पर एक उड़द उठाकर रख देते। इस प्रकार सेर, डेढ़ सेर तथा दो-दो, तीन-तीन सेर तक उड़द समाप्त हो जाते। पति कहता कि मैं आध सेर भजन करूँगा तो पत्नी कहती, मैं एक सेर करूँगी। परस्पर होड़ लग जाती। हमें भी इसी प्रकार तेजी से भजन करना चाहिये। भजन करते करते क्या स्थिति होती है, इस पर भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥

१ बड़गड़ै = तेजी से।

'मेरा नाम गुण-कीर्तन करते समय जिसका गला भर आता है, हृदय द्रवित हो जाता है, जो बार-बार मेरे प्रेम में आँसू ढालता है, कभी हँसने लगता है, कभी लाज-शर्म छोड़कर उच्च स्वर से गाने और नाचने लगता है, ऐसा मेरा भक्त त्रिलोकी को पवित्र कर देता है।'

इसी प्रकार रामगीता में भी कहा है—

यः सेवते मामगुणं गुणात्परं
हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम् ।
सोऽहं स्वपादाश्रितरेणुभिः स्पृशन्
पुनाति लोकत्रितयं यथा रविः ॥

'जो मेरे निर्गुण स्वरूप की मन में उपासना करता है अथवा कभी कभी मायिक गुणों से अतीत मेरे सगुण स्वरूप की भी सेवा-अर्चा करता है, वह मेरा ही स्वरूप है। वह अपनी चरण-रज के स्पर्श से सूर्य की भाँति तीनों लोकों को पवित्र कर देता है।'

ऐसे भगवान् के प्यारे भक्त भगवान् की स्मृति में आनन्द विभोर होकर घूमते हैं तो उनके दर्शन से ही वैराग्य हो जाता है। जिस गली में होकर वे निकल जायँ, उधर ही वैराग्य और भगवत्प्रेम की गङ्गा बह जाय। सुतीक्ष्ण जैसे भक्तों की स्मृति हो जाय तो वैराग्य हो जाय। भगवान् भी तरु-ओट से छिपकर देखते हैं। क्यों? अपने ध्यान में निमग्न भक्त को देखकर वे भी मस्त हो गये और छिपकर देखने लगे।

साधन करने से अन्तःकरण निर्मल होता है, फिर उससे वैराग्य होता है। इस प्रकार का वैराग्य विचार से होनेवाले वैराग्य से भी ऊँचा है।

परमात्मा की प्राप्ति हो जाने पर होनेवाला वैराग्य बहुत ही अलौकिक है, उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता; उसे न तो राग कह सकते हैं न वैराग्य ही। ऐसा विलक्षण वैराग्य परमात्मप्राप्त महापुरुषों का ही होता है। ब्रह्मलोकतकके कभी कैसे ही कितने ही भोग क्यों न प्राप्त हों, उनके अन्तःकरण में रागकी गन्ध की भी कभी जागृति होने की सम्भावना नहीं रहती; क्योंकि जब एक परमात्मतत्त्व के सिवा अन्य सत्ता ही मिट जाती है, तब किसके प्रति राग हो। पदार्थों में सत्ता न रहने के कारण उनको परमात्मतत्त्व के सिवा कहीं रस या सार कुछ भी प्राप्त नहीं होता। उनके अन्तःकरण में अन्तःकरण सहित संसार का मृगतृष्णा-जल की भाँति तथा नींद से जगनेपर स्वप्न की भाँति अत्यन्त अभाव और परमात्मतत्त्वका भाव नित्य निरन्तर दृढ़ता के साथ स्वाभाविक ही बना रहता है। फिर परमात्मतत्त्वके सिवा कुछ रहता ही नहीं।

उक्त अनिर्वचनीय स्थितिको प्राप्त करने के लिए वैराग्यवा पुरुषों और भगवत्प्राप्त पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये। उनके शब्दोंसे उनकी क्रियाओं से शिक्षा लेकर हमें तेजी से चलना चाहिये। संसार के पदार्थों में कभी किसी को सुख हुआ नहीं, होगा नहीं हो सकता नहीं। ऐसा विचार कर भक्तिमार्गी को भगवान् में मन लगाने की चेष्टा करनी चाहिये तथा ज्ञानमार्गी को चित्त से पदार्थोंकी सत्ता को मिटाकर एक सच्चिदा- नन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्मा ही है— ऐसा दृढ़ निश्चय निरन्तर रखना चाहिये।

॥ श्रीहरिः ॥

नाम-माहात्म्यके नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नामके माहात्म्यका वर्णन करके श्रीभगन्नामका प्रचार करना, जिससे सांसारिक जीवों-का कल्याण हो।

नियम :—

१—"नाम-माहात्म्य" में श्री पूर्व आचार्य महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्ध सन्तोंके उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा और भक्तिसम्बन्धी लेख एवं श्रीभगवान् और उनके भक्तोंके चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखोंके बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करनेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। लेखोंमें प्रकाशित मतका उत्तरदायी सम्पादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरीसे आरम्भ होता है। ग्राहक किसी भी मासमें बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरीके अंकसे निकले सभी अंक दिये जायँगे।

४—जिनके पास जो अंक न पहुँचे, वे अपने डाकखानेसे पूछें, वहाँसे मिलनेवाले उत्तर को हमें भेजनेपर दूसरी प्रति विना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे भेजना चाहिये। वी॰पी॰ से मंगवाने पर।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं और समय भी अधिक लगता है।

७—समस्त पत्रव्यवहार व्यवस्थापक, "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु॰ पो॰ वृन्दावन (मथुरा) के पतेसे करना चाहिये।

उत्तम पुरुष

जो जितेन्द्रिय पुरुष दोषके सारे कारणोंको त्याग देता है उसके धर्म, अर्थ और कामकी थोड़ी भी हानि नहीं होती। जो विद्याविनय-सम्पन्न सदाचारी बुद्धिमान् पुरुष पापिके प्रति पापका व्यवहार नहीं करता, कुटिल मनुष्योंसे मीठा बोलता है तथा जिसका अंतःकरण सदा मित्रताके भावसे द्रवीभूत रहता हैं, मुक्ति उसकी मुट्ठीमें रहती है। जो वीतराग महापुरुष काम, क्रोध और लोभादिके कभी वशमें नहीं होते तथा सर्वदा सदाचारमें स्थित रहते हैं, उनके प्रभावसे ही यह पृथ्वी टिकी हुई है। जो कार्य इस लोक और परलोकमें जीवोंका हित करने वाला हो, बुद्धिमान् पुरुषको मन, वचन और कर्मसे उसीका आचरण करना चाहिये। जो मनुष्य देवता और ऋषियोंकी पूजा करता है, पितरोंके लिये श्राद्ध-तर्पण करता है और अतिथिका सत्कार करता है, वह उत्तम लोकोंको जाता है। जो मनुष्य इन्द्रियोंको जीतकर सबका हितकर, मधुर और अल्प भाषण करता है वह आनन्दके हेतुभूत अक्षय लोकोंको प्राप्त होता है। जो पुरुष बुद्धिमान्, लज्जाशील, क्षमापरायण, आस्तिक और विनयी है वह उत्तम पुरुषोंके योग्य श्रेष्ठ लोकोंमें जाता है।

—विष्णुपुराण

नाम माहात्म्य



वर्ष १३] वृन्दावन [अङ्क ८

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

[अगस्त सन् १९५६]

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावोंसे प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताहमें "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जाते हैं; फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले, उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भेजा जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्रव्यवहारमें अपना ग्राहक-नम्बर लिखनेकी कृपा करें एवं उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजने चाहिये। पत्रव्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पतेपर स्पष्ट अक्षरोंमें लिख कर भेजिये।

व्यवस्थापकः—"नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम

पोस्ट—वृन्दावन (मथुरा

सम्पादक तथा प्रकाशक—गौरगोपाल मानसिंहका, श्रीभगवान् भजनाश्रम, वृन्दावन (मथुरा)।
मुद्रक—राममोहन शास्त्री, श्रीगोविन्द मुद्रणालय, काशी।

श्रीहरिः



वर्ष १३ || "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन, अगस्त सन् १९५३ || अङ्क ८

मोहनी व्रजभूमि

अति मोहनि सब भूमि व्रज चौरासी कोस की।
लता रहीं झुकि झूमि मोहन कुञ्जन कुंज मँह ॥
मोहन श्री वृन्दाविपिन मोहन यमुना वारि।
बोलत वचनामृत मधुर मोहन गोकुल नारि ॥
मोहन मोहन रसिक वर मोहन राधारानि।
वसौ राधिकादासके मनमन्दिर सुख मानि ॥

'श्री युगलशत' के 'व्रजभूमि मोहनी मैं जानी' इ० पदकी छाया।

पं० श्रीराधिकादास ज्ञानी वाटिका ॥

श्रीभगवन्नाम संकीर्तन करो और शास्त्रानुसार चल अपना बेड़ापार करो

एक षोडशवर्षीय अद्भुत बालसंतजी महाराजके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश

(प्रेषक—भक्तरामशरणदासजी पिलखुवा)

अभी उस दिन पिलखुवा हमारे स्थानपर एक षोडशवर्षीय अद्भुत बालसंतजी महाराज पधारे। आप महाराणाप्रतापकी भूमि उदयपुर मेवाड़की तरफके रहनेवाले हैं आपके उपदेश सुनने और दर्शन करनेके लिये जनता उमड़ पड़ी। इन षोडशवर्षीय बालसंतके सम्बन्धमें बताया जाता है कि आपकी आयु १६ वर्षकी है और आप न तो एक अक्षर पढ़े हैं और न कुछ लिखना ही जानते हैं फिर भी आप पूर्वजन्मों संस्कारोंके कारण ८ वर्षकी आयुसे ही उपदेश देते हुये घूमते हैं। आपका उपदेश सनातन वर्णाश्रम धर्मकी महत्ता, श्रीभगवन्नाममहिमा, श्राद्ध, तर्पण अवतारवाद मूर्तिपूजापर होता है जो बड़ाही महत्त्वपूर्ण और शास्त्रोक्त होता है। आप १६ वर्षके हैं, गौरवर्ण के हैं सुन्दर बालक हैं, सरपर लम्बे लम्बे लटकते केश हैं, पीला वस्त्र पहिनते हैं, गलेमें कटार लटकाये रहते हैं और बड़े ही सरल स्वभावके हैं। आप श्रीभगवती-जीके परम उपासक हैं और विविध प्रकारके श्रीभगवतीजीके चित्र आपके पास हैं उन्हींकी आप घंटों पूजा किया करते हैं। आपके उपदेशोंको सुनकर बड़े २ नास्तिकोंकी बोलती बंद हो गई और सभी आश्चर्यमें डूब गये कि इतनी छोटी आयुमें और बिना पढ़े लिखे फिर भी महत्त्वपूर्ण और शास्त्रोक्त उपदेश देना यह सब भगवानकी लीला और पूर्व-जन्मोंका संस्कार नहीं तो क्या है? अपने प्रश्न करनेपर कि आपके इस प्रकार उपदेश देते घूमनेका उद्देश्य क्या है तो उत्तरमें आपने बताया कि हमारा उद्देश्य सनातन धर्मका प्रचार करना, जीवोंको भगवद्भक्तिकी ओर लगाना, दुर्व्यसनोंसे बचाना ही एकमात्र उद्देश्य है। आपके उपदेशका सार यहाँपर दिया जाता है।

१—पाश्चात्य देशोंके मनुष्योंके जीवनके उद्देश्योंमें और धर्मप्राण भारतके मनुष्योंके जीवनके उद्देश्योंमें बहुत बड़ा अन्तर है। पाश्चात्य देशोंके मनुष्योंके जीवनका उद्देश्य जबकि विषयभोग है तो हम धर्मप्राण भारतके सनातनधर्मी हिन्दुओंके जीवनका उद्देश्य श्रीभगवतप्राप्ती करना है और मुक्तिप्राप्ती करना है। इसी लिये हमारे यहाँ विषयभोगोंसे बचनेके लिये ब्रह्मचर्यके पालन करनेपर बहुत जोर दिया गया है और ब्रह्मचर्यकी रक्षा करना धर्म माना गया है। हमारे यहाँ २५ वर्षतक ब्रह्मचर्यका पालन ब्रह्मचारी करता है बादमें २५ वर्ष गृहस्थके पश्चात् २५ वर्ष तक फिर वानप्रस्थाश्रममें ब्रह्मचर्यका पालन करना होता है और फिर २५ वर्षतक सन्यासाश्रममें ब्रह्मचर्यका पालन करना होता है इस प्रकार हमारे ७५ वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करनेके लिये हैं खाली २५ वर्ष गृहस्थाश्रमके लिये दिये गये हैं सो उसमें भी ब्रह्मचर्यके पालन करनेपर बहुत जोर दिया गया है। ऐसा उच्च आदर्श पाश्चात्य देशोंमें ढूँढनेपर भी नहीं मिलेगा जैसा की भारतका उच्चादर्श है।

२—बहुतसे भक्त लोग गाते हैं—

दीनबन्धो दीनानाथ। मेरी डोरी तेरे हाथ॥

परन्तु एक समय ऐसा भी आता है कि जब भक्त गाने लगता है—

दीनबन्धो दीनानाथ। तेरी डोरी मेरे हाथ॥

तो आप कहेंगे कि यह क्या गाने लगा और भगवान्‌की डोरी अपने हाथ बतलाने लगा क्या यह भूल तो नहीं गया? नहीं जब भक्त सच्चा भक्त बन जाता है तो भगवानकी डोरी उस भक्तके हाथमें दी जाती है और वह भगवानका भक्त जैसे चाहे अपने भगवान को नाच नचाता है और भगवानको अपने भक्तके लिये जैसे भक्त नचाता है नाचना पड़ता है।

× × × ×

३—सनातनधर्म अनादिकालसे चला आ रहा है, सनातन धर्म सदासे है और सदा रहेगा जब कि और मत मजहब, पंथ, समाज अब वादमें पैदा हुये हैं और मनुष्योंके चलाये हुये हैं जिनके सन् सम्वत् आदि सब मिलते हैं। सनातनधर्म कबसे चला इसे कोई भी नहीं बतला सकता और इसे किसने चलाया यह भी कोई नहीं बतला सकता? किसी मनुष्यने चलाया हो तो वह उस चलानेवालेका नाम बताय यह तो ईश्वरीय धर्म है और सदासे चला आ रहा है। आर्यसमाज मतके प्रवर्तक दयानंद हुये और आर्यसमाज ५०-६० वर्षसे बना, मुसलमान मजहबके मोहम्मद साहब हुये और यह १४ सौ वर्षसे बना और ईसाई मतके चलानेवाले ईसा हुये और यह ईसाई मत २००० वर्षसे चला पर इस प्रकार सनातनधर्मके चलानेवालेका नाम और सन् सम्वत् कोई बता सकता है? अर्थात् नहीं बता सकता यह तो करोड़ों अर्बों वर्षोंसे इसी प्रकार चला आ रहा है और चलता रहेगा।

× + ×

४—भारतकी विशेषता है वर्णाश्रमधर्म और किसी भी देशमें इस प्रकार वर्णाश्रमधर्म नहीं मिलेगा वर्णाश्रमधर्मानुसार चलनेमें ही हमारा कल्याण है जो इसे मिटाना चाहते हैं वह देशके जातिके महान शत्रु हैं और देशका घोर पतन करते हैं।

५—आज कुछ लोग कहते हैं कि हमने सबको स्वतंत्र कर दिया है हमने बहुत अच्छा किया है पर इन लोगोंकी दी हुई स्वतंत्रतासे हमारा उत्थान नहीं घोर पतन हुआ है। हमारा देश स्वतंत्र हो यह तो हम भी चाहते हैं पर व्यक्ति स्वतंत्र हो यह हम नहीं चाहते यह तो घोर पतनका मार्ग है। हमारे यहाँ तो धर्मके परतंत्र, शास्त्रके परतंत्र, रहना बतलाया गया है इसीमें हमारा कल्याण है। स्त्री अपने पूज्य पतिके परतंत्र रहे, पुत्र अपने पिताके परतंत्र रहे, शिष्य अपने गुरुके परतंत्र रहे, प्रजा अपने राजाके परतंत्र रहे, राजा सन्यासीके परतंत्र रहे और सभी शास्त्रके, धर्मके परतंत्र रहें तभी हमारी उन्नति हो सकती है। आज हमारा शास्त्रसे धर्मसे सम्बन्ध छुड़ाकर हमें स्वतन्त्र करना हमारा घोर पतन करना है। हमें ऐसी स्वतंत्रता जो हमारा घोर पतन करती है त्रिकालमें भी नहीं चाहिये। शास्त्रसे और धर्मसे सम्बन्ध तोड़कर यदि हमें विश्वका राज्य भी मिलता हो तो वह भी ठुकरा देना चाहिये।

× × +

हमें अपने अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार कार्य करना चाहिये तभी हमारा कल्याण होगा यही हमारे शास्त्रोंकी आज्ञा है। ब्राह्मणोंके लिए बतलाया

गया है कि विद्या पढ़ना, विद्या पढ़ाना, दान देना, दान लेना, यज्ञ करना और यज्ञ कराना यही पूज्य ब्राह्मणोंका कर्तव्य है। क्षत्रिय विद्या पढ़ सकता है पर विद्या पढ़ा नहीं सकता और दान दे सकता है पर दान ले नहीं सकता। क्षत्रिय दान नहीं ले सकता पर नजरानेके रूपमें भेंट रूपमें ले सकता है। क्षत्रिय यज्ञ करा नहीं सकता। वैश्योंको कृषि करना, व्यापार करना बतलाया गया है पर वैश्योंको ब्लैकमार्केटसे रुपया कमाना, चोरबाजारी करना नहीं बतलाया गया है। जो कोई बेईमानीसे रुपया कमाता है, कम तोलता है, झूठ बोलता है वह वैश्य अपना घोर पतन करता है। शूद्रोंके लिए सबकी सेवा करना बतलाया गया है इसीमें शूद्रोंका कल्याण है। आज शूद्र कहते हैं कि हम सेवा क्यों करें ऐसा उनका कहना अनधिकार चेष्टा करना है। सबको अपने-अपने वर्णाश्रम धर्मानुसार चलना चाहिये इसीमें कल्याण है।

× × ×

७—कुछ पाश्चात्य सभ्यतामें पले मनुष्य कहते हैं कि हम वर्णश्रम व्यवस्थाको नहीं मानते यह तो मनुने बनाई है पुरानी बात हो गई इसे नहीं मानना चाहिये। हम उनसे पूछते हैं कि क्या इंग्लैंड अमेरिकामें अँग्रेज लोग वर्णव्यवस्थाको नहीं मानते? नहीं उन्हें भी वर्णव्यवस्थाको मानना ही पड़ता है। देखो वह पादरियोंको मानते हैं जो ब्राह्मणोंका कार्य करते हैं तो ब्राह्मणोंका मानना हुआ और जो वहाँ पर सैनिक हैं वह क्षत्रियका कार्य करते हैं क्षत्रियको भी मानना पड़ा, और जो दुकान पर बैठकर व्यापार करते हैं वह वैश्य हुए और जो टट्टी कमाते हैं सड़क साफ करते हैं वह शूद्र हुए इस प्रकार सबको जाति माननी ही पड़ती है। हमारे यहाँ जन्मसे जाति

माननी ही पड़ती है। हमारे यहां जन्मसे जाति मानते हैं जो शास्त्रोंकी आज्ञा है और वह कर्मसे जाति मानते हैं जो मनमानी है पर माननी जरूर पड़ती है।

× × ×

८—श्रीभगवन्नाम कीर्तन करना चाहिये, श्रीभगवद्भजन करना चाहिये, यही जीवोंके कल्याणका एकमात्र मार्ग है और यही कलियुगमें सार है।

× × ×

९—कुछ मनुष्य पाश्चात्य विचारोंके होनेके कारण कहते हैं कि यह वर्णाश्रम धर्म पुराना है इसे मनुने बनाया है, यह सनातन धर्म पुराना हो गया है, बूढ़ा हो गया है इसलिये अब इसे नहीं मानना चाहिये और अब इसे मिटा देना चाहिये। परन्तु ऐसा कहनेवालोंको पता नहीं है कि पुरानी चीजोंका बड़ा महत्त्व होता है उन्हें किस प्रकार सुरक्षित रक्खा जाता है? खुदाईके समय पुरानी चीजोंके मिलनेपर उन्हें बड़ी कीमती समझकर अजायब घरमें रक्खा जाता है और पुरानी इमारतोंको महत्त्वपूर्ण समझकर सरकारकी तरफसे उनकी रक्षा की जाती है न कि उन्हें मिटाया जाता है। पुराने माता-पिताको पूज्यमान कर पूजा जाता है पर आज धर्मको कहा जा रहा है कि यह पुराना हो गया इसे मिटा दो यह कितने दुःखकी बात है? यह सनातनधर्म किसी मनुष्यका बनाया हुआ नहीं है न इसे किसी पीर फकीर मीर, पैगम्बर ने ही इसे बनाया है यह तो ईश्वरीय धर्म है सदा से है और सदा रहेगा।

× × +

१०—कुछ मनुष्य कहते हैं कि हमारा सनातन धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं है हम तो सनातनधर्मसे

अलग हैं। उन्हें पता नहीं है कि सनातनधर्म ही तो सबकी जड़ है और सब इसीमेंसे निकले हैं और कोई इसके पत्ते हैं तो कोई इसकी टहनी है कोई तने हैं कोई फलंग हैं पर सनातनधर्म सबकी जड़ है यदि वृक्षके पत्ते टहनी यह कहें कि हमारा वृक्षसे जड़से कोई सम्बन्ध नहीं है तो उनकी यह कितनी मूर्खता है? उनका यह कितना पागलपन है? यदि पत्ते, टहनी जड़से अपना सम्बन्ध नहीं रखना चाहते तो वह हरे भी नहीं बने रह सकते उनमें तभी तक हरियाली है कि जब तक वह वृक्षके साथ हैं और अपना जड़से सम्बन्ध बनाये हुए हैं। यदि पत्ते टहनी यह कहने लगें कि हम जड़के साथ सम्बन्ध नहीं रखते हम उनसे अलग रहेंगे तो आपने देखा होगा कि जो पत्ते टहनी अपना जड़से सम्बन्ध नहीं रखते अलग हो जाते हैं तो वह सूख जाते हैं और हवाके झोकोंसे वह इधरसे उधर उड़ते फिरा करते हैं, मारे मारे घूमा करते हैं और बड़ी दुर्दशाको प्राप्त होते हैं और पैरोंसे कुचले जाते हैं और धूलीमें मिल जाते हैं और इस प्रकार अपना अस्तित्व ही समाप्त कर लेते हैं। यदि पत्ते, टहनी, डाल चाहते हों कि हम हरे भरे बने रहें और हमारी इस प्रकार दुर्दशा न हो, हम मारे-मारे न फिरें तो उनका परम कर्तव्य हो जाता है कि वह वृक्षसे, जड़से अपना सम्बन्ध अवश्य ही बनाये रक्खें इसीमें उनका हित है। इसी प्रकार और तो सब कोई मत हैं कोई मजहब हैं, कोई पंथ है, कोई समाज है, कोई रिलीजन है पर इनमेंसे धर्म कोई नहीं है धर्म तो खाली सनातनधर्म है इसलिए सनातनधर्म सबकी जड़ है यदि अपना भला चाहते हो तो सनातनधर्मको भूलकर भी मत छोड़ो इससे सम्बन्ध बनाये रक्खो तभी तुम सुख शान्ति प्राप्त कर सकोगे अन्यथा नहीं।

बोलो सनातनधर्मकी जय

—:o:—

बेफिक्री

जीव तू मत करना फिकरी।
भाग लिखी सो हुई रहेगी भली बुरी सगरी ॥टेर॥
तप करके हिरणाकुश राजा वर पायो चवरी।
लोह लकड़ से मरयो नहीं वो मरयो मौत नखरी ॥१॥
सहस्र पुत्र राजा सगर के तप कीनो जबरी।
थारी गति ने तू ही जाने आग मिली ना लकरी ॥२॥
तीन लोक को माता सीता रावण जाय हरी।
जब लछमण ने लंका घेरी लंका गइ बिखरी ॥३॥
आठ पहर साहिब को रहना ना करना जिकरी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो रहना बे फिकरी ॥४॥

—संत करीबदासजी

जीवनका ध्येय

(ले०—श्रीराजनारायणजी द्विवेदी)

सकृदपि परिगीतं हेलया श्रद्धया वा
भृगुवर ! नरमात्रं तारयेत् कृष्ण नाम ।

संसारके मायिक संबंध बड़े ही दुखदायी होते हैं। जीव इनसे छुटकारा चाहता है परन्तु और अधिक-अधिक फंसते जाता है। भूले हैं प्रथम भूल तो हमारी यह है कि इस अनित्य और क्षणिकशरीरके पोषणमें सारी शक्ति लगा देते हैं। जीवन भर इसीको सजाने संवारनेमें समय बिता देते हैं।

इससे भी हमारी बुरी दशा वह है जब हम अपनेको जाति-वर्ण-गोत्र प्रभृति अनेक ग्रन्थियोमें बांध लेते हैं।

तबसे जीव भयउ संहारी ।
छूटि न ग्रंथि न होहि सुखारी ॥

वास्तवमें मोह और आसक्तिने हमें इतना जकड़ लिया है कि संसारके मिथ्या मायिक संबंधसे परे सच्चे संबंधकी बात हम सोच ही नहीं सकते। यह त्रिगुणात्मिका माया बड़ी प्रबल है। इसीसे भगवान्ने कहा है—'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया' मोहकी महिमा इतनी प्रबल है कि रातदिन मैं मेरा तू तेराके फेरमें ही पड़े रहते हैं। पुत्र-पिता-माता-स्त्री आदि झूठे संबंधकी ग्रंथियोंमें उलझकर क्षण-क्षण मिलनेसे हर्षित तथा वियोगसे दुखित होकर अधिकाधिक अरुझाते जाते हैं।

परन्तु जीव संसारके नाशवान-क्षणिक और हानिकारक मिथ्या संबंधके लौकिक बंधनोंके विषयमें सोच ही नहीं सकता। इससे बढ़कर हमारा सच्चा हितैषी कोई है कि नहीं इस सत्य विचारकी तो हम कभी कल्पना भी नहीं करते। यंत्र चालितकी भांति हमारी आराधना अज्ञानजनित सकाम कर्मों की ओर धावित है। मृगतृष्णामें पड़कर व्याकुल प्राण हैं।

भगवान जब कभी इन झूठे गंथियोंको दयाकर काटना चाहते हैं तो हमारे प्रियसे प्रिय पदार्थों और व्यक्तियोंसे पृथककर वियोग करादेते हैं। उस दशामें यह कमजोरियोंका पुतला जीव नाम ले-लेकर रोने लगता है। पछाड़ खाने लगता है। इसकी अज्ञात शक्ति मारी जाती है। भगवान जीवकी उस व्यग्रताको देखकर हंसते हैं और कहते हैं—'धन है मेरी माया!'

पुनश्च जीवको जब यह मालूम होता है कि भगवत्कृपा थी तब क्या हो। तीर तो छूट गया—पछतानेसे क्या होगा।

को सुर झो यहि जग परों कुत कुरंग अकुलाय ।
ज्यों ज्यों सुरझो चहो त्यों-त्यों अरु अरुझाय।

लोकयात्राका कर्म संग्रह इतना मोहक है कि यथार्थकी ओर मुड़ने नहीं देता। मन और हृदयको इतना काहिल कर दिया है कि मनुष्य क्षणिक ज्ञानकी चर्चाकर फिर सो जाता है।

धनार्जन करने, आरामके साधन जुटानेमें अपनेको अमर समझता है। स्वार्थके दल-दलमें फंसा हुआ यह जीव किसी भी अवस्था में यह सोच लेता कि सांसारिक सभी पदार्थ एक न एक दिन हमसे अलग हो जाएंगे, यहां कोई अमर होकर नहीं आया है तब तो इसकी गति ही बन जाती। समय द्रुतगतिसे

जा रहा है। प्रतिदिनकी दुर्घटनाएं, मृत्यु, धनादिकोंका क्षणमात्रमें नाश बता रहे हैं कि संभल जावो—समय रहते चेत जावो ?

जो समय बचा है उसीको थाती समझकर आगे बढ़ो ? आयुके क्षण जो अभी भोगनेको शेष हैं, आजसे और अभीसे उसको हरिभजनमें लगादो। हरिकथा हरिसभा हरिकीर्तन आदिमें अपनेको उतार लेना ही कल्याण प्रद है। आयुकी तुलना रत्नों से की गई है—

किसी अज्ञानी को एक समय रत्नों से भरा एक कलश मिला। उसने सब रत्नों को निकालकर नदीमें एक एक कर. कर फेंकना आरम्भ किया। जब एक लाल शेष रहा तब किसी ने देखकर मना किया और कहा कि हाटमें ले जावो! बाजार में उसका मूल्य इतना लगा जिससे सारा जीवन वह गुजारा कर सकता था। इस घटनासे उसको आश्चर्य के साथ साथ भारी दुख हुआ कि यदि मैं सब रत्नों को नष्ट न करता तो कितनी धन राशि मेरे पास रहती!—इसपर वक्ताने उत्तर दिया कि जो शेष है उसीको व्यापार में लगाकर जीवन भर आराम करो!

उपर्युक्त कहानी की समता भी हमारी शेष आयु कर सकती है। यदि हम अब भी चेत जांय और वैसा करें तो बेड़ा पार हो जाय। आयु रूपी रत्न को भगवान के नाम लेने हरिकथा श्रवण करने और नाम-जप करवाने में लगाने का सफल प्रयत्न करें। जीवन थोड़ा है विघ्न अनेकों हैं। अतः सावधान होकर हरिस्मरणमें लग जांय।

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबही आजु,
होहि रामको नाम जप, तुलसी तजि कुसमाजु।

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ,
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत।
तुलसी हरि हरि कहत नित सुनि हितकरिमानि,
लाभ राम सुमिरन बड़ो बड़ी बिसहरे हानि।
'तुलसी' ममता रामसों समता सब संसार,
राग न रोष न दोष दुख दास भये सो काम।

वस्तुतः आप पहले गहराई में उतरिए और खूब सोचिए कि आप कौन हैं और क्या करना है। आपके जीवन का अंतिम खेल क्या है। परिणाम सोचने पर पता चल जाएगा कि दान धर्म करना और हरिनाम जपना तथा जपवाना ही जीवन में सार वस्तु है? तथा इसके अलावा सभी प्रपंच है, मिथ्या है और मोह का समुद्र जिस भवसमुद्र से पार होना महा कठिन व्यापार होते हुए भी प्रभु की कृपासे बड़ा ही सहज सुलभ और सुगम है। केवल नाम जपिए, किसी ध्यान और कल्पना की आवश्यकता नहीं। प्राणी मात्रसे समता रखिए, करुणा मुदिता और मैत्री का भाव आपके हृदय में दैवी शक्ति का संचार कर देगा। नाम जप करते करते आपकी सारी वासना जनित अज्ञात शक्तियां उथल-पुथल मचा रखी हैं...दब जायेंगी। आपको एक मधुर प्रकाश मिलेगा, जिससे निहाल हो जाइएगा। रामनाम या कृष्ण नाम सिर्फ मुखस्थ करिए और तब देखिए आपको गन्तव्यपथ कितना साफ दिखाई पड़ता है। आश्चर्य चकित कर देनेवाला यह बड़ा ही उत्तम उपाय है। अपने जीवन में क्रांति लाइए; इन्द्रियों से विवाद कर लड़ जाइए देखिएगा इन्द्रियां भी शिथिल हैं। आपका मार्ग प्रशस्त कर देगीं। जीवन का ध्येय और सुख यही है।

श्रीभगवन्नाम

(लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

श्रद्धापर एक दृष्टान्त

एक समय शिवजी महाराज पार्वतीके साथ हरिद्वारमें घूम रहे थे। पार्वतीने देखा कि सहस्रों मनुष्य गङ्गामें नहा-नहाकर हर-हर करते चले जा रहे हैं; परन्तु प्रायः सभी दुखी और पापपरायण हैं। पार्वतीने बड़े आश्चर्यके साथ शिवजीसे पूछा कि 'हे देवदेव! गङ्गामें इतनी बार स्नान करनेपर भी इनके पाप और दुःखोंका नाश क्यों नहीं हुआ? क्या गङ्गामें सामर्थ्य नहीं रही? शिवजीने कहा—'प्रिये! गङ्गामें तो वही सामर्थ्य है; परन्तु इन लोगोंने पापनाशिनी गङ्गामें स्नान नहीं किया है, तब इन्हें लाभ कैसे हो?' पार्वतीने साश्चर्य कहा कि 'स्नान कैसे नहीं किया? सभी तो नहा-नहाकर आ रहे हैं? अभीतक इनके शरीर भी नहीं सूखे हैं।' शिवजीने कहा—'ये केवल जलमें डुबकी लगाकर आ रहे हैं। तुम्हें कल इसका रहस्य समझाऊँगा।' दूसरे दिन बड़े जोरकी बरसात होने लगी। गलियाँ कीचड़से भर गयीं। एक चौड़े रास्तेमें एक चौड़ा गहरा गड्ढा था, चारों ओर लपटीला कीचड़ भर रहा था। शिवजीने लीलासे ही वृद्धि रूप धारण कर लिया और दीन—विवशकी तरह गड्ढेमें जाकर ऐसे पड़ गये जैसे कोई मनुष्य चलता-चलता गड्ढेमें गिर पड़ा हो और निकलनेकी चेष्टा करनेपर भी न निकल सकता हो।

पार्वतीको यह समझाकर गड्ढेके पास बैठा दिया कि 'देखो! तुम लोगोंको सुना सुनाकर यों पुकारती रहो कि मेरे वृद्ध पति अकस्मात् गड्ढे में गिर पड़े हैं, कोई पुण्यात्मा इन्हें निकालकर इनके प्राण बचावे और मुझ असहायाकी सहायता करे। शिवजीने यह और समझा दिया कि जब कोई गड्ढेमेंसे मुझे निकालनेको तैयार हो, तब इतना और कह देना कि 'भाई! मेरे पति सर्वथा निष्पाप हैं, इन्हें वही छुए जो स्वयं निष्पाप हो, यदि आप निष्पाप हैं तो इनके हाथ लगाइये, नहीं तो हाथ लगाते ही आप भस्म हो जायँगे।' पार्वती 'तथास्तु' कहकर गड्ढेके किनारे बैठ गयी और आने-जानेवालोंको सुना-सुनाकर शिवजीकी सिखाई हुई बात कहने लगी। गङ्गामें नहाकर लोगोंके दलके-दल आ रहे हैं। सुन्दरी युवतीको यों बैठी देखकर कइयोंके मनमें पाप आया, कई लोक-लज्जासे डरे तो कइयोंको कुछ धर्म का भय हुआ, कई कानून से डरे, कुछ लोगोंने तो पार्वतीको यह सुना भी दिया कि मरने दे बुड्ढेको! क्यों इसके लिए रोती है? आगे और कुछ भी कहा, मर्यादा भङ्ग होनेके भयसे वे शब्द लिखे नहीं जाते। कुछ दयालु सच्चरित्र पुरुष थे, उन्होंने करुणावश हो, युवतीके पतिको निकालना चाहा, परन्तु पार्वतीके वचन सुनकर वे भी रुक गये। उन्होंने सोचा कि हम गङ्गामें नहाकर आये हैं तो क्या हुआ, पापी तो हैं ही, कहीं होम करते हाथ न जल जायँ। बूढ़ेको निकालने जाकर इस स्त्रीके कथनानुसार हम स्वयं भस्म न हो जायँ। सुतरां किसीका साहस नहीं हुआ। सैकड़ों आये, सैकड़ोंने पूछा और चले गये। सन्ध्या हो चली। शिवजीने कहा—'पार्वती! देखा आया कोई गङ्गामें नहानेवाला?'

थोड़ी देर बाद एक जवान हाथमें लोटा लिए हर-हर करता हुआ निकला, पार्वतीने उससे भी वही बात कही! युवकका हृदय करुणासे भर आया। उसने शिवजीको निकालनेकी तैयारी की। पार्वतीने रोककर कहा कि भाई! यदि तुम सर्वथा निष्पाप नहीं होओगे तो मेरे पतिको छूते ही जल जाओगे।' उसने उसी क्षण बिना किसी संकोचके दृढ़ निश्चयके साथ पार्वतीसे कहा कि 'माता मेरे निष्पाप होनेमें तुझे सन्देह क्यों होता है? देखती नहीं, मैं अभी गङ्गा

नहाकर आया हूँ। भला गङ्गामें गोता लगानेके बाद भी कभी पाप रहते हैं? तेरे पतिको निकालता हूँ। युवकने लपककर बूढ़ेको ऊपर उठा लिया। शिव-पार्वतीने उसे अधिकारी समझकर अपना असली स्वरूप प्रकटकर उसे दर्शन देकर कृतार्थ किया। शिवजीने पार्वतीसे कहा कि 'इतने लोगोंमेंसे इस एकने ही वास्तवमें गङ्गा स्नान किया है।' इसी दृष्टान्तके अनुसार जो लोग विना श्रद्धा और विश्वास केवल दम्भके लिये नाम ग्रहण करते हैं, उन्हें वास्तविक फल नहीं मिलता, परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि नामग्रहण व्यर्थ जाता है।

नामका फल अवश्य होता है—

परन्तु जैसा चाहिये वैसा नहीं होता। दम्भार्थ नाम लेनेवाले भी संसारमें पूजे जाते हैं। उनके पापोंका नाश भी होता ही है, परन्तु अनन्त जन्मोंके सञ्चित और इस समय भी लगातार होनेवाले अनन्त पाप श्रद्धारहित नामसे पूरे नष्ट नहीं हो पाते। नामसे पूरा फल प्राप्त न होनेमें श्रद्धाके अतिरिक्त एक और प्रधान कारण है—

साधकका सकाम भाव!

हम बहुत बड़ी मूल्यवान् वस्तुको बहुत सस्ते दामोंपर बेच देते हैं। सिरमें मामूली दर्द होता है तो उसे मिटानेके लिये 'राम-राम' कहते हैं। सौ-पचास रुपयोंकी कमाईके लिये राम-नाम लेते हैं। स्त्री-बच्चोंकी आरोग्यताके लिये राम नाम लेते हैं। मान-बड़ाई पानेके लिये राम नाम कहते हैं। सन्तान सुखके लिये राम-नाम कहते हैं। फल यह होता है कि हम राम-नाम लेनेपर भी कमानेके साथ ही लुटानेवाले मूर्खके समान जैसे के तैसे ही रह जाते हैं। चलनी में जितना भी पानी भरते रहो, सभी निकल जायगा। हमारा अन्तःकरण भी कामनाओंके अनन्त छेदोंसे चलनी हो रहा है। इसमें कुछ भी ठहरता नहीं। राम नामका फल कैसे हो? प्यास लगी हुई है, जगत्‌में सुखकी पिपासा किसको नहीं है? पवित्र जलका भी झरना झर रहा है, राम-नामके झरनेका प्रवाह सदा ही अबाधित रूपसे बहता है, परन्तु हम अभागे उस झरनेके आगे अञ्जलि बाँधकर जल ग्रहण नहीं करते। हम उसके आगे रखते हैं हजारों छेदोंवाली चलनी, जिसमें न तो कभी पानी ठहरता है! और न हमारी प्यास ही बुझती है! सकामभावसे लिये हुए नामसे भी नामके असली फल आत्यन्तिक सुख से हम इसी प्रकार वञ्चित रह जाते हैं। प्रथम तो कोई भगवन्नाम लेता ही नहीं और यदि कोई लेता है तो वह सकामभावसे धन-सन्तान, मान-बड़ाईकी वृद्धिके लिये लेता है। नियमानुसार फल जहाँ का-तहाँ ही रहना पड़ता है। परन्तु नामकी महिमा अपार है। इस प्रकार लिये हुए नामसे भी फल तो होता ही है। सकाम कर्मकी सिद्धि भी होती है और आगे चलकर भगवद्भक्ति भी प्राप्त होती है। जब इन पंक्तियोंका क्षुद्र लेखक सकामभावसे नाम जप किया करता था तब कई बार उसकी ऐसी विपत्तियाँ टली हैं जिनके टलनेकी कोई भी आशा नहीं थी। केवल वे विपत्तियां ही नहीं टलीं, उसका और फल भी हुआ। नाममें रुचि बढ़ी और आगे चलकर निष्कामभाव भी हो गया। भगवन्नाम लेनेका अन्तिम परिणाम है भगवान्‌में एकान्त प्रेम हो जाना। एकान्त प्रेम होनेके बाद प्रेममयके मिलनेमें जरा सा भी विलम्ब नहीं होता, जैसे ध्रुवको और विभीषणको राज्यकी भी प्राप्ति हुई और भगवत्प्रेमकी भी। इसीलिये शास्त्रोंमें चाहे जैसे भगवन्नाम लेनेवालेको भी बड़ा उत्तम बतलाया है। भगवान्‌ने गीतामें इसीलिये अर्थार्थी भक्तको भी उदार और पुण्यात्मा बतलाया है। और अन्तमें 'मद्भक्ता यान्ति मामपि' कहकर चाहे जिस प्रकार भी भगवद्भक्ति करनेवालेको अपनी प्राप्ति कही है; क्योंकि सकामभावसे अन्य सबकी आशा छोड़कर, अन्य सबका आश्रय त्यागकर केवल भगवानकी भक्तिके परायण होना भी बड़े भारी पुण्योंका फल है अतएव सकामभावसे भगवान्‌के नाम ग्रहण करनेवाले

लोग भी बड़े पूज्य और मान्य हैं; परन्तु उनको सकामभावकी प्रतिबन्धकताके कारण नामके वास्तविक फल नामीके प्रेमकी या स्वयं नामीकी प्राप्तिमें विलम्ब अवश्य हो जाता है। इससे यह सिद्ध हो गया कि नामसे फल तो अवश्य होता है, परन्तु अश्रद्धा, अविश्वास और कामनाके कारण उसके असली फलकी प्राप्तिमें देर हो जाती है। यदि साधक इस अपने दोषसे होनेवाली देरीका दोष नामपर लगाकर उसे अर्थवाद कहता है तो यह भी उसका अपराध है।

नामके दस अपराध—

—बतलाये गये हैं—(१) सत्पुरुषोंकी निन्दा, (२) नामोंमें भेदभाव, (३) गुरुका अपमान, (४) शास्त्र-निन्दा, (५) हरिनाममें अर्थवाद (केवल स्तुतिमात्र है ऐसी कल्पना), (६) नामका सहारा लेकर पाप करना, (७) धर्म, व्रत, दान और यज्ञादिके साथ नामकी तुलना, (८) अश्रद्धालु, हरिविमुख और सुनना न चाहनेवालेको नामका उपदेश करना, (९) नामका माहात्म्य सुनकर भी उसमें प्रेम न करना और (१०) 'मैं' 'मेरे' तथा भोगादि विषयोंमें लगे रहना।

यदि प्रमादवश इनमेंसे किसीतरहका नामापराध हो जाय तो उससे छूटकर शुद्ध होनेका उपाय भी पुनः नाम-कीर्तन ही है। भूलके लिये पश्चात्ताव करते हुए नामकीर्तन करनेसे नामापराध छूट जाता है। पद्मपुराणका वचन है—

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्।
अविश्रान्तप्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि च॥

नामापराधी लोगोंके पापोंको नाम ही हरण करता है। निरन्तर नाम कीर्तनसे सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं। नामके यथार्थ माहात्म्यको समझकर जहाँतक हो सके, नाम लेनेमें कदापि इस लोक और परलोकके भोगोंकी जरा सी भी कामना नहीं करनी चाहिये। यद्यपि ऊपर लिखे अनुसार नाम जपसे कामना-सिद्धिके सिवा अन्तःकरणकी शुद्धि होकर भगवद्भक्तिरूप विशेष फल भी मिलता है, परन्तु नियम यही है कि जैसी कामना हो—साङ्गोपाङ्ग कर्म होनेपर—वैसा ही फल मिल जाय। जो लोग भगवन्नामका साधारण बातोंमें प्रयोग करते हैं वे वास्तवमें भगवन्नामकी अपार महिमासे सर्वथा अनभिज्ञ हैं या उसपर उनका विश्वास नहीं है। जो रत्नके मूल्यसे अनभिज्ञ होगा वही उसे कांचके मोल बेचेगा।

भगवन्नामके मूल्यपर एक दृष्टान्त

एक श्रद्धालु भक्त प्रतिदिन गाँवके बाहर एक महात्माके पास जाया करता था। जब महात्माकी सेवा करते-करते उसे बहुत दिन बीत गये तब महात्माने उसे अधिकारी समझकर कहा कि 'वत्स! तेरी मति भगवान्में है, तू श्रद्धालु है, गुरुसेवापरायण है, कुतार्किक नहीं है, साधनमें आलसी नहीं है, शास्त्रके वचनोंमें विश्वासी है, किसीका बुरा नहीं चाहता, किसीसे घृणा और द्वेष नहीं करता, सरल-चित्त है, काम, क्रोध, लोभसे डरता है, संतोंका उपासक है और जिज्ञासु है, इसलिए तुझे एक ऐसा गोपनीय मन्त्र परम गुप्त और अमूल्य है, किसीसे कहना नहीं!' यों कहकर महात्माने उसके कानमें धीरेसे कह दिया 'राम'। श्रद्धालु भक्त मन्त्रराज 'राम' का जप करने लगा। वह एक दिन गङ्गा नहाकर लौट रहा था तो उसका ध्यान उन लोगोंकी तरफ गया जो हजारोंकी संख्यामें उसीकी तरह गङ्गा नहाकर जोर-जोरसे 'राम राम' पुकारते चले आ रहे थे। सुनता तो रोज ही था परन्तु कभी इस ओर उसका ध्यान नहीं गया। आज ध्यान जाते ही उसके मनमें यह विचार आया कि महात्मा तो राममन्त्रको बड़ा गुप्त बतलाते थे, मुझसे कह भी दिया था कि किसीसे कहना नहीं परन्तु इसको तो सभी जानते हैं, हजारों मनुष्य 'राम-राम' पुकारते हुए चलते हैं। उसके मनमें कुछ संशय उत्पन्न हो गया।

वह अपने घर न जाकर सीधा गुरुके समीप गया। महात्माने कहा कि 'वत्स! आज इस समय कैसे आया?' उसने अपना संशय सुनाकर कहा कि 'प्रभो! मेरे समझनेमें भ्रम हुआ है या इसका और कोई मतलब है। अपनी दिव्य वाणीसे मेरा सन्देह दूर करनेकी कृपा कीजिये!' महात्माने उसके मनकी बात जान ली और कहा कि 'भाई! तेरे प्रश्नका उत्तर पीछे दिया जायगा। पहले तू मेरा एक काम कर!' महात्माने झोलीमेंसे एक चमकती हुई काँचकी-सी गोली निकाली और उसे भक्तके हाथमें देकर कहा कि—'बाजारमें जाकर इसकी कीमत करवाके लौट आ। बेचना नहीं है, सिर्फ कीमत जाननी है। सावधान! कीमत आँकानेमें कहीं भूल न हो जाय!' भक्त श्रद्धालु था, आजकलका-सा कोई होता तो पहले ही गुरु महाराजको आड़े हाथों लेता और कहता कि मैं तुम्हारे काँचके टुकड़ेकी कीमत जँचवाने नहीं आया हूँ, तुम्हारा कोई गुलाम नहीं हूँ। पहले मेरे प्रश्नका उत्तर दो, नहीं तो मेरे साथ छल करनेके अपराधमें तुमपर कोर्टमें नालिश की जायगा।' वह समय दूसरा था। भक्त अपना प्रश्न वहीं छोड़कर गुरुका काम करनेके लिये बाजारमें गया। सबसे पहले एक शाक बेचनेवाली मिली। भक्तने गुरुकी चीज उसे दिखलाकर कहा कि 'इसकी क्या कीमत देगी?' शाक बेचनेवालीने पत्थरकी चमक और सुन्दरता देखकर सोचा कि बच्चोंके खेलनेके लिये काँचकी बड़ी सुन्दर गोली है। बाजारमें कहीं ऐसी नहीं मिलती। उसने कहा—'सेर-दो-सेर आलू और बैगन ले लो।' वह आगे बढ़ा, एक सुनारकी दुकान थी, वहाँ ठहरा। सुनारको गोली दिखलाकर पूछा—'भाई! इसकी क्या कीमत दोगे?' सुनारने हाथमें लेकर देखा और उसे अच्छा पुखराज (नकली हीरा) समझकर सौ रुपये देनेको कहा। भक्तकी भी दिलचस्पी बढ़ी, वह और आगे बढ़ा, एक महाजनके यहाँ गया। महाजनने गोली देखकर मनमें विचार किया कि इतना बड़ा और ऐसा अच्छा हीरा-सा लगता है। बड़े घरमें नकली भी असली ही समझा जाता है, उसने हजार रुपयोंमें मांगा। भक्तने सोचा कि हो न हो, है तो कोई बड़ी मूल्यवान् वस्तु, वह और आगे बढ़ा और एक जौहरीकी दूकानपर गया। जौहरी परीक्षा की तो उसे हीरा ही मालूम दिया, परन्तु इतना बड़ा और ऐसा हीरा कभी उसने देखा ही न था, इसलिये उसे कुछ सन्देह रहा तथापि उसने एक लाख रुपयोंमें उसे मांगा। भक्त 'बेचना नहीं है' कहकर एक सबसे बड़े जौहरीकी दुकानपर गया। जब गुरुके पाससे आया था तब तो उसे जौहरियोंके पास जानेका साहस ही नहीं था। वह स्वयं उसे मामूली कांच समझता था, परन्तु ज्यों-ज्यों कीमत बढ़ती गयी त्यों त्यों उसका भी साहस बढ़ता गया। बड़े जौहरीने हीरा देखकर कहा कि 'भाई! यह तो अमूल्य है। इस देशकी सारी जवाहरात इसके मूल्यमें देदी जाय तब भी इसका मूल्य पूरा नहीं होता। इसे बेचना नहीं।' यह सुनकर भक्तने विचार किया कि अब तो सीमा हो चुकी।

वह लौटकर महात्माके पास गया और बोला कि 'महाराज! इसकी कीमत कोई कर ही नहीं सकता, यह तो अमूल्य वस्तु है।' गुरुने पूछा कि 'तुमको यह किसने बताया?' भक्त कहा कि 'प्रभो! मैंने यहांसे बाजारमें जाकर पहले शाकवालीसे पूछा तो उसने-दो- शाक देना स्वीकार किया, सुनारने सौ रुपये कहे, महाजनने हजार, जौहरीने लाख और अन्तमें सबसे बड़े जौहरीने इसे अमूल्य बतलाते हुए यह कहा कि 'यदि देशकी सारी जवाहरात इसके बदलेमें दे दी जाय तब भी इसका मूल्य पूरा नहीं होता।' महात्माने उससे रत्न लेकर अपनी झोलीमें रख लिया। भक्तने कहा कि 'महाराज! 'अब!

मेरी शङ्का निवारण कीजिये।' महात्माने कहा—'भाई! मैं तो तुझे शङ्का-निवारणके लिये दृष्टान्तसहित उपदेश दे चुका। तूने अभी नहीं समझा, इसलिये फिर समझाता हूँ। इस रत्नकी कीमत करानेमें ही तेरी शङ्का दूर होनी चाहिये थी। रत्न अमूल्य था; परन्तु उसकी असली पहचान केवल सबसे बड़े जौहरीको ही हुई, दूसरे नहीं पहचान सके। यदि मैंने तुझे बेचनेके लिये आज्ञा दे दी होती तो तू दो सेरके बदले पांच-सात सेर शाकके मूल्यपर इसे बेच ही देता आगे बढ़ता ही नहीं। अमूल्य वस्तु कौड़ीके मूल्य चली जाती। कितना बड़ा नुकसान होता? इसी प्रकार श्रीराम-नाम भी गुप्त और अमूल्य पदार्थ है, इसकी पहचान सबको नहीं है और न इसका मूल्य ही सब कोई जानते हैं। चीज हाथमें होनेपर भी जबतक उसकी पहचान नहीं होती, तब-तक उसका असलीपन गुप्त ही रहता है। इसी तरह राम-नामके असली महत्त्वको भी बहुत कम लोग जानते हैं। जो राम-नाम का व्यवसाय करते हैं वे वेचारे बड़े दया के पात्र हैं क्योंकि वे इस अमूल्य धन राम-नामको कौड़ीके मूल्यपर बेच देते हैं। इसीसे परम मूल्यवान् रत्नको दो सेर शाकके बदलेमें बेच देनेवाले मूर्खके समान वे सदा ही भक्ति और प्रेममें दरिद्री ही रहते हैं। भक्ति और प्रेमके हुए बिना परमात्मा नहीं मिलते और परमात्माको प्राप्त किये बिना दुःखोंसे कभी छुटकारा नहीं हो सकता। दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति पर-मात्माको प्राप्त करनेमें ही है और उस—

परमात्माकी प्राप्तिका परम साधन श्रीभगवन्नाम है

इसलिये भगवन्नामका किसी भी दूसरे काममें प्रयोग नहीं करना चाहिये। भगवन्नाम लेना चाहिये केवल भगवान् के लिये। भगवान्के लिये भी नहीं, उसके प्रेमके लिये प्रेमके लिये भी नहीं परन्तु इसलिये कि लिये बिना रहा नहीं जाता। मनकी वृत्तियाँ ऐसी बन जानी चाहिये कि जिससे भजन हुए बिना एक क्षण भी चैन नहीं पड़े। जैसे श्वास रुकते ही गला घुट जाता है—प्राण अत्यन्त व्याकुल होकर छटपटाने लगते हैं, इसी प्रकार भजनमें जरा-सी भी भूल होनेसे, क्षण-भरके लिये भी भजन छूटनेमें प्राण छटपटाने लगें। इसलिये भगवान् नारद कहते हैं—

अव्यावृतभजनात्।

(भक्तिसूत्र ३६)

तैलधारावत् निरन्तर भजन करनेसे ही प्रेमकी प्राप्ति होती है। भजनमें सबसे पहले नामकी आवश्यकता है। जिसका भजन करना होता है, सर्वप्रथम उसका नाम जानना पड़ता है इस-लिये नाम ही भजनका मूल है। इस—

---नाम-भजनके कई प्रकार—

—हैं—जप, स्मरण और कीर्तन! इनमें सबसे पहले जपकी बात कही जाती है। परमात्माके जिस नाममें रुचि हो जो अपने मनको रुचिकर हो, उसी नामकी परमात्माकी भावनासे बारंबार आवृत्ति करनेका नाम जप है। जपकी शास्त्रोंमें बड़ी महिमा है। जपको यज्ञ माना है और श्रीगीता-जीमें भगवान्के इस कथनसे कि 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (यज्ञोंमें जपयज्ञ मैं हूं) जपका महत्त्व बहुत ही बढ़ गया है। जपके तीन प्रकार हैं—साधारण, उपांशु और मानस। इनमें पूर्व-पूर्वसे उत्तर-उत्तर दस गुण अधिक फलदायक है। भगवान् मनु कहते हैं—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥

'दर्श-पौर्णमासादिविधियज्ञोंसे (यहाँ मनु महाराजने भी विधियज्ञोंसे जपयज्ञको ऊँचा मान लिया है) साधारण जप दश गुण श्रेष्ठ है, उपांशु जप सौ गुण श्रेष्ठ है और मानस जप हजार गुण श्रेष्ठ है।'

जो फल साधारण जपके हजार मन्त्रोंसे होता है वही फल उपांशु जपके सौ मन्त्रोंसे और मानस जपके एक मन्त्रसे हो जाता है। उच्चस्वरसे होनेवाले जपको साधारण

जप कहते हैं (परन्तु यह कीर्तन नहीं है), जिसमें जीभ और होंठ तो हिलते हैं; परन्तु शब्द अन्दर ही रहता है वह उपांशु जप है और जिसमें न जीभके हिलानेकी आवश्यकता होती है और न होंठके, वह मानस जप कहलाता है। उच्चस्वरसे उपांशु उत्तम और उपांशुसे मानसिक उत्तम है। यह मन्त्र जपकी विधि है, किसी भी देवताका कैसा ही मन्त्र क्यों न हो, यह विधि सबके लिये एकसी है। यह विधि असलमें मन्त्रकी दृष्टिसे है। भगवन्नाम मन्त्र भी है। अतएव जहाँ मन्त्रकी भावना है, वहाँ इस विधिकी आवश्यकता है। नामकी दृष्टिमें यह बात नहीं है, वहाँ तो चाहे जैसे भी जपे—सभी प्रकार मङ्गलमय है। कोई विधि-निषेध है ही नहीं। यह नामकी अलौकिक महिमा है। भगवन्नाममें शुद्धि-अशुद्धिकी भी कोई बात नहीं है।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

अपवित्र हो, पवित्र हो, किसी भी अवस्थामें क्यों न हो भगवान् पुण्डरीकाक्षका स्मरण करते ही बाहर और भीतरकी शुद्धि हो जाती है। जल-मृत्तिकासे केवल बाहरकी ही शुद्धि होती है परन्तु भगवन्नाम अन्तरके मलोंको भी अशेषरूपसे धो डालता है, इसका किसीके लिये किसी अवस्थामें भी कोई निषेध नहीं है।

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्वभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

कलिसन्तरणोपनिषद्

—में नाम-जपकी विधि और उसके फलका बड़ा सुन्दर वर्णन है, पाठकोंके लाभार्थ उसे यहाँ उद्धृत किया जाता है।

हरिः ॐ। द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम कथं भगवन् गां पर्यटन् कलिं सन्तरेयमिति॥१॥

द्वापरके समाप्त होनेके समय श्रीनारदजीने ब्रह्माजीके पास जाकर पूछा कि हे भगवन्! मैं पृथ्वीकी यात्रा करनेवाला कलियुगको कैसे पार करूँ?

स होवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्वश्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छृणु येन कलिसंसारं तरिष्यसि। भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति॥२॥

'ब्रह्माजी बोले कि तुमने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है। सम्पूर्ण श्रुतियोंका जो गूढ़ रहस्य है, जिससे कलि-संसारसे तर जाओगे, उसे सुनो। उस आदिपुरुष भगवान् नारायणके नामोच्चारणमात्रसे ही कलिके पातकोंसे मनुष्य मुक्त हो सकता है।

नारदः पुनः पप्रच्छ। तन्नाम किमिति। स होवाच हिरण्यगर्भः।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम्। नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते॥ इति षोडशकलावृतस्य पुरुषस्य आवरणविनाशनम्। ततः प्रकाशते परं ब्रह्म मेघापाये रविरश्मिमण्डलीवेति॥३॥

'श्रीनारदजीने फिर पूछा कि वह भगवान्का नाम कौन-सा है?' ब्रह्माजीने कहा, वह नाम है—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥*

* इस मन्त्रमें भगवान्के तीन नाम हैं—'हरि, राम कृष्ण।' इनमें 'हरि' शब्दका अर्थ है—'हरति योगचेतांसीति हरिः', जो योगियोंके चित्तोंको हरण करता है वह हरि है अथवा 'हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥' जैसे अनिच्छासे स्पर्श कर लेने पर भी अग्नि जला देती है, इसी प्रकार दुष्टचित्तसे भी स्मरण किया हुआ जो हरि पापोंको हर लेता है उसे हरि कहते हैं। 'राम' शब्दका अर्थ है—'रमन्ते योगिनोऽस्मि-

इन सोलह नामोंके उच्चारण करनेसे कलिके सम्पूर्ण पातक नष्ट हो जाते हैं। सम्पूर्ण वेदोंमें इससे श्रेष्ठ और कोई उपाय नहीं देखनेमें आता! इन सोलह कलाओंसे युक्त पुरुषका आवरण (अज्ञानका परदा) नष्ट हो जाता है और मेघोंके नाश होनेसे जैसे सूर्यकिरणसमूह प्रकाशित होता है वैसे ही आवरणके नाशसे ब्रह्मका प्रकाश हो जाता है।

पुनर्नारदः पप्रच्छ भगवन् कोऽस्य विधिरिति। तं होवाच नास्य विधिरिति। सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन् ब्राह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां सायुज्यतामति॥

'नारदजीने फिर पूछा कि हे भगवन्! इसकी क्या विधि है?' ब्रह्माजीने कहा कि 'कोई विधि नहीं है। सर्वदा शुद्ध हो या अशुद्ध, नामोच्चारणमात्रसे ही सालोक्य सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य-मुक्ति मिल जाती है।'

यदास्य षोडशकस्य सार्धत्रिकोटिर्जपति तदा ब्रह्महत्यां तरति। स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति। वृषलीगमनात् पूतो भवति। सर्वधर्मपरित्यागपापात् सद्यः शुचितामाप्नुयात्। सद्यो मुच्यते सद्यो मुच्यते इत्युपनिषत्॥५॥

ब्रह्माजी फिर कहने लगे कि 'यदि कोई पुरुष इन सोलह नामोंके साढ़े तीन करोड़ जप कर ले तो वह ब्रह्महत्या, स्वर्ण की चोरी, शूद्र स्त्री-गमन-और सर्वधर्मत्यागरूपी पापोंसे मुक्त हो जाता है। वह तत्काल मुक्तिको प्राप्त होता है। तत्काल ही मुक्तिको प्राप्त होता है।'

जपकी विधि

इससे यह सिद्ध हो गया कि स्त्री पुरुष, ब्राह्मण-अन्त्यज, गृही-वनवासी, शुद्ध-अशुद्ध, विद्वान्-मूर्ख कोई भी किसी भी प्रकारसे इस षोडश नामके साढ़े तीन करोड़ मन्त्रोंका जप कर लेता है वह समस्त महापातकों, उनके फलस्वरूप नरकों और स्वर्गादि मोक्षमार्गके प्रतिबन्धकोंसे छूटकर परमात्माके सच्चिदानन्दघनस्वरूपको अनायास ही प्राप्त हो जाता है। कितना सहज और सस्ता उपाय है? यदि मनुष्य प्रतिदिन लगभग ६५०० मन्त्रोंका जप करे (जो सोलह नामके मन्त्रों लगभग ६१ मालाओंमें हो जाता है) तो केवल १५ वर्षोंमें साढ़े तीन कोटि जप-संख्या पूरी हो जाती है। यह तो साधारण जप-विधिकी बात है। उपांशु या मनसे जप हो तो बहुत ही शीघ्र सफलता मिल सकती है।

जिस परमात्माको प्राप्त करनेके लिए लाखों करोड़ों जन्मोंतक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जिस परमात्मसुखको पानेके लिये अनन्त जन्मोंकी साधनाकी आवश्यकता होती है, वही परमात्माकी प्राप्तिरूप सिद्धि यदि १५ वर्षोंमें, घरमें रहते हुए, संसारका काम करते हुए शास्त्रसे अविरुद्ध भोगोंको भोगते हुए मिल जाय तो फिर और क्या चाहिये? इससे सस्ता सौदा और क्या हो सकता है? हम सारी उम्र बिता देते हैं थोड़े से धन-संग्रह करनेके लोभमें! जिसका संग्रह होना न होना भी अनिश्चित रहता है? परन्तु समस्त धनोंका मूल, समग्र धन-पतियोंका एकमात्र स्वामी, समस्त देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पितृ, मनुष्य और राक्षस आदिके कुल धनकी, जिस अतुल धनराशिके एक अंशके कोट्यंशके साथ भी तुलना नहीं की जा सकती ऐसा वह परमधन स्वयं यदि पंद्रह वर्षकी श्रद्धायुक्त सहज साधनासे अपने अस्तित्वके साथ तुम्हारे अस्तित्वको मिला लेता है तो बताओ फिर तुम्हें और किस वस्तुकी आव-

न्निति रामः' जिसमें योगिगण रमण करते हैं उसका नाम राम है, अथवा 'रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥' जिस अनन्त चिदात्मा परब्रह्ममें योगिगण रमण करते हैं वह राम है। 'कृष्ण' शब्दका अर्थ है 'कर्षति योगिनां मनांसीति कृष्णः' जो योगियोंके चित्तको आकर्षण करता है वह कृष्ण है अथवा 'कृषिर्भूवाचकः शब्दोणश्च निर्वृतिवाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥' कृषि भू यानेसत्तावाचक है और ण निर्वृतिवाचक है, इन दोनोंकी एकता होनेपर परब्रह्म कृष्ण कहलाता है।

श्यकता रह जाती है ? जब स्वयं सम्राट्का ही पद मिल जाय, तब छोटे-छोटे खेत तो उसमें आप ही आ जाते हैं। तुम संसारका मामूली धन चाहते हो। वह सारे खजानेका स्वामीत्व ही तुम्हें सौंप देता है। फिर मामूली धनकी प्राप्तिके लिये तो कोई गारंटी भी नहीं करता। सब समझदार लोग यों ही कहते हैं, भाई! उद्योग करो, तुम्हारे भाग्यमें होगा तो मिल जायगा, परन्तु इस परमधनकी प्राप्तिके लिए तो शास्त्र जिम्मा लेते हैं। ब्रह्मा स्वयं कहते हैं। इतिहास इस बातकी सत्यताका प्रमाण दे रहे हैं। भक्तोंकी गाथाएँ उच्चस्वरसे इस ध्रुव सत्यकी घोषणा कर रही हैं। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण भी मिल सकते हैं। ऐसी स्थितिमें अविश्वास की तो कोई बात ही नहीं रह जाती।

लोग कह सकते हैं कि 'हम घरका काम करते हुए प्रतिदिन इतने मन्त्रोंका जप कैसे करें ? इतने जपमें कम-से-कम छः घंटेका समय चाहिये।' परन्तु उनका ऐसा कहना भूलसे होता है; यदि हमलोग समयका उपयोग सावधानीके साथ करें तो घर और आजीविकाके काममें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़कर भी इतना जप प्रतिदिन हो सकता है। उस देव-मन्त्रके जपमें बाधा आती है जो स्नानकर शुद्ध हो एक समय एक जगह बैठकर किया जाता है। वैसे जपमें लगातार इतना समय लगाना कठिन होता है, परन्तु इस नाम-मन्त्रके जपमें तो उस तरहकी कोई अड़चन नहीं है। चलते, फिरते, बैठते, उठते, सोते, आजीविकाका काम करते—सब समय सभी अवस्थामें यह जप हो सकता है। यदि हमलोग हिसाब लगाकर देखें तो दिन रातके चौबीस घंटेके समयमेंसे छः घंटे निद्राके बाद देकर बाकीके अठारह घंटे केवल शरीर और आजीविकाके कार्योंमें ही नहीं व्यतीत होते। हमारा बहुत-सा समय तो असावधानीसे व्यर्थकी बातोंमें जाता है, यदि हमलोग वाणीका संयम करना सीख जायँ, बिना मतलब—बिना कार्यके बोलना छोड़ दें तो मेरी समझसे राजासे लेकर मजदूरतक सबको इतना नाम-जप प्रतिदिन करनेके लिये पूरा समय अनायास ही मिल सकता है। हम चेष्टा नहीं करते, केवल बहाना कर देते हैं। यदि चेष्टा करें समयका मूल्य समझें तो एक क्षणको भी हरिके नाम बिना व्यर्थ नहीं जाने दें। कामके लिये जितने बोलनेकी आवश्यकता हुई, उतने शब्द बोल दिये फिर वाणीको उसी नाम-जपमें लगा दिया। इस प्रकार अभ्यास करते रहनेपर तो ऐसी आदत पड़ जाती है कि फिर नाम जप छूटना कठिन हो जाता है, फिर तो साधककी ऐसी प्रबल इच्छा होने लगती है कि चौबीसों घंटे नाम जप ही किया करूँ। उसे थोड़े जपमें सन्तोष नहीं होता। जैसे बड़े जोरकी भूख या प्यास लगनेपर मनुष्यका एक-एक क्षण कष्टसे बीतता है, इसी प्रकार नामप्रेमीका भी जो क्षण नामके बिना जाता है वह बड़े कष्टसे बीतता है !

जप उसीका नाम है जो संख्यासे किया जाता है। जपके तीन प्रकार पहले बतलाये जा चुके हैं। उनके सिवा साधकोंके सुभीतेके लिये और भी कई प्रकार बतलाये जाते हैं। जैसे—

(१) श्वासके द्वारा जप करना।

(२) नाड़ीसे जप करना।

(३) मानस-मूर्ति पूजाकी भाँति नामाक्षरोंकी मनमें कल्पना कर उसको बार बार पढ़ना।

(४) भगवान्‌की मूर्तिकी कल्पना कर उसपर नामाक्षरोंकी गहनोंकी तरह कल्पना कर उनकी आवृत्ति करना।

अन्य भी कई प्रकार तथा भेद हैं, विस्तार भयसे यहाँ नहीं लिखे जाते, उपर्युक्त चारों प्रकारके जपका कुछ खुलासा कर देना आवश्यक है।

(१) प्रत्येक श्वासकी गतिकी ओर लक्ष्य रखना और श्वासके आने तथा जानेमें श्वासके शब्दके साथ ही मन्त्रकी कल्पना करना, साथ ही जिह्वासे भी उपांशुरूपसे उच्चारण करते रहना, आरम्भमें माला रखना और श्वासके साथ होनेवाले प्रत्येक जपकी गिनती रखना। यदि इस प्रकार दो-चार

मालाएँ भी प्रतिदिन जपनेका अभ्यास किया जाय तो मन बहुत शीघ्र स्थिर होकर नाममें लग सकता है। श्वासका जप बिना मनके नहीं होता। साधारण और उपांशु जप तो अभ्यास होनेपर मनके अन्यत्र रहनेपर भी हो सकते हैं, परन्तु श्वासका जप मन बिना नहीं होता, मन नहीं रहता है तो श्वासकी गतिका ध्यान छूट जाता है, केवल जीभसे जप होता रहता है। इसलिये श्वाससे जप करनेवालेको श्वासकी गतिकी ओर ध्यान रखना ही पड़ता है। जहाँ मन अन्यत्र गया कि जप छूटा! कबीरने कहा है—

साँसौ साँसा नाम जप, अरु उपाय कछु नाहिं।

(२) इसी प्रकार नाड़ीका जप है। नाड़ीकी गति श्वाससे भी सूक्ष्म है। हाथ, गले, मस्तक आदिकी नाड़ियाँ अँगुली लगानेपर चलती हुई मालूम होती हैं, अतएव पहले-पहले नाड़ीद्वारा जप करनेवालेको अँगुलियोंसे नाड़ीकी गतिका निरीक्षण करते हुए मनको उस गुतकी ओर लगाकर नाड़ीकी गतिके साथ ही उसके प्रत्येक ठपकेपर मन्त्रकी कल्पना करनी चाहिये। जीभ और मालाका प्रयोग श्वाससे जपके समान ही करना चाहिये।

(३) आंखें मूँदकर मन्त्रके पूरे अक्षरोंकी अपने सामने आकाशमें या हृदयमें कल्पनाकर उन्हें बारंबार मनसे पढ़ता रहे, साथ ही जीभका प्रयोग भी करता रहे। गिनतीके लिए हाथमें माला रक्खे। मन्त्रके अक्षर, हो सके तो बराबर मनमें बनाये रक्खे। या प्रत्येक मन्त्रके जपका आरम्भ करनेके समय कल्पना कर ले और मन्त्र पूरा होते ही मिटा दे। जिस तरीकेमें सुभीता मालूम हो वही करे।

(४) मनकी रुचिके अनुसार भगवान्‌की किसी मूर्तिको मनमें कल्पनाकर मूर्तिके चरणोंमें या गलेकी मालामें या मस्तकमें, मुकुटमें या हस्तपदादि अङ्गोंपर जड़े हुए नगीनोंके गहनोंके रूपमें मन्त्रके चमकते हुए सुन्दर अक्षरोंकी कल्पना कर आंखें मूँदे हुए उनका बारंबार मनसे जप करता रहे। और सब बातें तीसरेके समान ही करे।

योगदर्शनकार कहते हैं—'तज्जपस्तदर्थभावनम्' उसके वाचक प्रणवका जप करता हुआ उसके वाच्य नामीकी—ईश्वरकी भावना करे। वाणीसे जप और मनमें ध्यान दोनोंका एक साथ होना बहुत ही उत्तम साधन है। भगवान्‌ने भी यही कहा है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

(गीता ८।१३)

'जो इस ॐरूप एकाक्षर नाम ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और नामी मुझ परमात्माको स्मरण करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगतिको प्राप्त होता है।'

मनमें भगवान्‌की मूर्तिका, भगवद्भावका या भगवन्नाम-का ध्यान स्मरण करते हुए जीभसे जप करना सर्वोत्तम जप है, इसीके अन्तर्गत उपर्युक्त चारों प्रकार भी हैं। इससे उतरकर साधारण (जोर-जोरसे उच्चारण करते हुए जप करना) है, जिसको जो सुलभ, सुविधाजनक और रुचिकर प्रतीत हो, वह अभ्यास उसीका करे! भगवन्नाम ऐसी वस्तु है जो किसी भी प्रकारसे ग्रहण करनेपर भी मंगलप्रद ही है। भगवन्नाम-जपमें रुचि और विश्वास होना चाहिये, फिर बेड़ा पार है। इतना स्मरण रखना चाहिये कि जो जप निष्काम-भावसे, नामीके ध्यानसे युक्त, प्रेमसहित, निरन्तर और गुप्त होता है वही उत्तम-से-उत्तम समझा जाता है, अतएव यथा-साध्य कुछ मालाएँ (कम-से कम १४ मालाएँ) प्रतिदिन जपनी चाहिये। नियमसे जो काम होता है वह अनियमसे नहीं होता।

यदि निष्काम न आ सके तो विश्वास रखकर सकामभावसे ही जप करना चाहिये। भगवन्नाम जपकी महिमासे आगे

चलकर सकाम भी निष्काम हो सकता है! प्रातःस्मरणीय भक्तराज ध्रुवजीने राज्यकी इच्छासे वनमें जाकर ध्यानसहित मन्त्र-जप किया! उन्हें राज्य भी मिला और भगवान्का परमधाम भी! उन्हें सिद्धि भी बहुत शीघ्र मिली। थोड़े से ही समयमें काम बन गया, इतना सब क्यों हो गया? इसीलिए कि ध्रुव दृढ़विश्वासी था! जिस समय मातासे उसे उपदेश मिला उसी समय बालक ध्रुव घरसे निकल पड़ा। रास्तेमें भगवान् नारद मिले। उन्होंने सहजमें राज्य दिलवानेका लोभ और वनके भीषण कष्टोंका भय दिखलाकर ध्रुवकी परीक्षा की, जब उसे पक्का पाया तो नारदजीने दयाकर उसे भगवन्नामका मन्त्र दे दिया। ध्रुव दृढ़ निश्चयके साथ तन-मनकी सारी सुधि भुलाकर मन्त्रका जप करने लगा। भगवद्भावसे उसके हृदयमें आनन्दका समुद्र उमड़ा! साक्षात् नारायणको उसके सामने मूर्तिमान् होकर प्रयत्यक्ष दर्शन देना पड़ा! आज हम लोगोंको भगवद्दर्शनमें जो देरी हो रही है इसका कारण यही है कि हमें नामपर पूरा विश्वास नहीं है। जितने अंशमें विश्वास है उतने अंशमें सिद्धि भी होती है!

भक्तराज श्रीहरिदासजी बड़े जोर-जोरसे उच्चारण करके नाम-जप किया करते थे। तीन लाख नाम-जपका उनका नियम था। रामचन्द्रखाँकी भेजी हुई वेश्या उन्हें डिगाने आयी। परन्तु तीन राततक हरिदासजीके पवित्र मुखारविन्दसे निकली हुई परम पुनीत हरिध्वनिको सुनकर स्वयं पापपथसे डिग गयी और उसी क्षण दुराचार छोड़कर परम वैष्णवी बन गयी। तात्पर्य यह कि विश्वास और प्रेमके साथ नाम-जप होना चाहिये। किसी भी प्रकार हो! नामका फल अमोघ है!

स्मरण

स्मरण जपके साथ भी रहता है और अलग भी। यों तो पहले स्मृति हुए बिना न जप होता है और न कीर्तन होता है, परन्तु बीचमें स्मरण छूट जानेपर भी जप और कीर्तन होते रहते हैं। जीभका अभ्यास हो जानेपर जप होता रहता है। ठीक मन्त्रोंके अनुसार ही मालाकी मणियोंपर भी हाथ चलता रहता है परन्तु स्मरण नहीं रहता। स्मृति मनकी वृत्ति है। वाणी अभ्यासवश एक काम करती है, मन उस समय किसी दूसरी स्मृतिमें रमता रहता है। इसलिये भगवान्ने मनसहित वाणीके जपको उत्तम बतलाया। जिस जपमें नामीकी मूर्ति, उसके गुण, उसके भाव या नामकी स्मृति रहती है वह जप स्मरणयुक्त कहलाता है। जो जप केवल जिह्वासे होता है वह जप स्मरणरहित कहा जाता है। स्मरण-रहितकी अपेक्षा स्मरणयुक्तका माहात्म्य अधिक है, क्योंकि उसमें मन-वाणी दोनों एक काम करते हैं। महात्मा पुरुषोंके वचन हैं कि जिसकी जबान और मन दोनों एक से होते हैं, वही सच्चा साधु है। स्मरणयुक्त जपमें जबान और मन दोनोंकी एकतानता हो जाती है इसीलिये उसका फल इतना विशेष है परन्तु स्मरण ऐसा भी होता है जो केवल स्मरण ही कहलाता है, जप नहीं। जप वही होता है जिसकी संख्या होती है। स्मरणकी कोई संख्या नहीं होती। जहांतक स्मरणका पूरा अभ्यास न हो वहांतक तो स्मरणयुक्त जप ही करनेकी चेष्टा करनी चाहिये, परन्तु जब स्मरणका पूरा अभ्यास हो जाय तब फिर जपकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसे अनन्यस्मरणकी विधि और उसका फल श्रीभगवान बतलाते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
(गीता ८। १४)

'जो पुरुष अनन्यचित्त होकर सदा सर्वदा मुझे स्मरण करता है उस मुझे निरन्तर स्मरण करनेवाले योगीके लिये मैं सुलभ हूँ।' चित्त में दूसरे विषयको कभी स्थान न हो, प्रतिदिन और प्रतिक्षण उसीकी स्मृति बनी रहे। इस प्रकार नित्य लगे रहनेवालेके लिये भगवान् सहज (सस्ते) हो जाते

हैं परन्तु इस स्मरणका रूप कैसा होता भक्तराज कबीरजी कहते हैं—

सुमिरनकी सुधि यों करो, जैसे कामी काम।
एक पलक ना बीसरै, निसदिन आठो याम॥
सुमिरनकी सुधि यों करो, ज्यों सुरभी सुत माँहि।
कह कबीर चारो चरत, बिसरत कबहूँ नाँहि॥
सुमिरनकी सुधि यों करो, जैसे दाम कँगाल।
कह कबीर बिसरे नहीं, पल-पल लेत सम्हाल॥
सुमिरनसों मन लाइये, जैसे नाद कुरंग।
कह कबीर बिसरे नहीं, प्रान तजै तेहि संग॥
सुमिरनसों मन लाइये; जैसे दीप पतंग।
प्रान तजै छिन एकमें, जरत न मोड़े अंग॥
सुमिरनसों मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसारे आपको, होय जाय तेहि रंग॥
सुमिरनसों मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्रान तजै पल बिछुड़े, सत कबीर कह दीन॥

'जैसे कामी आठ पहरमें एक क्षणके लिये भी स्त्रीको नहीं भूलता, जैसे गौ वनमें घास चरती हुई भी बछड़ेको सदा याद रखती है, जैसे कंगाल अपने टेंटके पैसेको पल-पलमें सम्हाला करता है, जैसे हरिण प्राण दे देता है परन्तु बीणाके स्वरको नहीं भूलना चाहता, जैसे बिना संकोचके पतङ्ग दीप शिखामें जल मरता है परन्तु उसके रूपको भूलता नहीं, जैसे कीड़ा अपने-आपको भुलाकर भ्रमरके स्मरणमें उसीके रंगका बन जाता है और जैसे मछली जलसे बिछुड़नेपर प्राणत्याग कर देती है परन्तु उसे भूलती नहीं। गोसाईंजी महाराजने भी कहा है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

स्मरणका यह स्वरूप है

इस प्रकार जिसका मन उस परमात्माके नाम-चिन्तनमें रम जाता है वे तृप्त, पूर्णकाम और अकाम हो जाते हैं। उन्हें किसी भी वस्तुकी इच्छा अवशेष नहीं रह जाती। भगवान् ने कहा है—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥
(श्रीमद्भा० ११।१४।१४)

'जिसने अपना चित्त मुझमें अर्पित कर दिया है, वह मुझे छोड़कर ब्रह्माजीका पद, स्वर्गका राज्य, समस्त भूमण्डल का चक्रवर्तित्व, पातालादि देशोंका आधिपत्य, अणिमादि योगकी सिद्धियाँ तथा मोक्ष—कुछ भी नहीं चाहता!'

यहाँपर कोई कह सकते हैं कि यह तो नामीके स्मरणकी कथा है। यहाँ नामकी कौन-सी बात है? इसका उत्तर यह है कि नामसे ही नामीका पता लगता है, हम यदि अपने पिताके स्वरूपका स्मरण करते हैं तो 'पिता' इस सम्बन्ध-नामका स्मरण पहले होता है, नाम बिना नामीकी कल्पना ही नहीं हो सकती। नाम ही नामीका परिचय कराता है। गोसाईंजीने बहुत ही सुन्दर कहा है—

देखिअहिं रूप नाम आधीना।
रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें।
करतलगत न परहिं पहिचानें॥

रूप नामके अधीन ही देखा जाता है। किसीके हाथमें हीरा है। परन्तु जबतक उस हीरेको वह हीरा नहीं समझता तबतक उसे रूपका ज्ञान नहीं होता। रूपका ज्ञान हुए बिना वह उसका मूल्य नहीं जानता। जब किसी जौहरी से उसका नाम 'हीरा' जान लेता है तभी उसे उसकी बहुमूल्यताका ज्ञान होता है। इससे यह सिद्ध हो गया कि नामका स्मरण हुए बिना नामी का ज्ञान नही होता। नामका कुछ दिनों

तक स्मरण करनेपर, साधकके अन्तरमें जो एक आनन्दका सरोवर बँधा पड़ा है उसका बाँध टूट जाता है, वह सुखकी प्रबल धारामें बह जाता है। उस समय उस रामरसके सामने उसे सब रस फीके मालूम होने लगते हैं। वह जोरसे पुकार उठता है कि—

पायो नाम चारु चिन्तामनि उर करतें न खसैहौं।

नामकी सुन्दर चिन्तामणि मुझे मिल गयी। अब मैं इसे हृदय और हाथोंसे कभी न जाने दूँगा। वह ऐसा क्यों कहता है? इसीलिये कि उसे इसमें वह सुख मिलता है जो बड़े-बड़े विषयी सम्राटोंको भी नसीब नहीं होता भगवान् कहते हैं—

मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः।
मयाऽऽत्मना सुखं यत्तत् कुतः स्याद् विषयात्मनाम्॥
(श्रीमद्भा० ११।१४।१२)

'मुझमें चित्त लगानेवाले और समस्त विषयोंकी अपेक्षा छोड़नेवाले भक्तको मुझसे जो परम सुख मिलता है, वह सुख विषयासक्त-चित्त लोगोंको कहाँसे मिल सकता है?'

मन जितना ही विषयोंका चिन्तन करता है उतना ही संसारमें बँधता है, क्योंकि विषय-चिन्तनसे ही क्रमशः सङ्ग; काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश और अन्तमें सर्वनाश होता है। मनमें पहले-पहले जब स्फुरणा उठती है तो वह तरङ्गके सदृश होती है, परन्तु वही आगे जाकर समुद्र बन जाती है। इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले लोगोंको चाहिये कि वे मनमें विषयोंके बदले धीरे-धीरे भगवान्‌को स्थान दें। उपर्युक्त युक्तियोंके द्वारा नाम-स्मरण करें। एक दृढ़ अभ्यासका नाश करनेके लिये उसके विरोधी दूसरे अभ्यासकी ही आवश्यकता होती है। अनभ्यस्त विषयके चिन्तनमें पहले पहले मन ऊबता, अकुलाता और झल्लाता है, परन्तु दृढ़ताके साथ अभ्यास करते रहनेपर अन्तमें वह तदाकार बन ही जाता है, इसलिये हठसे भी मनको परमात्माके नाम-स्मरणमें लगाना चाहिये। नियम कर लेना चाहिये कि मनसे इतने नाम-जप प्रतिदिन अवश्य करेंगे। कम से-कम उतना जप तो प्रतिदिन हो ही जाना चाहिये। स्मरणसे ही मनमें प्रेमकी उत्पत्ति होती है। एक स्त्री अपने नैहरमें है, उसका पति वहाँ नहीं है। पतिका रूप उसके सामने नहीं है; परन्तु पतिका नाम-स्मरण होते ही उसका मन प्रेमसे भर जाता है।

नाम-स्मरण करते-करते जब स्मरणकी बान पड़ जाती है तब तो मन कभी उसे छोड़ता ही नहीं। स्मरणसे क्या नहीं होता? यदि अन्तकालमें परमात्माके नामका स्मरण हो जाय तो उसके मोक्षमें जरा सा भी सन्देह नहीं रह जाता। भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है कि—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
(गीता ८।५)

'जो पुरुष मृत्युकालमें मुझे स्मरण करता हुआ शरीर त्यागकर जाता है वह मुझे ही प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।' परन्तु अन्तकालमें परमात्माकी स्मृति किसे होती है जो 'सदा तद्भावभावितः' होता है, अर्थात् सदा जिस भावका चिन्तन करता है अन्तकालमें भी प्रायः उसीका स्मरण हुआ करता है। इसीलिये भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा कि हे पार्थ!

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥
(गीता ८।७)

'तू सदा-सर्वदा मेरा स्मरण करता हुआ युद्ध कर, इस प्रकार मुझमें मन-बुद्धि अर्पित हो जानेसे तू निस्सन्देह मुझे ही प्राप्त होगा!'

ब्राह्मण हो तो वेदाध्ययन करे, क्षत्रिय हो तो रणमें जाय, वैश्य हो तो व्यापार करे, शूद्र हो तो सेवा करे। सब अपना-

अपना काम करें, परन्तु करें उसे याद रखते हुए। वैसे ही जैसे कि दुराचारिणी उपपतिको, कृपण धनको और विषयी विषयको निरन्तर याद रखता है, पनिहारी सिरपर दो घड़े उठाकर चलती है, रास्तेमें दूसरीसे बात भी करती है परन्तु परन्तु उसकी स्मृति रहती है सिरपर उठाये हुए उन दोनों घड़ोंमें। इस प्रकार क्षणमात्रके स्मरणसे ही बड़ाकाम होता है। आजकल लोग माला फेरते हैं, हाथ रहता है गौमुखीमें, परन्तु मन डोला करता है विषयोंमें! मन्त्र-जपमें गौड़ता होती है और विषयोंमें मुख्यता। इसीसे जप करते-करते बीच-बीचमें वे बोल उठते हैं।

एक सेठजी जप कर रहे थे, माला हाथमें थी, मुँहसे भी मन्त्रका उच्चारण करते थे; परन्तु उनका मन और ही अनेक बातोंके चिन्तनमें लगा हुआ था। पुत्र भी पास बैठा सन्ध्या कर रहा था। सेठजी माला फेरते-फेरते ही बीचमें बोल उठे—'अरे! कल सब ग्राहकोंके रुपये आ गये? राम राम राम राम। देख तू बड़ा मूर्ख है, कहीं व्यापारमें भी सचाईसे कमाई होती है? राम राम राम राम। हाथीके दाँत दिखानेके दूसरे और खानेके दूसरे होते हैं—राम राम राम राम। नहीं तो व्यापारमें रस-कस कैसे बैठे? राम राम राम राम। माप तौलमें जरा कस बैठना चाहिये—राम राम राम राम। मैं तो मर जाऊँगा फिर तेरा काम कैसे चलेगा? राम राम राम राम।'

इसतरह राम राम करनेवाले ढोंगी लोगोंके कारण ही ही नामपर लोगोंकी रुचि घटती है, परन्तु नामप्रेमियोंको इस ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। यदि कोई मूर्ख रत्नका दुरुपयोग भी करता है तो इससे रत्नका रत्नपना और उसकी बहुमूल्यता थोड़े ही घट जाती है। कहनेका तात्पर्य केवल इतना ही है कि स्मरण सच्चा होनेसे ही शीघ्र फलप्रद होता है।

स्मरणके बाद आता है—

कीर्तन

कीर्तन जोर-जोरसे होता है और इसमें संख्याका कोई हिशाब नहीं रक्खा जाता। यही जप और कीर्तनमें भेद है। जप कितना गुप्त होता है उतना ही उसका अधिक महत्त्व है परन्तु कीर्तन जितना ही गगनभेदी स्वरमें होता है उतना ही उसका महत्व बढ़ता है। कीर्तनके साथ सङ्गीतका सम्बन्ध है। कीर्तनमें पहले-पहले स्वरोंकी एकतानता करनी पड़ती है। कीर्तनके कई प्रकार हैं।

(१) अकेले ही भगवान्के किसी नामको आर्तभावसे पुकार उठना। जैसे द्रोपदी और गजराज आदिने पुकारा था।

(२) अकेले ही भगवान्के गुणनाम, कर्मनाम, जन्मनाम और सम्बन्ध नामोंका विस्तारपूर्वक या संक्षेपमें जोर-जोरसे उच्चारण करना।

(३) भगवान्के किसी चरित्र या भक्तचरित्रके किसी कथाभागका गान मरना और बीच-बीचमें नामकीर्तन करना।

(४) कुछ लोगोंका एक साथ मिलकर प्रेमसे भगवन्नाम गान करना।

(५) अधिक लोगोंका एक साथ मिलकर एक स्वरसे नामकीर्तन करना।

इसके सिवा और भी अनेक भेद हैं। जब मनुष्य किसी दु:खसे घबराकर जगत्के सहायकों से निराश होकर भगवान्से आश्रय याचना करता हुआ जोरसे उसका नाम लेकर पुकारता है तब भगवान् उसी समय भक्तकी इच्छाके अनुकूल स्वरूप धारण कर उसे दर्शन देते और उसका दुःख दूर करते हैं श्रीभगवान्के रामावतार और कृष्णावतारमें असुरोंके द्वारा पीड़ित सुर-मुनियोंने मिलकर पहले आर्तस्वरसे कीर्तन ही किया था।

जिस समय एकवस्त्रा देवी द्रौपदी कौरवोंके दरबारमें केश पकड़कर लायी जाती है, दुर्योधन उसके वस्त्रहरणके लिए अमित बलशाली दुःशासनको आज्ञा देता है, उस समय

द्रौपदीको यह कल्पना ही नहीं होती कि इस बड़े-बूढ़े धर्मज्ञ विद्वान् और वीरोंकी सभामें ऐसा अन्याय होगा; परन्तु जब दुःशासन सचमुच वस्त्र खींचने लगता है तब द्रौपदी घबराकर राजा धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य आदि तथा अपने वीर पाँच पतियोंकी सहायता चाहती है परन्तु भिन्न-भिन्न कारणोंसे जब कोई भी उस समय द्रौपदीको छुड़ानेके लिये तैयार नहीं होता तब वह सबसे निराश हो जाती है। सबसे निराश होनेके बाद ही भगवान्की अनन्य स्मृति हुआ करती है। दुःशासन बड़े जोरसे साड़ी खींचता है। एक झटका और लगते ही द्रौपदीकी लज्जा जा सकती है। द्रौपदीकी उस समय दीन अवस्था हमलोगोंकी कल्पनामें भी पूरी नहीं आ सकती। महलोंके अन्दर रहनेवाली एक राजरानी, पृथ्वीके सबसे बड़े पाँच वीरोंद्वारा रक्षिता कुलरमणी रजस्वला अवस्थामें बड़े-बूढ़े तथा वीर पतियोंके सामने नंगी की जाती हो, उस समय उसको कितनी मर्मवेदना होती है इस बातको वही जानती है! कवियोंकी कलम शायद कुछ कल्पना करे! खैर, द्रौपदीने निराश होकर भगवान्का स्मरण किया और वह व्याकुल होकर पुकार उठी--

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव॥
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्॥

'हे द्वारकावासी गोविन्द! हे गोपीजनप्रिय कृष्ण! क्या मुझ कौरवोंसे घिरी हुईको तू नहीं जानता? हे नाथ, रमानाथ, व्रजनाथ, दुःखनाशक जनार्दन! मुझ कौरवरूपी समुद्रमें डूबी हुईका उद्धार कर! हे विश्वात्मा? विश्वभावन कृष्ण! हे महायोगी कृष्ण! कौरवोंके बीचमें हताश होकर तेरे शरण आनेवाली मुझको तू बचा!'

व्याकुलतापूर्ण नामकीर्तनका फल तत्काल होता है, जब सबकी आशा छोड़कर केवलमात्र परमात्मापर भरोसा कर उसे एक मनसे कोई पुकारता है तब वह करुणासिन्धु भगवान् एक क्षण भी निश्चिन्त और स्थिर नहीं रह सकता। उसे भक्तके कामके कामके लिए दौड़ना ही पड़ता है। नामकी पुकार होते ही द्रौपदीके वस्त्रोंमें भगवान् आ घुसे, वस्त्रावतार हो गया! वस्त्रका ढेर लग गया। दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाली वीर दुःशासनकी भुजाएँ फटने लगीं--

'दस हजार गज बल घट्यो, घट्यो न दस गज चीर!'

भक्त सूरदास कहते हैं—

दुःससनकी भुजा थकित भइ बसनरूप भए स्याम!

साड़ीका छोर न आया! एक कवि कहते हैं--

पाय अनुसासन दुसासनकै कोप धायो,
द्रुपदसुताको चीर गहे भीर भारी है।
भीषम, करन, द्रोन बैठे व्रतधारी तहाँ,
कामिनीकी ओर काहू नेक ना निहारी है॥
सुनिकै पुकार धाये द्वारिकाते जदुराई,
बाढ़त दुकूल खैंचे भुजबल भारी है।
सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है, कि
सारी ही कि नारी है कि नारी ही कि सारी है॥

दुःशासन थककर मुँह नीचा करके बैठ गया, द्रौपदीकी लाज और उसका मान रह गया। भगवन्नाम कीर्तनका फल प्रत्यक्ष हो गया!

जय भगवान्के पावन नामकी जय!

इसी प्रकार गजराजकी कथा प्रसिद्ध है। वहां भी इसी तरहकी व्याकुलतापूर्ण नामकी पुकार थी! यदि आज भी कोई यों ही सच्चे मनसे व्याकुल होकर पुकारे तो यह निश्चय है कि उसके लोक परलोक दोनोंकी सिद्धि निश्चितरूपेण हो सकती है। इस बातका कई लोगोंको कई तरहका प्रत्यक्ष अनुभव है। अतएव प्रातःकाल, सायंकाल, रातको सोते

समय भगवन्नामका कीर्तन अवश्य करना चाहिये। जहाँतक हो सके कीर्तन निष्काम एवं केवल प्रेमभावसे ही करना उचित है।

यह तो व्यक्तिगत नाम कीर्तनकी बात हुई। इसके बाद समुदायमें नाम-कीर्तनका तरीका बतलाया जाता है। महाराष्ट्र और गुजरातप्रान्तमें कीर्तनकारोंके अलग समुदाय हैं जो हरिदास कहलाते हैं। ये लोग समय-समयपर मन्दिरों, धर्मसभाओं और उत्सवोंके अवसरपर बुलाये जाते हैं, इनका कीर्तन बड़ा सुन्दर होता है। भगवान्‌की किसी लीला-कथाको या भक्तोंके किसी चरित्रको लेकर यह लोग कीर्तन करते हैं। आरम्भमें किसी भक्तका कोई एक श्लोक या पद गाते हैं और उसीपर उनका सारा कीर्तन चलता है, अन्तमें उसी श्लोक या पदके साथ कीर्तन समाप्त किया जाता है। आरम्भमें, अन्तमें और बीच-बीचमें हरि-नामकी धुन लगायी जाती है जिसमें श्रोतागण भी साथ देते हैं! ये लोग गाना-बजाना भी जानते हैं और कम से-कम हार्मोनियम तथा तबलोंके साथ इनका कीर्तन होता है। बीच-बीचमें सुन्दर पद भी गाते हैं। इसमें दोष यही है कि इस प्रकारके अधिकांश कीर्तनकारोंका ध्यान भगवन्नामकी अपेक्षा सुर-अलापकी तरफ अधिक रहता है। गुजरातमें विवाहके अवसर पर एक दिन हरिकीर्तन करानेकी प्रथा है जो बड़ी ही सुन्दर मालूम होती है। अन्य अनेक प्रमादोंमें धनका नाश किया जाता है, वहां यदि इस प्रथाका प्रचार किया जाय तो लोगोंको मनोरञ्जनके साथ-ही साथ बड़ा पारमार्थिक लाभ हो सकता है। यह भी एक तरहका सङ्ग-कीर्तन है।

इसके बाद वह कीर्तन आता है जो सर्वश्रेष्ठ है! जिसका इस युगमें विशेष प्रचार महाप्रभु श्रीश्रीगौराङ्गदेवजीकी कृपासे हुआ। इस कीर्तनका प्रकार यह है। बहुत-से लोग एक स्थानपर एकत्रित होते हैं। एक आदमी एक बार पहले बोलता है, उसके पीछे-पीछे और सब बोलते हैं, पर आगे चलकर सभी एक साथ बोलने लगते हैं। किसी एक नामकी धुनको सब एक स्वरसे बोलते हैं। ढोल, करताल, भाँझ और तालियाँ बजाते हुए गला खोलकर लज्जा छोड़कर बोलते हैं। जब धुन जम जाती है तब स्वरका ध्यान आप ही छूट जाता है। कीर्तन करनेवाला दल धुनमें मस्त हो जाता है, फिर कीर्तनकी मस्तीमें नृत्य आरम्भ होता है। रग-रग नाचने लगती है, आँखोंसे अश्रुओंकी धारा बहने लगती है, शरीरज्ञान नष्ट हो जाता है। नवद्वीप, वृन्दावन, अयोध्या और पण्ढरपुरमें ऐसे कीर्तन बहुत हुआ करते हैं। यह कीर्तन किसी एक स्थानमें भी होता है और घूमते हुए भी होता है। लेखकका विश्वास है कि ऐसे प्रेमभरे कीर्तनमें कीर्तनके नायक भगवान् स्वयं उपस्थित रहते हैं। उनका यह प्रण है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥
(आदिपु० १९३५

'मैं वैकुण्ठमें या योगियोंके हृदयमें नहीं रहता। मेरे भक्त जहां मिलकर मेरा गान करते हैं मैं वहीं रहता हूँ।'

इस प्रकारके कीर्तनमें प्रेमका सागर उमड़ता है, जो जगत्‌भरको पावन कर देता है। इस कीर्तनमें ब्राह्मण-चाण्डाल सभी शामिल हो सकते हैं। जिसको प्रेम उपजा, वही सम्मिलित हो गया, कोई रुकावट नहीं। 'जाति पांति पूछै नहिं कोई। हरिको भजै सो हरिका होई।' वही बड़ा है, वही श्रेष्ठ है जो प्रेमसे नाम कीर्तनमें मतवाला होकर स्वयं पावन होता है और दूसरोंको पावन करता है। इस कीर्तनसे एक बड़ा लाभ और होता है। हरिनामकी तुमुल ध्वनि पापी, पतित, पशु, पक्षी तकके कानोंमें जाकर सबको पवित्र और पापमुक्त करती है। जिसके श्रवणरन्ध्रोंसे भगवन्नाम उसके हृदयके अंदर चला जाता है उसीके पाप-मलको वह धो डालता है।

वामनपुराणका वचन है—

नारायणो नाम नरो नराणां
प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेकजन्मार्जितपापसञ्चयं
हरत्यशेषं श्रुतमात्र एव॥

'पृथ्वीमें नारायण-नामरूपी नर प्रसिद्ध चोर कहा जाता है, क्योंकि वह कानोंमें प्रवेश करते ही मनुष्योंके अनेक जन्मार्जित पापोंके सारे सञ्चयको एकदम चुरा लेता है।'

जिस हरि-नाम-कीर्तनका ऐसा प्रताप है, जो पुरुष जीभ पाकर भी उसका कीर्तन नहीं करते वे निश्चय ही मन्द-भागी हैं—

जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत्।
लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणीं स नारोहति दुर्मतिः॥

'जो जिह्वाको पाकर भी कीर्तनीय भगवन्नामका कीर्तन नहीं करते, वे दुर्मति मोक्षकी सीढ़ियोंको पाकर भी उनपर चढ़नेसे वञ्चित रह जाते हैं।'

कुछ लोग कहा करते हैं कि हमें जोर-जोरसे भगवन्नाम लेनेमें संकोच होता है। मैंने ऐसे बहुत-से अच्छे-अच्छे लोगोंको देखा है कि जिन्हें पाँच आदमियोंके सामने या रास्तेमें हरिनामकी पुकार करनेमें लज्जा आती है। झूठ बोलनेमें, कठोर वाणीके प्रयोगमें, परनिन्दा-परचर्चामें, अनाचार-व्यभिचारकी बातें करनेमें लज्जा नहीं आती, परन्तु भगवन्नाममें लज्जा आती है। यह बड़ा ही दुर्भाग्य है! यदि भगवन्नामसे सभ्यतामें बट्टा लगता हो तो ऐसी विषमयी शुष्क सभ्यताको दूरसे ही नमस्कार करना चाहिये! धन्य वही है जिसके भगवन्नामके कीर्तनमात्रसे, श्रवण और स्मरणमात्रसे रोमाञ्च हो जाता है। नेत्रोंमें आंसू भर जाते हैं, कण्ठ रुक जाता है। वास्तवमें वही पुरुष मनुष्य नामके योग्य है। ऐसे पुरुष ही जगत्को पावन करते हैं। भगवान् कहते हैं—

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥
(श्रीमद्भा० ११।१४।२४)

'जिसकी वाणी गद्गद हो जाती है, हृदय द्रवित हो जाता है, जो बार बार ऊँचे स्वरसे नाम ले-लेकर मुझे पुकारता है, कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी लज्जा छोड़कर नाचता है, ऊँचे स्वरसे मेरा गुणगान करता है ऐसा भक्तिमान् पुरुष अपनेको पवित्र करे इसमें तो बात ही क्या है; परन्तु वह अपने दर्शन और भाषणादिसे जगत्को पवित्र कर देता है।'

यही कारण था कि कीर्तनपरायण भक्तराज नारदजी और श्रीगौराङ्गदेव आदिके दर्शन और भाषण आदिसे ही अनेकों जीवोंका उद्धार हो गया।

महाप्रभुके कीर्तनको सुनकर वनमें रहनेवाले भीषण सिंह, भालू आदि हिंस्र पशु भी प्रेममें निमग्न होकर नाम-कीर्तन करते हुए नाचने लगे थे! भगवान् कहते हैं, हे अर्जुन—

गीत्वा तु मम नामानि नर्तयेन्मम सन्निधौ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन॥

'जो मेरे नामोंका गान करता हुआ मुझे अपने समीप मानकर मेरे सामने नाचता है मैं सत्य कहता हूँ कि मैं उसके द्वारा खरीदा जाता हूँ।'

कीर्तनकी महिमा क्या कही जाय? जो कभी कीर्तन करता है उसी भाग्यवान्को इसके आनन्दका पता है। जिसको यह आनन्द प्राप्त करना हो वह स्वयं करके देख ले। वाणी इस आनन्दके रूपका वर्णन नहीं कर सकती। क्योंकि यह 'मूकास्वादनवत्' (नारदभक्ति० ५२) गूँगेके गुड़के समान केवल अनुभवकी वस्तु है!

यहाँतक बहुत संक्षेपसे नाम, जप, स्मरण और कीर्तन-सम्बन्धी कुछ बातें कही गयीं। साधुओंके सुभीतेके लिये यह

भेद-कल्पना है। नहीं तो जप, स्मरण या कीर्तन सब एक ही वस्तु है। श्रीभगवान्‌के परम पावन नामका किसी तरहसे भी ग्रहण हो, वह कल्याणकारी ही है। नामके ही प्रतापसे प्रह्लादने जडमेंसे चेतनरूप होकर भगवान्‌को अवतार लेनेके लिए बाध्य कर दिया। नामके प्रतापसे ही वह अग्नि, सांप आदिसे बच गया, जहर पीकर भी नहीं मरा। नामके ही प्रतापसे मीराके लिये जहर हरिचरणामृत हो गया। नामके प्रतापसे नारद, ब्यास, शुकदेवादि जगत्-पूज्य हैं। नामके ही प्रतापसे ब्रह्माजी सृष्टि रचनेमें समर्थ हुए। नामके प्रतापसे पानीपर पत्थर तर गये। नामके ही प्रतापसे हनुमानजी चार-सौ योजनका सागर अल्पायाससे लांघ गये। नामके ही प्रतापसे श्रीशंकर, रामानुज, वल्लभ, मध्व, निम्बार्क, चैतन्य आदि आचार्योंने भगवद्भावको प्राप्त किया और उसीके प्रतापसे आज उनके शिष्य और वंशज पूजित हो रहे हैं। नामकी महिमा कहांतक कही जाय! शेष, महेश, गणेश, शारदा भी जिसका वर्णन नहीं कर सकते, उसका वर्णन मैं क्षुद्रमति क्या करूँ! जो एकबार नामका मजा चख लेता है, वह पागल हो जाता है, उसके सारे पाप-ताप मिट जाते हैं। वह स्वयं मुक्त होकर दूसरोंके लिए मुक्तिका मार्ग प्रशस्त कर देता है। संतोंने इसीके बलसे जनताको मुक्तिकी राह बतलानेमें सफलता प्राप्त की थी। नाम ही जीवन है, नाम ही धन है, नाम ही परिवार है, नाम ही इज्जत है, नाम ही कीर्ति है, नाम ही स्वर्ग है, नाम ही अमृत है!

न नामसदृशं ज्ञानं न नामसदृशं व्रतम्।
न नामसदृशं ध्यानं न नामसदृशं फलम्॥
न नामसदृशस्त्यागो न नामसदृशः शमः।
न नामसदृशं पुण्यं न नामसदृशी गतिः॥
नामैव परमा मुक्तिर्नामैव परमा गतिः।
नामैव परमा शान्तिर्नामैव परमा स्थितिः॥
नामैव परमा भक्तिर्नामैव परमा मतिः।
नामैव परमा प्रीतिर्नामैव परमा स्मृतिः॥
नामैव कारणं जन्तोर्नामैव प्रभुरेव च।
नामैव परमाराध्यो नामैव परमो गुरुः॥

'नामके समान न ज्ञान है, न व्रत है, न ध्यान है, न फल है, न दान है, न शम है, न पुण्य है और न कोई आश्रय है। नाम ही परम मुक्ति है, नाम ही परम गति है, नाम ही परम शान्ति है, नाम ही परम निष्ठा है, नाम ही परम भक्ति है, नाम ही परम बुद्धि है, नाम ही परम प्रीति है, नाम ही परम स्मृति है, नाम ही जीवका कारण है, नाम ही प्रभु है, नाम ही परम आराध्य है और नाम ही परम गुरु है!' भगवान् कहते हैं, हे अर्जुन—

नामयुक्तान् जनान् दृष्ट्वा स्निग्धो भवति यो नरः।
स याति परमं स्थानं विष्णुना सह मोदते॥
तस्मान्नामानि कौन्तेय भजस्व दृढमानसः।
नामयुक्तः प्रियोऽस्माकं नामयुक्तो भवार्जुन॥

'नामयुक्त पुरुषोंको देखकर जो मनुष्य प्रसन्न होता है वह परमधामको प्राप्त होकर मुझ विष्णुके साथ आनन्द करता है। अतएव हे कौन्तेय! दृढ़ चित्तसे नाम-भजन करो। नामयुक्त व्यक्ति मुझे बड़ा प्रिय है। हे अर्जुन! तुम नामयुक्त होओ।'

यदि भारतीय हिंदू-जातियोंमें कभी एकता हो सकती है, यदि जगत्‌का सारा आस्तिक-समाज कभी प्रेमके एक सूत्रमें बँध सकता है, यदि कभी जगत्‌में विश्वप्रेमका पूरा प्रसार हो सकता है तो मेरी समझसे वह भगवन्नामसे ही सम्भव है! आज भगवान्‌को भूलकर लोग कार्य करते हैं इसीलिये तो उन्हें सफलता नहीं मिलती। मैं तो सबसे यही प्रार्थना करता हूँ कि वैर-विरोध, हिंसा-मत्सर, काम-क्रोध, असत्य-स्तेयका यथासाध्य परित्यागकर सब श्रीभगवन्नामके साधनमें लग जायँ। मेरी समझमें इसीसे लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। (१) नामप्रेमियोंका सङ्ग, (२) प्रतिदिन नाम-जपका कुछ नियम, (३) भोगोंमें वैराग्यकी भावना और (४) संतोंके जीवनचरित्रका अध्ययन ये नाम-साधनमें बड़े सहायक होते हैं। इन चारोंकी सहायतासे नाम-साधनमें सभीको लगना चाहिये। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि नामसे असम्भव भी सम्भव हो सकता है और इसके साधनमें किसीके लिये कोई रुकावट नहीं है। ऊँचे वर्णका हो, नीचेका हो, पण्डित हो, मूर्ख हो, सभी इसके अधिकारी हैं, बल्कि ऊँचा वही है, बड़ा वही है जो भगवन्नामपरायण है, जिसके मुख और मनसे निरन्तर विशुद्ध प्रेमपूर्वक श्रीभगवन्नामकी ध्वनि निकलती है।

॥ श्रीहरिः ॥

नाम-माहात्म्यके नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नामके माहात्म्यका वर्णन करके श्रीभगन्नामका प्रचार करना, जिससे सांसारिक जीवों-का कल्याण हो।

नियम :—

१—"नाम-माहात्म्य" में श्री पूर्व आचार्य महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्ध सन्तोंके उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा और भक्तिसम्बन्धी लेख एवं श्रीभगवान् और उनके भक्तोंके चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखोंके बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करनेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। लेखोंमें प्रकाशित मतका उत्तरदायी सम्पादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरीसे आरम्भ होता है। ग्राहक किसी भी मासमें बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरीके अंकसे निकले सभी अंक दिये जायँगे।

४—जिनके पास जो अंक न पहुँचे, वे अपने डाकखानेसे पूछें, वहाँसे मिलनेवाले उत्तर को हमें भेजनेपर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे भेजना चाहिये। वी०पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं और समय भी अधिक लगता है।

७—समस्त पत्रव्यवहार व्यवस्थापक, "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन (मथुरा) के पतेसे करना चाहिये।

"नाम-माहात्म्य" भगवन्नाम-प्रचारकी दृष्टिसे निकलता है। इसका जितना अधिक प्रचार होगा, उतनी ही भगवन्नाम-प्रचारमें वृद्धि होगी; अतः कृपा कर समस्त प्रेमी पाठक इसे अपनायें। इसका मूल्य बहुत कम केवल २≡) है। आज ही आप मनीआर्डर द्वारा रुपया भेजकर इसे मंगाना आरम्भ कर दीजिये और अपने इष्ट-मित्रोंको भी इसे मंगानेके लिए [illegible]

भगवान

॥ श्रीहरिः ॥

रजिस्टर्ड नं० ए ५४१



श्रीभगवन्नाम-जप कराइये

श्री वृन्दावनमें लगभग ८५० गरीब माइयाँ प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल ६ घण्टे परम मंगलमय श्रीभगवन्नामका जप एवं संकीर्तन करती हैं इन्हें आश्रम द्वारा अन्न, वस्त्र और पैसोंकी सहायता दी जाती है। एक माई प्रतिदिन एक लाख श्रीभगवन्नामजप कर सकती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

कलियुगमें संसार-सागरसे पार उतरनेका एकमात्र सुगम उपाय श्री भगवन्नाम-जप करना ही शास्त्रोंमें वर्णित है। सभी महनुभवोंको स्वयं अधिक-से-अधिक भगवन्नाम-जप करनेकीचेष्टकरनी चाहिये।

जो महानुभाव अपनी ओरसे गरीब माइयों द्वारा श्रीभगवन्नामजप कराना चाहें, वे कृपाकर हमें सूचित करें। भजनश्रममें लगभग ९०० गरीब माइयाँ आती हैं, जिनमें-से इस समय लगभग ६३४ मइयाँ दान दाताओंकी ओरसे भजन कर रही हैं। बाकी माइयोंसे भजन करनेके लिये हम सभी प्रेमी सज्जनोंसे निवेदन करते हैं कि आप अपनी-अपनी श्रद्धा और प्रेम के अनुसार जितनी माइयों द्वारा जितने मासके लिये भजन कराना चाहें, अवश्य करावें एवं अपने इष्ट-मित्रोंको भी भजन करानेके लिये प्रोत्साहित करें।

एक माईको नित्य प्रति साढ़े चार आनेकी सहायता दी जाती है।

नामैव कारणं जन्तोर्नामैव प्रभुरेव च।
नामैव परमाराध्यो नामैव परमो गुरुः॥

'नामके समान न ज्ञान है, न व्रत है, न ध्यान है, न फल है, न दान है, न शम है, न पुण्य है और न कोई

ऊँचे वर्णका हो, नीचेका हो, पण्डित हो, मूर्ख है। इसके अधिकारी हैं, बल्कि ऊँचा वही है, बड़ा वही भगवन्नामपरायण है, जिसके मुख और मनसे निरन्तर विशुद्ध प्रेमपूर्वक श्रीभगवन्नामकी ध्वनि निकलती है।

नाम माहात्म्य



वर्ष १३] वृन्दावन [अङ्क ९

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

[सितम्बर सन् १९५३]

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावोंसे प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताहमें "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जा[ते] हैं; फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखि[त] शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले, उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भे[जा] जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्रव्यवहारमें अपना ग्राहक-नम्बर लिखनेकी कृपा करें एवं उत्तरके लिये जवा[बी] कार्ड या टिकट भेजने चाहिये । पत्रव्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पतेपर स्पष्ट अक्षरोंमें लि[ख] कर भेजिये।

व्यवस्थापकः—"नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम

पोस्ट—वृन्दावन (मथुरा)

सम्पादक तथा प्रकाशक—गौरगोपाल मानसिंहका, श्रीभगवान भजनाश्रम, वृन्दावन (मथुरा)।
मुद्रक—राममोहन शास्त्री, श्रीगोविन्द मुद्रणालय, काशी।

श्रीहरिः



वर्ष १३ | "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन, सितम्बर सन् १९५३ | अङ्क ६

अद्भुत माधुरी

मोहन-बदनकी सोभा।
जाहि देखत उठति सखि आनंद की गोभा ॥
नैन धीर अधीर कछु कछु अखित सित राते।
प्रिया आनन चंद्रिका मधु पान रस माते॥
बंसिका कलहंसिका मुख कमल रस राची।
पवन परसत अलक अलिकुल-कलह सी माची॥
ललित लोल कपोल कुंडल मधुर मकराकार।
जुगल सिसु सौदामिनी जनु नचत नट चटसार॥
बिमल जलक सुढार मुक्ता नासिका दीनो।
ऊँच आसनपर असुर गुरु उदौ सौ कीनो॥
भौंह सौहनिका कहौं अरु भाल कुमकुम बिंदु।
स्याम बादर रेख परि मनु अबहिं ऊग्यो इंदु॥
लग्यौ मन ललचाइ तातें टरत नहिं टारयौ।
अमित अद्भुत माधुरी पर गदाधर वारयौ॥

—गदाधर भट्ट

एक आदर्श

गोविन्दसहाय वर्मा साहित्यरत्न

'ईश्वरने सुन ही तो ली पं० शिवनारायणने कुछ गंभीर होकर कहा।'

'कैसी सुन ली' सुशीलाने उत्सुकताके साथ पूछा।'

'विवाह तय हो गया। पं० देवीलाल समाजके सम्मानित व्यक्ति हैं। आयु अवश्य कुछ अधिक है। परन्तु फिर भी जोड़ी बुरी नहीं।'

सुशीला चौंक पड़ी--'पं० देवीलाल के साथ?'

'घर अच्छा है, ईश्वरने माना है, लड़की सुखी रहेगी—आगे उसका भाग्य।' पंडितजी गंभीरताके साथ कहते गये।

पंडित शिवनारायन एक सम्भ्रान्त कुल के व्यक्ति हैं। लड़कपन सुख में बीता। पिता प्रसिद्ध कथा-वाचक थे। आप अच्छी थी। एक बार की कथाको चढ़ौती ३०–४० से कम नहीं थी। परन्तु आज...? युग बदल चुका है। कथाओं में यजमानकी ओरसे रो भींक सवा रुपये से अधिक नहीं। गुजर चलना कठिन हो गया। साध्वी सुशीला इन दिनोंको भी भीतरसे रोकर और बाहरसे हंसकर काटती थी। पंडितजी प्रायः सुखद अतीत की मधुर स्मृतियोंमें बिकल हो उठते थे। वे सोचते—ये दिन भी देखनेको भाग्यमें बदे थे।'

सुनीता पंडितजीकी एकमात्र कन्या थी। जीवनके केवल बारह बसंत उसने देखे थे। सात मास ऊपर हो चुके थे।

'अष्ट वर्षा भवेत् गौरी' में विश्वास रखनेवाले पं० शिवनारायन उसके विवाहकी चिंतामें घुले जा रहे थे। जातिकी अपनी प्रथाएं थीं। दहेज भी उनमें था। पंडितजीके पास देनेको तो एक फूटी कौड़ी भी न थी। वे रात-दिन चिंतातुर रहते।

सुनीताका शैशव सुखमय बीता। न घरकी चिंता थी, न बाहर की। माता-पिताकी इकलौती संतान लाड़प्यारमें पली थी। फिर भी उसमें संस्कार थे जीवट थी। उसमें वह प्रतिभा थी जो विरले बच्चोंमें ही पायी जाती है। थोड़ी ही आयुमें उसने रामायण और भगवत्गीताका अध्ययन कर लिया। अनेक पौराणिक गाथाओंसे वह परिचित हो गई। भार-तीयताकी दृष्टिसे वह धर्मको कुछ-कुछ समझने लगी। पंडितजी यद्यपि अंग्रेजी शिक्षाके विरोधी थे फिर भी सुनीताने येन केन प्रकारेण नवीं पास कर ही ली।

दिन बीतते चले। पंडितजी अपने आयोजनोंमें व्यस्त थे, सुनीता अपने विचारोंकी दुनिया में। अनेक महत्वाकांक्षाएं उसके मनमें उठतीं और विलीन हो जातीं। जीवन-पथ उसके लिए तपस्याका विषय था। अध्ययन और मनन सुनीता का एकमात्र सहारा था। भारतीय संस्कृतिकी पक्की छाप उस पर पड़ ही चुकी थी।

× × ×

पं० शिवनारायणने कुछ भी सोचा हो, जोड़ी बेमेल बनी। वधू चौदह वर्षकी और वर चालीस से कुछ ऊपर। पंडित देवीलाल समृद्ध घरानेके थे। लक्ष्मीकी उनपर कृपा थी। एक दुकान थी, कारबार ठीक चलता था। दिनभर दूकानमें व्यस्त रहते, रातको शांत होकर उसीके सम्बन्धमें ऊहापोहमें...

इधर सुनीता अल्पवयस्का होते हुए भी ...

सारा बोझ अपने ऊपर उठाए हुए थी। उसकी दिन-चर्या बँधी हुई थी। सवेरे चार बजे उठकर नित्यकर्म से निवृत्त हो समय पर भोजन बनाना, चौका, बरतन करना इत्यादि। सभी काम उसके सिर पर थे। बीच में कुछ समय निकालकर वह धर्मग्रन्थोंको पढ़ती रहती। आज उसके सामने एक महत्वाकांक्षा थी कि वह भारतीय संस्कृतिको लेकर एक आदर्श नारी बने। पंडित देवीलाल को सुखी रखने में उसने कोई बात उठा न रखी।

मायामय जगत मानव जीवनके लिए परीक्षा-स्थल है। सुख-दुख इस जीवनमें धूप छांहकी तरह चक्कर लगाया करते हैं। कार्य करना मनुष्यके अधीन है, फल दैवके हाथ। क्रियमानका निर्माता मानव है। संचित घटते-बढ़ते रहते हैं, परन्तु प्रारब्धसे पीछा भोगनेके पश्चात् ही छूटता है। इसीको दैव-गति व नियति कहकर लोग मन समझानेका प्रयत्न करते हैं। वास्तवमें तो मन चेती नहिं होत है, प्रभु चेती ततकाल।

सुनीताकी आयुके मानसे उसका अध्ययन मनन और अनुभव कहीं आगे बढ़ा हुआ था। कभी-कभी आधी रात तक जागकर वह शून्याकाशकी तरफ घंटों देखा करती। शुभ्र ज्योत्सनामें उसे विभुकी निर्मल ज्योतिकी अनुभूति होती। तारक मंडली उसे दिव्य-संदेश दिया करती थी। वह रातके सन्नाटेमें ईश्वरकी अणु अणुमें व्याप्तिका अनुभव करती। कभी कभी वह स्वप्नलोकमें विहार करने लगती। उसके चिंतनका विषय इहलोककी निस्सारता और अध्यात्म जगतकी तथ्यता के चित्र उसके सामने आते और दृष्टिसे ओझल हो जाते। विश्वको वह एक तपोमय कार्य क्षेत्रके रूपमें देखती। आर्य संस्कृतिकी छाप तो उसपर पड़ी ही हुई थी। परन्तु कौन जानता था कि उसे इस जीवनमें कठोर परीक्षाका ही सामना करना पड़ेगा।

× + ×

सुनीता आज वह सुनीता न थी। हिन्दू जातिका कठोरतम अभिशाप सिरपर लिए वह वैधव्य यातना को मौन और शांतभावसे सह रही। हिन्दू विधवा समाज सबसे अधिक सिरस्कृत और निराश्रित प्राणी होता है। गार्हस्थ जीवनका सुख उसके भाग्यमें सात वर्षका ही लिखा था। सुनीताका अपना पथ स्पष्ट था। समाजके लिए वह एक उलझन थी, समस्या और पहेली थी। कुछ उसके प्रति सहानुभूति रखते थे और कुछ कुत्सित भावना। कुछ व्यक्ति ऐसे भी थे जिनके लिए वह उपेक्षाका विषय थी। घरकी बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ उनके लिए वह तिरस्कृत थी। अभागिन थी और न जाने क्या क्या। वयोवृद्ध पंडित रामधन उसे तपस्विनीके रूपमें देखना चाहते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि हिन्दू विधवाके लिए संसारसे विरक्ति के अतिरिक्त कुछ कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। बाबू हरविलास कट्टर आर्य समाजी थे और थे विधवा विवाहके पूर्ण समर्थक। उनके पीछे बीसवीं सदीमें पला हुआ नवयुवकोंका दल था। वह दल उपयो-गितावादके सामने धर्मको सदा गौण मानता आया है। बाबू हरविलास इस प्रयत्नमें थे कि सुनीताको पुनर्विवाह कर लेना चाहिए। अपने विचारका समर्थन वे अनेक शास्त्रों और तर्क वितर्कोंसे किया करते थे। परन्तु अभी तक सुनीता तक कोई प्रस्ताव पहूँचानेका साहस उनमें न होता था।

+ × ×

एक वर्ष बीत गया। सुनीता पारिवारिक बंधनोंसे

घबराकर कुछ ढीठ हो चली थी। बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ थी उसे असाध्य बीमारी समझकर छोड़ रही थीं। इनकी अभिव्यंजनामें कटूक्तियाँ और कठोर व्यंग्य अब भी थे। वे उसे जी भर कोसतीं और मन समझा लेतीं। इसके आगे सुनीता पर उनका कोई नियंत्रण नहीं रहा। सुनीता घरके काम काजके बाद दीन-दुखियोंकी सेवामें अपना समय बिताती।

वह अपने भगवानका अस्तित्व दीनदुखियों की सेवामें मानती थी। परन्तु उसकी आयु और आकर्षक मुखाकृति समाजसेवाका ध्यान करनेवाले व्यक्तियों के लिए विचारणीय विषय बने हुए थे। पं० रामधन भी उसकी इस सेवा वृतिसे प्रसन्न न थे। वह चाहते थे कि सुनीता जन सम्पर्कसे दूर अपने आपमें घुलती हुई एक हिन्दू विधवाके रूपमें दिखलाई दे। उन्हें जन-सेवा जैसे कार्यमें कोई आस्था न थी। बाबू हरविलास भी पीछे लगे थे। आखिर एक दिन उन्हों ने अपने भाव व्यक्त कर ही दिये। उन्होंने अपने प्रास्ताओं के समर्थनमें पूर्ण पांडित्य, नीति और कुशलता से काम लिया; सुनीता मौन रही। बाबूसाहब समझे उनका जादू असर करने लगा है।

एक मास और बीता। बाबू हरविलासने फिर वही प्रस्ताव सामने रखा। अपनी युक्तिके समर्थनमें उन्होंने मनुष्यके अमानुषिक व्यवहारोंको बड़ा भयंकर रूप देकर कह डाला। समाजकी नृशंसताका चित्र भी उन्होंने खींचा। ईर्ष्या, स्वार्थ लोलुपताके भी अनेकों उदाहरण दे दिये। समाजमें स्त्रीके असहाय अस्तित्वकी ओर उन्होंने सुनीताका ध्यान आकर्षित किया। संक्षेप में, उन्होंने पुनर्विवाहको शास्त्र सम्मत धर्म सम्मत और सर्वथा उचित सिद्ध कर दिया। सुनीता मौन थी।

'ऐसी दशामें यह आयोजन तो करना ही पड़ेगा इच्छासे अनिच्छासे। मनुष्य परिस्थितियोंका दास होता है।' कहते हुए बाबू साहब मनमें आशा-निराशाका द्वन्द लिए हुए घर चले गये। उन्हें कभी अपनी विजयके आभासपर गर्व होता था। कभी अनिश्चित स्थितिकी आशंकासे मनमें व्यग्रता।

× × ×

सुनीताकी आयु इस समय चौबीस वर्षकी हो चुकी है। उसका जीवन बहुत कुछ बदल चुका है। घरसे उसने अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। गंगा किनारे एक छोटी-सी कुटियामें उसने अपने रहनेकी व्यवस्था कर ली है। नित्य कर्मोंसे निवृत्त हो वह अपना समय अध्ययन, भगवत् भजन और दीन अपाहिजोंकी सेवामें लगाया करती है। लोग अपनी अपनी भावनाके अनुसार उसे देखते हैं। कोई उसे तपस्विनी समझता है और कोई दंभी। कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिनकी दूषित भावनाएँ उसे उस अंधेरेमें ढकेलनेके लिए प्रयत्नशील हैं, जहाँ सामान्य मानव गिर जाया करता है। सुनीताको जनमत जानने और सुननेका समय ही नहीं है। उसका एकमात्र सहारा प्रभुका नाम स्मरण और उन अनेकों दुखियोंकी दुआएँ हैं जिनकी सेवा वह जी जानसे करती है बाबू हरविलास कठिन काम मान कर भी अभी निराश नहीं हो बैठे। वे एक बार फिर सुनीतासे मिले। फिर वही किस्सा, पृष्ठ समर्थनके साथ। सुनीता चौंक उठी, उसका मौन भंग हुआ 'बबूजी आप भारतको पश्चिमके चश्मेसे देखते हैं। महर्षि दयानन्दने इस सम्बन्धमें कुछ भी कहा हो, व्यक्तिका धर्म, समाज गत धर्मसे भिन्न होता है। समाज धर्ममें परम्पराएँ होती है, रूढ़ियां होती हैं

मान्यताएँ होती हैं। वैयक्तिक धर्म कुछ और ही वस्तु है। वह इस लोकसे अधिक परलोककी चिंता करता है। या यों कहा जाय कि उसकी चिंताका मुख्य केन्द्र बिन्दु इस जीवनके बाद की स्थिति है।

"इसमें आपका क्या तात्पर्य है ?' बाबूहरविलास बीच ही में बोल उठे।

सुनीताने शाँतिपूर्वक समझाते हुए कहा—मेरा तात्पर्य यह है कि पश्चिममें विवाह समाजगत आवश्यकता है और पूर्वमें वही धार्मिक पवित्रताका प्रतीक है। उसका बंधन भौतिक ही नहीं, आध्यात्मिक भी है। इस नश्वर शरीरके सुखके लिए चिरसुखको ठुकरा देना बुद्धिमत्ता नहीं कही जा सकती।' बाबूजी अवाक् थे। कुछ समझमें नहीं आ रहा था कि अब आगे किस युक्तिसे काम लिया जाय।

× × ×

संघर्ष चलता ही रहा। संसारसे तटस्थ होकर भी सुनीता चैनसे नहीं बैठ सकती थी। नित नई बातें उसके सामने आने लगीं। पंचभूतसे बने इस शरीरपर उसका विशेष मोह नहीं रहा था। आत्माके अमरत्वपर उसका दृढ़ विश्वास था। इधर समाजके तथा कथित नेताओंको तो अपनी धुन लगी ही हुई थी। साम, दामसे जब काम नहीं निकलता तो दंड भेदका उपयोग किया जाता है। नीतिके यही चारण हैं। बाबू हरविलासका आज अंतिम प्रयोग है। उन्होंने भीष्म प्रतिज्ञा की है—इस पार या उस पार। सुनीता ने सब कुछ देखा, सुना और कहा। वह यह जानती थी कि समाज उसको चैन न लेने देगा। वह मौन थी। अतीतके चित्र उसकी बंद आंखोंके भीतर ही भीतर दिखने लगे। वर्तमानका उसे भान न था। भावीका मधुर रूप उसके हृदयमें अंकित हो गया। नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहने लगी। वह समाधिस्थ सी होती जाती थी। लोग समझते थे मूर्च्छित हो गई है। पाँच मिनिट, दस मिनिट, पन्द्रह मिनिट······ अश्रुओंका प्रवाह रुक चुका था। सुनीताके मुखसे अंतिम बार 'ओम' निकला और फिर······!

रसनाँ निसि-बासर राम रटो !

न मिटै भव संकट दुर्घट है तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलिमें न विराग न ग्यान कहूँ सब लागत फोकट झूँट जटो ॥
नट ज्यों जनिपेट-कुपेटक कोटिक चेटक-कौतुक-ठाट ठटो।
तुलसी जो सदा सुख चाहिअ तो रसनाँ निसिबासर राम रटो ॥

संत कबीरदासजी

भगवान का भजन

लेखक—रावत, चतुर्भुजदासजी चतुर्वेदी—भरतपुर—

एक कहावत है "सब तज हरि भज" वास्तव में यह कोरी कहावत ही नहीं हैं परन्तु अनेक शास्त्रों, पुराणों और निगमानिगम का तत्व है, निचोड़ हैं और यह है सन्तों के तप का फल।

जिन्होंने अनेक ठोकरें खाई हैं संसारी जाल में फँस कर परमाहित हुए हैं और जब उनको यह संसार असार लगने लगा है तब उक्त वाणी का प्रादुर्भाव हुआ है। इसमें भी जिनके अच्छे कर्म होते हैं उनको ही यह प्रकाश प्राप्त होता है अन्यथा अनेक प्राणी यों ही छटपटाते चले जाते हैं। जिसने भक्तिमार्ग का अनुसरण कर लिया है और जो संसार को मायामय समझ चुका है यहां की वस्तुओं से जिसको विराग हो गया है और उसके मन में यह बात जँच गई है कि सार हैं तो इस संसार में भगवान का भजन ही है और सब मिथ्या है तब वह ऐसे शब्द अपने अन्तस्तल और स्वानुभव से कहता हुआ अन्य संसार के उन जीवों को जो माया मोह ममता में फँस हुए प्रभु को न मानकर अनेक प्रकार के पापाचार तथा अत्याचार करते हैं उनको चेतावनी देकर सन्मार्ग पर आने की प्रेरणा की गई है कि तुम लोग किस संसारी चक्र में फँसे हुए हो। जिसे तुम सब कुछ समझ बैठे हो वह मिथ्या है और जिससे तुम विमुख हो वही तुम्हारा कल्याणप्रद मार्ग है। भक्तस्वामी नन्ददास ऐसे लोगों को चेतावनी देते हैं।

रामकृष्ण कहिये उठि भोर

प्रत्येक गृहस्थ को प्रातःकाल उठकर सर्वप्रथम भगवान के कल्याणकारी, मंगलप्रद नामों का उच्चारण करना चाहिये और वे नाम भगवान के हैं रामकृष्ण जयरामकृष्ण, ओंम् जय शिवराम गोपाल गोविन्द।

एक आदमी कुछ दूर पर बैठा २ कह रहा था या रट लगाये हुए था। "राम कहो आराम मिलेगा" मैंने देखा कुछ आदमी उसकी इस बात की खिल्ली उड़ा रहे थे मगर वह अपनी ध्वनि में मस्त था "राम कहो आराम मिलेगा" के विभिन्न अर्थ लगाये जा रहे थे। कोई कहता था कि राम इसलिये कहना चाहिये जिससे आराम यानी सुख मिले। बस केवल इसके लिये राम स्मरण किया जा रहा है। साधारण बुद्धि के मनुष्यों के लिये इतना समझ लेना भी बहुत है! परन्तु असल मतलब उसका था कि यदि तुम राम कहोगे तो वह राम तुमसे आकर मिलेगा। देखिये राम कहो आराम—मिलेगा। और जब राम की प्राप्ति हो जायगी वहां पर सुख, शान्ति की प्राप्ति होगी जहां शान्ति प्राप्त हो गई वहां संतोष का निवास होगा और जहां संतोष प्राप्त हो गया वहां फिर सब धन धूर समान है। जिसके चित्त में इस भावना का संचार हुआ कि वह राम का प्यारा बन गया और फिर वह चेतावनी देता हुआ प्राणियों को सचेत करता कहता है-

"जो तू रामनाम चित धरतो"

तौ होतो भवपार जगत से भक्त नाम तेरो परतो

अन्य संसारी पद तो येनकेन प्रकारेण मनुष्य प्राप्त कर भी लेता है परन्तु भक्तपद विना प्रभु की कृपा के प्राप्त नहीं होता। इस पद प्राप्ति के लिये चाहिये वैराग्य और मोह ममता का त्याग तब यह भक्तपद प्राप्ति का अधिकारी जीव हो सकता है।

संसार में हम को इस प्रकार रहना चाहिये जैसे जल में कमल। प्रभु में इस प्रकार लिप्त रहना चाहिये जैसे तेल में बत्ती। बत्ती प्रकाश उसी समय तक करती है जबतक उसका तेल का साथ रहता है और इसी प्रकार जीव जबतक प्रकाश करता है जबतक उसके शरीर में राम है। राम के न रहने पर तो मरा है। यह राम प्रत्येक प्राणी में वास करता है परन्तु "जिन खोजा तिन पाइयां" वाली बात है। लोग स्थान २ पर भटकते फिरते हैं अनेक प्रकार की बातें करते हैं परन्तु अपने अन्तस्तल को नहीं टटोलते। इसका यह कारण है कि उनको न तो अपने पर विश्वास है न ईश्वर पर ही। मृग की नाभि में कस्तूरी का वास है और जब उसको उसकी सुगन्धि आती है तब वह इधर उधर जंगल में भागता फिरता है वह अज्ञान है यदि उसे यह ज्ञान हो जाय कि जिसकी महँक के लिये मैं इधर उधर मारा मारा फिर रहा हूँ वह मेरे ही अन्दर है तब वह क्यों दोड़े। इसी प्रकार मनुष्य भ्रमवश घूमता फिरता है। सद्गुरु कृपा से ही उसे ज्ञान प्राप्त हो सकता है तब वह अपने राम को अपने में पा सकता है। सद्गुरु विना ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। गोविन्द का ज्ञान कराने वाले गुरु ही हैं। गुरु शब्द का अर्थ है प्रकाश अर्थात् जो ज्ञान का प्रकाश कराता है वह गुरु है।

यह वस्तु तब प्राप्त हो सकती है जब सत्संग हो और भगवान नाम का कीर्तन। भगवान कृपा से सद्गुरु की प्राप्ति हो जाती है। होनी चाहिये लगन और चाह। राम २ तो तोता भी कहता है और रट भी लगाता है परन्तु इस तोता रटन्त से उसको उतना प्रभाव प्राप्त नहीं होता है जितना उसके तत्व को समझ कर कहने से प्राप्त होता है। भगवान के नामों में बड़ी शक्ति है यदि कोई वास्तविक भक्ति से स्मरण करे।

जैसे सूर्य का प्रकाश सब पर एक सा पड़ता है वायु सर्वत्र एक सी चलती है और मेघ जब बरसते हैं तो उस स्थान को सराबोर करते ही हैं इसी प्रकार भगवान भी अपनी कृपा सब प्राणियों में रखकर उनका लालन-पालन करते ही हैं।

जिस परब्रह्म परमेश्वर को हमारा इतना ध्यान है तो हमारा भी यह प्रथम कर्त्तव्य है कि उस दयामय प्रभु का हम नित्य नियम से स्मरण किया करें जिससे हमारा यह लोक भी सुधरे और परलोक भी।



ब्रह्मचर्य

लेखक—हरिहरनाथ भारद्वाज श्री ऋषिकुलब्रह्मचर्याश्रम

चूरू (बीकानेर)

**मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पञ्चभि
स्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमीन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
शूलंटङ्ककृपाणवज्रदहनान्नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्
पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे॥**

आर्यसंस्कृतिके चार आश्रमोंमें ब्रह्मचर्य सर्वप्रधान आश्रम है क्योंकि हमारे त्रिकालज्ञऋषि-महर्षियोंने ब्रह्मचर्याश्रमको ही सर्वाश्रमों की नींव समझकर इसे सर्व प्रथम स्थान दिया। ब्रह्मचर्यमें एक ऐसी विलक्षण शक्ति है जो सबको अजर-अमर, नीरोगी, धर्मनिष्ठ, सत्यनिष्ठ, श्रुति संपन्न अकालमृत्यु रक्षक, जितेन्द्रिय तथा स्वच्छन्द मृत्यु देनेवाली बना देती है। पितामह भीष्म ब्रह्मचर्यका पालन करनेवालोंमें अग्रणी हैं। ब्रह्मचर्यपालक विश्वमें यश प्राप्त करता है तथा सर्व श्रेष्ठ शक्तियुक्त बन सकता है। विश्वके यावत् पहलवान हैं वे सब ब्रह्मचर्य पालक हैं ब्रह्मचर्यमें जरा-सी भी कमी उनको निर्बल बना देती है।

ब्रह्मचर्यका तात्त्विक अर्थ है बिन्दुसंरक्षण तथा संशोधन पहलवानोंके लिए बिन्दुसंरक्षण ही मुख्य है। इसके और भी अनेक अर्थ हैं—ब्रह्ममें अथवा ब्रह्मके मार्गमें सन्चरण करना। जिन साधनोंसे ब्रह्म प्राप्तिके पथमें अग्रसर हुआ जा सकता है उनका आचरण करना आदि। नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंका वीर्य तो कभी किसी अवस्थामें भी क्षय होता ही नहीं अतएव वे ब्रह्मके मार्गमें अनायास ही बढ़ जाते हैं। इनसे निम्नस्तरके वे हैं जो बिन्दुको कम खर्च करते हैं। किन्तु वे भी मनवाणी और शरीरसे मैथुन का सर्वथा त्याग करके उसका संरक्षण करते हैं। इसी आशयको व्यक्त करते हुए गरुड़पुराणमें कहा गया है-

**कर्मणामनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्याग ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥**

सर्वत्र सब अवस्थाओंमें मनवाणी और कर्मसे मैथुन त्याग ब्रह्मचर्य कहलाता है।

मनुष्यके तनमें वीर्य एक ऐसी विलक्षण वस्तु है जिसका संरक्षण किए बिना शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक किसी भी प्रकार न तो बल प्राप्त होता है और न उसका सञ्चय होता है। ब्रह्मचर्यके पालनसे यदि वास्तवमें वीर्य भलीभाँति धारण हो जाय तो उस वीर्यसे तनमें एक विद्युत् शक्तिका आविर्भाव होता है और उसका तेज इतना बढ़ जाता है कि उससे प्राण और चञ्चलमनकी गति स्वयमेवस्थिर हो जाती है तथा मनकी एकतानता ध्येय वस्तुकी ओर स्वाभाविक ही होने लगती है।

आजकल बहुत कुछ चेष्टा करनेपर भी जो ध्यान नहीं कर पाते, जिनका चित्त ध्येय वस्तुकी ओर नहीं लगता, इसका एक मुख्यतम कारण यह भी है कि उनके द्वारा वीर्य धारण नहीं हुआ। इसीलिए बिन्दु संरक्षण तथा संशोधन ब्रह्मर्यचका तात्त्विक अर्थ माना गया है। मनुस्मृति प्रभृति ग्रन्थोंमें ब्रह्मचारीके पालनीय नियमोंका बड़ा ही सुन्दर विधान किया गया है ब्रह्मचारी नित्य स्नान करे, सत्य बोले, उबटन न

लगावे, सुरमा न लगावे सुगन्धित द्रव्यका सेवन न करे, मधुका त्याग करे, मिष्टान्न न खावे, तेल न लगावे, नाचना गाना बजाना आदि कुछ भी न करे। जूते न पहने। छाता न लगावे पलंग पर न सोवे, द्यूत न खेले, स्त्रियोंको न देखे, स्त्री संबन्धी चर्चा तक कदापि न करे, नियताहार करे, कोमल वस्त्र न पहने सात्विक भोजन करे देवता ऋषि आदिकी अर्चना करे किसीसे व्यर्थ विवाद न करे किसीकी निन्दा न करे, किसी का अपमान न करे, अहिंसा-व्रतका पूर्ण पालन करे, काम, क्रोध तथा लोभ रूपी स्वनाशकारी तीनों द्वारोंका सर्वथा त्याग कर दे। अकेला सोवे और कभी वीर्यपात न होने दे। यदि रातमें निद्राके समय स्वप्नदोष हो जाय तो सुबह उठकर भगवान् भास्करका पूजन करनेबाद "पुनर्मामैत्विन्द्रियम्" ऋचा का तीन बार जप करे।

जिस देशमें प्रत्येक बालकके लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य था जिस जातिकी समुन्नतिके चार आश्रमों में ब्रह्मचर्य सर्वप्रधान आश्रम था, बड़े खेदका विषय है कि उसी देश और उसी ब्रह्मचारियोंकी जातिमें आज ब्रह्मचर्यका अभाव हो गया है। जिस देश के शिशु-बाल मृगेन्द्रोंके साथ क्रीडा करते हुए कहते थे कि—

जृंभस्व सिंह दंतांस्ते गणयिष्ये।

अरे सिंह मुँह खोल मैं तेरे दाँत गिनूँगा।

जिस देशके शिशुओंके पदाघातसे पहाड़की चट्टानें चकनाचूर हो जाती थीं वही वीर्य प्रधान देश आज निर्वीर्य और सत्त्वहीन हो गया है। आजकलकी तो बात ही क्या है? यदि एक झुण्डमें एक बिल्ली भी आ जाय तो हाहाकार मच जाता है।

ब्रह्मचर्य की परमशक्तिका
हुआ जहाँ सर्वोच्च विकास।
यहाँ युवक-दल बना हुआ है
हाय दैन्य दुःखोंका दास॥

हमारे धर्मशास्त्रोंकी स्वर्णपृष्ठावलियोंको उलट फेरकर देखनेसे यही "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नतः मिलता है।

ब्रह्मचर्यके प्रतापसे पितामह भीष्म, अर्जुन, महावीर हनुमान तथा भीम आदि आज सारे विश्वमें विख्यात हैं। ब्रह्मचर्यके बिना जगत्में किसीने भी यश प्राप्त नहीं किया। ब्रह्मचर्य हमको दमकती देह चिरजीवन सशक्तमस्तिष्क तथा आकर्षक व्यक्तित्व प्रदान कर सकता है। आजकल हम देखते हैं कि विद्यार्थियोंको पाठशालाओं स्कूलों तथा कालेजोंमें केवल लौकिक शिक्षा ही दी जाती है। धार्मिक शिक्षा व चरित्र गठनके लिए कोई यत्न नहीं होता। विद्यार्थीको लौकिक शिक्षा तो दी जाय परन्तु साथ ही धार्मिक शिक्षा भी दी जानी चाहिये। मनुजी भी इस बातके समर्थक हैं। भाषाके किसी कविकी यह उक्ति ठीक ही है—

कब कौन अगाधपयोनिधिके
उस पार गया जलयान बिना।
मिल प्राण अपान उदान रहै
न समान विमिश्रित व्यान बिना॥
कहिए ध्रुवध्येय मिला किसको
अविकल्प अचञ्चल ध्यान बिना।
कवि शंकर मुक्ति मिले न कभी
ब्रह्मचर्य के पूरे ज्ञान बिना॥

अतः पाठक वृन्दको चाहिए कि वे ब्रह्मचर्यका पालन तथा ईश्वराराधना नित्य नियमानुसार करनेका व्रत ले लें, इसी में हम सबका कल्याण है।

इस युगमें कौन सुखी है ?

पूज्यपाद महर्षि मोहनजी महाराज

मानव प्रायः चिर सुखकी महात्वाकांक्षा रखता हुआ सदैव उसी प्रकारके मानसिक वायुमंडलमें विचरण करता है। जिस सुखकी उसे अभिलाषा है वह केवल, अपने पेटभर भोजन, परमनोहक वस्त्र तथा अपने स्त्री संतानादिको खाते पहिनते निरोग रहते देखने एवं सुन्दर कोठी, रेडियो और सवारीके लिये मोटरकार पर्यन्त ही सीमित है। उसके विचार इतने संकुचित हो चुके हैं कि वह जिसे मनसे अपना मानता है उसे भी एक सीमा के अन्तर्गत ही सुखी देखना चाहता है। इसका अभिप्राय यह है कि अपने अतिरिक्त अन्य किसीको फूटी आँखसे न तो खाते पहिनते देख सकता है न बहरे कानोंसे फलता फूलता किसीको सुन ही सकता है।

ऐसी दशामें मानव कहलानेवाले प्राणीमात्रको, सुखकी आशा रखना बालूसे तेल और पानीसे घृत पाने जैसी निरी मिथ्या तथा भ्रम पूर्णकांक्षा ही होनी चाहिये। अब प्रश्न यह है कि मानवताका दावा करनेवाला अनित्य प्राणी, इतना स्वार्थपूर्ण क्यों हुआ ? और हुआ भी तो क्या आज ही हुआ या इससे पूर्वकी सदियोंमें भी ऐसा होता आया है ? इस सम्बन्धमें तो पूर्व इतिहास ही निश्चय कर सकते हैं कि यह किसी प्रकारका परिवर्तन हुआ है या तब भी आज ही जैसी परिस्थिति थी। इसके लिये हमें बहुत पीछे जाने की आवश्यकता न पड़ेगी वरन् कुछ सदियों अथवा दशाब्दियों की स्थिति ही उक्त प्रश्नका सुनिश्चित निराकरण कर देगी।

महाभारत कालपर एक विहंगम दृष्टि डालते हुए हम देखते हैं कि कौरव और पाण्डव परस्पर एक दूसरेके प्राणोंके ग्राहक बने बैठे थे। दुर्योधन अपनी नीतिका स्पष्टीकरण कर चुका था और वह भी भरी सभामें योगेश्वरेश्वर परम नीतिवान् श्रीकृष्णके भी सब कुछ समझाने पर। "सूचि अग्रं नैवदास्यामि विना युद्धेन केशव"। इस सुस्पष्ट घोषणापर युद्धके बादल घुमड़ने लगे, अर्जुनका गाण्डीव चढ़ गया, पांचजन्य शंख युद्धाह्वान करने लगा, रणमदमत्त बाँकुरे वीरोंको। चेतावनी दे दी धनंजयके देवदत्त नामक शंखने, गगनभेदी कर्ण कर्कश स्वर, उन प्राणोंके निर्लोभियोंको जिन्हें अपने वीरोचित स्वभावसे रणकौशल प्रदर्शित करते २ गाण्डीवपर चढ़ानी है प्राणोंकी आहुति। इससे अधिक देशका दुर्भाग्य क्या हो सकता था कि पांच ग्रामोंका त्याग न करके समस्त देशकी आवश्यक विभूतियोंको समरयज्ञमें स्वाहा कर दिया गया।

परन्तु फिर मानव ऐसी विकट परिस्थितिमें परमसुखका अनुभव किया। दिनभरके युद्धोपरान्त उभयपक्षीय योद्धागण परस्पर बैठकर खाते पीते, गत युद्धपर अपनी २ त्रुटियोंको कहते तथा आगामी दिवसके युद्ध सम्बन्धमें कौन क्या करे, इसपर निस्पृह परामर्श देते निस्संकोच भावसे। तब स्वार्थ था, केवल मायिक पदार्थोंके बाह्य स्वरूप पर्यन्त सीमित। किन्तु औदार्य था मनमें और विचारोंमें। बस इतने पर मानव सुखी और संतुष्ट था। समय

गया और उसके साथ २ मायाने विचारोंपर अधिकार पाया। फिर भी अपने प्रान्त और नगरकी सुख-शान्ति पर ध्यान अवश्य रहा। राज्योंके प्रलोभनोंने मानवके हृदयोंमें उथल-पुथल मचा दी। एक राज्यपाल दूसरे पर आक्रमण करनेमें ही जीवनके अमूल्य भागको समाप्त करने लगे। परन्तु फिर भी स्वदेश, स्वजाति और स्वधर्मके प्रति प्रगाढ़ प्रेम बना रहा। इसीलिये जनसाधारणके लिये दुःखका कोई कारण न हुआ। प्रत्येक अपनी २ स्थितिमें सुखी था। अधिक अंशोंमें गीताका सिद्धान्त "यदृच्छा लाभ सन्तुष्टो" मानवके अन्तर्तममें व्याप्त था। किन्तु गोरी शासक जातिके सम्पर्कसे वह विचारधारा, कपट और कृत्रिमतारूपी आयुके झकोरोंमें उड़ने लगी।

"सर्वभूतहितेरताः" का सिद्धान्त प्रायः मानवके मस्तिष्कसे बाहर चला सा गया। स्वार्थपरायणता, सर्वत्र सवेग संस्थापित होने लगी। तो भी निरालम्ब शासनके भय तथा पूर्वोदारताके मानव, स्वकार्यरत रहनेके कारण परदारा, परधन और परकीर्ति पर प्रायः न्यूनांशोंमें ही दृष्टिपात करता देखा जाता था। और यदि ऐसा कहीं कुछ होता भी तो काराकी कठोर यातनाएँ दूसरोंको कुमार्गगामी होनेसे बचा देतीं। प्रतिस्पर्धा प्रायः कहीं २ ही नृत्य करती देखी जाती। दण्डके नियंत्रणमें भ्रष्टाचार दलितकी भाँति दबा सा पड़ा रहा।

परन्तु देशके दुर्भाग्य या सौभाग्यसे आजका मानव स्वप्निल स्वतन्त्रताकी ऊर्ध्व स्वासें ले रहा है। तब स्वाभाविक ही है "अपनी २ डफली और अपना २ राग" बजने लगा। कभी ८० प्रतिशत सुखी और २० प्रतिशत दीन दुखीके परन्तु आज ५ प्रतिशत भी भोजन वस्त्रमात्रसे निश्चित तथा ९५ प्रतिशत पूर्णतया क्षुधार्त, निराश्रय और दीन-हीन हैं। ऐसी दशामें वे ५ प्रतिशत भी किस प्रकार शान्तचित्त और स्वथावस्थामें रह सकते हैं। इतना ही क्यों, कर्त्तव्यच्युत होकर तो आजका मानव उच्छृंखलताके अपार, अगाध और असीम सागरमें उतराने डूबने लग गया है। अपने चारों ओर उसे दुःखों, विपतियों और आवश्यकताओं की प्रलयंकारी ज्वालायें जलानेको दावाग्निकी भांति तीव्रगामी गतिसे बढ़ती दिखाई देती हैं। मानवको मानव ही, दानव बनकर सुरसाकी भांति खा जानेको उद्यत हो रहा है।

इस सबका एकमात्र कारण बस यही है कि मानव, मानवीय धर्मसे पतित हो गया, परमपिता परमात्माका विश्वास त्याग बैठा वेदादि पथप्रदर्शक ग्रन्थोंसे आस्था खो गई, परद्रोह ही प्रधान धर्म बन गया तथा इन्द्रिय सुख ही सुख की परिभाषामात्र हो चुकी। तब इस युगमें सुखी कौन है? यह कहना बुद्धिके बाहरका विषय हो रहा है। क्रमशः



भगवानकी प्रधान इच्छा

(रामलाल पहाड़ा)

अर्जुनको किया हुआ उपदेश गीता ग्रन्थ है इसमें कुल ७०० श्लोक हैं। इनमें कुछ श्लोक प्रत्यक्ष रीतिसे मध्यमपुरुष सर्वनाम और क्रिया द्वारा अर्जुनको सुनाये गये हैं। बस इन्हीं श्लोकोंमें भगवान अपनी इच्छा प्रधान रूपसे प्रकट कर देते हैं। शेष प्रवाहमें परोक्ष रीतिसे अन्य पुरुष सर्वनाम, संज्ञा और क्रिया द्वारा अपना मत प्रकट कर देते हैं। यह शेष कथन भी महत्व रखता है पर तुलनात्मक दृष्टिसे गौण प्रतीत होता है। प्रथम अध्यायमें श्रोताकी स्थितिका दिग्दर्शन करानेके लिए विषादयोग कहा गया है मुख्य उपदेश द्वितीय अध्याय से आरम्भ होता है। सांख्ययोगको लेकर भगवान व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्य पर ध्यान दिलाते हैं व्यक्तित्वको रख भगवानका कहना है 'क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप''। हृदयकी दुर्बलताको हटाकर खड़े हो जाओ और आगे भगवान कह देते हैं कि—

'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे' अरे तू उन बातोंका शोक करता है जिनका नहीं करना चाहिये और बुद्धिमानीकी बातें बनाता है। देख यह जीव अविनाशी है यथा—'अविनाशितु तद्विद्धि येन सर्वमिदंततम्। विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति' आदि, 'तस्माद्युध्यस्वभारत'।

भगवानका अभिप्राय है कि अर्जुन हृदयकी दुर्बलताको छोड़े, व्यर्थ बातोंका शोक न करे, और जीवको अविनाशी जानकर युद्ध करे। आगे लौकिक दृश्यमान दृष्टिसे समझाते हैं कि हे अर्जुन तू 'अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्' इसे नित्य जन्मता और मरता हुआ मानता है 'तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि' तो भी बारबार जीवन मरण होनेका शोक करना ठीक नहीं है।

स्वधर्मका ध्यान दिलाकर भगवान कहते हैं देख 'अथ चेत्त्व मिमंधर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि' और 'येषां चत्वंबहुमतो भूत्वायास्यसि लाघवं' और 'हतोवाप्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वावा भोक्ष्यसेमहीम्' इसलिए 'तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धायकृतनिश्चयः' अर्थात् स्वधर्मका विचार कर हे कौंतेय युद्धके लिए निश्चय खड़ा हो जाय' क्योंकि 'सुखदुःखे समेकृत्वा लाभालाभौजयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि' अर्जुनने कहा था कि हम स्वजनोंको मारकर महत्पापके भागी होंगे। इसपर भगवानने समझाया कि हे अर्जुन तू धर्मयुद्धमें सुखदुःख तथा जीतहारको समान मानकर प्रवृत्त होनेसे पापी नहीं होगा। और 'बुद्ध्यायुक्तो ययापार्थकर्मबन्धं प्रहास्यसि'। इस बुद्धिसे युक्त होकर कर्मबन्धनको काट देगा। संसारके झाब तीन गुणोंके विषयघाले हैं तू "निस्त्रैगुण्योभवार्जुन" त्रिगुणातीत होकर आत्मवान हो जा। भगवान स्पष्ट कह देते हैं 'कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषुकदाचन। माकर्मफलहेतुर्भूर्मातेसङ्गोऽस्त्वकर्मणि।' काम करना तेरे वशमें है किन्तु फलोंमें वश कभी भी नहीं है। अतः फलका हेतु रख काम मत कर और निठल्ला भी मत रह। कर्ममें लगा रह इसलिए 'तस्माद्योगायायुज्यस्व

योगः कर्मसुकौशलम्' योगके लिए काममें लगजा। समत्व और कर्मकुशलता ही योग है। इन गुणोंसे तुझे आत्मयोग हो जायगा। देखो जब तेरी बुद्धि मोहदोषसे पार हो जायगी तब तुझे सुनी हुई बातोंसे वैराग्य होगा और जब मेरी कही बातोंको सुनकर या वेदके प्राप्त वाक्योंमें तेरी बुद्धि निश्चल होकर परमात्माके ध्यानमें ठहरेगी तब तुझे योग प्राप्त हो जायेगा। इसी योगको प्राप्त करनेको 'स्थितप्रज्ञ'के लक्षण कहकर सांख्ययोगका उपदेश समाप्त करते हैं। सारांश यह है कि हे अर्जुन, हृदयकी दुर्बलताको छोड़ दे, जीवात्माको अमर समझ और जन्ममरणको अनिवार्य जानकर अपने धर्मका पालन कर।

शारीरिक कर्मोंके करनेमें तुझे पाप नहीं लगेगा इसलिए समत्व योगका आश्रय लेकर बुद्धिको स्थिर रख और युद्ध कर क्योंकि तेरे हाथमें केवल कर्म करना है परन्तु कर्मफल नहीं है। कर्मफल ईश्वरीच्छाधीन होता है।

२ कर्म योग

कर्मयोगको सामने रखकर भगवान कहते हैं कि कोई प्राणी क्षण भर भी निष्क्रिय नहीं रहता। वह प्रकृतिवश कुछ न कुछ करता ही रहता है इसलिए 'नियतंकुरुकर्मत्वं कर्मज्यायोह्यकर्मणः। शरीर यात्राऽपि च तेन प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥ यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। तदर्थं कर्मकौन्तेय मुक्त संगः समाचर॥ हे अर्जुन तू अपना निश्चितकर्म करता रह, क्योंकि अकर्मसे कर्म श्रेष्ठ है—बैठे रहनेसे बिगारमें काम करना भला है—परन्तु यह कर्म यज्ञार्थ होवे अन्यथा लोकमें बन्ध जायेगा। तू निश्चिन्त होकर राग ममता छोड़कर हारजीतको समान समझ काम करता रहे क्योंकि यज्ञमें त्यागपूर्वक किए हुए कर्ममें ब्रह्म (सर्वहित) नित्य प्रति दिन रहता है। और असक्त होकर (ममता और राग छोड़कर) काम करनेसे पुरुष परमपदको पाता है। इसके सिवाय कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः। लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तु महंसि। जनक आदि नृपोंने कर्मसे ही सिद्धि पायी। तू भी लोक संग्रहको देखकर कर्म करनेके योग्य है क्योंकि सामान्य जनता श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरणोंका अनुसरण करती हैं। (तू अकर्मण्य रहेगा तो जनता भी देखकर अकर्मण्य हो जायेगी, इस तरह जनताको अकर्मण्य बनानेका पाप तुझे लगेगा और जनतामें वर्णसंकरताका प्रसार होगा) तूं 'मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्याध्यात्म चेतसा। निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥ एकाग्रचितसे सब कर्मोंका (फलोंका) उत्तरदायित्व मुझपर रखकर निराशी और निर्मम होकर (आशा और ममताका त्याग कर) संतापको दूरकर और युद्धकर, देख 'सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृते र्ज्ञानवानपि प्रकृतिंयांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥ ज्ञानवान भी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करता है और सब प्राणी अपने स्वभावको ही प्राप्त होते हैं। इस विषयमें निग्रह (अनुचित रोकथाम) क्या करेगा? इसलिए हे अर्जुन तू 'तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ। पाप्मानं प्रजहिह्येनं ज्ञानविज्ञान नाशनम्।" और 'एवंबुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना। जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्'॥ आरंभमें इन्द्रियोंको नियमित कर ज्ञान-विज्ञान नाशक काम (पापात्मा) को मार और बुद्धिसे परे परमतत्वको जानकर और स्वयं ही अपनेको रोककर दुर्जय कामरूप शत्रुको मार। सारांशमें यहां भी यही कहा है, हे अर्जुन! तूँ ममता त्यागकर काम कर क्योंकि

कर्मसे ही सिद्धि मिलती है। परमतत्व जानकर काम रूप शत्रुको मार डाल। और अपनी प्रकृतिका अनुसरण कर। श्रेष्ठजन जनताके हितार्थ कर्ममें प्रवृत्त रहते हैं।

३ ज्ञानकर्म सन्यासयोग

यह जानकर कि 'न मां कर्माणिलिम्पन्ति न मे कर्मफलेस्पृहा पूर्वजनोंने काम किया सो "कुरू कर्मैवतस्मात्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्"। तू भी वही काम कर जो पूर्वजनोंद्वारा पूर्व किया गया हो। और तत्त्व दर्शियोंसे नम्रता द्वारा ज्ञान प्राप्त हो जानेपर 'यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडव। येन भूतान्य शेषेणद्रक्ष्यस्यात्मन्यथोमयि'। और 'अपिचेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः। सर्वज्ञानप्लवेनैववृजिनं संतरिष्यसि' फिर तुझे मोह नहीं होगा, जिससे संपूर्ण भूतोंको अपनेमें और मुझमें देखेगा। सबको अपने समान या ईश्वर रूप मानेगा। और यदि तूं सब पापियोंसे अत्यन्त पापी है तो भी ज्ञान नौकासे सब पापोंको पार कर लेगा।

श्रद्धावान ज्ञान प्राप्तकर शांति पाता है तूं भी 'तस्मादज्ञान संभूतंहृत्स्थंज्ञानासिनात्मना। छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठभारत॥ हृदयस्थित अज्ञानसे उत्पन्न संशयको ज्ञान खड्गसे स्वयं काटकर योग (समत्व) का आश्रय लेकर उठ खड़ा हो (युद्धकर)

यद्यपि इस प्रसंगमें नाना प्राकारके यज्ञ और ज्ञान प्राप्तिकी रीति बताकर ज्ञान यज्ञको श्रेष्ठ सिद्ध किया है किन्तु सारांश यही है कि ज्ञान प्राप्त कर संशयको दूरकर युद्धके लिए उद्यत हो जा।

४ कर्म संन्यासयोग

इसमें प्रत्यक्ष कुछ नहीं कहा गया, केवल परोक्ष रीतिसे यही कहा है 'शक्नोतीहैवयःसौढुं प्राक्शरीर विमोक्षणात्। कामक्रोधोद्भवं वेगं सयुक्तः स सुखी नरः' और भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोक महेश्वरं। सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति'॥

जो मनुष्य शरीर छोड़नेके पहिले ही काम क्रोधके वेगको छोड़ सकता है वही युक्त और सुखी है। और परमात्माको (मुझे) यज्ञ तपोंका भोक्ता, लोकोंकामहेश्वर, सब भूतोंका सुहृद जानकर शांति पाता है। आशय यह कि तू भी ऐसा ही कर।

५ आत्मसंयमयोग

आरंभमें योगीके लक्षण यथा 'अनाश्रितः कर्मफलं कार्यंकर्म करोति यः। स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः। कर्म फलका आश्रय न लेकर आवश्यक कर्म जो करता है वह संन्यासी और योगी है यद्यपि वह सामान्यरीतिसे न निरग्नि और न अक्रिय है अर्थात अग्नि सेवन करते हुए क्रियावान रहता है तथा योग साधनकी रीति बताकर कहते हैं, हे अर्जुन 'तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगीभवार्जुन॥ तपस्वियोंसे, ज्ञानियोंसे और कर्मठोंसे भी योगी अधिक माना गया है, इसलिए तूं भी योगी हो जा। अभिप्राय यही है कि फलका ध्यान छोड़ सम्मुख आये हुए युद्धकर्मको कर। भगवान बराबर यही उत्तेजना देते आये हैं कि हे अर्जुन तूं ग्लानिको हटा दे, युद्ध परिणामका विचार मत कर परन्तु समत्व योगमें स्थिर बुद्धिकरके युद्धके लिए वीर पुरुषके सदृश खड़ा हो जा।

६ ज्ञान विज्ञान योग

भगवान अपनी परा और अपरा प्रकृतिका स्वरूप बताकर व्यापकता प्रकट करते हैं और भक्तोंके श्रेणियों का विवेचन कर देते हैं। हे अर्जुन जो दुष्ट

मोह विमुक्त होकर दृढ़व्रतसे जरामरणसे मोक्ष पानेका यत्न करते हैं वे अध्यात्म ब्रह्मको और अध्यात्म कर्मको पूरी रीतिसे जानते हैं, अतः परोक्ष रीतिसे यही कहा कि तू भी जन्ममरणसे मोक्ष पानेको ब्रह्म और अध्यात्म कर्मको पूरा पूरा समझनेका प्रयत्न कर क्योंकि 'साधिभूताधिदैवंमां साधियज्ञं च ये विदुः। प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥ जो अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञके साथ साथ मुझे प्रयाणकालके समयमें भी जानते हैं वे ही युक्त चेतना वाले मुझे जानते हैं।

७ अक्षर ब्रह्मयोग

परम ब्रह्म अक्षर, स्वभाव अध्यात्म और भूतोंको उत्पन्न करना ही कर्म है। अधिभूत क्षरभाव, पुरुष अधिदैव और अधियज्ञ मैं ही देह में हूं। बताकर योगी होनेकी रीतिका विवेचन कर प्रयाणकी दो रीतियां एक शुक्ल और दूसरी कृष्णको समझा देते हैं। अन्तमें कहते हैं हे अर्जुन 'नै ते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन। तस्मात्सर्वेषु कालेषु योग युक्तो भवार्जुन'॥ क्योंकि वेदेषु यज्ञेषु तपःसुचैव दानेषुयत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्। अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्' ॥ हे पार्थ कोई भी योगी इन गतियोंको जानकर मोहमें नहीं पड़ता इसलिए तूं भी सब समय योगयुक्त रह क्योंकि इसको जानकर योगी उन सबोंको पारकर परमाद्य स्थानको प्राप्त हो जाता है, जो स्थान वेदोंमें, यज्ञोंमें तपोंमें और दानोंमें पुण्यके फल स्वरूप बताये गये हैं।

८ राजविद्या राजगुह्य योग

हे अर्जुन तू 'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासियत् तत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्। शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः संन्यासयोग युक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।' जो कुछ करता, खाता, हवन करता, देता तप (परिश्रम) करता है उसे मेरे अर्पण कर अर्थात् मेरा काम समझकर किया कर ऐसा करनेसे शुभ अशुभ फल देनेवाले कर्मबन्धनोंसे मुक्त हो जायगा और सन्यासयोग युक्त एवं सांसारिक चिंतासे मुक्त होकर मुझे प्राप्त कर लेगा। इसलिए अन्तमें यही उपदेश करते हैं कि 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मांनमस्कुरु। मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानंमत्परायणः॥ मेरे में मन स्थिरकर मेरा भक्त हो जा, मेरे लिए यजन (हवन) कर मुझे ही नमन किया कर (मेरा उपदेश माना कर) मेरेमें परायण हो आत्माके साथ युक्त होकर तूं मुझको ही प्राप्त होगा।

९ विभूतियोग

अर्जुनकी प्रार्थनासे भगवान अपनी अनेक विभूतियां कहकर अन्तमें कहते हैं "यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेववा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽश संभवम्॥ अथवा बहुनैतेनकिंज्ञातेन तवार्जुन। विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेनस्थितोजगत्॥ जो जो विभूतिमत्, श्रीमत, उर्जित (अत्यन्तउत्कृष्ट, उज्ज्वल, विशाल, भयंकर आदि) पदार्थ हैं उनको मेरे तेज अंश से उत्पन्न हुआ समझ अथवा हे अर्जुन इतना बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है? मैं इस सम्पूर्ण जगतको एक अंशसे व्याप्तकर स्थित हूँ। जगत मेरे एक अंशमें स्थिर है; मैं अत्यन्त विशाल और महान हूँ।

१० विश्वरूप दर्शन योग

लोक क्षय करनेवाला प्रवृद्धकाल मैं हूँ और यहां लोगोंका संहार करनेके लिए प्रवृत हुआ हूँ आदि कहकर भगवान आदेश देते हैं "तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ

यशोलभस्व जित्वाशत्रून् भुङ्क्ष्वराज्यं समृद्धम्। मयैवैतेनिहता: पूर्वमेव निमित्तमात्रंभव सव्यसाचिन्॥ द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथा न्यादपियोधवीराम्। मयाहतांस्त्वं जहि माव्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासिरणे सपत्नान्॥ इसलिए तू उठ खड़ा हो, यश प्राप्त कर शत्रुओंको जीतकर समृद्ध राज्यको भोग। ये मेरे द्वारा पहिले ही मारे गये हैं। हे सव्यसाचिन् तूं तो निमित्तमात्र हो जा। (यह रण नाममात्रको है। ये लोग पहिले ही मर चुके हैं) मेरे द्वारा द्रोण, कर्ण, जयद्रथ और अन्य वीर भी मारे जा चुके हैं तू इन मरे हुए जनोंको मार व्ययाभत कर, युद्धकर, रणमें शत्रुओंको जीत लेगा। मेरा यह रूप "नाहं वेदैर्नतपसानदानेननचेज्यया। शक्य एवं विधोद्रष्टुं दृष्टवानसि मांयथा"। नवेदोंसे, न तपसे, न दानसे, न हवनसे इस तरह दीख सकता है जैसा तूने मुझे देखा है। क्योंकि "भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं चतत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप"। हे परंतप अर्जुन इस प्रकार जानने, देखने और तत्वसे प्रवेश करनेको अनन्य भक्तिसे ही मैं समझमें आ सकता हूँ। अर्थात् अनन्यभक्त मुझको इस तरह जान सकता- देख सकता और तत्वके आधारसे मेरे भावमें प्रवेश कर सकता है।

११ भक्तियोग

भगवान कहते हैं कि मैं भक्तोंका शीघ्र ही उद्धार कर देता हूँ इसलिए "मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिंनिवेशय। निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वंन संशयः॥ अथचित्तं समाधातुं न शक्नोषिमायेस्थिरम्। अभ्यासयोगेनततोमामिच्छाप्तुंधनंजय॥ अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसिमत्कर्म परमोभव। मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥ अथैतदप्य शक्तोसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः। सर्वकर्म फलत्यागं ततः कुरुयतात्मवान्॥ मुझमें मन रख, बुद्धिको मुझमें प्रवेश करो मुझमें ही तू निवास करेगा, अब इसमें कुछ संशय नहीं हैं। यदि मुझमें चितको स्थिर करनेमें असमर्थ है तो हे धनंजय अभ्यास योगसे मुझको पानेकी इच्छा कर। यदि अभ्यासमें भी असमर्थ है तो मेरे लिए कर्ममें तत्पर हो जा. मेरे हेतु कर्मोंको करते हुए तू सिद्धि पावेगा। यदि यह करनेमें भी असमर्थ है तो मेरा अर्थात् मेरे योगका आश्रय लेकर आत्मसयंमी हो तब सर्व कर्म फलका त्याग कर। क्योंकि देख "श्रयोहि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ध्यानात्कर्मफल त्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥ अभ्यासकी अपेक्षा ज्ञान, ज्ञानकी अपेक्षा ध्यानं अधिक कल्याणकारक है और ध्यानसे कर्मफल त्याग और त्यागके अनन्तर शान्ति मिल जाती है। इसलिए तू त्याग ही कर।

१२ क्षेत्रक्षेत्रज्ञ विभाग योग

इसमें इतना ही कहा है "प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्य नादी उभावपि। विकारांश्चगुणांश्चैव विद्धि प्रकृति संभवान्। यावत्संजायतेकिंचित्सत्वंस्थावर जङ्गमम्। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ संयोगात्तद्विद्धिभरतर्षभ॥ प्रकृति और पुरुष दोनोंको अनादि समझो और विकारों और गुणोंको प्रकृतिसे ही उत्पन्न जानो। स्थावर जंगम जो कुछ जितना उत्पन्न होता है हे भरतर्षभ उस सबको क्षेत्र क्षेत्रज्ञके संयोगसे उत्पन्न हुआ जानों। क्योंकि "क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा। भूतप्रकृतिमोक्षंचयेविदुर्यान्ति ते परम्। ज्ञान दृष्टिसे जो क्षेत्र क्षेत्रज्ञके अन्तरको और भूतप्रकृतिके मोक्षको जानते हैं वे मेरे परमपदको जानते हैं॥

१३ गुणत्रय विभाग योग

इसमें भी इतना ही परोक्ष ढंगसे कहा है— "ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्तिराजसः। जघन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः॥ "मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते। सगुणान्‌समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ सतोगुणमें स्थित पुरुष उन्नति करने, रजोगुणवाले मध्यमें जहांके तहां रहते और जघन्यवृत्तिवाले तमोगुणी नीचे जाते हैं। जो व्यभिचारहीन भक्तियोगसे मेरी सेवा करता है; निष्कपट भावसे मेरा भजन करता है वह गुणोंको अच्छी तरह पाकर ब्रह्मपदके योग्य हो जाता है। इसलिए तू सत्त्वगुणमें स्थिर रह उन्नति कर और निष्कपट भावसे भजन द्वारा गुणातीत होकर ब्रह्मपदके योग्य हो जा।

१४ पुरुषोत्तम योग

यहां भी परोक्ष ढंगसे कहा है "ममैवांशोजीवलोके जीवभूतः सनातनः। मनः षष्ठानींद्रियाणिप्रकृतिस्थानिकर्षति"॥ द्वाविमौपुरुषौलोकेक्षरश्चाक्षरएव च। क्षरः सर्वाणिभूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥ उत्तमःपुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्यविभर्त्यव्यय ईश्वरः॥ मेरा ही सनातन अंश जीवलोक जीवभूत होकर प्रकृति स्थित मन और पांच इन्द्रियोंको खींचा करता है। क्षर और अक्षर दो पुरुष ही है सब भूत अक्षर है और कूटस्थरूप अक्षर है। अन्य उत्तम पुरुष परमात्मा कहा जाता है जो तीनों लोकोंको भरता और उनमें प्रवेश करता है। यही अव्यय ईश्वर है। आशय यही है कि प्रकृति, पुरुष और जीव अनादि और सनातन है और परमात्मा चराचरमें व्याप्त है। वही अखंड है। ऐसा समझकर प्रकृति प्रवाह पतित कार्यको पूरा करनेमें ग्लानि मत रख।

१५ दैवासुर संपद्विभाग योग

अभय, सत्त्वसंशुद्धि आदि दैवी संपत् और दम्भदर्प आदि असुरी संपत् है। भगवान कहते हैं 'दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता। माशुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पांडव"। दैवी संपत विमोक्षके लिए और असुरी संपत् निबन्धनके लिए मानी गयी है तू शोक मत कर क्योंकि तू तो दैवी संपतको लेकर पैदा हुआ है। व्यंग यह है कि जब तुझमें "ज्ञानयोग व्यवस्थिति" है तो तू अपने क्षात्र धर्मका व्यवस्थित रूपसे पालन कर। ग्लानिमें पड़कर दुर्व्यवस्था क्यों उत्पन्न करता है। आसुरी संपत्तिवाले काम, क्रोध और लोभमें पड़कर नरक जाते हैं। मनमाना काम करनेवालोंको न सुख, न सिद्धि और न परमगति मिलती है। तू "तस्माच्छा' स्त्रंप्रमाणंते कार्याकार्य व्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ इसलिए कार्याकार्यकी व्यवस्थितिमें शास्त्रको प्रमाण ले और तू शास्त्र विधानमें कहे हुए कर्म करनेके योग्य है।

१६ श्रद्धात्रय विभाग योग

श्रद्धा गुणानुसार तीन प्रकारकी है सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धाभवति भारत श्रद्धामयोऽयंपुरुषोयोयच्छ्रद्धः स एव सः॥ अपने सत्व (गुण) के अनुसार श्रद्धा रहती है यह पुरुष श्रद्धामय है। जो जहां जिस पर श्रद्धा रखता है वह उसीके सदृश हो जाता है। इसी तरह गुणानुसार उन पुरुषोंके आहार, यज्ञ, तप और दान आदि होते हैं। ब्रह्मवादी "ॐ तत्सत्"

से ब्रह्मका निर्देश कर यज्ञ, दान, तप आदि क्रियाएँ करते हैं। अतः तू भी श्रद्धा रख युद्ध कर।

१७ मोक्षसंन्यास योग

भगवान अपना मत प्रकट कर कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप मनुष्योंको पवित्र करते हैं। अतः इन्हें करना ही चाहिये और कर्म सिद्धिमें 'अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्। विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्रपञ्चमम्॥ अधिष्ठान, कर्ता करण, पृथक्चेष्टा और दैव पांच बातोंका योग रहता है। ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, बुद्धि, धृति सुख, आदि तीन प्रकारके और वर्णोंके काम भी भिन्न हैं। अपने कर्मसे भगवानकी पूजा कर मनुष्य सिद्धि पाता है। सबका आशय यही है कि तू अपने स्वधर्म क्षात्रकर्मका पालन कर भगवानकी पूजा करके सिद्धि प्राप्त कर। अब प्रत्यक्ष होकर भगवान मर्मकी बातें कह देते हैं 'चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्यमत्परः। बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥ मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि। अथचेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥ यदहंकारमाश्रित्य नयोत्स्य इति मन्यसे। मिथ्यैषव्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥ स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धःस्वेनकर्मणा कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपितत्॥ ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वं भूतानियंत्रा रूढानि मायया॥ तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया। विमृश्यैतदशेषेणयथेच्छसि तथा कुरु॥ सर्वगुह्यतमं भूयः शृणुमे परमं वचः। इष्टोऽसिमे दृढमिति ततोवक्ष्यामि तेहितम्॥ मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजानेप्रियोऽसिमे। सर्वधर्मान्परित्यज्यमामेकं शरणं व्रज। अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः॥ अर्जुन चितसे मुझमें सब कर्मोंको छोड़कर, बुद्धियोगका आश्रय ले, सतत मुझमें चित्त रखनेसे मेरे प्रसादसे तू सब कठिनाइयोंको तर जायगा, यदि अहंकारके कारण मेरी बात नहीं सुनेगा तो तू नष्ट हो जायगा और यदि यह मानता है कि अहंकारका आश्रय ले नहीं लड़ूँगा तो यह तेरा काम मिथ्या रहेगा क्योंकि प्रकृति तुझे युद्धमें लगा देगी। हे कौन्तेय स्वभावसे उत्पन्न अपने कर्मसे बंधकर जो मोहवश नहीं करना चाहता वही अवश्य करेगा। क्योंकि सर्वभूतोंके हृदयमें ईश्वर रहता है और मायासे सबको घुमाता है मानो वे यंत्रपर चढ़ाये गये हों। अतः सर्वभावसे उसीकी शरण ले, उसके प्रसादसे परम शांति और शाश्वत स्थान पावेगा। मैंने अति गूढ़ ज्ञान तुझे कह दिया अब विचारकर जो चाहे सो कर। पुनः सबसे अत्यन्त गूढ़ मेरा परम वचन सुन ले तू मुझे बहुत ही इष्ट है सो तेरे हित की बात कहता हूँ। मेरे में मन लगा, मेरा भक्त हो, मेरा भजन कर, मुझे नमन कर तो तू मुझमें सत्य ही प्रवेश करेगा, तुझे वचन देता हूँ क्योंकि तू मुझे प्रिय है। सब धर्मोंको (संशयोंको मनकी कल्पनाओंको) छोड़ दे और मुझ एककी शरण ले (यही समझ कि मैं ईश्वर ही का काम (युद्ध) कर रहा हूँ) तो मैं तुझे सब पापोंसे (व्यक्तिगत, कौटुम्बिक, सामाजिक) छुड़ा लूँगा, तू व्यर्थ शोक मत कर।

स्वामी श्रीशङ्कराचार्यकृत श्रीविष्णु-स्वरूप-वर्णन

(अनुवादक—पं० श्रीगदाधरजी शर्मा, व्याकरणाचार्य)

यस्मादाक्रामतोद्यां गरुडमणिशिलाकेतुदण्डायमानादा-
श्च्योतन्ती बभासे सुरसरिदमला वैजयन्तीव कान्ता ।
भूमिष्ठो यस्तथान्यो भुवनगृहबृहत्स्तम्भशोभां दधानः
पातामेतौ पयोजोदरललिततलौ पङ्कजाक्षस्य पादौ ॥१२॥

कमलनेत्र श्रीहरिका एक चरण गरुडमणि रत्ननिर्मित ध्वजाका दण्ड बनकर जब ऊपर उठा, तो उससे गिरती हुई स्वच्छ एवं मनोहर गंगा वैजयन्ती पताकाकी भांति शोभा पाने लगी और उनका दूसरा चरण पृथ्वीपर विराजमान होकर संसारमय गृहको रोकनेके लिये विशाल खम्भेके सदृश सुशोभित होने लगा । ऐसे ये दोनों चरण, जिनके तलवे कमलके भीतरी भागके समान सुललित हैं, हमारी रक्षा करें ॥१२॥

आक्रामद्भ्यां त्रिलोकीमसुरसुरपती तत्क्षणादेव नीतौ
याभ्यां वैरोचनीन्द्रौ युगपदपि विपत्सम्पदोरेकधाम ।
ताभ्यां ताम्रोदराभ्यां मुहुरहमजितस्याञ्चिताभ्यामुभाभ्यां
प्राज्यैश्वर्यप्रदाभ्यां प्रणतिमुपगतः पादपङ्केरुहाभ्याम् १३

त्रिलोकीको नापते समय जिनके प्रसादसे दानवराज बलि और देवराज इन्द्र तुरंत—एक ही साथ विपत्ति एवं सम्पत्तिके निधान बन गये, जिनके तलुए तामेके समान लाल, सुपूजित और प्रभूतधन देनेवाले हैं, भगवान विष्णुके उन दोनों चरणकमलोंको मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ॥१३॥

येभ्यो वर्णश्चतुर्थश्चरणत उदभूदादिसर्गे प्रजानां साहस्री
चापि सङ्ख्या प्रकटमभिहिता सर्ववेदेषु येषाम् ।
व्याप्ता विश्वम्भरा यैरतिविततनोर्विश्वमूर्तेर्विराजो
विष्णोस्तेभ्यो महद्भ्यः सततमपि नमोऽस्त्वङ्घ्रिपङ्के-
रुहेभ्यः ॥ १४ ॥

प्रजाओंकी सृष्टिके समय जिनसे चौथा वर्ण अर्थात् शूद्र उत्पन्न हुए, सम्पूर्ण वेदोंमें स्पष्ट रूपसे जिनकी हजार संख्या कही गयी है तथा जिनसे सारा विश्व ओत-प्रोत है, विस्तृत विग्रहवाले जगन्मय विराट्पुरुष भगवान् विष्णुके उन विशाल चरण कमलोंको निरन्तर नमस्कार है ॥१४॥

विष्णोः पादद्वयाग्रे विमलनखमणिभ्राजिता राजते या
राजीवस्येव रम्या हिमजलकणिकालङ्कृताग्रा दलाली ।
अस्माकं विस्मयार्हाण्यखिलमुनिजनप्रार्थनीयानि सेयं
दद्यादाद्यानवद्या ततिरतिरुचिरा मङ्गलान्यङ्गुलीनाम् ॥१५

भगवान् विष्णुके दोनों चरणकमलोंके अग्रभागमें रहनेवाली अङ्गुलियोंकी पंक्ति स्वच्छ नखरूपी मणियोंसे देदीप्यमान होकर ऐसी शोभा पाती है, मानो ओस कणसे अलंकृत कमलदलके अग्रिम भागकी मनोहर पंक्ति हो । तथा जिसकी कभी उत्पत्ति नहीं होती और जो निर्विकार है, वह अत्यन्त सुन्दर पंक्ति हमें विस्मयकारक एवं मुनिजनोंके अभिलषित मंगल प्रदान करे ॥ १५ ॥

यस्यां दृष्ट्वामलायां प्रतिकृतिममराः स्वां भवन्त्यानमन्तः
सेन्द्राः सान्द्रीकृतेर्ष्याः स्वपरसुरकुलाशङ्कयातङ्कवन्तः ।
सा सद्यः सातिरेकां सकलसुखकरीं सम्पदं साधयेन्न-
श्चञ्चच्चार्वंशुचक्रा चरणनलिनयोश्चक्रपाणेर्नखाली ॥१६॥

चक्रपाणि भगवान् विष्णुके चरणकमलोंकी जिस स्वच्छ नखपंक्तिमें प्रणाम करते समय इन्द्रसहित देवगण अपना प्रतिबिम्ब देखकर दूसरे भी देवकुल हैं—ऐसा निश्चय करके भयभीत हो उठे तथा जो चञ्चल किरणोंसे चमक रही है, वह नखपंक्ति हमें सारे सुखोंको देनेवाली प्रचुर सम्पत्ति सद्यः प्रदान करे ॥ १६ ॥

पादाम्भोजन्मसेवासमवनतसुरव्रातभास्वत्किरीटप्रत्यु-
प्तोच्चावचाश्मप्रवरकरगणैश्चित्रितं यद्विभाति । नम्राङ्गानां

हरेर्नो हरिदुपलमहाकूर्मसौन्दर्यहारिच्छायं श्रेयःप्रदायि प्रपदयुगमिदं प्रापयेत्पापमन्तम् ॥ १७ ॥

चरणकमलोंकी सेवामें मस्तक झुकाये हुए देवताओंके कान्तिमान किरीटोंमें जड़ी हुई छोटी-बड़ी मणियोंकी किरणोंसे जो विचित्र जान पड़ते हैं तथा जिनकी कान्ति इन्द्रनीलमणिमय महान् कच्छपकी सुन्दरताको हरनेवाली है एवं कल्याण प्रदान करनेमेंजो अत्यन्त कुशल है, भगवान् विष्णुके वे दोनों प्रपद (पैर) हमारे पापका नाश करें ॥ १७ ॥

श्रीमत्यौ चारुवृत्ते करपरिमलनानन्दहृष्टे रमायाः सौन्दर्याढ्येन्द्रनीलोपलरचितमहादण्डयोः कान्तिचौरे। सूरीन्द्रैः स्तूयमाने सुरकुलसुखदे सूदितारातिसङ्घे जङ्घे नारायणीये मुहुरपि जयतामस्मदंहो हरन्त्यौ ॥ १८ ॥

जो अत्यन्त शोभायमान हैं, जिनकी गोलाई सुन्दर है, लक्ष्मीजीके करकमलोंद्वारा मलनेसे जिनके रोंगटे खड़े हो गये हैं, प्रकाशमान इन्द्रनील मणिके बने हुए महान् दण्डोंकी कान्ति जिन्होंने चुरा ली है, सुरवृन्द जिनकी स्तुति करते हैं और जो देवताओंको सुखदेनेवाली, शत्रुदलकी संहारक तथा हमारे पापोंकी प्रणाशक हैं, भगवान विष्णुकी उन युगल जंघाओंकी सदा जय हो ॥ १८ ॥

सम्यक् साह्यं विधातुं सममपि सततं जंघयो खिन्नयोर्ये भारीभूतोरुदण्डद्वयभरणकृतोत्तम्भभावं भजेते। चित्तादर्शं निधातुं महितमिव सतां ते समुद्रायमाने वृत्ताकारे विधत्तां हृदि मुदमजितस्यानिशं जानुनी नः ॥ १९ ॥

जो खिन्न जंघाओंको सम्यक् सहायता देनेके लिए भार बने-हुए युगल ऊरुदण्डोंको धारण करके उन्हें ऊँचे उठाये रखनेवाले खंभेका स्वरूप धारण करते हैं एवं सज्जनोंके चित्त-प्रदर्शनके लिये मानो जो अमूल्य दर्पण हैं तथा जिनकी आकृति गोल है, भगवान् विष्णुके वे दोनों आदरणीय घुटने हमारे हृदयमें निरन्तर आनन्द स्थापित करें ॥ १९ ॥

देवो भीति विधातुः सपदि विदधतौ कैटभाख्यं मधुं यावारोप्यारूढगर्वावधिजलधि ययोरेव दैत्यौ जघान। वृत्तावन्योन्यतुल्यौ चतुरमुपचयं बिभ्रतावभ्रनीलावूरू चारू हरेस्तौ मुदमतिशयिनीं मानसे नो विधत्ताम् ॥२०॥

ब्रह्माजीको डरानेवाले मधु और कैटभ एक ही साथ जब अत्यन्त मतवाले हो गये, तो भी विष्णुने समुद्रमें विराजमान हो जिनके सहारे उनका सहार किया तथा जो गोलाकार एक दूसरेकी तुलना करनेवाले, अत्यन्त मजबूत एवं मेघके समान नीले हैं, भगवान् विष्णुके वे दोनों ऊरू अर्थात् जाँघके ऊपरी भाग हमारे मनमें महान् हर्ष उत्पन्न करें ॥ २० ॥

पीतेन द्योतते यच्चतुरपरिहितेनाम्बरेणात्युदारं जाताऽलङ्कारयोगं जलमिव जलधेर्वाडवाग्निप्रभाभिः। एतत्पातित्यदाम्नो जघनमतिघनादेनसो माननीयं सातत्येनैव चेतो विषयमवतरत्पातु पीताम्बरस्य ॥२१॥

बड़वानलकी प्रभासे प्रकाशित समुद्रजलकी भांति जो कुशलतापूर्वक पहने हुए पीताम्बरसे अधिक शोभा पा रहा है तथा जो अलंकारोंसे सुसज्जित एवं अत्यन्त आदरणीय है, ऐसा वह भगवान् विष्णुका कमर पतन करानेवाले प्रगाढ पापसे हमारे विषयाभिलाषी चित्तको संयमित करे।

यस्या दाम्न्या विधाम्नो जघनकलितया भ्राजतेऽङ्ग यथाऽब्धेर्मध्यस्थो मन्दराद्रिर्भुजगपतिमहाभोगसंनद्धमध्यः। काञ्ची सा काञ्चनाभा मणिवरकिरणैरुल्लसद्भिः प्रदीप्ता कल्यां कल्याणदात्रीं मम मतिमनिशं कर्मरूपां करोतु ॥ २२ ॥

जिसे कुशलतापूर्वक कमरमें पहन लेनेसे भगवान्का श्रीविग्रह इस प्रकार शोभा पा रहा है, मानो सर्पराज वासुकिसे बँधा हुआ समुद्रमें रहनेवाला मन्दराचल हो तथा जो श्रेष्ठ मणिकणोंसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त चमक रही है, वह कनकमयी करधनी हमारी बुद्धिको नितान्त निर्मल, कलाकुशल एवं कल्याणदायिनी बनावे ॥ २२ ॥ (क्रमशः)

'गीता-विमर्श'

(लेखक पी० बी० लाल)

'महाभारत' की तैयारी थी। कौरवों तथा पांडवों की फौजें युद्धक्षेत्र में थीं। अर्जुन ने युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व दोनों दलों पर दृष्टि डाली। उसका हृदय कांप उठा। "इस राज्य के लिए इतना संहार।" पूर्ण रूपेण मानुषी भावना थी। अर्जुन ने युद्ध करने से ना कर दिया। श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाया। किन बातों पर व्यक्ति के कर्तव्य का निर्णय निर्भर करता है? किन पर जाति के कर्त्तव्य का निर्णय निर्भर करता है? आदि अदि !!

'महाभारत' के भीष्म पर्व के २५ वें अध्याय से ४२ वें अध्याय तक का नाम 'गीता' है। इन १८ अध्यायों में श्रीकृष्ण तथा अर्जुन की बातों का का उल्लेख है। कुछ टीकाकारों में से बहुतों ने ७००, एक ने १००, दूसरे ने ३६, तीसरे ने २८ तथा चौथे ने केवल ७ श्लोक ही असली (मूल) श्लोक खोज निकाले हैं।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के मतानुसार 'जिनको ग्रन्थ का ही रहस्य जानना है उनके लिए इस वहिरंग परीक्षा के झगड़े में पड़ना आवश्यक नहीं है।

गीता का अर्थ है "गाई हुई!" श्री मद्भगवत गीता" का अर्थ है श्री भगवान द्वारा गाई हुई।" गीता उपनिषद् है। यह उपनिषदों का सार है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ति दुग्धं गीतामृतं महत्॥

सब उपनिषद गाय हैं। दुहने वाले श्रीकृष्ण गोपाल नन्दन हैं। अर्जुन दूध पीने वाला बुद्धिमान बछड़ा है। गीता रूपी महान् अमृत दूध है। 'उपनिषद' शब्द उस ज्ञान के लिए प्रयोग किया जाता है जो गुरू शिष्य को स्वयं प्रदान करता है अर्जुन ने यह ज्ञान श्रीकृष्ण भगवान के मुख से स्वयं पाया है।

गीता में "ब्रह्मविद्यायाम्" शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह गीता ब्रह्म विद्या का ग्रन्थ है। ब्रह्म विद्या दर्शन है। गीता योग शास्त्र भी है। योग शास्त्र साधना का—प्रभु प्राप्ति के साधनो का शास्त्र है।

गीतामें "श्री कृष्ण तथा अर्जुन सम्वाद / इस के पश्चात् अध्याय के प्रधान प्रतिपाद्य विषय के अनुसार अध्याय का नाम दिया जाता है।

प्रत्येक अध्याय के अन्त में आता है—ॐ तत्सदिति श्रीश्रीमद्भगवद्गीतोपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायाम् योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादेयोगो नाम अध्याय समाप्त हो जाता है।

व्यक्ति समाज के लिए है। समाज व्यक्ति के लिए। दोनो ही का विकास होना चाहिए। "विकास का अर्थ है। चेतना की उस अवस्था की प्राप्ति जिसमें अन्तनिहित पुरूषोत्तम सत् चित् आनन्द पूर्णारूपेण प्रकट हो जाता है। व्यक्ति भागवत चेतन का लाभ कर ले। जिसमें समता है, ज्ञान है और और वह आनन्द है जिससे बढ़ कुछ है ही नहीं।

कर्त्तव्य-धर्म तथा लोभ-राग द्वेष-काम-क्रोध रहित न्याय-विकास पर अग्रसर करते हैं।

"अहंकार शून्यता" उच्च आदर्श है। गीता अन्यायी से प्रेम करते हुए प्रभु के हाथों में यन्त्र बने अहंकार शून्य हो अन्यायी को दंड देना सिखाती है। यह आदर्श अधिक बिशाल, समन्वयात्मक तथा अति लोक हितकारी है।

घृणा से घृणा पनपती है। द्वेष से द्वेष। हम इस परम्परा का मूलोच्छेदन करें। कर्त्तव्य पर डटे रहें। गीता के आदर्श अद्भुत हैं। स्पुट हैं। गीता तथा गीता के कृष्ण भी अद्भुत हैं। गीता का बताया हुआ मार्ग विशद हैं। समस्याओं का हल है।

श्रीभगवान भजनाश्राम एवं वृन्द्रावन भजनाश्राम के आय व्यय का विवरण
मिती माघ सुदी ६ सं० २००६ से मिति फागुन सुदी ८ सं० २००६ तकका मास १ का

५००१)॥	सहायता प्राप्त	९९८०।≶)॥	भजन करनेवाली माइयों को पैसा दीना
४०६३।=)	माईभजन की बाबत प्राप्त	१३०)	वृद्ध माइयों को दीना
४०४।॥)	मासिक चन्दा की बाबत प्राप्त	५२०)	कर्मचारियों का वेतन
४६७६)	विशेष सहायता प्राप्त	२५)	पोस्टेज खर्चा
		१३१।=)	खुदरा खर्चा
	६६७४।=)॥	१००)	कर्मचारियों की रसोई खर्चा
			८८८६।॥-)॥

श्रीभगवान भजनाश्राम एवं वृन्द्रावन भजनश्राम में सहायता देनेवाले सज्जों की नामावली
मिति माघ सुदी ६ सं० २००६ से मिति फागुन सुदी ८ सं० २००६ तकका मास १ का

१०)	श्रीलक्ष्मीचन्दजी वेरीवाला	कलकत्ता	५)	,, छगनलालजी	बम्बई
१०१)	श्रीमती सावित्री वाईजी	,,	५१)	,, अन्तुलालजी रामेश्वरप्रसाद	विलासपुर
२१)	श्री मक्खनलालजी साह	,,	२१)	,, वंशीधरजी नथमलजी	बलरामपुर
२०)	,, रघुनाथजी सूरजकरनजी महेश्वरी	कारंजा	११)	,, खेतसीदासजी प्रेमराजजी	,,
५।)	,, पं० कपिलदेवजी पाण्डे	कजरू	११)	,, मोनीबाबाजी	भागलपुर
५)	,, नारायनदासजी गुप्ता	जगनेर	११)	,, गोविन्दरामजी वाहेती	सिलीगुड़ी
५)	,, जयकीशनजी रामेश्वरदासजी	जगाधारी	११)	,, फुटकर प्राप्त	
४२)	,, गुप्तदानी	झाझा	७)॥	,, इन्द्रमनीजी वैद्य	नागपुर
३०)	,, द्वारिकाधीस कीर्तनमण्डल	देहली	४०)	,, किसनकुमारजी की दादीजी	,,
			४०)	,, किसनकुमारजी की माँजी	,,
१०)	,, ओंकारमलजी वासुदेवजी	नलवाड़ी	१५)	,, पन्नालालजी वाहेती	नौगांव
२८)	,, गंगाविशनजी	पुरुलिया		५००१)॥	

श्रीभगवान भजनाश्रम में माइयों द्वारा भजन कराने वाले सज्जनों की नामावली
मिति माघ सुदी ६ सं० २००६ से मिति फागुन सुदी ८ सं० २००६ तक का मास १ का

३७६॥≶)	श्री ब्रजवल्लभजी मुखिया वैद्य	आगरा	५०॥=)	,, रघुनाथजी रामप्रतापजी	,,
१६॥।=)	,, कन्हैयालालजी राधेश्यामजी	,,	१०१।)	,, स्योदयालजी लक्ष्मीनारायणजी	अमृतसर
१०१।)	,, गुप्त दानी	अकोला	८।≶)	,, रामकुंवारजी मूदड़ा	इन्दोर
२०२॥)	श्रीमती राधादेवीजी गोइनका	,,	८।≶)	,, सादूरामजी महादेवजी	ओंभर
१०१।)	श्री गोपालदासजी मेहता	,,	८।≶)	,, कन्हैयालालजी मूदड़ा	कलकत्ता

८।≡)	,, रामरत्नजी केड़िया	,,
५०॥=)	,, सूरजमलजी मिमानी	,,
५०॥=)	,, बिहारीलालजी भरतिया	,,
१०१।)	,, वैजनाथजी नारसरिया	,,
१०१।)	,, लादूरामजी मौर	,,
२०२॥)	,, सीतारामजी काइयां की माँजी	,,
२०२॥)	,, मामचन्दजी मुरारीलालजी	,,
१०१।)	,, हरिप्रसादजी रामनारायनजी	,,
१६॥=)	,, राधाकिशनजी काकाणी	किसनगढ़
२५।-)	,, हुक्मचन्द राईस मिल्स	कथियाटोली
१००)	,, हनुमानदासजी विलासरायजी	खामगांव
८।≡)	,, रामावतारजी	गौरीपुर
१०१।)	श्रीमती भगवानीदेवीजी	गोहाटी
१७)	श्री जगदीशप्रसादजी शर्मा	गिरीडीह
८।≡)	,, जगदीशप्रसादजी अग्रवाल	गडेरिया
८।≡)	,, लालजी मूलजी	घाटकोपर
८।≡)	,, चुन्नीलालजी राधाकिशनजी	चेचट
८।≡)	,, केसरीचन्दजी राठी	जोरहाट
८।≡)	,, वंशीलालजी रामप्रतापजी	जामोद
८।≡)	,, हस्तीमलजी कन्हैयालालजी	,,
८।≡)	,, फतेलालजी हीरालालजी	,,
१०१।)	,, किसनलालजी भागीरथजी	दीनहटा
८।≡)	,, चूहड़मलजी	देहली
१०१।)	श्री कौशलकुमारजी गुप्ता	देहली
८।≡)	,, कोलेश्वर राउतवीन	धूवड़ी
२५)	,, हीरालालजी अग्रवाल	नीमोद
११०)	श्रीमती मणीबाईजी सराफ	नागपुर
१०१।)	श्री गिरधारीलालजी रामानन्दजी	नागपुर
५१)	,, हीरालालजी बद्रीप्रसादजी	न्यामतपुर
८।≡)	,, राधेलालजी कृष्णमुरारीलालजी	फिरोजपुर
८।≡)	,, विशेश्वरजी	वावरपुरमंडी
२५।-)	,, देवीसिंहजी	वक्कड़

६३।=)	,, नाथूलालजी मोहनलालजी	वाराद्वार
८।≡)	,, जयलालजी गंगादत्तजी	,,
१०१।)	श्रीमती रामेश्वरी बाईजी अग्रवाल	वर्धा
८।≡)	श्री खड्गरामजी जेसराजजी	बलरामपुर
८।≡)	,, जोरावरमलजी द्वारिकादासजी	,,
२५।-)	,, हीरालालजी लालचन्दजी	,,
८।≡)	,, वंसीधरजी शंकरलालजी	,,
१०१।)	श्रीमती सीतादेवीजी सोमानी	मौलासर
५०॥=)	श्री प्रेमशंकरजी प्रमोद कुमारजी	मैनपुरी
१०१।)	,, गुप्तदानी सज्जन	रांची
२५।-)	,, माधोलालजी	रूपेडिया
८।≡)	,, जगदीशप्रसादजी केड़िया	रानीगंज
८।≡)	,, मदनलालजी सराफ	,,
८।≡)	,, दुखहरणजी मिश्र	,,
१६।॥=)	श्रीमती गीताबाईजी	रंगून
१६।॥=)	,, गोमतीबाईजी	,,
१६।॥=)	श्री लालचन्दजी कसेरा	लोसल
२५।-)	,; मानिकचन्दजी तोतारामजी	लश्कर
८।≡)	श्रीमती चन्द्रभागादेवीजी	लातुर
१६।॥=)	श्री केदारनाथजी	साहिबगंज
८।≡)	,, तुलसीरामजी मदनलालजी	सुजानगढ़
२५१)	,, हुक्मचन्दजी चाननमलजी महेश्वरी	श्रीगंगानगर
२५।-)	,, राधाकिशनजी रामप्रतापजी	सेंधवा
२५।-)	,, महीमराईस स्टोर	सिलीगुड़ी
५०॥=)	श्री रामविलासजी चौधरी	सिलीगुड़ी
१०१।)	,, गंगासोमानी मिल्स	,,
१०१।)	,, मेगराजजी पूरनमलजी	,,
१०१।)	,, हनुमान स्टोर	,,
१०१।)	श्रीमती कमलाबाईजी	शेगांव
१६।॥=)	श्री हनुमानदासजी हरलालका	,,
८।≡)	,; नोहरीमलजी पदमनाथजी	हाजीपुर
	४०६३।=)	

श्रीभगवान भजनाश्रम एवं वृन्दावन भजनाश्रम में मासिक चन्दा व सालाना चन्दा देनेवाले सज्जनों की नामावली

मिति माघ सुदी ६ सं० २००६ से फागुन सुदी ८ सं० २००६ तकका मास १ का

२०) श्री रामचन्द्रजी देसाई अहमदाबाद
१२) ,, माधोलालजी मुन्नालालजी अमृतसर
१२) ,, अमोलकरायजी ,,
६) ,, नगीनचन्दजी ओमप्रकाशजी ,,
१५) ,, हरदयालजी केदारनाथजी कलकत्ता
३००) ,, सूरजमलजी बाबूलालजी जटिया खुरजा
३॥।) ,, मुनी पाण्डेय पान्डू
१२) ,, किसनचन्दजी बाबूलालजी मथुरा
२४) ,, अमीरचन्दजी रामज्वायामलजी लुधियाना
४०४॥।)

श्रीभगवान भजनाश्रम एवं वृन्दावन भजनाश्रम में विशेष सहायता देनेवाले सज्जनों की नामावली

मिति माघ सुदी ६ सं० २००६ से फागुन सुदी ८ सं० २००६ तकका मास १ का

७५) श्री दौलतरामजी गेंदीलालजी महाजन झोंकर
४५०१) ,, गनेशदासजी फतेहचन्दजी तुमसर
१००) ,, रामकुंवारजी पाटोदिया नवलगढ़
४६७६)

चेतावनी

(रचयिता पं० रघुनाथ प्रसादजी शास्त्री, साधक, साहित्यरत्न,)

'रोयेगा पछताएगा'

भगवद्भजन विसार जगत में अन्त न सुख पायेगा ॥ १ ॥
शैशव बाल विनोद मोद,
में समागता तरुणाई ।
माया ममता मोह वासना,
जरा अवस्था आई ।
काल क्रमागत अनभिलाष यमलोक चला जायेगा
रोयेगा पछतायेगा ॥
धन सञ्चय व्यापार अनेकों,
उद्यम करते करते ।
पात्र 'लालसा' भरा नहीं,
जीवन रस भरते भरते ॥
पूर्ण काम हो कभी न इसको तू यों भर पायेगा ।
रोयेगा पछतायेगा ॥
माया का स्वामी बनकर,
सुख साधन बहुत जुटाये ।
अन्त काल में किन्तु एक भी
काम न तेरे आये ॥
इस जग का यह वैभव तेरे काम नहीं आयेगा ॥
रोयेगा पछतायेगा ॥
पुत्र-वित्त नारी की ममता,
तथा जगत के नाते ।
क्षण भर का विश्वास अरे,
ये इतने मन को भाते ॥
रस विहीन जीवन होने पर कोई नहीं भायेगा ॥
रोयेगा पछतायेगा ।
ये सब स्वार्थ जगत के तेरे,
तुझे रोकने आते ।
विविध कौशलों से अपनी,
वे माया को फैलाते ॥
एक बार फँस जाने पर तू फिर न निकल पायेगा ॥
रोयेगा पछतायेगा ॥
जब तक श्वास राम को भजले,
अन्त काल गति तेरी ।
चिन्तन करने पर आई है,
कुछ ऐसी मति मेरी ॥
परम विज्ञ तू ईश भजन विन क्योंकर सुख पायेगा ।
हाथ न कुछ आयेगा ॥
रोयेगा पछतायेगा ॥

॥ श्रीहरिः ॥

नाम-माहात्म्यके नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नामके माहात्म्यका वर्णन करके श्रीभगन्नामका प्रचार करना, जिससे सांसारिक जीवों-का कल्याण हो।

नियम :—

१—"नाम-माहात्म्य" में श्री पूर्व आचार्य महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्ध सन्तोंके उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा और भक्तिसम्बन्धी लेख एवं श्रीभगवान् और उनके भक्तोंके चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखोंके बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करनेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। लेखोंमें प्रकाशित मतका उत्तरदायी सम्पादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरीसे आरम्भ होता है। ग्राहक किसी भी मासमें बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरीके अंकसे निकले सभी अंक दिये जायँगे।

४—जिनके पास जो अंक न पहुँचे, वे अपने डाकखानेसे पूछें, वहाँसे मिलनेवाले उत्तर को हमें भेजनेपर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २=) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे भेजना चाहिये। वी०पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं और समय भी अधिक लगता है।

७—समस्त पत्रव्यवहार व्यवस्थापक, "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन (मथुरा) के पतेसे करना चाहिये।

श्रीभगवन्नाम-जप कराइये



श्री वृन्दावनमें लगभग ८५० गरीब माइयाँ प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल ६ घण्टे परम मंगलमय श्रीभगवन्नामका जप एवं संकीर्तन करती हैं इन्हें आश्रम द्वारा अन्न, वस्त्र और पैसोंकी सहायता दी जाती है। एक माई प्रतिदिन एक लाख श्रीभगवन्नामजप कर सकती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

कलियुगमें संसार-सागरसे पार उतरनेका एकमात्र सुगम उपाय श्री भगवन्नाम-जप करना ही शास्त्रोंमें वर्णित है। सभी महानुभवोंको स्वयं अधिक-से-अधिक भगवन्नाम-जप करनेकीचेष्टकरनी चाहिये।

जो महानुभाव अपनी ओरसे गरीब माइयों द्वारा श्रीभगवन्नामजप कराना चाहें, वे कृपाकर हमें सूचित करें। भजनाश्रममें लगभग ६०० गरीब माइयाँ आती हैं, जिनमें-से इस समय लगभग ६३४ माइयाँ दान दाताओंकी ओरसे भजन कर रही हैं। बाकी माइयोंसे भजन करनेके लिये हम सभी प्रेमी सज्जनोंसे निवेदन करते हैं कि आप अपनी-अपनी श्रद्धा और प्रेम के अनुसार जितनी माइयों द्वारा जितने मासके लिये भजन कराना चाहें, अवश्य करावें एवं अपने इष्ट-मित्रोंको भी भजन करानेके लिये प्रोत्साहित करें।

एक माईको नित्य प्रति साढ़े चार आनेकी सहायता दी जाती है। इस हिसाबसे एक मासका ८।≈) और एक वर्षका १०१।)खर्च लगता है।

पत्र-व्यवहार एवं मनीआर्डर भेजनेका पता :—

मन्त्री—श्रीभगवान-भजनाश्रम,

पोस्ट—वृन्दावन

नाम माहात्म्य



वर्ष १२] वृन्दावन [अङ्क ११

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

[नवम्बर सन् १९५३]

"नाम-माहात्म्य" के ग्राहक महानुभावोंसे प्रार्थना

(१) प्रतिमास प्रथम सप्ताहमें "नाम-माहात्म्य" के अंक कार्यालय द्वारा २-३ बार जाँच कर भेजे जाते हैं; फिर भी किसी गड़बड़ी के कारण अंक न मिले हों तो उसी माह में अपने पोस्टआफिस से लिखित शिकायत करनी चाहिये और जो उत्तर मिले, उसे हमारे पास भेजने पर ही दूसरा अंक भेजा जा सकेगा।

(२) प्रत्येक पत्रव्यवहारमें अपना ग्राहक-नम्बर लिखनेकी कृपा करें एवं उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजने चाहिये। पत्रव्यवहार एवं वार्षिक चंदा निम्न पतेपर स्पष्ट अक्षरोंमें लिख कर भेजिये।

व्यवस्थापकः—"नाम-माहात्म्य" कार्यालय, भजनाश्रम

पोस्ट—वृन्दावन (मथुरा

सम्पादक तथा प्रकाशक—गौरगोपाल मानसिंहका, श्रीभगवान् भजनाश्रम, वृन्दावन (मथुरा)।
मुद्रक—राममोहन शास्त्री, श्रीगोविन्द मुद्रणालय, काशी।

श्रीहरिः



वर्ष १३ } "नाम-माहात्म्य" वृन्दावन, नवम्बर सन् १९५३ { अङ्क ११

जशोदा का भाग्य

धन्य जसोदा भाग तिहारौ जिन ऐसो सुत जायौ।
जाकैं दरस-परस सुख तन-मन, कुलकौ तिमिर नसायौ॥
बिप्र-सुजन-चारन-बन्दीजन, सकल नन्द-गृह आये।
नूतन सुभग दूब-हरदी-दधि, हरषित सीस बँधाये॥
गर्ग निरूपि कह्यौ सब लच्छन, अबिगत हैं अबिनासी।
सूरदास प्रभुके गुन सुनि-सुनि, आनँदे ब्रजबासी॥

—श्रीसूरदासजी

गुरु-सेवा का महत्त्व

(लेखक—श्री श्रीकान्त शरण जी)

भाव यह कि जैसे नेत्रकी परिमित पुतली परिमित स्थल ही देख पाती है, वैसे ही परिमित शक्ति एवं परिमित उपकरण वाले जीवके साधनोंसे परिमित पदार्थ ही देखने एवं जाननेमें आते हैं; अपरिमित ब्रह्मका परिज्ञान नहीं होता।

प्राचीन रीतिसे ब्रह्मविद्याका कानोकान आना पाया जाता है। इस रीतिसे (श्रुति-परम्परासे) आनेवाले वेदमन्त्र श्रुति कहते हैं। इसी प्रकार मन्त्रयोगकी भी रीति है, मन्त्र भगवान्से चलकर गुरु-परम्परासे श्रवण द्वारा आता है। मन्त्र के अर्थमें सम्पूर्ण ब्रह्म विद्या रहती है। उसके प्रकाशभूत ज्ञानसे मुमुक्षु भगवान्की प्राप्ति कर लेता है; क्योंकि वह भगवान्का ही अपरिमित ज्ञान है, उसमें भगवान्की ही गुरुत्व शक्ति रहती है।

गीता ११।८ में भगवान्ने स्पष्ट कहा है—"तू अपने इन नेत्रोंसे मुझे नहीं देख सकेगा। इसलिये मैं तुझे दिव्य चक्षु देता हूँ। उससे तू मेरे ऐश्वर्य योग एवं विभूति योग को देख।" इसमें दिव्यचक्षुके रूपमें भगवान्ने अपना दिव्य ज्ञान ही दिया है। भगवान्ने कहा भी है—

"ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।"

(गीता १०।१०)।

अर्थात् भक्तोंको मैं वह बुद्धियोग देता हूँ, जिससे वे मुझको प्राप्त हो जाते हैं। श्रुति भी ऐसा ही भाव कहती है—

"यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" (कठ० १।२।२३)

अर्थात् जिसको यह स्वयं वरण करता है, उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। भाव यह कि वह स्वयं ज्ञान देकर उसके द्वारा इसे स्वीकार कर लेता है। अतः अपनी प्राप्तिमें वह स्वयं उपाय है।

भगवान् से आई हुई श्रुति-परम्परा से प्राप्त कर ब्रह्म-विद्यामय मन्त्र में श्रद्धानिष्ठ होनेसे गुरु ब्रह्म स्वरूप हैं। यथा—"श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।" (गीता १७।३); अर्थात् यह पुरुष श्रद्धामय है, जो जिस श्रद्धावाला होता है, वह वही होता है। कहा भी है—

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥"

(गुरु गीता)।

अर्थात् श्रीगुरुजी परंब्रह्म की गुरुत्व शक्ति से शिष्य के मोह का संहार, उसके हृदय में दिव्य गुणों की उत्पत्ति और उसे हरिभक्ति-प्रदान द्वारा उसका पालन करते हैं। इससे वे अकेले त्रिदेव रूप एवं परब्रह्म स्वरूप माने जाते हैं।

उपर्युक्त ब्रह्माजी और शिवजी को भी गुरु की अनिवार्य आवश्यकता का कारण स्पष्ट हो गया कि वे अपनी परिमित बुद्धि के ज्ञान से अपरिमित ब्रह्म की प्राप्ति नहीं कर पाते, इससे उन्हें भी मन्त्र-परम्परा से आयी हुई ब्रह्म की गुरुत्व शक्ति का आश्रय लेना पड़ता है। यह श्रुति से भी सिद्ध है यथा—

"त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम्।"

(रा० उ० ता०)।

अर्थात् इन्हें मन्त्र श्रुति-परम्परा से प्राप्त है, इसी से औरों को भी देते हैं। यहाँ तक गुरुत्व के रहस्यपर कुछ लिखा गया, आगे परंब्रह्मस्वरूप गुरु की उपासना एवं उसके महत्त्व पर कुछ प्रमाण लिखे जाते हैं—

"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्…" (मुण्ड० १।२।१२)।

अर्थात् उस ब्रह्म को जाननेके लिये वह अधिकारी कुछ उपहार लेकर श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जावे।

"तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥२१॥
तत्र भागवतान्धर्माञ्छिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः।
अमायानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्माऽऽत्मदोहरिः॥२२॥

(श्रीमद्भा० ११।३)।

अर्थात् जिसको अपने परम कल्याण के जानने की इच्छा हो, उसको वेदज्ञ और ब्रह्मनिष्ठ एवं शान्त गुरु की शरण होना चाहिये। गुरुजीको ही आत्मा और इष्टदेव समझकर निष्कपट भाव से उनकी सेवा करनी चाहिये। जिससे परमात्मा आत्मप्रद हरि प्रसन्न होते हैं, उन समस्त भागवतधर्मों को उनसे सीखना चाहिये।

उपर्युक्त श्रुति में 'श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' और यहाँ 'शाब्दे परे च निष्णातं…' से गुरु लक्षण भी कहा गया है। गुरु, श्रुति सिद्धान्त ज्ञाता होनेसे शिष्यके संशयोंका नाश करते हैं और ब्रह्म-उपासना-निष्ठ होनेसे उसमें उपासना दृढ़ करते हैं। श्रीगोस्वामीजी ने भी लिखा है—

"बंदउँ गुरु पद कंज, कृपासिंधु नर-रूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर॥"

अर्थात् गुरु परब्रह्म स्वरूप हैं और जिनके वचन सूर्य-किरण समूह के समान महामोह नाशक हों, वे ही श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरु होते हैं।

गुरु-निष्ठासे शिष्य ब्रह्म-विद्याका अधिकारी होता है, यथा—

"यस्य देवे पराभक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥"

अर्थात् परमात्मा देवमें जिसकी परा भक्ति हो और वैसी ही भक्ति गुरुमें भी हो, ये कहे हुए अर्थ उसी महात्मा के जाननेमें आते हैं। अर्थात् गुरु-भक्तिसे भगवत्तत्त्व हृदयमें प्रकाशित होते हैं, तथा—

"श्रुतँ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्य आचार्याद्धयेव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयतीति ……"

(छान्दो० ४।९।३)

अर्थात् आपके समान आचार्यसे प्राप्त हुई विद्या ही सफल होती है।

आचार्यवान् पुरुषो वेद" (छान्दो० ६।१४।२)

अर्थात् आचार्य समाश्रित पुरुष ब्रह्मको जानता (प्राप्त करता है।

"न जन्मतो नाध्ययनान्नयज्ञान्न तपः श्रमात्।
न दानादश्नुते ब्रह्म गुरूपसदनं विना॥
बालमूकजडान्धाश्च पंगवो बधिरास्तथा।
सदाचार्येण संदृष्टाः प्राप्नुवन्ति परांगतिम्॥"

(भरद्वाज संहिता)

अर्थात् उत्तम कुलमें जन्म होनेसे, अध्ययन करनेसे, यज्ञ करनेसे तपस्यामें बहुत श्रम करनेसे तथा दान देनेसे ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती। जबतक गुरु-शरणागति न की जाय। बालक, गूँगा, मूर्ख, अंधा, पँगुला और वधिर आदि सभी (साधन-हीन भी) सदाचार्यका उपदेश ग्रहण कर परमगति पा लेते हैं।

उत्तङ्क मुनिकी कथा

अनन्य गुरु-निष्ठ उत्तङ्क मुनिकी कथा महा० आश्व० ५३ से ५८ तक दी गई है, यहाँ पर वह अत्यन्त सूक्ष्म करके लिखी जाती है—

महाभारत हो जानेपर श्रीकृष्ण भगवान्के द्वारका जाते समय मार्गमें उनसे उत्तङ्क मुनिसे भेंट हुई। मुनिने युद्ध वृत्तान्त पूछा। भगवान्ने कहा। कौरवोंका नाश होना सुनकर मुनि बड़े क्रुद्ध हुए उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान्से कहा कि आप दोनों पक्षके सम्बन्धी एवं समर्थ हैं। फिर भी

आपने इनकी रक्षा नहीं की, नष्ट होनेसे नहीं बचाया। अतः मैं आपको शाप दूँगा।

भगवान्ने मुनिपर दयाकर कहा कि मुझे तपसे कोई दबा नहीं सकता। मैं तुम्हारे तपके प्रभावको भी नष्ट नहीं करना चाहता। फिर भगवान्ने मुनिको अध्यात्म-ज्ञानकी शिक्षा दी, तब उन्होंने शाप देनेकी वृत्ति रोक ली। मुनिकी इच्छापर भगवान्ने उन्हें अपना विराट रूप दिखाया, जो अर्जुनको दिखाया था। पुनः मुनिकी इच्छापर उन्हें मरुभूमिमें जहाँ चाहे जल देनेके लिये उत्तङ्क संज्ञक मेघ प्रदान किया। इसपर मुनि बड़े प्रसन्न हुए।

इस कथापर महाराज जन्मेजयको आश्चर्य हुआ कि भगवान्को शाप देनेमें समर्थ मुनिने कौन सी भारी तपस्या की थी? इसपर वैशम्पायन मुनिने कहा है—

"उत्तङ्को महता युक्तस्तपसा जनमेजय।
गुरुभक्तः स तेजस्वी नान्यत्किञ्चिदपूजयत्॥२॥
सर्वेषां ऋषिपुत्राणामेष आसीन्मनोरथः।
औत्तङ्की गुरुवृत्तिं वै प्राप्नुयामेति भारत॥३॥"

अर्थात् उत्तङ्क मुनि महान् तपस्वी थे, तेजस्वी थे। वे केवल गुरु-भक्ति करते थे और किसीकी पूजा नहीं करते थे। अन्य ऋषिपुत्र उत्तङ्ककी-सी गुरु भक्तिकी लालसा किया करते थे।

गुरु-सेवामें निमग्न उत्तङ्ककी जरा अवस्था आ गई। यह बात उन्हें काष्ठभार गिराते समय उखड़ी हुई अपनी श्वेत जटा देखनेपर ज्ञात हुई। मुनि भूखे और श्रमित भी थे। अतः आर्तस्वरमें रोने लगे। उस समय गुरु गौतमजीकी आज्ञासे उनकी पुत्रीने उत्तङ्कके अश्रुजलको हाथोंमें ग्रहण किया। वह अश्रुजल उसके हाथोंको जलाता हुआ पृथ्वीपर गिरा। पृथिवी भी उस अश्रुधाराको नहीं सह सकी।

गुरु गौतमजीने रोनेका कारण पूछा। उत्तङ्क मुनिने कहा कि आपके और शिष्य कृतार्थ हो-होकर गये। पर मुझे आपने अबतक आज्ञा नहीं दी। मेरी वृद्धावस्था आ गई।

गुरुजीने कहा कि जैसे तुम्हें सेवारत रहनेमें इतने काल का ज्ञान नहीं हुआ, वैसे ही तुम्हारी सेवापर अधिक प्रसन्नता से मुझे भी इस अतिकालका ज्ञान नहीं हुआ। अब तुम गृह जाओ; मैं आज्ञा देता हूँ।

उत्तङ्क मुनिने गुरु-दक्षिणाकी आज्ञा देनेको कहा। गुरुजीने कहा मैं तुम्हारे सदाचार और गुरु-निष्ठापर ही प्रसन्न हूँ। यदि तुम षोडश वर्षके युवा होते तो मैं तुम्हें अपनी कन्या पत्नीरूपमें दान करता; इसके अतिरिक्त और कन्या तुम्हारे तेजको धारण करनेमें समर्थ न होगी।

गुरुजीकी इच्छा जानकर उत्तङ्क मुनि (गुरु निष्ठा-प्रभावसे) तुरत युवा हो गये और गुरुजीकी आज्ञानुसार उनकी उस कन्याका पाणिग्रहण किया।

फिर उत्तङ्क मुनिने गुरुपत्नी अहल्याजीसे भी गुरु-दक्षिणा माँगनेकी प्रार्थना की। उन्होंने कहा, पुत्र! मैं तुम्हारी भक्तिपर ही प्रसन्न हूँ। अतः जाओ, तुम्हारा मङ्गल हो मुनिने विशेष आग्रह पूर्वक माँगनेकी प्रार्थनाकी कि मैं तप बलसे दुर्लभ महारत्न भी ला सकता हूँ।

अहल्याजीने कहा, राजा सौदासकी स्त्रीका दिव्य मणिमय कुण्डल ला कर दो, तुम्हारा मङ्गल हो। मुनि वहाँको चल दिये। सन्ध्याकालमें गौतमजीने उत्तङ्कको न देखकर पूछा, तब अहल्याजीने सारा हाल कहा। गुरुजी पश्चात्ताप करने लगे कि वह राजा सौदास तो शापसे भयङ्कर राक्षस रूपमें है। अतः उत्तङ्कका वह वध करेगा। गुरुपत्नीने कहा, मैं तो यह नहीं जानती थी। अच्छा आपकी कृपासे उसका मङ्गल हो, गौतमजीने भी 'तथास्तु' कहा।

वहाँ निर्जन वनमें उत्तङ्क मुनिने भयंकररूप सौदासको

देखा। यमराजके समान एवं महान् तेजस्वी घोररूप सौदास के समक्ष भी मुनि निःशङ्क रहे। उसने कहा—मैं भक्ष्य खोजता था, भले आये।

मुनिने कहा, मैं गुरु कार्यमें आपसे धन माँगने आया हूँ। ज्ञानीलोग ऐसे व्यक्तिको अवध्य कहते हैं। उसके हठपर मुनिने प्रतिज्ञा की गुरुकार्य करके मैं यहाँ आऊँगा। फिर कहा कि गुरु दक्षिणाका रत्न तुम्हारे हाथ है। अपनी स्त्रीका मणिकुण्डल दीजिये।

सौदासने कहा—मेरी पत्नीसे इस प्रकार जाकर कहो, वह मेरे कहनेपर अवश्य दे देगी। मुनिने जाकर उनकी रानी मदयन्तीसे कहा। रानीने कहा—इस कुण्डलका हरण करनेको देवता, यक्ष, और महर्षिगण छिद्रान्वेषण करते रहते हैं। इसके पृथिवीपर गिरनेपर सर्पगण, उच्छिष्ट अवस्थामें धारण करनेपर यक्षगण और निद्रामें धारण करनेसे देववृन्द इसका हरण कर सकते हैं। इससे दिनमें सुवर्ण झड़ा करता है और रातमें यह नक्षत्रोंकी प्रभाओंका हरण कर अपनी प्रभा फैलाता है। इसको धारण करनेपर भूख-प्यास नहीं लगती। विष, अग्नि एवं अन्य भयंकर जन्तुओंसे भय नहीं होता। थोड़ी अवस्थावाला धारण करे तो उसकी वही अवस्था रह जाती है। इत्यादि। तुम मेरे पतिसे कोई चिन्ह लाओ, तब मैं दूंगी। उत्तङ्क मुनि जाकर सौदाससे कुछ वचन चिन्ह लाये। (सौदासने इनकी गुरु-निष्ठापर प्रसन्न होकर इन्हें यह भी अनुमति देदी कि अब तुम मेरे पास मत आना।) रानीने मणि-कुंडल दिया। मृगचर्ममें बाँधकर मुनि बड़े वेगसे गुरु-पत्नीके पास चले। मार्गमें इन्हें भूख लगी। बेलके वृक्षपर मृगचर्म रखकर उसके फल खाने लगे। धोखेसे एक बेल उस मृगचर्मपर गिर पड़ा, वह भूमिपर गिरा, वे कुंडल भी भूमिपर गिर पड़े। तुरत एक महासर्प आया और कुण्डलोंको लेकर बिलमें चला गया।

यह देखकर मुनि दुःख, क्रोध एवं उद्वेगसे वृक्षपरसे गिर पड़े। फिर उत्तंक मुनि सावधान हो दन्तकाष्ठ लेकर पतीस दिनतक उस बिलको खोदते रहे। इनकी भूमि-विदारण इच्छापर भूमि घबरा गई। तब इन्द्रने ब्राह्मण वेषसे आकर कहा कि नागलोक यहाँसे एक सहस्रयोजन है, अतः यह श्रम व्यर्थ है। तब मुनिने अपना प्राण-प्रण कहा, तब इन्द्रने इनके काष्ठको अपने वज्रसे मिला दिया, तब उससे नागलोकका मार्ग बन गया। मुनि वहाँ पहुँचे। पर कुंडल असाध्य स्थलमें था। इनकी निराशतापर गौतम मुनिके गुरु अग्निदेवने सहायता की। उनकी आज्ञासे इन्होंने वैसा ही किया। अग्निदेव नागलोक जलाने पर उद्यत हुए। धूमसे नागलोक भर गया।

घबराकर नागोंने बाल-वृद्धोंको आगे कर मुनिकी शरणागति की। मुनिकी पूजा की और इन्हें मणि कुंडल लाकर दिये। मुनिने अपने दादा गुरु अग्निदेवकी प्रदक्षिणा की और अपने गुरु गौतमजीके समीप गये। वहाँ गुरु पत्नी-जीको कुण्डल दिये और कुल वृत्तान्त सुनाया।

गुरु निष्ठ महान् तपस्वी उत्तङ्क मुनिकी ऐसी कथा है। गुरु सेवासे ऐसे ऐसे असाध्यकार्य हो जाते हैं। ऐसा प्रभाव समझकर सभीको गुरु-निष्ठासे लाभ उठाना चाहिये।



नाम-प्राप्ति और भगवत्प्राप्ति

(लेखक श्री सुदर्शनसिंहजी)

भगवत्प्राप्तिका क्या अर्थ ? उपासनाके सिद्धान्तमें भगवत्प्राप्तिका बहुत सीधा अर्थ है—अपने आराध्यरूपमें अपने इष्टदेवको प्रत्यक्ष देख लेना। इन्हीं नेत्रोंसे भगवानका ठीक उस प्रकार साक्षात्कार, जैसे हम संसार की अन्य वस्तुयें देखते हैं।

क्या भगवद्दर्शनसे जन्म-मरणका चक्र समाप्त हो जाता है ? मुझे यह कहनेके लिये भगवद्भक्त क्षमा करें कि श्रीमद्भागवत, महाभारत, रामायण तथा अन्य पुराणोंका उत्तर इस सम्बन्धमें नकारात्मक है। भगवद्दर्शनके बाद भी जन्म होता है, यह आपको और मुझे भी बहुत विचित्र बात लगती है; किन्तु है यह सत्य। जरा व्याध पूर्व जन्मका बालि था, दूसरे जन्ममें भी उसे केवल स्वर्ग मिला। मुचुकुन्दको स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि 'दूसरे जन्म में तुम ब्राह्मण होकर उत्पन्न होगे और तब मुझे प्राप्त करोगे।' इस प्रकारके उदाहरण बहुत अधिक हैं।

भगवद्दर्शनसे आवागमनकी निवृत्ति क्यों नहीं होती ? मैं तो केवल सूत्र कह जाना चाहता हूँ इस बार। इनकी व्याख्या तो फिर कभी होगी। भगवद्दर्शनके भी कई प्रकार हैं—१—स्वप्नमें दर्शन, २—अवतारके समय दर्शन ३—भावनाकी प्रबलतासे भावमूर्तिके प्रत्यक्ष दर्शन और ४—भगवत्कृपासे दर्शन या भगवत्प्राप्ति। इनमेंसे पहिले तीनसे भी आवागमनकी निवृत्ति तो होती है; किन्तु क्रमसे होती है। ऐसे दर्शनके बाद भी कुछ प्रतिबन्धक रह सकते हैं और उनके कारण दो-चार जन्म हो सकता है। वैसे किसी भी प्रकार भगवद्दर्शन होनेपर मुक्ति निश्चित हो जाती है—भले वह क्रममुक्ति ही हो। लेकिन चतुर्थ प्रकारका भगवद्दर्शन कर्मबन्धनको तत्काल ध्वस्त कर देता है।

स्वप्नमें दर्शनसे उसी जन्ममें मोक्ष नहीं होगा, यह समझना आपके लिये कठिन नहीं होगा। वैसे भगवद्दर्शनके चारो प्रकार समझने योग्य हैं, उनपर कभी विचार किया जा सकता है। अभी तो उनकी चर्चा मात्र—अवतारके समय दर्शनसे मोक्ष ही हो जाय ऐसा निश्चित नहीं। पुराणोंके अनेक चरित इसके उदाहरण हैं। कोई प्रबल-शक्ति मेस्मराइजन् किसीको सम्मोहित करके अपने मनकी कल्पनासे किसी भगवन्मूर्तिका दर्शन करा दे तो ऐसे दर्शनसे मोक्ष सम्भव नहीं, यह भी आप समझ सकते हैं। यही बात अपनी प्रबल भावनासे भावमूर्तिके दर्शनमें होती है। तीव्र उत्कण्ठा प्रबल भावना अपने भावको बाहर मूर्तिके रूपमें प्रगट कर देता है। इसलिये इस दर्शनसे यह धोखा तो अवश्य हो जाता है कि भगवद्दर्शन हुये, किन्तु वह वास्तविक दर्शन है नहीं।

भावमूर्तिके दर्शन तथा भगवत्कृपासे हुये वास्तविक भगवद्दर्शनका भेद कैसे जाना जाय ? यह प्रश्न कुछ टेढा है। योगदर्शनमें 'अप्राप्य भूमिकत्व' एक बड़ी बाधा बताई गई है। भावमूर्तिके दर्शनको कुछ ऐसा ही कह सकते हैं। यदि यह संतोष हो जाय कि भगवद्दर्शन हो गये, कृत्यकृत्यता प्राप्त हो गई और प्रेष्ठको प्राप्त करनेकी प्यास मिट जाय तो समझना चाहिये कि वस्तुतः दर्शन हुये नहीं थे। केवल भावना ही मूर्त हो गई थी। प्रेष्ठका स्वरूप ही प्यासका रूप है। वस्तुतः दर्शन प्रेमकी समाप्ति नहीं करता, उसका दान करता है। 'प्रतिक्षणं वर्धमानं'

यह प्रेमका स्वरूप है। जिस दर्शनमें नित्य उत्कण्ठा, नित्य जागरूक प्यास बनी रहे, वही सचमुच दर्शन है।

वेदान्त दर्शनमें मोक्षकी प्राप्ति होती है स्वस्वरूपके अनुभव से। उपासनामें भी यही बात है। यदि भगवद्दर्शनसे स्वस्वरूपका अनुभव न हुआ तो वह केवल भावमूर्तिका दर्शन था, यही मानना होगा। भगवद्दर्शन यदि वस्तुतः भगवद्दर्शन था तो उससे जीवको अपने वास्तविक रूपका बोध भी तत्काल हो ही जाना चाहिये।

उपासनामें जीवके अपने स्वरूपके बोधका क्या अर्थ? वही विस्तार वाली बाधा—लेकिन विस्तार तो करना नहीं है। यह जगत एक परम्परामें भगवद्धामका ही प्रतिविम्ब है। यहाँ जो कुछ है, उसका वहाँ उस चिन्मयधाममें भी एक स्थान है। किसका वहाँ क्या रूप है, क्या स्थान है—यह प्रत्यक्ष हो जाना ही उस जीवका स्वस्वरूप बोध है और इस बोधसे उसे अपने स्वरूपकी प्राप्ति हो जाती है। उसकी मोहनिद्रा समाप्त हो जाती है। उसका कर्मबन्धन ध्वस्त हो जाता है। स्कन्दपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवत माहात्म्यमें कुमार वज्रादिके स्वस्वरूप बोधकी बात आप चाहें तो पढ़ लें।

नाम प्राप्तिका क्या अर्थ? बहुत सीधा अर्थ है दीक्षा। लेकिन यहाँ मेरा मतभेद है दीक्षा तथा सम्प्रदायकी वर्तमान परम्पराओंसे। दीक्षाका अर्थ है कि जो बात भगवत्प्राप्तिके बाद साधकको ज्ञात होनेवाली है, एक समर्थ गुरु उसे पहिलेसे जानकर उसी मार्गपर साधकको लगा दे। ऐसी दीक्षाका नाम है सम्बन्ध-दान।

प्रत्येक जीवका उस नित्य धाममें कोई न कोई रूप है। उस सच्चिदानन्द परमतत्त्वसे प्रत्येकका कोई न कोई सम्बन्ध है। हम उस अपने रूप या सम्बन्धको जानते नहीं। एक किसी भगवन्नाम या मन्त्रमें निष्ठा रखकर जप करने लगते हैं एक किसी भगवद्रूपको इष्ट मान लेते हैं, आगे चलकर इष्टके साथ एक सम्बन्ध भी कल्पित कर लेते हैं। यह हम स्वयं करें या कोई करा दे—बात एक ही है। एक गुरु सबको एक दीक्षा दे, एक प्रकारका सम्बन्ध दे तो वह सब कल्पित ही होगा। उसे नाम चाहे जितना उच्च दे दिया जाय वह वस्तुतः दीक्षा है ही नहीं। वह तो एक कल्पना है जो अपने द्वारा न करके दूसरे द्वारा की गई। अपना कल्पित साधन हो या दूसरेका कल्पित साधन—यह भी अन्तर्मुख करता है। साधन तो वह है ही। चित्तकी शुद्धि उससे होती ही है। अवश्य ही उसमे कुछ विलम्ब होता है। उसमें चित्त अटकता अटकता सा बढ़ता है और लक्ष्यके पास पहुँच कर एक धक्का लगता है—खूब गहरा धक्का। क्योंकि इतने दिनोंकी कल्पना सत्यके सम्मुख ध्वस्त हो जाती है। सत्य तो बदलेगा नहीं, जीवका नित्य जगतमें रूप है, वह तो ज्यों का त्यों रहेगा, सम्बन्ध तो वह रहेगा जो वहाँ सचमुच है। उसकी कल्पना नष्ट हो जाती है।

सच्ची दीक्षा—पुराणोंमें उसके पर्याप्त वर्णन हैं। एक गुरु एकको एक साधन बताता था, दूसरेको दूसरा, तीसरेको तीसरा। साधकका अधिकार, उसका वास्तविक रूप उसके सम्मुख होता था। साधक इस प्रकार जब नामकी प्राप्ति करता था, वह उसके अन्तर्जगतके सहज आकर्षणकी झंकृति होती थी। अल्प प्रयाससे ही उसमें रुचि हो जाती थी और अपने सहज स्वाभाविक मार्गसे वह बढ़ता चला जाता था।

आज गुरु नहीं हैं, लेकिन आज शिष्य भी नहीं हैं। आज तो दोनों ओर व्यापार है। शिष्य हों तो गुरु अलभ्य कैसे रह सकते हैं। सर्वेश्वरके विधानमें कोई अधिकारी अपने अधिकारसे वंचित तो रखा नहीं जाता। लेकिन अमुक रूप श्रेष्ठ है, अमुक साधन श्रेष्ठ है, अमुक भाव या सम्बन्ध श्रेष्ठ है—नाना प्रकारके श्रेष्ठ-निकृष्ट भावोंका

बन्धन पहिलेसे साधकके मस्तिष्कमें होता है। जो कुछ कहा जायगा—उसे ले लेनेको उन्मुक्त हृदय कहाँ है? पूर्ण समर्पण—केवल जिह्वाका नहीं, बाहर और भीतरका पूरा समर्पण—बिना कहीं कुछ अपना रखे, अपने आपको दे देना—जबतक ऐसा समर्पण न हो, कोई किसीके अन्तर्जगतके अधिकारको पढ़ भी कैसे सकता है। योगिराज श्री अरविन्दने यही संपूर्ण समर्पणका ही तो आवाहन किया था। नामकी प्राप्ति—वह आज हो या दस सहस्र वर्ष पीछे वह होगी सम्पूर्ण समर्पण से।

सम्पूर्ण समर्पण किया जाता है। जो कर पाते हैं, वे महाभाग हैं। आज यह दुरुह है। तब उपाय यह है कि एक नाममें निष्ठा कर लिया जाय। मेरा आग्रह नहीं कि आप स्वयं यह कल्पना करें या दूसरेकी कल्पना प्राप्त करें। उसमें लगे रहिये। अन्तर्मुखता बढ़ेगी, हृदयशुद्ध होगा, अनन्त जीवनमें देर जैसी कोई वस्तु नहीं। अन्ततः सम्पूर्ण समर्पण होगा उस परमगुरुके प्रति और तब स्वतः नामकी प्राप्ति होगी। नाम तो नामीका स्वरूप है। नामकी वास्तविक प्राप्ति भगवत्प्राप्तिसे भिन्न कहां है।

धर्म।

(लेखक श्रीशम्भुनाथजी चतुर्वेदी)

धर्मेणैव जगत् सुरक्षितमिदं धर्मो धराधारकः।
धर्माद्वस्तु न किंचदस्ति भुवने धर्माय तस्मै नमः॥

धर्मसे यह जगत सुरक्षित है। धर्म ही इस भू का आधार है। धर्म जैसी वस्तु त्रिभुवनमें कहीं भी नहीं है। ऐसे धर्मको नमस्कार है।

"धर्म" शब्दसे कौन परिचित नहीं। समस्त भूमंडलमें धर्म किसी न किसी नाम रूपसे व्याप्त है। भारत ऐसे धर्मप्राण देशमें, जहां जन्मसे मृत्यु पर्यन्त श्वासप्रश्वासमें धर्म ही की भावना प्रतिध्वनित होती रहती है और दृढ़ धारणा है कि मृत्युके अनन्तर नाम रूप तो यहीं रह जाता है और केवल धर्म ही साथ जाता है, ऐसा कौन हो सकता है जो धर्मसे अपरिचित हो। वास्तवमें बात है भी यही परन्तु यदि हमारे सम्मुख यह प्रश्न आ जाय कि धर्म क्या है तो उसकी व्याख्या कर देना सहज न होगा। पुत्रका माता पिताके प्रति, भाई बहिनके प्रति, पति पत्नीका परस्पर एक दूसरेके प्रति, मित्रका मित्रके प्रति जो कर्तव्य है वह भी धर्म कहलाता है। नित्य नैमित्तिक कर्म, षोडश संस्कार आदि भी धार्मिक कृत्य ही है। न्याय विभागमें न्यायाधीश साक्षात् धर्ममूर्ति ही समझा जाता है। जीवनयापन हेतु धनोपार्जनमें धर्मको ही प्रधान स्थान हैं, सन्ततिके लिये कामोपभोगमें भी धर्मकी भावना प्रधान है और मोक्ष सिद्धिके लिये भी धर्म अनिवार्य है। प्रजापालनके लिये जो कानून बनाये जाते हैं उनका आधार भी धर्म ही है। अतः धर्मकी व्याख्या विभिन्न मतानुसार पृथक पृथक की गई है। ।१। चोदनालक्षणऽर्थो धर्मः। २। यतोऽभ्युदय, निश्रेयस सिद्धिः स धर्मः ।३। धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः। यत्स्याद्धारणसंयुक्त स धर्म इति निश्चयः॥

धर्म निर्णयके लिये यक्षने महाराज युधिष्ठिरसे प्रश्न किया था। उसका उत्तर उन्होंने जो दिया वह यह है।

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः
नैको ऋषिर्यस्य वचः प्रमाणम्।

धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पंथा ॥

महाभारत वन० ३१२ । ११५

यदि तर्कको देखें तो वह चंचल है, श्रुति यानो वेदाज्ञा भी भिन्न २ हैं, यदि स्मृति शास्त्रको देखें तो ऐसा एक भी ऋषि नहीं जिसका वचन अन्य ऋषियोंकी अपेक्षा अधिक प्रमाणभूत समझा जाय। इस व्यावहारिक धर्मका मूलतत्व देखा जाय तो वह भी अन्धकारमें छिपा है अर्थात् वह साधारण मनुष्योंकी समझमें नहीं आ सकता। इसलिये महाजन जिस मार्गसे गये हों वही धर्मका मार्ग है।

धर्मकी व्याख्या यदि एक शब्दमें हो सकती है तो वह है "कर्तव्य" वर्णाश्रमानुसार विहित कर्तव्यका पालन और लौकिक व्यवहारमें भी कर्तव्य पालन करते समय इस बातका ध्यान रखना कि किसीको भी उससे हानि अथवा यातना न हो वही धर्म है धर्मका सार सर्वस्व यही है कि जो कार्य अपने प्रतिकूल हों उनका दूसरोंके प्रति भी आचरण न करे।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

विष्णुधर्म० ३।२५५।४४

कर्तव्याकर्तव्यका निर्णय करनेके लिये शास्त्रोंमें कुछ सदाचारका उल्लेख है। यह "सदाचार" ही सनातनधर्मका मूलाधार है।

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः॥

वि० स० १३७

सब शास्त्रोंमें सबसे पहले आचार ही की कल्पना होती है, आचारसे ही धर्म होता है और धर्मके प्रभु श्री अच्युत ही हैं। इस सम्बन्धमें पुराणोंके आधारपर एक कथा इस प्रकार है। ब्रह्माजीके दस मानसिक पुत्रोंके अतिरिक्त दायें स्तनसे धर्मदेव उत्पन्न हुये और पृष्ठ भागसे अधर्म। धर्मका विवाह दक्ष प्रजापतिकी १३ कन्याओंके साथ हुआ जिनके नाम और सन्तति इस प्रकार है।

१	२	३	४	५	६	७
श्रद्धा	मैत्री	दया	शान्ति	तुष्टि	पुष्टि	क्रिया
८	९	१०	११	१२		१३
उन्नति	बुद्धि	मेधा	तितिक्षा	ह्री		मूर्ति
शुभ	प्रसाद	अभय	सुख	मोद	अहंकार	योग
दर्प	अर्थ	स्मृति	क्षेम	प्रश्रय [विनय]		नर नारायण

अधर्मका विवाह मृषा [झूठा] से हुआ उनकी सन्तति इस प्रकार है।



श्रीमद्भगवद्गीताके १३ वें अध्यायमें श्लोक ७ से ११ तक ज्ञानके नामसे तथा १६ वें अध्यायमें श्लोक १ से ३ तक दैवी सम्पदाके नामसे जो लक्षण कहे हैं उन्हें शास्त्रकारोंने सामान्य धर्म ही माना है। मनुष्यमात्रका इनमें अधिकार है। श्री कागभुशुंडि गरुड़ सम्वादमें मानसमें भी वर्णन है।

अघ कि पिसुनता सम कछु आना।
धर्म कि दया सरिस हरिजाना।

परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा।
पर निन्दा सम अघ न गरीसा।
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।
बिनु महि गंध कि पावइ कोई।

उत्तर काण्ड

मानवधर्मके अतिरिक्त गीतामें प्रथम अध्यायसे अष्टादश अध्याय पर्यन्त अन्य विविध धर्मोंका भी उल्लेख है जैसे कुल धर्म, जाति धर्म, वर्णधर्म मुमुक्षु धर्म।

मनुष्यका प्रथम कर्तव्य [धर्म] अपने पूर्वजोंकी कीर्तिको अक्षुण्ण बनाए रखना है। श्रेष्ठ विद्या प्राप्त कर समाजमें मान प्रतिष्ठा प्राप्त करना। मृतात्माओंकी शान्ति हेतु गया श्राद्ध आदि कर उनके ऋणसे उऋण होना। पूर्वजोंकी कीर्तिमें कलंक न लगने देना यथा सम्भव चार चाँद लगानेका ही प्रयत्न करना। "स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नितिम्"। वर्णव्यवस्था सब देशोंमें किसी न किसी रूपमें पाई जाती है। देशकी रक्षा एवं उन्नतिके लिये आवश्यक है उसकी संस्कृतिका प्रसार और विदेशी आक्रमणकारियोंसे रक्षा और अन्न, वस्त्र आदिकी व्यवस्था।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥

गी० ४।१३

श्रीकृष्ण भगवान्ने वर्णव्यवस्थाका वर्णन करते हुए गुण कर्मका सम्बन्ध बताया है। तीन गुणके परिणामसे चार वर्णकी उत्पत्ति स्वाभाविक है। जीव प्रथमतः तमोगुण प्रधान शूद्र वर्णमें उत्पन्न होता है तदनन्तर क्रमोन्नतिको पाकर रजस्तमः प्रधान वैश्य वर्ण, रजः सत्वप्रधान क्षत्रिय-वर्ण और अन्तमें सत्वगुण प्रधान ब्राह्मण वर्णमें उसकी उत्पत्ति होती है। वेद शास्त्रोंका पठन पाठन ब्राह्मणका कर्म है, गोपालन तथा कृषि और वाणिज्य वैश्यका धर्म है। संकटसे अथवा देशकी व्यवस्था ठीक रखनेका काम क्षत्रिय वर्गका है और इन सबको अपने २ कार्यमें सहायता देनेका काम चतुर्थ वर्णका है। अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे इसे श्रम विभाजन भी कह सकते हैं। कलाकी निपुणता ही पैतृक निधिस्वरूप परम्परा प्राप्त होती जाती है।

किसी भी जातिके स्वरूपका ज्ञान उसकी संस्कृति तथा धर्मसे होता है। अतः प्रत्येक जातिका पहला कर्तव्य अपनी संस्कृति तथा धर्मकी छाप अन्य लोगोंपर डालना होता है। उदाहरणके लिये अपने ही देशके इतिहासको लें। एकके पश्चात् दूसरी कितनी ही जातियां यहां आईं। कालान्तरसे बहुत सी लुप्त प्रायः हो गईं परन्तु जो शेष रह गईं उन सबके आचार, विचार, वेश भूषा आज भी दिखाई पड़ते हैं। उत्तर भारतमें यवन शासनकी स्मृति स्वरूप फारसी, अरबी, उर्दू भाषा और शेरवानी पायजामा अब भी अधिकांशमें प्रचलित हैं। अंग्रेज जातिने भी ईसाई धर्म प्रचारमें सहायता ही दी। अंग्रेजी भाषा और वेश भूषाकी छाप तो इतनी गहरी बैठी है कि आपसमें वार्तालाप और पत्रव्यवहारमें आंग्लभाषाका ही प्रयोग होता है और धोती कुर्ताका स्थान पतलून कमीज आदिने ले ही लिया है। भारतको स्वतन्त्र हुए छ वर्ष हो गए। राष्ट्रीय भाषा संस्कृत और वेश भूषाको पुनः उचित स्थान दिलानेका प्रयत्न वर्तमान राष्ट्रीय सरकारको करना चाहिये। कविके शब्दोंमें—

जातीय जीवनकी प्रभा आई कभी जिसमें नहीं।
वह व्यर्थ ही जनमा जगाया जातिको जिसने नहीं॥

मानव जीवनका चर्म उद्देश्य अपनी आध्यात्मिक उन्नति करना है। यह शरीर सुरदुर्लभ है। इसको पाकर भी जिसने जनम मरणके चक्करसे छूटनेका प्रयत्न नहीं किया उसे आत्मघाती कहा गया है।

नर तनु भव वारिधि कहुँ बेरो।
सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।

करनधार सद्गुरु दृढ़ नावा।
दुर्लभ साज सुलभ कर पावा।
दो०—जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्महन गति जाइ॥

रामo मानस उत्तर० ४४

आत्माका उद्धार आत्मासे ही होता है। हम स्वयं अच्छी तरह जानते हैं कि किसके साथ झूठ बोल रहे हैं अथवा धोखा दे रहे हैं। जिस प्रकार बाजारमें दुकानें ग्राहकोंको लुभानेके लिये सजाई जाती हैं उसी प्रकारसे अनेक प्रलोभन इस संसारमें पग पग पर हैं। अर्थशास्त्रका सिद्धान्त है कि जितनी ही अधिक इच्छाएं होंगी उतनी हीं अधिक उन्नति देश अथवा समाज कर सकेगा परन्तु अध्यात्मिक उन्नतिके लिये आवश्यकता इस बात की है कि इच्छाएं जितनी ही कम हों। यह मनके ऊपर है। अंग्रेजीकी कहावत है "Heavy lies the head that wears a Crown" जिस सिरपर ताज होता है वह परेशान रहता है। भारतीय आदर्श सदा रहा है "Plain living and high thinking" सादा लिबास और उच्च विचार। जिसको तन ढाकनेको केवल एक कौपीनकी आवश्यकता हो उसे सांसारिक प्रलोभनोंसे क्या प्रयोजन ? परन्तु यह व्रत एक दिनमें ले लेनेका तो है नहीं। इसके लिये सतत अभ्यास और सत्संगकी आवश्यकता है। "क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः" गुरु हो और उसकी कृपा हो तब उससे ज्ञान प्राप्त किया जाय। स्वाध्याय, इन्द्रिय संयमादि द्वारा इस अभ्यासको पूरा करनेकी चेष्टा करे। यदि एक जन्ममें साधना पूरी न हो सकी तो अगले जन्ममें ऐसे साधन संयोगवश स्वतः उपलब्ध हो जाते हैं जिससे साधनाका तार टूटने नहीं पाता। एक शीघ्रलिपि लेखकके लिये यह कह देना कदापि पर्याप्त नहीं है कि मैं शौर्टहैंड जानता हूँ। उसे स्पीडकी आवश्यकता हर समय रहती है। बीमार हो जानेपर अथवा अन्य कारणसे छुट्टी ले लेने पर उसकी स्पीड कम तो हो सकती है पर यह सम्भव नहीं कि वह कला ही भूल जाय। थोड़ा सा अभ्यास करनेपर तुरन्त ही स्पीड पुनः प्राप्त कर लेता है। यही स्थिति अध्यात्म मार्गमें अग्रसर साधककी समझना चाहिये। विषयोंसे उपरमित होते ही साम्यभाव हो जाता है और अविलम्ब ब्रह्मभावकी प्राप्ति अर्थात् मोक्ष लाभ अनायास ही हो जाता है।

महाभारत युद्धके उपरान्त शरशैयापर पितामह भीष्मसे धर्मराज युधिष्ठिरने ऐसा ही एक प्रश्न किया था।

को धर्मः सर्व धर्माणां भवतः परमो मतः।
किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसार-बन्धनात्॥

वि० स० ३

पितामहने उत्तर दिया कि समस्त जगतके प्रभु अनन्त भगवान पुरुषोत्तम हैं वे सदा हृदय कमलमें वास करते हैं। भक्तिपूर्वक सदा उनका ही पूजन करनेसे समस्त दुःखका नाश हो जाता है। सब पापोंसे मुक्त होकर सनातन ब्रह्ममें लीन हो जाता है। अतः यही धर्म मेरी सम्मतिमें सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है। भगवानका आश्वासन भी है "मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते"।

धर्मो रक्षति रक्षितः



अपने आपको न भूलो नहीं तो पछताना पड़ेगा

(श्रासर्वतन्त्र स्वतन्त्र दण्डी संन्यासी स्वामी विष्णुदेवानन्दजी सरस्वती)

इस संसारमें रहते हुए भयंकर काल कठिन महाकाल कलिकालके गालसे छुटकारा पानेके लिये धर्मशास्त्रोंका सहारालेकर वर्णाश्रमधर्मोचित कर्तव्योंका पालन करनेसे आप सभी लोग अपने आपको भलीभाँति जान पाओगे। यदि धर्मशास्त्रानुसार स्वधर्मानुष्ठानका पालन नहीं करोगे तो स्वतः अपने आपको भूल जाना ही इस लोक और परलोकके सुखोंसे वंचित होकर भयंकर गर्तमें गिरना है।

आप सभी महानुभाव वेदोपनिषद् और स्मृतियोंका सहारा लेगें तो निश्चित ही अपने आपको परमोचित समझ कर अखण्डानन्द, अद्वितीय, निराकार, निर्विकार परमब्रह्म परमात्माका चिन्तन, भजन, पूजन और दर्शन करेंगे।

अपने आपको ही समझनेके लिये उपनिषद् पढ़नेवाले सारसर्वस्व नित्यानन्द परमानन्द शुद्ध बुद्ध परमात्मासे अहर्निश प्रार्थना करते हैं—

'माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकारोदनिराकरणमस्तु' अर्थात् प्रभु दीर्घकालसे हमारा निराकरण करते आये हैं, और प्रभुका निराकरण हम करते आये। हम सभीका निराकरण तभीतक न हो पायेगा, जब तक भगवच्चरणोंमें प्रेम न होगा। जिस दिनसे श्रीमन्नारायणके चरणोंमें तन, मन, धन सहित प्रेम सोत्साहेन प्रारम्भ होगा, उसी दिनसे भगवान् उत्तरोत्तर प्रसन्न होते जायेंगे। भगवान्की प्रसन्नतामें अपने भी प्रसन्न होकर शनैः शनैः समझ जायेंगे कि हम अपनेको क्या समझ लें कि न भूलें, वास्तवमें ठीक प्रकारसे समझ कर सब लोग अपने अपने आपको कदापि नहीं भूल सकते। अपनेको समझ लेना बुद्धिमत्ता है।

आपलोगोंका परम कर्तव्य होना चाहिये कि अनाचार, दुष्टाचार, भ्रष्टाचार दुराचार इत्यादिको करनेवालोंका साथ न करें, नहीं तो अपने भी उनके साथी हो जाओगे। सदाचार, सद्विचार, सद्व्यवहार और शुद्धाचार करनेवालोंका जहाँतक हो सके साथ करना चाहिये। इसीसे आप सभी लोग उनके साथी बनकर परलोकगामी बनोगे। यदि ऐसा नहीं करोगे तो कुसङ्गियोंके सहवासमें रहकर दुःखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए नरकगामी हो जाओगे। पुनः जन्म लेकर बारम्बार भवसागरमें आकर दुर्दशायें भोगनी पड़ेंगीं।

जहाँ तक हो सके कलुषित भावनाओंका त्याग करके मनको परमात्मामें लगाकर तन, धनका भी सदुपयोग समुचित रूपसे, करना, परमोचित परम धर्म करना अपना परम कर्तव्य है। साथ ही साथ सकाम कर्म न करके निष्काम कर्म करो तभी जाकर सत्स्वधर्मानुष्ठान, सत्कर्म, सद्व्यवहार, सत्प्रयत्न, सच्चरित्र ठीक प्रकारसे चलेगा। इसीके द्वारा बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि, राजा-महाराजा इत्यादि इस लोकमें रहकर सदेह स्वर्गको चले गये। उदाहरणमें राजा हरिश्चन्द्र और धर्मराज युधिष्ठिर इत्यादि राजा महाराजाओंमें इन सबकी, गणना है ये लोग सदेह ही मुक्तिको पा गये हैं।

इसी तरह आप सभी महानुभाव ठीक इन्हींका अनुकरण करके परमानन्दानुभव का सामना करते हुए प्रतिभाशाली और अवनति हीन होकर उन्नतिशील बनो। उन्नति शील तभी बन पाओगे जब समुचित प्रयत्नशील होकर आश्रम धर्मका परमोचित ढंगसे पालन करोगे। इन्हीं सबका सहारा लेकर आप अपनेको समझकर नहीं भूलेंगे।

स्वामी श्रीशङ्कराचार्यकृत श्रीविष्णु-स्वरूप-वर्णन

(अनुवादक—पं० श्रीगदाधरजी शर्मा, व्याकरणाचार्य)

(गताङ्क से आगे)

विश्वत्राणैकदीक्षास्तनुभुणगणक्षत्रनिर्माणदक्षाः कर्तारो दुर्निरूपाः स्फुटगुरुयशसां कर्मणामद्भुतानाम् । शार्ङ्गं बाणं कृपाणं फलकमरिगदे पद्मशङ्खौ सहस्रं बिभ्राणाः शस्त्रजालं मम ददतु हरेर्बाहवो मोहहानिम् ॥ ३३ ॥

जगतकी रक्षा ही जिनका व्रत है, क्षत्रियोंको उत्पन्न करनेमें जो कुशल हैं, जिनका रूप अवर्णनीय है, जो प्रसिद्ध एवं प्रभूत यशवाले अद्भुत कर्मका निर्माण करनेवाली हैं तथा शंख, चक्र, गदा, पद्म, धनुष, बाण, तलवार एवं भाला प्रभृति हजारों आयुधोंको जो धारण कर रही हैं, भगवान् विष्णुकी वे भुजाएँ मेरा अज्ञान दूर करें ॥ ३३ ॥

कण्ठाकल्पोद्गतैर्यः कनकमयलसत्कुण्डलोस्रैरुदारैरुद्योतैः कौस्तुभस्याप्युरुभिरुपचितश्चित्रवर्णो विभाति। कण्ठाश्लेषे रमायाः करवलयपदैर्मुद्रिते भद्ररूपे वैकुण्ठीयेऽत्र कण्ठे वसतु मम मतिः कुण्ठभावं विहाय ॥ ३४ ॥

गलेके हारसे निकले हुए उत्कृष्ट तेजों, चमचमाते हुए सुवर्णमय कुण्डलकी किरणों तथा कौस्तुभमणिके प्रकाशोंसे सम्पन्न होनेके कारण जिसका वर्ण अद्भुत प्रतीत हो रहा है और लक्ष्मीजीके स्पर्श करते समय उनकी भुजाके बलयसे जिसमें रेखायें पड़ गयी हैं, भगवानके उस कमनीय कण्ठमें मेरी विवेकवती बुद्धि वास करे ॥ ३४ ॥

पद्मानन्दप्रदाता परिलसदरुणश्रीपरीताग्रभागः काले काले च कम्बुप्रवरशशधरापूरणे यः प्रवीणः । वक्त्राकाशान्तरस्थस्तिरयति नितरां दन्ततारौघशोभां श्रीभर्तुर्दन्तवासोद्युमणिरघतमोनाशनायास्त्वसौ नः ॥ ३५॥

जो लक्ष्मीजीको अत्यन्त आनन्द देनेवाला है; अग्रभागकी लालिमासे जिसकी अनुपम शोभा हो रही है, प्रतिक्षण चन्द्रमय श्रेष्ठ शंखको वायुसे भर देनेमें जो महान् कुशल है तथा आकाशरूपी मुखपर विराजमान होकर तारारूपी दाँतोंकी शोभा छिपानेमें जो सूर्यकी तुलना कर रहा है। ऐसा लक्ष्मीपति भगवानका वह ओठ हमारे पापरूपी अन्धकारका नाश करे ॥ ३५ ॥

नित्यं स्नेहातिरेकान्निजकमितुरलं विप्रयोगाक्षमाया वक्त्रेन्दोरन्तरालेकृतवसतिरिवाभाति नक्षत्रराजिः । लक्ष्मीकान्तस्य कान्ताकृतिरतिविलसन्मुग्धमुक्ताफलश्रीदन्ताली सन्ततं सा नतिनुतिनिरतान्रक्षतादक्षता नः ॥ ३६ ॥

जो अत्यन्त प्रेमके कारण वियोग सहनेमें असमर्थ होकर अपने स्थानका अतिक्रमण न करके चन्द्रमय मुखके मध्यमें विराजमान हो नक्षत्रमालाकी भांति शोभा पाती है, जिसका आकार अत्यन्त मनोहर है और स्वच्छ मोतियोंकी शोभासे जिसका प्रकाश फैल रहा है, वह भगवान् विष्णुकी सर्वाङ्गपूर्ण दन्तावली नमन-स्तवनमें तत्पर रहनेवाले हमें सदा सुरक्षित रक्खे ॥ ३६ ॥

ब्रह्मन् ब्रह्मण्यजिह्मां मतिमपि कुरुषे देव सम्भावये त्वां शम्भो शक्र त्रिलोकीमवसि किममरैर्नारदाद्याः सुखं वः । इत्थं सेवावनम्रं सुरमुनिनिकरं वीक्ष्य विष्णोः प्रसन्नस्यास्येन्दोरास्रवन्ती वरवचनसुधा ह्लादयेन्मानसं नः ॥ ३७ ॥

ब्रह्माजी ! आप ब्रह्मचिन्तनमें निर्मल बुद्धिका उपयोग

करते हैं न। महाभाग शंकरजी! मैं आपका सम्मान करता हूँ। इन्द्र! आप देवताओं द्वारा त्रिलोकीकी रक्षा करते हैं न। नारदादि ऋषियों! आप सुखसे तो हैं—नम्रतापूर्वक सेवामें मस्तक झुकाये हुए देवताओं और मुनियोंके समुदायको देखकर भगवान् विष्णुके चन्द्रसदृश प्रसन्न मुखसे निकलनेवाली ऐसी उत्तम वचनमयी सुधा हमारे मनको आह्लादित करे ॥ ३७ ॥

कर्णस्थस्वर्णकम्रोज्ज्वलमकरमहाकुण्डलप्रोतदीप्य
न्माणिक्यश्रीप्रतानैः परिमिलितमलिश्यामलं कोमलं यत्। प्रोद्यत्सूर्यांशुराजन्मरकतमुकुराकारचोरं मुरारे-र्गाढामागामिनीं नो गमयतु विपदं गण्डयोर्मण्डलं तत् ॥ ३८ ॥

कानमें पहने हुए सुवर्णमयसुन्दर मकराकार कुण्डल-सम्बन्धी प्रकाशमान मणियोंकी प्रभासे प्रभावित हो जो भ्रमरकी भांति श्यामल प्रतीत हो रहा है तथा प्रातःकालीन सूर्यकी किरणोंके समान देदीप्यमान मरकत मणिके दर्पणको तुच्छ करना जिसका स्वभाव बन गया है, भगवान्‌का वह मनोहर गण्डस्थल हमारी आनेवाली घोर विपत्तिको दूर करे ॥३८॥

वक्त्राम्भोजे लसन्तं मुहुरधरमणिं पक्वविम्बा-भिरामं दृष्ट्वा दष्टुं शुकस्य स्फुटमवतरतस्तुण्डदण्डायते नः। घोणः शोणीकृतात्मा श्रवणयुगलसत्कुण्डलोस्रै-र्मुरारेः प्राणाख्यस्यानिलस्य प्रसरणसरणिः प्राणदानाय नः स्यात् ॥ ३९ ॥

भगवान्‌के मुखकमलका अधरोष्ठ पके हुए बिम्बा फलके समान सुन्दर जान पड़ता है। उसे देखकर बारंबार ठोर मारनेके विचारसे आनेवाले सुग्गेके चोंचकी भांति जो हमें स्पष्ट प्रतीत हो रही है, लाल, जिसकी आकृति है, कानके दोनों कुण्डल जिसे अत्यन्त सुशोभित कर रहे हैं तथा प्राण वायुके गमनागमनका जो प्रशस्त मार्ग है, वह भगवान् विष्णुकी नासिका हमें प्राणदान दे ॥ ३९ ॥

दिक्पालौ वेदयन्तौ जगति मुहुरिमौ संचरन्तौ रवीन्दू त्रैलोक्यालोकदीपावभिदधति ययोरेव रूपं मुनीन्द्राः। अस्मानब्जप्रभे ते प्रचुरतरकृपानिर्भरं प्रेक्षमाणे पातामाताम्रशुक्लासितरुचिरुचिरे पद्मनेत्रस्य नेत्रे ॥ ४० ॥

दिशा और कालको जाननेवाले, जगत्‌में बार-बार विचरण करनेवाले तथा त्रिलोकीके प्रदीपस्वरूप इन सूर्य एवं चन्द्रमाको मुनिगण जिनके स्वरूप बतलाते हैं, कमलके समान जिनकी कान्ति है, अतिशय कृपापूर्ण जिनका दृष्टिपात है तथा कुछ लाल, सफेद एवं काली प्रभासे जो विशेष सुन्दर हो गये हैं, भगवान्‌के वे दोनों मनोहर नेत्र हमारी रक्षा करें ॥ ४० ॥

लक्ष्माकारालकालिस्फुरदलिकशशाङ्कार्धसन्दर्शमी-लन्नेत्राम्भोजप्रबोधोत्सुकनिभृततरालीनभृंगच्छदाभे। लक्ष्मीनाथस्य लक्षीकृतविबुधगणापाङ्गबाणासनार्धच्छा-ये नो भूतिभूरिप्रसवकुशलशते भ्रूलते पालयेताम् ४१

केशपंक्तिरूपी कलंकसे सुशोभित ललाटरूपी अर्द्ध-चन्द्रके दर्शनसे संकुचित होते हुए कमलोंके विकासके लिये उत्सुक एवं मौनभावसे सटकर बैठे हुए भ्रमरोंकी पंक्ति-जैसी जिनकी छटा है तथा देवताओंको लक्ष्य करके छूटे हुए कटाक्षरूपी बाणके सन्धानके लिये जो दो अर्द्धधनुषकी छाया धारणकर रही हैं एवं सैकड़ों प्रचुर सम्पत्ति प्रदान करना जिनका स्वभाव है, वे लक्ष्मीकान्त भगवान्‌की दोनों भ्रूलताएँ हमारी रक्षा करें ॥४१॥

पातात्पातालपातात्पतगपतिगतेर्भ्रूयुगं भुग्नमध्यं येनेषच्चालितेन स्वपदनियमिताः सासुरा देवसंघाः। नृत्यल्लालाटरंगे रजनिकरतनोरर्धखंडावदाते कालव्यालद्वयं वा विलसति समयाबालिकामातरं नः॥४२॥

जिनके जरा-से हिलनेमात्रसे देवताओं और दानवोंके समुदाय अपने-अपने स्थानपर नियमपूर्वक कर्म करने लगे

जाते हैं, जो चन्द्रमाके आधे भागके समान उज्ज्वल ललाट-रूपी रंगभूमिमें नृत्य करनेवाले दो काले नागके सदृश शोभा पा रहे हैं तथा जिनका मध्यभाग कुछ टेढ़ा है। केशपंक्तिके समीप रहनेवाली गरुडवाहन भगवान्की वे दोनों भौंहें हमें नरकमें गिरनेसे बचावें ॥४२॥

रूक्षस्मारेक्षुचापच्युतशरनिकरक्षीणलक्ष्मीकटाक्ष-
प्रोत्फुल्लत्पद्ममालाविलसितमहितस्फाटिकेशानलिंगम् ।
भूयाद्भूयो विभूत्यै मम भुवनपतेर्भ्रूलताद्वंद्वमध्यादुत्थं
तत्पुंड्रमूर्ध्वं जनिमरणतमः खंडनं मंडनं च ॥ ४३ ॥

रुखे कामदेवके इक्षुमयी धनुषद्वारा छूटे हुए बाणोंसे जो कृशाङ्गी लक्ष्मी हैं, उनकी जो कटाक्षरूपी विकसित कमल माला है, उससे सुशोभित एवं सुपूजित होकर स्फटिक निर्मित शिवलिङ्गके समान जो जान पड़ता है, जन्म मरण सम्बन्धी अन्धकारका नाश करना जिसका स्वभाव ही है तथा दोनों भौंहोंके मध्यसे जो उत्पन्न हुआ है, वह भुवनपति भगवान् विष्णुका भूषण-रूप ऊर्ध्व त्रिपुण्ड्र मेरा अनेकशः कल्याण करे ॥४३॥

पीठीभूतालकान्ते कृतमुकुटमहादेवलिंगप्रतिष्ठे
ललाटे नाट्यरंगे विकटतरतटे कैटभारेश्चिराय ।
प्रोद्घाट्यैवात्मतंद्रीप्रकटपटकुटीं प्रस्फुरन्तीं स्फुटांगं
पट्वीयं भावनाख्यां चटुलमतिनटी नाटिकां नाटयेन्नः ॥ ४४ ॥

केशान्त भाग ही जिसका पीठ है, तथा मुकुटरूपी शिव-लिङ्गकी जिसपर प्रतिष्ठा हुई है एवं जिसका पार्श्वभाग अत्यन्त कठिन है, भगवान्की उस ललाटरूपी नाट्यशालामें हमारी यह विवेकवती चञ्चल बुद्धि आत्मतन्द्रामयी पर्देको हटाकर स्पष्टरूपसे भावना नामक नाटकका निरन्तर अभिनय करे ॥ ४४ ॥

मालालीवालिधाम्नः कुवलयकलिता श्रीपतेः कुंत-
लाली कालिन्द्यारुह्य मूर्ध्नो गलति हरशिरः स्वर्धुनीस्प-
र्धया नु । राहुर्वा याति वक्त्रं सकलशशिकलाभ्रान्ति-
लोलान्तरात्मा लोकैरालोच्यते या प्रदिशतु सकलैः
साखिलं मंगलं नः ॥ ४५ ॥

लक्ष्मीकान्त भगवान्की वह केशपंक्ति हमें अखिल आनन्द प्रदान करे, जो भ्रमरोंसे युक्त कृष्ण कमलकी मालाके समान जान पड़ती है तथा जिसके विषयमें सभी यों आलोचना करते हैं कि हो न हो शंकरके मस्तकपर रहनेवाली गंगाकी स्पर्धा करके यह यमुना विष्णुके मस्तकपर चढ़कर गिर रही है अथवा कलापरिपूर्ण चन्द्रमाके भ्रमसे लोलुप राहु भगवान्के मुखकी ओर जा रहा है ॥ ४५ ॥

सुप्ताकाराः प्रसुप्ते भगवति विबुधैरप्यदृष्टस्वरूपा
व्याप्तव्योमांतरालास्तरलरुचिजलारंजिताः स्पष्टभासः ।
देहच्छायोद्गमाभा रिपुवपुरगुरुप्लोषरोषाग्निधूम्याः केशाः
केशिद्विषो नो विदधतु विपुलक्लेशपाशप्रणाशम् ॥४६॥

भगवान्के शयनकालमें जिनका आकार शान्त रहता है, देवगण भी जिनके स्वरूपका साक्षात्कार करनेमें असमर्थ हैं, जिनसे आकाशका मध्यभाग व्याप्त है, झिलमिलाती हुई कान्तिमयी जलसे जो रञ्जित हैं, जिनकी प्रभा स्पष्ट चमक रही है, जो भगवान्के शरीरकी श्यामलकान्तिके उद्गम—जैसे जान पड़ते हैं तथा शत्रुरूपी अगुरुका क्रोध-मयी अग्निमें हवन करनेसे जिनकी कान्ति धूम्रमयी बन गयी है, भगवान् विष्णुके वे केश महान् क्लेशमें जकड़ने-वाले हमारे फंदेको काट दें ॥ ४६ ॥

यत्र प्रत्युप्तरत्नप्रवरपरिलसद्भूरिरोचिः—प्रतान-
स्फूर्त्या मूर्तिर्मुरारेर्द्युमणिशतचितव्योमवद्दुर्निरीक्ष्या ।
कुर्वत्पारेपयोधि ज्वलदकृतमहाभास्वदौर्वाग्निशंकां
शश्वन्नः शर्म दिश्यात्कलिकलुषतमः पाटनं तत्किरी-
टम् ॥ ४७ ॥

जिसमें जकड़े हुए श्रेष्ठ एवं सुशोभित रत्नोंके अत्यन्त विस्तृत तेजकी चमचमानेवाली प्रतिभामें सैकड़ों सूर्यसे

व्याप्त आकाशकी भांति भगवान्‌के विग्रहकी स्पष्ट झांकी असम्भव हो रही है तथा जो समुद्रके उसपार देदीप्यमान प्राकृतिक बडवानलकी शंका उत्पन्न करनेमें संलग्न है एवं कलिके कराल पापको दूर करनेमें जिसकी विशेष रुचि रहती है, वह भगवान् विष्णुका किरीट हमें निरन्तर कल्याण प्रदान करे ॥ ४७ ॥

भ्रान्त्वा भ्रान्त्वा यदंतस्त्रिभुवनगुरुरप्य ब्दकोटीरनेका गन्तुं नान्तं समर्थो भ्रमर इव पुनर्नाभिनालीकनालात्। उन्मज्जन्नूर्जितश्रीस्त्रिभुवनमपरं निर्ममे तत्सदृक्षं देहांभोधिः स देयान्निरवधिरमृतं दैत्यविद्वेषिणो नः ॥ ४८ ॥

त्रिलोकीके गुरु ब्रह्माजी भी करोड़ों वर्षों तक बार बार जिसके भीतर भ्रमरकी भाँति भ्रमण करते रहे, किन्तु सीमा प्राप्त करनेमें सफलता न मिली, तब वे नाभिकमल द्वारा बाहर निकले और शक्तिशाली बनकर उन्होंने वैसे ही दूसरे त्रिभुवनका निर्माण किया, दैत्यारि भगवान्‌का ऐसा जो अपार समुद्ररूपी विग्रह है, वह हमें अमृत देनेवाला बने ॥ ४८ ॥

मत्स्यः कूर्मो वराहो नरहरिणपतिर्वामनो जामदग्न्यः काकुत्स्थः कंसघाती मनसिजविजयी यश्च कल्की भविष्यन्। विष्णोरंशावतारा भुवनहितकरा धर्मसंस्थापनार्थाः पायासुर्मां त एते गुरुतरकरुणाभारखिन्नाशया ये ॥ ४९ ॥

मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध और जो होनेवाला कल्की है, ये सभी भगवान् विष्णुके अंशावतार हैं। जगत्‌का कल्याण करना ही इनका काम है। धर्मको स्थापित करनेके लिये ये पधारे हैं। अत्यन्त करुणाके भारसे उनका हृदय सदा खिन्न रहता है। अतः ये मेरी रक्षा करें ॥ ४९ ॥

यस्माद्वाचो निवृत्ताः सममपि मनसा लक्षणामीक्षमाणाः स्वार्थालाभात्परार्थव्यपगमकथनश्लाघिनो वेदवादाः। नित्यानंदं स्वसंविन्निरवधिममृतं स्वान्तसंक्रांतबिंबच्छायापत्त्यापि नित्यं सुखयति यमिनो यत्तदव्यान्महो नः ॥ ५० ॥

मन सहित वाणी जहाँसे निवृत्त हो जाती अर्थात् जो मनसहित वाणीका अविषय है; वेदवाद स्वयं विवेचन करनेमें असफल होनेके कारण लक्षणाका आश्रय लेकर जिसके विषयमें परार्थव्यपगम अर्थात् 'नेति-नेति कहकर वर्णन करनेमें संलग्न हैं और जो अखण्ड आनन्द स्वरूप, स्वयं प्रकाश एवं अमृतमय है तथा अन्तःकरणमें अपने प्रतिबिम्बकी छाया मात्र पड़नेसे ही जो योगीको सदा सुखी बनाया करता है, भगवान् विष्णुका वह असीम तेज हमारी रक्षा करे ॥ ५० ॥

आ पादादा च शीर्ष्णो वपुरिदमनघं वैष्णवं यः स चित्ते धत्ते नित्यं निरस्ताखिलकलिकलुषे संततांतःप्रमोदः। जुह्वज्जिह्वाकृशानौ हरिचरितहविः स्तोत्रमंत्रानुपाठैस्तत्पादांभोरुहाभ्यां सततमपि नमस्कुर्महे निर्मलाभ्याम् ॥ ५१ ॥

चरणसे लेकर मस्तकतक भगवान् विष्णुका यह पावन विग्रह है। जो पुरुष आनन्दपूर्वक कलिसम्बन्धी सम्पूर्ण पापोंसे रहित अपने चित्तमें इस मूर्तिको स्थापित करता है तथा स्तोत्ररूपी इन मन्त्रोंका पाठ करके जिह्वारूपी आगमें इस विष्णुचरितरूपी हविका हवन करनेमें तत्पर है, उसके निर्मल चरणकमलोंको हम निरन्तर नमस्कार करते हैं ॥५१॥

चेतावनी

(श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

जिस प्रकार हम साधन करते आ रहे हैं, उससे काम चलना कठिन है; क्योंकि बहुत काल बीत गया, किन्तु श्रद्धा, विश्वास, उत्साह, प्रेम और आदरकी कमी होनेके कारण अभीतक विशेष उन्नति देखनेमें नहीं आयी। अतः कल्याणकामी पुरुषोंको उचित है कि अब कृपया साधन तेज होनेके लिये संसार, शरीर, और विषय भोगोंको क्षणभङ्गुर और नाशवान् समझकर विवेक-वैराग्ययुक्त चित्तसे उत्साहके साथ प्राणपर्यन्त चेष्टा करें तथा 'नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्मा सब जगह समभावसे व्यापक हैं'—इस प्रकार बुद्धिसे समझकर मनसे उनका निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर हर समय श्रद्धा-प्रेमपूर्वक स्मरण करते हुए श्वास या वाणीके द्वारा नामका जप करें।

भगवान्में विशुद्ध अनन्य प्रेम होनेके लिये सम्पूर्ण जीवोंको भगवान्का स्वरूप या सबमें भगवान्का निवास समझकर तथा चेष्टामात्रको भगवान्की लीला समझते हुए शरीर और संसारमें अहंता, ममता, आसक्ति और स्वार्थका त्यागकर तन, मन, धनसे प्रसन्नता और आदरपूर्वक सबकी सेवा करनेका अभ्यास करना चाहिये।

यथाधिकार सन्ध्या-गायत्री, जप-ध्यान, पूजा पाठ, स्तुति-प्रार्थना, नमस्कार आदि प्रातःकाल और सायंकाल नित्य-नियमपूर्वक अर्थ और भावको समझते हुए भगवत्प्रीत्यर्थ श्रद्धा भक्तिपूर्वक करने चाहिये।

रात्रिमें शयनके समय भगवान्के नाम, रूप, गुण, प्रभावका तत्त्व रहस्य समझते हुए उनकी शरण होकर गीता-रामायण आदिके आधारपर करुणा-भावसे स्तुति-प्रार्थना करते हुए सोना चाहिये।

एक विचित्र और सत्य घटना

लेखक बाबू पन्नालालजी "माधुरी दास"

सम्वत २००६ के श्रावण शुक्ला पूर्णिमाका शुभ-दिन था रजनीके अन्तिम प्रहरके सुखद ऊषाकालमें श्रीराधावल्लभजीकी मंगल आरतीके टकोराकी ध्वनिने सारे शहर वृन्दावनमें संदेश भेजकर निद्रा-आसीन नर नारियोंको सजग कर दिया। श्रद्धालु रसिक प्रेमीजन चारों ओरसे दर्शनार्थ उठ धाए। बातकी बातमें दर्शकोंकी अपार भीड़ मन्दिरमें हो गई। नर नारियोंके मुखसे निकली हुई "राधावल्लभ दर्शन दुर्लभ" की ध्वनिने आनन्दका एक अपार स्रोत बहा दिया। कहना नहीं होगा कि इन पंक्तियोंके तुच्छ लेखकको भी इस आनन्दका लाभ लेनेका सौभाग्य प्राप्त था। बड़े आनन्दसे मंगला आरती सम्पन्न हुई।

मन्दिरके दक्षिण-पूरबके कोनेमें स्थित कूपके

ऊँचे पनघटे पर खड़े होकर एक विरक्त संत मंगल भोग वितरण करने लगे। प्रायः सभीको यह लालसा रहती है कि सर्वप्रथम प्रसाद हमको मिले इसी लालसावश कमलगंधपर मुग्ध हुए उनमत्त भ्रमरकी भाँति भीड़ने साधूजी महाराजको चारों ओरसे घेर लिया और हाथ बढ़ाकर राधे राधे की रट लगा दी।

सहसा धमाकेके एक भारी शब्दने उपस्थित समूहको स्तब्ध कर दिया। किसीने पूछा क्या हुआ कोई बोला क्या गिरा इतनेमें पता चला कि कोई बेचारा प्रसादेच्छुक कुवांमें गिर पड़ा परोपकारी दयालु सोधुओंने तुरन्त कुएँमें रस्सी लटकाई और लगे जोरसे कहने "घबड़ाना नहीं रस्सी पकड़ लो हम आते है"।

वर्षाऋतुथी कूपमें पर्याप्त जल था साथ ही कूप इतना संकीर्ण एवं छोटा था कि जिसमें गिरकर सकुशल निकलना कल्पनातीत था। सबके हृदय धक २ कर रहे थे सभीके मुँहसे यही निकल रहा था "प्यारे श्रीराधावल्लभ लाल रक्षा करो" भक्तवत्सल प्रभुतो भक्तके गिरनेके पूर्व ही मानो उसकी रक्षाके लिए कूपमें जा विराजे थे। दयामय प्रभुने रीति ही को उलट दिया और "कुवाँमें गिरकर कोई सूखा नहीं निकलता" इस कहावतको असत्य सिद्ध कर दिया वह जो चाहें कर सकते हैं उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं।

बड़भागनी वृद्धा कुवाँसे हँसती हुई बाहर आई उसके मुखपर घबराहटका नाम निशान नहीं था। चोट लगने की तो बात क्या एक रोम भी तो उसका बाकाँ नहीं हुआ। बड़े आनन्दमें भरकर लगी कहने "कुवाँमें केवल कमर तक ही पानी है मैं तो खड़ी रही।" बेचारी वृद्धा नहीं जानती थी कि दयामय प्रभुकी महा महिम महिमासे सिन्धु गोपदके रूपमें परणित हो गया। अन्यथा जलके अंतरालमें गोता खाती क्योंकि जल कूपमें कमसे कम ३० हाथ भरा था।

वृद्धा मां तुम धन्य हो तुम्हारे सुकृत पुण्यकी सराहना कैसे की जाय लाखों मनुष्य इस मंगलमय मंगलाके समय आए सबने प्रसादके लिए हाथ बढ़ाया परन्तु श्रीराधावल्लभलालकी कृपाप्रसादका स्वाद तुम्हारे ही भाग बदा था। बुढ़िया कुवाँसे बाहर निकलते ही जल्दीसे चली गई। पूछताछ करने पर केवल इतना पता लग सका कि वह भाग्यशालनी झांसीकी निवासीनी थी।

प्रभु अब निज प्रभुता दिखला दो।
पापाचारोंका जो कूड़ा हृदय क्षेत्रमें प्रकट हुआ है।
ज्ञान हलोंसे उसे जुताकर सहित मूल सब नष्ट करा दो॥
निर्विकार निर्मल अरु चौरस, कोमल कर कृषी योग्य बना दो।
प्रेम भक्तिका बीज बुवाकर, उसमें सुखप्रद वृक्ष लगा दो॥
इसे सीचनेको सुरनायक या तो सतसंगत जल लादो।
याकि दया मीर चलाकर फिर आके वारिध बरसा दो॥
कामादिक बाराह जूथको सदाचार की वार लगा दो।
विषय तुषार लगन नहिं पावै ऐसी कोई युक्ति उपा दो॥
किसी भाँति निजपद अम्बुजका इसमें प्रभुवर पुष्प खिला दो।
"दास माधुरी" का यह जीवन दर्श दिखाकर सफल बना दो॥

गोपियोंकी महिमा

(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

देवर्षि नारद भक्तिका लक्षण बतलाकर उसके उदाहरणों में प्रेमिका शिरोमणि प्रातःस्मरणीया श्रीगोपिकाओंका नाम लेते हैं—

यथाव्रजगोपिकानाम् । (नारद-भक्ति-सूत्र २१)

वस्तुतः गोपियोंकी ऐसी ही महिमा है । जगत्में ऐसा कौन है जो गोपियोंके प्रेमके तत्त्वका बखानकर सके ? उनका तन, मन, धन, लोक, परलोक सब श्रीकृष्णके अर्पित था । वे दिन रात श्रीकृष्णका ही चिन्तन करतीं, गद्गद वाणीसे निरन्तर श्रीकृष्णका ही गुणगान करतीं और सर्वत्र सर्वदा श्रीकृष्णको ही देखा करती थीं । स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा है—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥
(श्रीमद्भा० १० । ३२ । २२)

'हे गोपिकाओ ! तुमने मेरे लिये गृहस्थीकी कठिन बेड़ियोंको तोड़कर मेरा भजन किया है । तुम्हारा यह कार्य सर्वथा निर्दोष है । मैं देवताओंकी आयुपर्यन्त भी तुम्हारे इस उपकारका बदला नहीं चुका सकता । तुम अपनी उदारतासे ही मुझे ऋणमुक्त करना ।'

उद्धवको सँदेसा देकर भेजते समय भगवान् श्रीकृष्णने प्रेमाश्रु बहाते हुए गद्गद वाणीसे कहा था—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम् ॥
मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ।
स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः ॥
धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथञ्चन ।
प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥
(श्रीमद्भा० १० । ४६ । ४-६)

हे उद्धव ! गोपियोंने अपना मन मुझको समर्पण कर दिया है, मैं ही उनके प्राण हूँ, मेरे लिये उन्होंने अपने देहके सारे व्यवहार छोड़ दिये हैं । जो लोग मेरे लिये समस्त लौकिक धर्मोंको छोड़ देते हैं, उनको मैं सुख पहुँचाता हूँ । वे गोपियाँ मुझको प्रियसे भी अति प्रिय समझती हैं, मेरे दूर रहने पर मुझे स्मरण करके वे दारुण विरहवेदनासे व्याकुल होकर अपने देह की सुधि भूल जाती हैं । मेरे बिना वे बड़ी ही कठिनतासे किसी प्रकार प्राण धारण कर रही हैं, मेरे पुनः व्रज जानेके सन्देशके आधारपर ही वे जी रही हैं । मैं उन गोपियोंकी आत्मा हूँ और वे मेरी हैं ।'

उद्धवने व्रजमें आकर जब प्रेममयी गोपियोंकी दशा देखी, उन्हें सब ओर बाहर-भीतर श्रीकृष्णके दर्शन करते पाया और जब उनके मुखसे सुना—

१—नाहिन रह्यौ हियमहँ ठौर ।
नंदनंदन अछत कैसे आनिये उर और ॥
चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत रात ।
हृदय ते वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात ॥
कहत कथा अनेक ऊधौ ! लोक-लाज दिखात ।
कहा करौं तन प्रेमपूरन, घट न सिंधु समात ॥
स्याम गात सरोज आनन, ललित गति मृदुहास ।
'सूर' ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास ॥

२—ऊधौ ! जोग जोग हम नाहीं ।
अबला ग्यानसार कहा जानैं, कैसे ध्यान धराहीं ॥
ते ये मूँदन नैन कहत हौ, हरि मूरति जिन माहीं ।

ऐसी कथा कपट की मधुकर हमते सुनी न जाहीं॥
स्रवन चीर अरु जटा बँधावहु, ये दुख कौन समाहीं।
चंदन तजि अँग भसम बतावत, विरह अनल अति दाहीं
जोगी भरमत जेहि लगि भूले सो तो है हम पाहीं।
'सूरदास' सो न्यारो न पल छिन ज्यों घटते परिछाहीं॥

गोपियोंने कहा—'उद्धवजी! योग उन्हें जाकर सिखाओ, जहाँ श्यामसुन्दरका वियोग हो। यहाँ तो देखो, सदा ही संयोग है, हमारा प्यारा श्याम सदा-सर्वदा हमारे साथ ही रहता है।'

तब उद्धवकी आँखें खुलीं, वे गोपियोंके शुद्ध प्रेमके प्रवल प्रवाहमें वह गये—

सुनि गोपीके बैन नेम ऊधौके भूले।
गावत गुन गोपाल फिरत कुंजनमें फूले॥
खिन गोपिनके पग परै, धन्य सोइ है नेम।
धाइ धाइ द्रुम भेंट हीं ऊधौ छाके प्रेम॥

उन्होंने भक्तिप्रणत चित्तसे कहा—

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः।
वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य॥
नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम्॥
आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥
(श्रीमद्भा० १०।४७।५८, ६०, ६१)

'जगत्में इन गोपललनाओंका ही देह धारण करना सफल है, क्योंकि इनका चित्त विश्वात्मा भगवान् श्रीगोविन्द में लगा हुआ है, जिनकी भवभयसे भीत हुए मुनिगण तथा हमलोग सभी इच्छा करते हैं। सत्य है, जो श्रीअनन्तकी लीला-कथाओंके रसिक हैं, उन्हें ब्राह्मणोंके तीनों जन्मों (जन्म, यज्ञोपवीत और यज्ञदीक्षा) की क्या आवश्यकता है? रासलीलाके समय भगवान् श्रीहरिके भुजदण्डको कण्ठ-हार बनाकर पूर्णकाम हुई इन व्रजबालाओंको श्रीहरिका जो प्रसाद प्राप्त हुआ है, वैसा निरन्तर हृदयमें रहनेवाली श्री-लक्ष्मीजी और कमलकी-सी कान्ति और सुगन्धिसे युक्त सुरसुन्दरियोंको भी नहीं मिला; फिर औरोंकी तो बात ही क्या है? इन महाभागा गोपियोंने कठिनतासे छोड़े जा सकनेवाले बन्धुओंको और आर्यधर्मको त्यागकर श्रुति जिसकी खोज करती है, उस मुकुन्दपदवीका अनुसरण किया है। अहो! क्या ही उत्तम हो, यदि मैं आगामी जन्ममें इस वृन्दावनकी लता, ओषधि या झाड़ियोंमेंसे कोई होऊँ, जिन-पर इन गोपियोंकी चरणधूलि पड़ती है।'

मथुराकी कुलाङ्गनाओंने गोपियोंकी दशाका वर्णन करके उनके जीवनको धन्य बताते हुए कहा है—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥
(श्रीमद्भा० १०।४४।१५)

जो गोपियाँ गायोंका दूध दुहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकोंको झुलाते समय, रोते हुए बच्चेको लोरी देते समय घरोंमें छिड़काव करते तथा झाड़ू देते समय प्रेमपूर्णचित्तसे आँखोंमें आँसू भरे, गद्गदवाणीसे श्रीकृष्णके गुणगान किया करती हैं, उन श्रीकृष्णमें चित्त निवेशित करनेवाली गोप-रमणियोंको धन्य है!'

इन गोपियोंकी जितनी महिमा गायी जाय, उतनी ही थोड़ी है। सर्वत्यागी व्रजवासी भक्तोंने तो गोपीपदपङ्कज-पराग ही बनना चाहा है। सत्य ही कहा है—

गोपी प्रेमकी धुजा।
जिन घनश्याम किये बस अपने उर धरि श्याम भुजा॥

महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवसदृश महान् त्यागी महापुरुषोंने तो गोपियोंको प्रेममार्गका गुरु माना है। महान् भक्त श्रीनागरीदासजी कहते हैं—

जयति ललितादि देवीय व्रज श्रुतिरिचा,
कृष्ण प्रिय केलि आधीर अंगी।
जुगल-रस-मत्त आनंदमय रूपनिधि,
सकल सुख समयकी छाँह संगी॥
गौरमुख हिमकरनकी जु किरनावली,
स्रवत मधु गान हिय पिय तरंगी।
'नागरी' सकल संकेत आकारिनी,
गनत गुनगननि मति होति पंगी॥

एक व्रजभक्तने कहा है—

ये हरिरस ओपी गोपी सब तियतें न्यारी।
कमलनयन गोविंदचंदकी प्रानपियारी॥
निरमत्सर जे संत तिनहिं चूडामनि गोपी।
निरमल प्रेम प्रबाह सकल मरजादा लोपी॥
जे ऐसे मरजाद मेटि मोहन गुन गावें।
क्यों नहिं परमानन्द प्रेमभगती सुख पावें॥

गोपियोंकी महिमा तभी कुछ समझमें आ सकती है, जब साधक विषयोंसे परम वैराग्य धारण कर प्रेमपथपर कुछ अग्रसर होता है।

(प्रेम-दर्शन)

कृपाँ भलाईं आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस सुजसु चारु चहु ओर॥

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत विदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥
तेउ सुनि सरन सामुहें आए। सुकृत प्रनामु किहें अपनाए॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥
को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिअ सपनें। सेवक सकुच सोच उर अपनें॥
सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥

यों सुधारि सनमानि जन किए साधु सिरमोर।
को कृपाल बिनु पालिहै बिरिदावलि बरजोर॥

श्रीकृष्णकी कृपा !

कविवर घन आनँदजी

नेकु उर आएँ ही बहुत दुख दूरि जात,
तापि बिन ताहि आप चंदन कृपा करै।
लगनि दै लागनि दै पाग अनुरागनि दै,
जागनि जगाय लै कै मंदन कृपा करै॥
बानी के विलास बरसावै घनआनँद है,
मूढ़ हू प्रकट गूढ़-छंदन कृपा करै॥१॥

आरति-निकंदन मिलावै नंद नंदन सु,
आनँदनि मेरी मति वंदन कृपा कहै॥
अमल अपूरब उजागर अखंड नित,
जाहि चाहि चंदहि चितारिबो कलंक है।
तारनि प्रकासै मित्र-मंडल मैं मंडन है,
बन घन राजै रस नायक निसंक है॥
आनँद-अमृत-कंद, बंदनीय प्राननको,
सुषमा संपत्ति हेरें काम कौन रंक है॥
चाहते चकोरन कों चोपन सों लखि लेत,
कृपा-चंद्रिका मैं नंद नंदन मयंक है॥२॥

दृग दीजियै दीसीपरौ जिनसौं इन मोर पखौवनि को भटकै।
मन दै फिरि लीजियै आपुनहींजु तहीं अटकै न कहूँ मटकै॥
करि बंदन दीन भनै सुनिये भ्रम-फंदन मैं कबलौं लटकै।
घन आनँद स्याम सुजान हरौ जिय चातिकके हियकी खटकै॥३

क्यों हठकै सठ! साधन सोधत, होत कहा, मनयौं तरसे तैं।
हाथ चढ़ै जिहिं स्याम सुजान कहूँ तिहिं पायन रे परसे तैं॥
नीरस मानस है रसरासि बिराजत नैसिक वा सरसे तैं।
ऊसर हू सर होत लखे घन आनँद रूप-कृपा बरसे तैं॥४॥

साधन-पुँज परै अन लेखे पै मैं अपने मन एको न लेख्यौ।
जे निरखै उरझे तिन मैं, किन हूँ बिन सोच कछू न बिसेख्यौ॥
तातें सबै तजि स्याम सुजान सों साहस औरों हियें अवरेख्यौ।
प्राण-पपीहनको घन आनँद पोष-रसीली कृपा करि देख्यौ॥५॥

ज्यौ परसै नहिं स्याम सुजान तौ धूरि समान है अंगनिधोइबो।
त्यौं मनकौं तिनके दरसे बिन वादि बिचारनि बीच घँघोइबो॥
वे घन आनँद क्यौं लहियै श्रमके भरिभार अपारहि ढोइबो।
जागत भाग कृपा रस पागत, दीसत यौं सहजै सुख सोइबो॥६॥

आय जो छाय तौ धूरि सबै सुख, जीवन मूरि सम्हारत क्यौं नहीं।
ताहि महागति तोहिं कहा गति बैठें बनैगी बिचारत क्यौं नहीं॥
नैननि संग फिरै भटक्यो पल मूँदि सरूप निहारत क्यौं नहीं।
स्याम सुजान कृपा घन आनँद प्रान पपीहन पारत क्यौं नहीं॥७॥

बलकै झलकै मुख रंग रचै उघरै गुन गौरव सील ढकै।
मन बाढ़ चढ़ै अति ऊरधकों, टक टेक सों स्याय सुजान तकै॥
जक एक न दूसरि बात कहूँ घन आनँद भीजिके प्रेम पकै।
दृग देखि छकै उछकै कबहूँ न छबीली कृपा मधु पान छकै॥७

परे रहौ, करम, धरम सब धरे रहौ,
उरे रहो उर, कौन गनै हानि लाहे कौं।
लोक परलोक जो कछू हैं तौ न छूहें हम,
छीलर रुचै न छीर सिन्धु अवगाहे कौं॥
महा घन आनँद घुमड़ पाइयत जहाँ,
सोच सुखा परौं करौ कर्म-दुख दाहे कौं॥
ऐसी रस रासि लहि उलझ्यौ रहत सदा,
कृपा दिखवैया काहू दिसि देखै काहे कौं॥८॥

हरिके हियमें जिय में जु बसै महिमा फिरि और कहा कहियै।
दरसै नित नैननि बैननि ह्वै मुसक्यानि सों रंग महा लहियै॥
घन आनँद प्रान-पपीहनकों रस प्यावनि निज्यावनि है वहियै।
करि कोऊ अनेक उपाय मरौ हमैं जीवनि एक कृपा चहियै॥६

स्याम सुजान हियें बसियै रहै, नैननि त्यौं लखियै भरि भाइनि।
बैननि बीच बिलास करै मुस्क्यानि सखी सों रचि चित चाइनि॥
है बस जाके सदा घन आनँद, ऐसी रसाल महा सुखदाइनि।
चेरी भई मति मेरी निहारि कै सील-सरूप कृपा ठकुराइनि॥१०

बैन कृपा, फिरि मौन कृपा दग दृष्टि कृपाऊ समाधि कृपाई।
ज्ञान कृपा गुनगान कृपा, मन ध्यान कृपा, हरै आधि कृपाई॥
लोककृपा, परलोक कृपा, लहियै सुख संपति साधि कृपाई।
यौं सब ठौं दरसै बरसै घन आनँद भीजि अराधि कृपा ई॥११

श्री रामनाम माहात्म्य

(लेखक वैष्णवाचार्य तपोमूर्ति श्रीस्वामी महन्त रामदासजी महाराज)

भगवत् प्राप्ति से ही जीवका कल्याण हो सकता है और भगवत् प्राप्तिका सबसे सरल साधन नाम स्मरण ही माना गया है, क्योंकि नाम स्मरण या नामके जपसे भगवानकी स्मृति तथा ध्यान होने लगता है और जब भगवानकी मूर्तिमें ध्यान करनेका अभ्यास दृढ़ हो जावे तो मन भी प्रभु चरणोंमें लग जाता है, जब मन भगवानके चरणोंमें लग गया तो फिर भगवत् प्राप्तिमें कोई संशय नहीं रहता, इसीलिये ही तत्ववेत्ता महर्षिगण तथा भगवद्भक्तोंने कलियुगके जीवोंके हितके लिये बार बार यह चेतावनी दी है

नहिं कलि करम न भक्ति विवेकू।
राम नाम अवलंबन एकू॥
कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख और जोग।
जो गति होई सो कलि हरिनाम से पावे लोग॥

अर्थात् कलियुगमें कर्म उपासना और ज्ञान नहीं हो सकते ऐसी अवस्थामें इनके द्वारा भगवत प्राप्ति या भगवत अनुग्रह सरलतासे नहीं हो सकता केवल रामनामके सहारे ही जीव अपने जीवनके उद्देश्यको पूरा कर पाता है।

कलियुग जोग यज्ञ नहीं ग्याना,
एक अधार राम गुण गाना।
नाम लेत भवसिन्धु सुखाहीं,
करहु विचार सुजन मन माहीं।

एक समय भगवान शिवशंकरको बड़े भक्ति भावसे जप करते देखकर जगज्जननी पार्वती देवीने पूछा, हे महेश्वर ! आप ही सब प्राणियोंके अधिष्ठान हैं। आप सर्वेश्वर हैं, आपके कोई माता पिता या गुरु नहीं है, आप प्रतिश्वासमें किसका जप और

ध्यान करते हैं कृपा करके आप मुझे उसका सत्य तत्व बतलाइये, यह सुनकर भोलानाथजीने कहा

हरेर्नाम सहस्राणि सारं ध्यायामि नित्यशः।
वेदसारमिदं नित्यं द्व्यक्षरं सततोद्यतम्॥

जो हजार हरिनाममें है मैं उस रामनामका जप करता हूँ। यही दो अक्षरोंका रामनाम मंत्र वेदोंका सार है, नित्य है, और सदा पाप नाशके लिये उद्यत है।

निर्मलं ह्यमृतं शान्तं सद्रूपममृतोपमम्।
कालातीतं निर्वशगं निर्व्यापारं महत्परम्॥
विश्वाधारं जगन्मध्यं कोटि ब्रह्माण्डबीजम्।
सतं शुद्धक्रियं वापि निरंजनं नियामकम्।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते क्षिप्रं घोर संसार बन्धनात्।

निर्मल, शान्त, सदरुप और अमृत तुल्य है, कालातीत, स्वतन्त्र, निर्व्यापार महत्पर, विश्वाधार और विश्व-स्थित है, अखिल ब्रह्मण्डका बीज है, सत् और शुद्ध क्रियक है निरंजन और नियामक है। इसको जानकर जीव संसार बन्धनसे छूट जाता है।

जो जीव चलते फिरते उठते बैठते सोते जागते श्रीराम नामका कीर्तन करता है वह अन्तमें संसारसे छूट कर भगवानका पार्षद होता है, यह दो अक्षरोंका मंत्र करोड़ों मंत्रोसे अधिक प्रभावशाली है, जगतमें इससे बढ़कर फल देनेवाला और कोई भी पढ़ने योग्य विषय नहीं है, जिन्होंने रामनामका आश्रय ले लिया है, उन्हें यमकी यातना भोगनी नहीं पड़ती, जो अन्तरात्मा स्वरूप रामनाका उच्चारण करता है वह चराचर जगत्के सम्पूर्ण प्राणियोंमें रमण करता है।

रामेति मंत्रराजोऽयं भयव्याधिनिषूदकः।
रणे विजयदश्चापि सर्वकार्यार्थसाधकः॥

मंत्रराज रामनाम भय, व्याधिका नाशक रणमें विजय करानेवाला और सब कार्य सिद्ध करनेवाला है।

सर्वतीर्थ फलः प्रोक्तः विप्राणामपि कामदः
रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः

इसके उच्चारणसे सारे तीर्थोंका फल प्राप्त होता है, ब्राह्मणोंकी कामना पूर्ण करनेवाला यही मंत्र है, देवता लोग भी इस गुणोंकी खान श्रीराम मंत्रका जप किया करते हैं, अतएव हे पार्वती तुम भी सदा श्रीराम नामका जाप किया करो।

श्रीशिव पार्वतीके श्रीरामनाम माहात्म्य सम्बन्धी संवादको याद रखकर प्रत्येक नर नारीको अपने कल्याणके लिये श्रीराम नामका जप सदैव करते रहना चाहिये।

एक सौ आठ मंत्रोंके जपमें अधिक से अधिक दस मिंट लगते हैं यदि दो घण्टे नित्य जपमें लगाये जावें तो १२ मालाएँ जप की हो सकती है, इस प्रकार यह राममंत्र लाखोंकी संख्यामें नित्यप्रति जीवका कल्याण करता है।

॥ श्रीहरिः ॥

नाम-माहात्म्यके नियम

उद्देश्य—श्री भगवन्नामके माहात्म्यका वर्णन करके श्रीभगन्नामका प्रचार करना, जिससे सांसारिक जीवों-का कल्याण हो।

नियम :—

१—"नाम-माहात्म्य" में श्री पूर्व आचार्य महानुभावों, महात्माओं, अनुभव-सिद्ध सन्तोंके उपदेश, उपदेशप्रद-वाणियाँ, श्रीभगवन्नाम महिमा और भक्तिसम्बन्धी लेख एवं श्रीभगवान् और उनके भक्तोंके चरित्र ही प्रकाशित होते हैं।

२—लेखोंके बढ़ाने, घटाने, प्रकाशित करने या न करनेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। लेखोंमें प्रकाशित मतका उत्तरदायी सम्पादक नहीं होगा।

३—"नाम-माहात्म्य" का वर्ष जनवरीसे आरम्भ होता है। ग्राहक किसी भी मासमें बन सकते हैं। किंतु उन्हें जनवरीके अंकसे निकले सभी अंक दिये जायँगे।

४—जिनके पास जो अंक न पहुँचे, वे अपने डाकखानेसे पूछें, वहाँसे मिलनेवाले उत्तर को हमें भेजनेपर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी।

५—"नाम-माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित केवल २≡) दो रुपये तीन आना है।

६—वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे भेजना चाहिये। वी०पी० से मंगवाने पर ।) अधिक रजिस्ट्री खर्चके लगते हैं और समय भी अधिक लगता है।

७—समस्त पत्रव्यवहार व्यवस्थापक, "नाम-माहात्म्य" कार्यालय मु० पो० वृन्दावन (मथुरा) के पतेसे करना चाहिये।

"नाम-माहात्म्य" भगवन्नाम—प्रचारकी दृष्टिसे निकलता है। इसका जितना अधिक प्रचार होगा, उतनी ही भगवन्नाम-प्रचारमें वृद्धि होगी; अतः कृपा कर समस्त प्रेमी पाठक इसे अपनायें। इसका मूल्य बहुत कम केवल २≡) है। आज ही आप मनीआर्डर द्वारा रुपया भेजकर इसे मंगाना आरम्भ कर दीजिये और अपने इष्ट-मित्रोंको भी इसे मंगानेके लिए उत्साहित कीजिये नमूना मुफ्त मंगाइये।

पता—व्यवस्थापक, 'नाम-माहात्म्य' श्रीभगवान भजनाश्रम
पोस्ट—वृन्दावन(मथुरा)

रजिस्टर्ड नं० ए ५४६

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभगवन्नाम-जप कराइये



श्री वृन्दावनमें लगभग ८५० गरीब माइयाँ प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल ६ घण्टे परम मंगलमय श्रीभगवन्नामका जप एवं संकीर्तन करती हैं इन्हें आश्रम द्वारा अन्न, वस्त्र और पैसोंकी सहायता दी जाती है। एक माई प्रतिदिन एक लाख श्रीभगवन्नामजप कर सकती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

कलियुगमें संसार-सागरसे पार उतरनेका एकमात्र सुगम उपाय श्री भगवन्नाम-जप करना ही शस्त्रोंमें वर्णित है। सभी महानुभवोंको स्वयं अधिक-से-अधिक भगवन्नाम-जप करनेकीचेष्टकरनी चाहिये।

जो महानुभाव अपनी ओरसे गरीब माइयों द्वारा श्रीभगवन्नामजप कराना चाहें, वे कृपाकर हमें सूचित करें। भजनाश्रममें लगभग ६०० गरीब माइयाँ आती हैं जिनमें-से इस समय लगभग ६३४ माइयाँ दान दाताओंकी ओरसे भजन कर रही हैं। बाकी माइयोंसे भजन करनेके लिये हम सभी प्रेमी सज्जनोंसे निवेदन करते हैं कि आप अपनी-अपनी श्रद्धा और प्रेम के अनुसार जितनी माइयों द्वारा जितने मासके लिये भजन कराना चाहें, अवश्य करावें एवं अपने इष्टमि-त्रोंको भी भजन करानेके लिये प्रोत्साहित करें।

एक माईको नित्य प्रति साढ़े चार आनेकी सहायता दी जाती है। इस हिसाबसे एक मासका ८।≋) और एक वर्षका १०१।) खर्च लगता है। पत्र-व्यवहार एवं मनीआर्डर भेजनेका पता :—

मन्त्री—श्रीभगवान-भजनाश्रम,
पोस्ट—वृन्दावन

